नासिरा शर्मा के कथा साहित्य में स्त्री विमर्श

(हिंदी विभाग, गोवा विश्वविद्यालय की
पीएच.डी. उपाधि के प्रति प्रस्तुत शोध प्रबंध)

891.4331092
SIN/Nas
T-468

Certified Copy
All correction suggested by referees have been incorporated in thesis

शोधकर्ता
अमरीश सिन्हा

09.07.10
Prof. Arjun G. Chavan
(Ext. Examiner)

09/07/10
Guide

शोध निर्देशक
डॉ. बी. के. शर्मा 'रोहिताश्व'
प्रोफेसर, हिंदी विभाग
गोवा विश्वविद्यालय, गोवा

गोवा विश्वविद्यालय, तालेगांव, गोवा - 403 206

DECLARATION

I, the undersigned himself declare that the thesis entitled *"नासिरा शर्मा के कथा साहित्य में स्त्री विमर्श"* *"Nasera Sharma Ke Katha Sahitya Mein Stree Vimarsh"* has been written exclusively by me and that no part of this thesis has been submitted earlier for the award of this University or any other University.

Date : 9/07/2010
Place : Taleigao Plateau, Goa.

Amrish Sinhaa
Research Scholar

CERTIFICATE

As per the Goa University ordinance, I certify that this thesis entitled *"नासिरा शर्मा के कथा साहित्य में स्त्री विमर्श"*

"Nasera Sharma Ke Katha Sahitya Mein Stree Vimarsh"

is a record of research work done by candidate himself during the period of study under my guidence and that it has not previously formed the basis for the award of any degree or diploma in the Goa University or elsewhere.

Research Guide

Dr. B. K. Sharma "Rohitashva"
Professor, Department of Hindi
Goa University

Date : 09|07|2010
Place : Taleigao Plateau, Goa.

प्राक्कथन

अक्षर – बोध के उपरांत साहित्य की जब निर्मिति हुई तो दुनिया में पहले – पहल महाकाव्यों और नाटकों ने लोगों के बीच कदम रखा तब इन विधाओं के जरिए पाठक – दर्शक मानवीय समाज को देख – समझ पाने की कोशिश करता था । बाद में कथा साहित्य ने मानव जगत में एक सशक्त विधा के रुप में पदार्पण किया । पाठकों को यह विधा इतनी रास आई कि वे स्वयं को घटनाक्रम के इर्द–गिर्द महसूस करने लगे । स्वयं को पात्रों के स्थान पर रखकर कथा – साहित्य के रसास्वादन का आनंद लेने की उनकी उत्कट प्रवृत्ति इतनी तीव्र गति से विस्तीर्ण हुई कि राल्फ फाक्स ने 'नॉवेल एण्ड दी पीपुल' नामक पुस्तक में उद्घोषणा तक कर डाली कि ''बीसवीं सदी के अंत में महाकाव्य का स्थान उपन्यास विधा ग्रहण कर लेगी'' जो आज पूर्णतया सत्य साबित हो रही है । उन्होंने प्रसंगवश महाकाव्यात्मक उपन्यासों की संरचना भी सम्भाव्य मानी थी । वस्तुत: उपन्यास यथार्थ मानव – अनुभवों एवं सत्य का आकलन है । वह जीवन की अनेकता में एकता तथा अपूर्णता में समग्रता स्थापित करने का प्रयत्न करता है । कथा – साहित्य, विशेषकर उपन्यास में लेखक के जीवन के अनुभूत सत्य से पाठक अपना निकटतम परिचय स्थापित करता है । यही कारण है कि जो विधा उन्नीसवीं सदी के उन्तरार्द्ध में शैशवास्था में थी, आज डेढ़ सौ वर्षों से भी कम वर्षों के अपने आयु – काल में इतनी

विकसित हो गयी कि आज इस विधा में कई कालजयी रचनाएं लिखी जाने लगी हैं, नए - नए प्रयोग भी किए जा रहे हैं, लीक से हटकर लेखन परम्परा विकसित हो चली है, समाज का सांगोपांग अध्ययन प्रस्तुत करने का साहस रचनाकारों में हो चला है । इसी क्रम में आता है स्त्री विमर्श को लेकर लिखा जाने वाला कथा साहित्य या यूं कहें कि कथा साहित्य में स्त्री - विमर्श का घटनाक्रमों व अनुभूतियों के द्वारा विवेचन। राल्फ फाक्स हो या अस्तित्ववादी ज्याँ पॉल सार्त्र या फिर 'नारी बनकर कोई पैदा नहीं होती, कोई - कोई ही नारी बन पाती है' कहकर दुनिया के पुरुष वर्ग को अचंभित करने वाली स्त्री विमर्श की प्रणेता सीमोन द बोउवार ने बीसवीं सदी के अंत में स्त्री - विमर्श के कथा साहित्य के केन्द्र में आने की परिकल्पना भी नहीं की होगी ।

विगत दो दशकों में गांवों में, कस्बों में जहां - जहां गरीब महिलाओं के अधिकारों को लेकर चेतना जागृत व व्याप्त हुई है, वहां - वहां शहरी व ग्रामीण, शिक्षित व अशिक्षित, आधुनिक व परम्परागत की प्रचलित परिभाषाएं दरारें बनकर बार - बार उभरी हैं । फलस्वरुप 'स्त्री' चर्चाओं, गोष्ठियों के साथ - साथ साहित्य के केन्द्र में रही है । स्त्री सशक्तिकरण, स्त्री विमर्श, स्त्रीवाद, स्त्रीवादी विमर्श आदि रुपों में स्त्री विश्व भर के साहित्य में विवेचन का विषय रही है । पूर्व की स्त्री और पश्चिम की स्त्री, सशक्त स्त्री और अबला स्त्री, पुरातन स्त्री व आधुनिक स्त्री, अच्छी स्त्री व बुरी स्त्री, नायिका स्त्री व खलनायिका स्त्री; स्त्री के लिए निर्धारित मानदण्ड और किसी भी खांचे में फिट नहीं होना चाहती स्त्री । इस प्रकार के विषयों पर अक्सर कुछ - ना - कुछ लिखा जाता रहा है । पर इसका यह अर्थ कदापि नहीं कि स्त्री विमर्श को लेकर केवल दो दशकों से लिखा जा रहा है । इससे पूर्व स्त्री के अनुभव की प्रामाणिकता की बात महादेवी वर्मा 'श्रृंखला की कड़ियां' में कर चुकी हैं । स्त्री विमर्श के इतिहास की चर्चाओं में स्त्रीवादी सोच व आंदोलन की शुरुआत यूरोपीय देशों और सं. रा अमेरिका में हुई । केट मिलेट की 'सेक्सुअल पॉलिटिक्स', सुलामिथ फायरस्टोन की 'डायलेक्टिक्स ऑफ सेक्स', जुलिएट मिथेल की 'वूमैन स्टेट', सीमोन द बोउवा की 'द सेकेण्ड सेक्स', वर्जीनिया वुल्फ की 'ए रुम ऑफ वंस ऑन', शीला सेवॉथम की 'हिडेन फ्रॉम हिस्ट्री', एलेन सोवोल्टा की 'ए लिटरेचर ऑफ देयर ऑन', एडवर्ड सईद की 'ओरिएंटलिज्म' लैला अहमद की 'विमेन एंड जेंडर इन इस्लाम' तथा आदि पुस्तकों के माध्यम से रचनाकारों ने स्त्री विमर्श के विभिन्न ज्वलंत मुद्दों पर चर्चा की है । मेरी वोल्सटनक्राफ्ट की पुस्तक 'ए विंडिकेशन ऑफ द राइट्स ऑफ वुमेन' तो 1792 ई में ही आ गई थी जिसे स्त्री - मुक्ति विमर्श की सुदीर्घ परम्परा में प्रथम क्लासिक कृति का श्रेय प्राप्त है ।

परन्तु स्त्री अधिकारों के प्रति जागरुकता बढ़ने के कारण विगत दशक या यूं कहें कि बीसवीं सदी के आखिरी दस वर्षों में स्त्री विमर्श एक ज्वलंत विषय के रुप में उभरकर सामने आया है । 'स्त्री विमर्श' में यह विवाद का विषय रहा है कि स्त्री विमर्श स्त्री के लिए सुरक्षित क्षेत्र है या लेखक होने के नाते पुरुष की भागीदारी की सम्भावना भी वहाँ बनती है । यह बात जोर देकर उठाई गयी है कि 'स्त्री विमर्श' स्त्री के लिए सुरक्षित क्षेत्र है एवं पुरुष के लिए उसमें कोई स्थान नहीं हैं । स्त्री का आत्मसंघर्ष अपनी निरंतरता में प्रत्येक युग में विद्यमान रहा है । परंपरागत दृष्टि से स्त्री के प्रति व्यवस्था का रवैया निश्चित मानदंडों, आदर्शों के नियत व्यवहारों से संचालित होता रहा है, जिसमें स्त्री को तय कर दी गई भूमिका में निर्धारित आदर्श आचरण संहिता के अनुसार जीना है, जिसके निर्धारण का अधिकार शताब्दियों से पुरुष ने अपने पास सुरक्षित रखा है । पुरुष के अत्याचार एवम् अन्याय को सहना उसकी नियति बन गयी थी । बचपन में पिता की, किशोरावस्था में भाइयों की, युवावस्था में पति की और बुढ़ापे में बेटों की अधीनता लंबे समय तक भौतिक, आर्थिक, भावनात्मक, परावलंबन स्त्री जीवन का केन्द्रीय सत्य रहा है ।

समय के बदलते तापमान में, बदलते सामाजिक सन्दर्भों में अपनी पराश्रित होने की भूमिका, शोषण, असमानता से मुक्ति के प्रयत्न एवं दोहरे मानदंडों के बीच अपनी बदलती सामाजिक भूमिका के बावजूद स्त्री संघर्ष के प्रश्न नहीं बदले हैं । स्त्री – पुरुष के आन्तरिक संबंध और व्यवस्था से जुड़े प्रश्न जटिलतर होते गये हैं । आज वह छटपटा रही है उनमुक्त गगन में उडान भरने के लिए। लेकिन यह सब इतना आसान थोड़े ही है । इसलिए उसे विद्रोह करना पड़ा । उसकी लड़ाई पुरुष से नहीं बल्कि उस पितृसत्तात्मक व्यवस्था से है जो जन्म से लेकर मृत्यु तक पुरुषों को लगातार एक ही पाठ पढ़ाती है कि स्त्रियाँ उनसे हीनतर है, उनके भोग का साधन मात्र । आज के स्त्रीवादी रचनाकारों ने इसी पितृसत्तात्मक मानव मूल्यों, दोहरे मापदण्डों, दोहरी नैतिकता, वर्जनाओं, मूल्यों पर प्रहार करते हुए प्रश्न चिन्ह लगाया है । आजादी के बाद भारत में महिलाओं में चेतना बढ़ी है ।

मल्लिका सेनगुप्त की 'स्त्रीलिंग निर्माण', मृणाल पाण्डे की 'देवी', कृष्णा सोबती की 'ए लड़की', अरविंद जैन की 'औरत होने की सजा', क्षमा शर्मा की 'स्त्री का समय', अनामिका की 'स्त्रीत्व का मानचित्र', महाश्वेता देवी की 'दौलति' एवं 'सुवर्णलता', कात्यायनी की 'दुर्गद्वार पर दस्तक' आदि कुछ ऐसी ही रचनाएं हैं जिन्होंने स्त्री विमर्श के नये आयाम उद्‌घाटित किये हैं । तो प्रश्न उठता है आखिर यह स्त्री विमर्श है क्या ? और उसकी

आवश्यकता क्यों है ? स्त्री विमर्श का सामान्य अर्थ लगाया जाता है स्त्रियों के विषय में विचार एवं चिंतन करना । अर्थात ऐसा साहित्य लिखना जिसमें स्त्रियों के हितों और विचार विमर्श को ध्यान में रखा जाए । दूसरा अर्थ इस रुप में प्राप्त होता है कि स्त्री का, स्त्री के लिए, स्त्री के द्वारा लेखन और विमर्श स्त्री विमर्श है । यह सही है कि स्त्री का स्त्री के लिए लेखन साहित्य को नयी भाषा, नया पाठ और नई दृष्टि प्रदान करता है । परंतु इसे स्त्री तक सीमित करने से जहाँ पुरुष 'स्त्री' विषय के बाहर का व्यक्ति हो जाता है, स्त्री भी 'स्त्री विषय' तक सीमित हो जाती है ।

इस संबंध में रेखा कस्तवार की मानें तो स्त्री विमर्श वास्तव में स्त्री जीवन के अनछुए, अनजाने पीड़ा जगत के उद्‌घाटन के अवसर उपलब्ध करता है, परन्तु उसका उद्देश्य साहित्य एवं जीवन में स्त्री के दोयम दर्जे की स्थिति पर आँसू बहाने और यथास्थिति बनाए रखने के स्थान पर उन कारकों की खोज से है, जो स्त्री की इस स्थिति के लिए जिम्मेदार है । वह स्त्री के प्रति होने वाले शोषण के खिलाफ संघर्ष है । स्त्री के शोषण के सूत्र जहाँ बच्चों को बेटे और बेटी की तरह अलग - अलग ढंग से बड़ा करने और गलत ढंग से सामाजिकरण से जुड़ते हैं वहीं प्रजनन व यौन संबंधी शोषण से भी है । इस प्रकार हम कह सकते हैं कि 'स्त्री विमर्श' स्त्री के स्वयं की स्थिति के बारे में सोचने और निर्णय करने का विमर्श है । स्वयं चेती हुई स्त्री के स्वधिकार स्त्री विमर्श के सरोकार हैं ।

ऐतिहासिक प्रक्रिया में स्त्री की शिक्षा, आर्थिक आत्मनिर्भरता, संस्कारों के प्रति सचेत दृष्टि के कारण कालान्तर में स्त्री की स्वतंत्रता की बात भी जब की गई तो उसे देह की स्वतंत्रता से व्याख्यायित किया गया और यह स्थापित किया गया कि स्त्री चूँकि देह मात्र है, इसलिए उसे इसी सोच के धरातल से मुक्ति चाहिए । स्त्री विमर्श के सरोकार स्त्री की देह के धरातल पर मुक्ति की पक्षधरता के साथ - साथ उसके लिए सामाजिक, आर्थिक, राजनीतिक स्वतंत्रता एवं समानता का भी वकालत करता है । स्त्री विमर्श मात्र देह विमर्श नहीं है । वह स्त्री के सामाजिक न्याय के लिए संघर्षरत है । इसलिए स्त्री मुक्ति का प्रश्न सामाजिक, राजनीतिक मुक्ति के अन्य पक्षों से हटकर नहीं बनाया जा सकता । इन सब मुद्दों को हम आज की महिला कथाकारों की रचनाओं में देख सकते है, जिनमें कृष्णा अग्निहोत्री, कृष्णा सोबती, ममता कालिया, प्रभा खेतान, चित्रा मुद्‌गल, मैत्रेयी पुष्पा आदि शामिल हैं ।

लेकिन कथाकार नासिरा शर्मा इन सबसे अलग हैं । नासिरा इस अर्थ में स्त्री कथाकारों में अलग हैं कि उनकी रचनाशीलता के जरिए स्त्री विमर्श का दायरा और अधिक विस्तृत हुआ है । यह विस्तार भारत की सीमाओं से परे जाकर पाकिस्तान, अफगानिस्तान, ईरान और

इराक आदि मुस्लिम देशों में सामाजिक - आर्थिक स्थिति को गहराई से समझने - बूझने तक गया है । लेखिका ईरान के व्यापक दौरे के उपरांत अध्ययन - विवेचन लिखने को लेकर पिछले दशक काफी चर्चा में रहीं । समाज के समग्र अध्ययन - मनन के उपरांत अपनी रचनात्मक कलाकृति गढ़ने में विश्वास रखने वाली लेखिका ने पृथक रुप से स्त्री विमर्श की चर्चा - बहस की है । वे कहती हैं - '' .... भारतीय जनता को धर्म या कार्य के आधार पर वर्गों में बांटने की जगह उन्हें आर्थिक स्तर पर बांटना जरुरी है ताकि उनका विकास मनुष्यता के आधार पर हो । इसी संदर्भ में औरत - मर्द को बांटना भी मुझे पसंद नहीं है । आजादी के पचास वर्ष होने तक औरत अपने पुराने ठिकाने से निकलकर बाहर की खुली दुनिया में अपनी काबिलियत और मेहनत से आई है इसलिए वह ईमानदारी और लगन से अपने कार्यक्षेत्र में जमी है और अब उसने अपना रास्ता ढूंढ़ लिया है तो उसको 'महिला आरक्षण' का अपमान पत्र थमाने की कोशिश हो रही है''। लेखिका ने यह भी कहा है कि खुदा ने स्त्री और मर्द को अलग शक्ल जरुर दी है, मगर उनको किसी भी स्तर पर कमी देकर छोटा - बड़ा नहीं बनाया है और वे लोग जो कुंठित हैं, उन्हें मालूम होना चाहिए कि मन - मस्तिष्क, चेतना और शक्ति में औरत कमतर नहीं है ।

नासिरा शर्मा का कथा साहित्य अनुभव के सागर से निकलकर कथा जगत में अवतरित वे एहसास हैं जो स्त्रीवाद और स्त्री-विमर्श को समझने की दिशा में महत्वपूर्ण अध्याय हैं। इन्होंने सौ से अधिक कहानियाँ, सात उपन्यास, निबंध, रिपोर्ताज आदि लिखी हैं, जो भारतीय तथा एशियाई व अरब मुस्लिम देशों के समाज के विभिन्न तबकों, मध्यम वर्ग, अभिजात्य वर्ग और न्यून-मध्यम वर्ग की सामाजिक सोच एवं अलग-अलग शैक्षणिक अर्थिक स्तर के समाज में स्त्रियों की दशा, दिशा, सोच तथा उनके बारे में पुरुष की सोच को खुलासा करती हैं।

नासिरा शर्मा की लेखकीय विशिष्टता इस बात में है कि उन्होंने अपने कथा साहित्य में स्त्रियों की इस दुनिया को न केवल जीवन्तता प्रदान की है बल्कि गहरी मानवीय संवेदना के साथ इस दुनिया की स्त्रियों की पक्षधर बनकर भी सामने आई है । जनवाणी की अधिकारिणी व मखमल जैसी छहलने वाली साथ ही, फर्राटेदार भाषा की धनी नासिरा 'स्त्री विमर्श' के ऐसे आयाम प्रस्तुत करती हैं जो अब तक हाशिये पर थे । नासिरा शर्मा के पास भाषा वैभव है । वे हिन्दी, उर्दू के अलावा फारसी, पश्तो एवं अंग्रेजी की अच्छी जानकार हैं । इसलिए उसका नजरिया, अध्ययन व अनुभव फलक काफी विस्तृत है । विवेच्य कथाकार के कथा साहित्य में स्त्री विमर्श के विविध आयामों को प्रस्तुत एवं विश्लेषित करना ही मेरे शोध का

प्रमुख विषय रहा है । 'नासिरा के कथा साहित्य में स्त्री विमर्श' पर कोई ठोस, सुसंगत आलोचना उपलब्ध नहीं है । उनकी रचनाओं पर इक्का - दुक्का समीक्षा भर पढ़ने को मिलती रही है। हालांकि तीन साल पूर्व 'नया ज्ञानोदय' नामक पत्रिका ने उनकी कई रचनाओं को छापा भी है तथा उनकी रचनाधर्मिता की समीक्षा भी की है ('नया ज्ञानोदय', जून व अगस्त 2007)। पर यह समीक्षा विवाद के घेरे में आ गई । स्वयं नासिरा ने इसे पक्षपातपूर्ण व आडम्बरपूर्ण बताया है । वर्ष में लंदन में उन्हें इंदु कथा सम्मान से सम्मानित किए जाने के उपरांत उनके कृतित्व के बारे में सराहनीय - टिप्पणियां देश भर की पत्र - पत्रिकाओं में अवश्य पढ़ने को मिलीं । लेकिन यह सब कुछ अपर्याप्त, आधी - अधूरी व सतही लगती हैं । उपलब्ध जानकारी के अनुसार नासिरा शर्मा के कथा साहित्य पर देश के किसी भी हिस्से में शोध प्रबंध लेखन नहीं हुआ है, ना ही इनकी कृतियों पर कोई समीक्षात्मक या आलोचनात्मक पुस्तक अथवा शोध प्रकाशित है । यद्यपि अभी-अभी यानी मई 2010 में ललित शुक्ल द्वारा संपादित पुस्तक प्रकाशित हुई है - 'नासिरा शर्मा : शब्द और संवेदना की मनोभूमि'। यह नासिरा के बारे में विमिन्न लेखकों, आलोचकों के लेखों का संग्रह है। उनके साहित्य में स्त्री विमर्श को तलाशने की तो कोशिश भी नहीं हुई है । इसलिए 'नासिरा शर्मा के कथा साहित्य में स्त्री विमर्श' विषय पर शोध करना एक वैचारिक उपलब्धि व साहित्यिक योगदान हो सकता है ।

प्रस्तुत शोध प्रबंध को सात अध्यायों में विभाजित किया गया है ।

'स्त्री विमर्श : इतिहास, स्वरुप एवं विवचेन' नामक प्रथम अध्याय में स्त्री विमर्श का अर्थ, परिभाषा, स्त्री की दृष्टि में स्त्री विमर्श, पुरुष की दृष्टि में स्त्री विमर्श, आलोचकों की दृष्टि में स्त्री विमर्श का विभाजन किया गया है । मातृसत्तात्मक परिवार का अवसान तथा पुरूष वर्चस्व का आरंभ होने से भारतीय नारी और पुरूष वर्चस्व के पारस्परिक अन्तरसंघर्ष को चित्रित करने की कोशिश की गयी है । इसे विश्लेषित करने के लिए उपनिषद, पुराण, आख्यान, मनुस्मृति आदि में चित्रित स्त्री के प्रति मानसिकता तथा उसी क्रम में मध्ययुगीन समाज में स्त्री की स्थिति का यथासंभव विवेचन किया गया है । 'भारतीय विचारक एवं विवेचन' नामक तृतीय उपभाग में नारी मुक्ति आन्दोलन, और आन्दोलन को प्रेरित करने वाले साहित्य की चर्चा की गयी है । इसी के अन्तर्गत बीसवीं शताब्दी के नारी लेखन पर हुए प्रभाव का चित्रण भी है । अंत में भारतीय एवं पाश्चात्य विचारकों की दृष्टि में स्त्री विमर्श का करते हुए स्त्री विमर्श की सैद्धांतिकी तय की गई है ।

'नासिरा शर्मा का व्यक्तित्व एवं कृतित्व' नामक द्वितीय अध्याय में नासिरा शर्मा के

व्यक्तित्व एवं कृतित्व का परिचय दिया गया है । प्रथम उप अध्याय में व्यक्ति परिचय के अंतर्गत उनके जन्म से लेकर अब तक के जीवन को रेखांकित किया गया है, जिसमें उनके जन्म, नाम, जन्म स्थान, माता-पिता, दादा, पारिवारिक पृष्ठभूमि, बचपन, शिक्षा, विवाह, पाटी, परिवार, बच्चे आदि का विवेचन है । व्यक्तित्व के अन्तर्गत उनके आन्तरिक एवं बाह्य पक्षों को अंकित करते हुए, उनके जीवन संघर्ष, साहित्यिक यात्रा, पुरस्कारों आदि का अध्ययन किया गया है । अध्याय के द्वितीय एवं तृतीय उपभागों में नासिरा का साहित्य संसार है – जिसके अंतर्गत उनके कहानी संग्रह, उपन्यास, यात्रा संस्मरण, निबंध संग्रह तथा आत्मकथा आदि का परिचय दिया गया है । अध्याय के अंत में सीरियल लेखन के दौरान लेखिका को हुए संस्मरणों की चर्चा एवं विमर्श प्रस्तुत किया गया है ।

'नासिरा शर्मा का कहानी संसार और स्त्री विमर्श' नामक तृतीय अध्याय में नासिरा शर्मा से पूर्व लिखी गयी कहानी के विकास का सामान्य परिचय देते हुए नासिरा शर्मा की कहानियों में चित्रित पुरुष समाज और नारी जीवन की पराधीनता को रेखांकित किया गया है । जहाँ एक और उनकी कहानियों में चित्रित परंपरागत स्त्री की छवि के वर्णन के अन्तर्गत उसका अबलापन, भावपूर्णता, त्यागमयी मूर्ति, पतिव्रता धर्म, पुरुष पर निर्भर स्त्री, यौन शुचिता के आग्रह, विवाह की विभिन्न समस्याएँ, स्त्री के विविध रुपों आदि का चित्रण किया गया है, वहीं दूसरी और नारी जीवन की अन्तर्जटिलता को चित्रित करने के लिए उनकी समस्या तथा उससे उत्पन्न चेतना, शोषित वातावरण से उभरने की जिजीविषा, अस्तित्ववाद आदि को विश्लेषित किया गया हैं । नारी चेतना के विकास को चित्रित करने के लिए उस पर नारी मुक्ति आन्दोलन, महिला सशक्तिकरण के प्रभाव के चित्रण के साथ – साथ तथा अपनी अस्मिता व अस्तित्व का बोध होते ही अपने अधिकार के लिए विद्रोह करती स्त्री के रुप का चित्रण भी यथासंभव किया गया है । आधुनिक स्त्री का विकास, स्त्री का परंपरागत नियमों के प्रति विद्रोह, स्वावलंबन की जिजीविषा आदि सारे मुद्दों का विश्लेषण 'दूसरा ताजमहल', 'सबीना के चालीस चोर' बुतखाना एवं 'शमी कागज' आदि कहानी संग्रहों के आधार पर किया गया है ।

'नासिरा शर्मा कृत उपन्यास संसार : अन्तः संघर्ष एवं वर्गीय चित्रण' चतुर्थ अध्याय में उपन्यास का संक्षिप्त इतिहास देते हुए नासिरा के उपन्यासों के कथ्य पर प्रकाश डाला गया है । इन उपन्यासों में चित्रित नारी जीवन के संक्रमण तथा वर्गीय संघर्ष का विवेचन उपन्यासों के आधार पर किया गया है । नारी वर्ग का चित्रण करते हुए मुख्य रूप से मध्यवर्गीय नारी और उस पर पड़े शहरी जीवन के प्रभाव पर चर्चा की गयी है । अध्याय के अंत में उपन्यास में

चित्रित विभिन्न नारी पात्रों के दाम्पत्य जीवन में उनके बदलते स्वरुपों पर दृष्टि डाली गयी है।

नासिरा ने सात उपन्यास लिखे हैं- 'शाल्मली', 'ठीकरे की मंगनी' 'जहां फव्वारे लहू रोते हैं', 'जिंदा मुहावरे', 'अक्षयवट', 'कुइयांजान' और 'जीरो रोड'। इन उपन्यासों के आधार पर विवेच्य विषयों को विश्लेषित करने की कोशिश की गयी है ।

'नासिरा शर्मा का कथा साहित्य : परिवेश और मूल्य ' नामक पंचम अध्याय में भारत के अलावा ईरान, इराक व अफगानिस्तान आदि मुस्लिम देशों के समाज में पुरुष वर्ग की सोच एवं स्त्री विमर्श की चर्चा की गई है । 'नासिरा शर्मा की भाषा, शैली एवं शिल्प संदर्भ' नामक षष्ठ अध्याय के अंतर्गत नासिरा शर्मा के कथा साहित्य को मद्देनजर रखते हुए शिल्प संबंधी विविध आयामों को विश्लेषित करने की कोशिश की गयी है क्योंकि कथा साहित्य का शिल्प विधान कल्पना और यथार्थ के ताने बाने से बुना हुआ वातायन होता है, जिसमें कथ्य, पात्र, परिवेश, कथोपकथन एवं सोद्देश्यता के तत्वों के साथ - साथ सांकेतिकता, सम्प्रेषणीयता की मूल्य चेतस भावना भी सक्रिय होती रहती है ।

हर रचनाकार अपनी इच्छित विषयवस्तु के सम्प्रेषण हेतु विभिन्न शैली रूपों का इस्तेमाल कर लेता है । नासिरा शर्मा के कथा साहित्य में आत्मकथात्मक शैली, इतिवृत्तात्मक शैली, विवेचन शैली, 'व्यंग्यात्मक शैली एवम् सांकेतिक शैली, वार्तालाप एवम् संवाद शैली वर्णनात्मक शैली, विश्लेषणात्मक शैली, पत्रात्मक शैली, बिम्बात्मक शैली, प्रतीकात्मक शैली, टेलीफोनिक शैली आदि के दर्शन होते है जिसका यथासंभव विश्लेषण किया है ।

नासिरा शर्मा के कथा साहित्य में हिंदी, उर्दू, फारसी मिश्रित उर्दू एवं अवधी शब्दों व भाषा का प्रयोग लिया गया है । मुहावरों, लोकोक्तियों एवं आंचलिक शब्दों तथा बोलियों का पूरा उपयोग किया गया है । जनवाणी पर सहज असामान्य अधिकार होने के कारण वह कथानक और परिवेश को सजीव बनाती है । शोध कार्य के उपसंहार में नासिरा शर्मा के कथा साहित्य का अध्ययन समकालीन कथा साहित्य से तुलना करते हुए, नासिरा के वैशिष्ट्य को चित्रित करने का प्रयास किया गया है ।

प्रस्तुत शोधकार्य के लिए संदर्भ ग्रंथों, आलोचनात्मक पत्र-पत्रिकाओं, शोधप्रबन्ध एवं शोध-आलेखों आदि की सहायता ली गयी है । अत: सर्वप्रथम उन सभी विद्वानों, रचनाकारों का ऋणी हूँ जिनकी रचनाओं, विचारों, शोध-तथ्यों का बहुमूल्य लाभ मुझे प्राप्त हुआ है । मेरे शोध प्रबंध के प्रेरक तथा पथ दर्शक आदरणीय डॉ. बी. के. शर्मा 'रोहिताश्व' का समय समय पर मार्गदर्शन तथा वैचारिक सम्बल प्राप्त होता रहा है, उनके प्रति मैं हृदय से श्रद्धावनत हूँ । गोवा विश्वविद्यालय में एवं गोवा में समय-समय पर आयोजित सेमिनार,

कार्यशाला तथा पुनश्चर्या पाठ्यक्रम में आमंत्रित विद्वान डॉ. नामवर सिंह (दिल्ली), डॉ. नवनीत चौहान (आणंद, गुजरात), डॉ. दिनेश कुशवाह (रीवा, छत्तीसगढ़), डॉ. रतनकुमार पांडे (मुंबई), डॉ. शशिकला राय (पुणे) के साथ विचार विमर्श करने का सुअवसर प्राप्त हुआ जिससे शोधप्रबंध के लेखन में सहायता मिली । इसके लिए मैं इन विद्वानों का सदा ऋणी रहूंगा । स्वयं विवेच्य कथाकार नासिरा शर्मा से दूरभाष पर कई बार विषय के संदर्भ में चर्चा हुई एवं गत दिसंबर 2008 व नंवबर 2009 में दिल्ली में छतरपुर पहाड़ी स्थित उनके आवास पर दीर्घ विचार विमर्श हुए जिससे शोधप्रबंध के लेखन को दिशा मिली एवं उसका मार्ग प्रशस्त हुआ ।

वैचारिक अंत:संघर्ष के दौरान गोवा विश्वविद्यालय के प्रो. के. एस. भट्ट, डीन, फैक्लटी ऑफ लेंग्वेज़ेज एंड लिटरेचर, डॉ. किरण बुडकुले, डॉ. रवींद्रनाथ मिश्र, डॉ. इशरत खान, डॉ. चंद्रलेखा डिसूजा, डॉ. वृषाली मांद्रेकर, डॉ. सोनिया सिरसाट आदि का सतत प्रोत्साहन और सहयोग मिलता रहा जिसके लिए मैं इनका सदा आभारी रहूँगा ।

शोध कार्य करने की प्रेरणा मुझे पितृश्री स्वर्गीय जयप्रकाश नारायण से प्राप्त होती रही । उनके प्रति मेरी स्मरणांजलि । मेरे हितैषी एवं मार्गदर्शक पी. शशिधरन ने नियमित रुप से मेरा आत्मबल बढ़ाया । उनके प्रति मेरा आभार । शोधकार्य करने की सतत प्रेरणा मुझे मित्र शशिभूषण, दीनानाथ तिवारी और मधुसूदन सावंत से प्राप्त होती रही है । उनके प्रति मैं आभार व्यक्त करता हूँ । मेरे हितैषी सर्वश्री अनिल देसाई, शरद जाधव, विनायक केलकर, श्रीकांत खानोलकर, हेमंत म्हात्रे, परीश कोतवाल, दिनेश बोभाटे, मंगेश कदम, प्रसाद साखरकर, अशोक नगरकर, विकास कोजरेकर (सभी मुंबई), युद्धवीर सिंह गौड़ (दिल्ली), डॉ. फीरोज अहमद (अलीगढ़), राजेश टेंबे (पुणे), राजेश सिन्हा, (सूरत), फिलिन्टो व धनंजय (गोवा) आदि का हार्दिक सहयोग, स्नेह और प्रोत्साहन न मिला होता तो संभवत: मैं विवेच्य शोध कार्य में अग्रसर नहीं हो पाता । उल्लिखित एवं अनुल्लिखित नामों के अतिरिक्त गोवा विश्वविद्यालय के श्री यशवंत नाईक एवं सुश्री संजना तथा पृष्ठ की साजसज्जा एवं टंकण कार्य करने वाले श्री भावेश का भी आभार व्यक्त करना चाहूंगा ।

विवेच्य शोध प्रबंध ज्ञान-विज्ञान, शोध आलोचना के क्षेत्र में संभवत: एक विनम्र प्रयास माना जायेगा तो मैं अपना वैचारिक श्रम सार्थक मान लूंगा ।

दिनांक : विनीत

(अमरीश सिन्हा)

-: अनुक्रमणिका :-

नासिरा शर्मा के कथा साहित्य में स्त्री विमर्श

1. स्त्री विमर्श : इतिहास, स्वरुप एवं विवेचन 1-49

1.1 स्त्री विमर्श का इतिहास 3-8

1.2 स्त्री विमर्श का स्वरुप 8-18

1.3 स्त्री विमर्श : भारतीय विचारक एवं विवेचन 18-34

1.4 स्त्री विमर्श : पाश्चात्य विचारक और विवेचन 34-45

संदर्भ सूची 46-49

2. नासिरा शर्मा : व्यक्तित्व एवं कृतित्व 50-82

2.1 जन्म, शिक्षा, अभिरुचि एवं परिवेश 51-68

2.2 उपन्यास, कहानी एवं यात्रा लेखन 68-75

2.3 अनुवाद, डायरी और रिपोर्ताज 75-78

2.4 सीरियल लेखन : संस्मरण और विमर्श 78-80

संदर्भ सूची 81-82

3. नासिरा शर्मा का कहानी संसार और स्त्री विमर्श 83-53

3.1 नासिरा शर्मा की कहानियां : स्वरुप व क्षेत्र 90-107

3.2 स्त्री जीवन की अर्न्तजटिलता एवं वर्गान्तरण 107-137

3.3 परम्परा और आधुनिकता 137-141

3.4 स्त्री चेतना का विकास 141-149

संदर्भ सूची 150-153

4. नासिरा शर्मा के उपन्यास : अन्तः संघर्ष और वर्गीय चित्रण 154-194

4.1 उपन्यास विधा : परिभाषा, स्वरुप, क्षेत्र एवं प्रकार 154-159

4.2 विवेच्य उपन्यास : नारी जीवन की अन्तर्जटिलता 159-183

4.3 नासिरा शर्मा के उपन्यास : वर्गीय चित्रण 183-187

4.4 दाम्पत्य जीवन एवं स्त्री का परिवर्तित स्वरुप 187-191

संदर्भ सूची 192-194

5. नासिरा शर्मा का कथा साहित्य : परिवेश और मूल्य 195-225

5.1 नासिरा शर्मा का कथा - साहित्य : परिवेश - विमर्श 204-212

5.2 नासिरा शर्मा के नारी पात्र : मूल्य चेतना संदर्भ 212-214

5.3 नासिरा शर्मा के नारी पात्र : मनोविश्लेषणात्मक विवेचन 214-220

5.4 नारी पात्र : आत्मसंतापी, जिजीविषा और विद्रोही पात्र 220-220

संदर्भ सूची 223-225

6. नासिरा शर्मा की भाषा - शैली एवं शिल्प संदर्भ 226-250

6.1 भाषा शैली एवं शिल्प संदर्भ 228-230

6.2 बिम्ब एवं प्रतीक संबंधी विवेचन 230-234

6.3 कथा भाषा व शिल्प विधान 234-244

6.4 नासिरा शर्मा का कथा शिल्प संबंधी वैशिष्ट्य 244-247

संदर्भ सूची 248-250

7. उपसंहार 251-277

7.1 समकालीन कथा साहित्य और स्त्री विमर्श 255-263

7.2 स्त्री विमर्श के क्षेत्र में नासिरा शर्मा का योगदान 271

संदर्भ सूची 272-277

1. नासिरा शर्मा के कथा साहित्य में स्त्री विमर्श

समकालीन कथा साहित्य में नारी जीवन न संघर्ष, रोमांस, स्त्री–पुरुष सम्बन्धों में बदलाव आदि को लेकर कई रचनाएँ लिखी गयी हैं । वैसे भी स्वातंत्र्योत्तर भारत में विगत पचास – साठ वर्षों से सामाजिक, आर्थिक, राजनैतिक जीवन में अभूतपूर्व बदलाव परिलक्षित होते हैं । भारतीय जन समाज में प्रचलित संयुक्त परिवारों की जगह एकल परिवार अस्तित्व में आ रहे हैं । पारम्परिक जन समाज में विघटन स्थानान्तरण की प्रक्रिया तेज हुई है । यातायात और रोजगार के विकास ने मानवीय जीवन को विकासशील बनाने के साथ–साथ कम संत्रस्त भी नहीं बनाया है ।

समकालीन महिला रचनाकारों में मन्नू भण्डारी 'महाभोज' उपन्यास के माध्यम से राजनैतिक षड्यंत्रों को ग्रामीण व कस्बाई संदर्भों में उजागर करती है, तो कृष्णा अग्निहोत्री 'बानी परछाइयां' और 'मैं अपराधी हूँ' के माध्यम से मध्यप्रदेश के नारी जीवन की विषमता उद्घाटित करती हैं । कृष्णा सोबती 'यारों के यार' और 'तीन तहाड़' तथा 'जिन्दगीनामा' में महागरीय परिवेश और पंजाब में हुई भारत–पाक जीवन की त्रासदी को अभिज्ञापित करती हैं । चित्रा मुद्गल 'आवाँ' उपन्यास के माध्यम से ट्रेड यूनियन व मुंबई महानगर के परिवेश में नारी जीवन की विसंगतियों को रेखांकित करती हैं ।

प्रभा खेतान 'छिन्नमस्ता' और 'पीली आँधी' उपन्यास के माध्यम से कुमारिका जीवन और मारवाड़ी परिवार में व्याप्त विसंगतियों को दर्शाती हैं । ममता कालिया ने 'बेघर' और

'नरक दर नरक' औपन्यासिक कृतियों में नारी जीवन की बेबसी को रेखांकित किया है । मेहरून्निसा परवेज बस्तर की जिन्दगी को अपनी विषयवस्तु बनाती है और भोपाल की गलियों में बिखरी हुई नारी जीवन की दयनीयता को दर्शाती है । इस सन्दर्भ में 'आँखों की दहलीज' और 'कोरजा' उपन्यास महत्वपूर्ण हैं ।

''मृदुला गर्ग ने 'चित्तकोबरा' और 'कठगुलाब' उपन्यासों के माध्यम से स्त्री - पुरुष संबंधों में आये बदलाव को संश्लिष्ट और अन्तग्रंर्थित रूप में दर्शाया है । पर नासिरा शर्मा का कथा साहित्य अन्य नारी एवं पुरुष रचनाकारों से इस संन्दर्भ में विलक्षण है कि उन्होंने 'ठीकरे की मंगनी' उपन्यास में ग्रामीण जनजीवन की त्रासदी को नारी पात्रों के माध्यम से अभिज्ञापित किया है तथा 'शाल्मली' में पढ़ी-लिखी नारी के जीवन संघर्ष को रेखांकित किया है । 'कुइयांजान' जल समस्य वापर केंद्रित औपन्यासिक कथा है [1] जिसमें गांव और शहर दोनों के विलक्षण चरित्र हैं तो 'मरजीना का देश-इराक' में इराकी समाज एवं महिलाओं की सोचनीय स्थिति पर आधारित लेख संग्रह हैं । 'जहां फव्वारे लहू रोते हैं' एवं 'सात नदियां एक समंदर' कृतियां भारतेतर परिवेश का गहन अध्ययन प्रस्तुत करती हैं। ये कृतियां प्रमाण हैं लेखिका की इसी विशेषता का कि उनका कैनवस व्यापक है तथा उसपर कलम की कई कहानियों में महानगरीय जीवन की व्यावसायिकता के साथ-साथ पारंपरिकता, ऐतिहासिकता एवं मानवीय संवेदनाओं के चित्र एवं नारी मन की जिजीविषा मिलती है ।

विवेच्य शोध प्रबंध में हम नासिरा शर्मा के कथा साहित्य को स्त्री-विमर्श के परिप्रेक्ष्य में देखने का प्रयत्न करेंगे जिसमें पितृसत्तात्मक परिवार पुरुष वर्चस्व के पुरातन और नये संदर्भ की व्याख्या होगी और नारी मन-मस्तिष्क को उनके कथा साहित्य के आलोक में समझने की कोशिश होगी । इसके अतिरिक्त ईरान-इराक में व उनके संदर्भ में भारतीय परिवेश में नारी दशा व सोच के बारे में अध्ययन होगा ।

लेखिका ने अपनी रचनाओं में व्यापक सामाजिक प्रश्नों से स्त्री मुद्दों को जोड़कर स्त्री समूह में एक वास्तविक सामाजिक चेतना के प्रसार में उल्लेखनीय योगदान दिया है । उन्होंने स्त्री विमर्श को सिर्फ प्रतिद्वंद्वी पति या पुरुष तक सीमित न करके स्त्री अधिकारों के संघर्ष को अपने घर-परिवार से निकालकर उसे बड़े स्त्री समूह के साथ जोड़कर देखने का प्रयास किया है ।

स्त्री विमर्श एक आधुनिक विमर्श है, जो पुरुष समाज के वर्चस्व के बरक्स नारी अस्मिता, नारी जीवन की एषणा और व्यक्तित्व निर्मिति के दायरों की चर्चा करता है । स्त्री-पुरुष संबंधों

में समयानुरूप बदलाव आये हैं शिक्षा। रोजगार, वैश्विक विकास व व्यावसायिक अभिरूचियों के कार्य – कारण से और महिला सशक्तिकरण को लेकर उठे स्वरों की बदौलत । नासिरा शर्मा के कथा साहित्य में ग्रामीण व शहरी जन–जीवन दोनों के पात्र हैं । विदेशों खासकर, मुस्लिम देशों के पात्र भी है । समय–सन्दर्भ के अनुकूल नासिरा शर्मा के कथा साहित्य के विविध प्रसंगों की चर्चा की जायेगी ।

1.1 स्त्री विमर्श का परिप्रेक्ष्य

आज का युग महिला सशक्तिकरण का युग है । जब से महिला सशक्तिकरण वर्ष मनाया गया, तब से स्त्री विमर्श विषय केन्द्र में आने लगा । यह अपनी अर्थवत्ता में बहुत ही गहन है । इसलिए सभी सुधी जन–साहित्यकार, पत्रकार, व्यवसायी, कॉरपोरेट कर्मी, इस दिशा में सजग हैं । विज्ञापन दाता, समाज सेवक, कार्यकर्ता, मीडिया, फिल्म आदि हर कोई सदियों से पीछे धकेल दी गई शोषित–दमित स्त्री को केन्द्र में लाकर, उस पर पुनः विचार करने की तैयारी में हैं ।

'स्त्री–विमर्श' शब्द को सही ढंग से समझने के लिए इसे सर्वप्रथम दो भागों में विभक्त करना होगा । 'स्त्री' तथा 'विमर्श' । 'स्त्री' वैदिक संस्कृत शब्द है । 'ऋग्वेद' (4-6-7) में इसका सर्वप्रथम प्रयोग किया गया था । 'स्त्री' शब्द की व्युत्पत्ति के अनुसार 'स्त्री–सूत्री', जन्मदात्री अर्थात् वह परिवार की सूत्रधारक होने से स्त्री कही जाती है ।''[2] 'स्त्री' शब्द 'सत्य' धातु से बना है जिसका अर्थ लज्जायुक्त होना लिया जाता है । पाणिनी ने 'सत्ये' का अर्थ शब्द 'करना' लिया । पंतजलि ने कहा, '' 'नारी' को स्त्री इसलिए कहा जाता है कि गर्भ की स्थिति उसके भीतर होती है । उनकी एक दूसरी व्युत्पत्ति के अनुसार शब्द, स्पर्श, रूप, रस और गंध का समुच्चय, स्त्री है । पुरुष के ज्ञानेन्द्रियों की तृप्ति नारी से होती है इसलिए उसे स्त्री कहा जाता है ।'' ''पति का सम्मान करनेवाली अथवा पूज्य होने के कारण नारी को महिला भी कहा जाता है'' मह+इलच+आ–महिला ।''[3] भोलानाथ तिवारी के अनुसार स्त्री के लिए प्रयुक्त होनेवाले शब्द 'अबला' औरत, इस्तिरी, कबीला, कलत्र, कांता, कामिनी, क्षेत्र, गृहिणी, धरणी चरणदासी, चोषा, जनियां, जबी, जोय, जोरू, जोतिषा, तन तिय, तिरिया, तीदार, तीथ, त्रिया, दारा, नारी प्रति पदार्शिनी, बनिता, बर्ना, बाला, बैथर, भामा, भामिनी, महिला, मादा मानवी, योषा, योषिता, ललना, लुगाई वसिता, श्यामा, सारंग हैं ।''[4] अंग्रेजी में 'स्त्री का पर्यायवाची शब्द 'वूमन' (Women) या 'फिमेल' (Female) बताया गया है ।''[5] हिन्दी में विमर्श के लिए समानार्थी शब्द विचार, विवेचन, परीक्षण, समीक्षा, तर्क आदि दिए गये हैं ।

प्रख्यात आलोचक नामवर सिंह के शब्दों में 'विमर्श' हिन्दी में मिशेल फूको के 'डिस्कोर्स' का अनुवाद है ।[6] नामवर सिंह ने अन्यत्र यह भी कहा है कि 'आलोचना में देखना होता है । देखे हुए की व्याख्या करनी होती है । परंतु, विमर्श में पाठ महत्वपूर्ण हो जाता है । आलोचना में तर्क-वितर्क, संवाद, खंडन-मंडन होता था परंतु विमर्श में पाठ की संरचना ही प्रमुख हो जाती है ।' वीरेंद्र के अनुसार विमर्श में व्याख्या किसी उद्देश या लक्ष्य से जुड़ जाती है । एक उद्देश्य ही पाठ निर्माण की प्रक्रिया को संचालित करता है । उद्देश्य के अनुसार ही अर्थ पैदा किया जाता है । 'वाक' अंक - 4, वर्ष 2008

वास्तव में 'स्त्री विमर्श' का सामान्य अर्थ 'स्त्री के सन्दर्भ में विमर्श, विचार, विनिमय करना है ।' एक दूसरा अर्थ इस रूप में लगाया जा सकता है ''स्त्रियों के विषय में विचार, एवं चिंतन करना ।'' इसका तीसरा अर्थ ''स्त्री का, स्त्री के लिए, स्त्री द्वारा लिखा गया, लेखन और विमर्श है ।'' लेकिन रेखा कस्तवार का मानना है कि ''इसे स्त्री तक सीमित करने से जहाँ पुरुष स्त्री विषय से बाहर का व्यक्ति हो जाता है, वहीं स्त्री भी, स्त्री विषय तक सीमित हो जाता है ।''[7] एक तरह से यह बात सही है क्योंकि स्त्री द्वारा लिखी गयी हर रचना स्त्री विमर्श की परिधि में नहीं आ सकती ।

स्त्री विमर्श की अर्थवत्ता एवम् सार्थकता पर ज़ोर देते हुए विवादास्पद रचनाकार तस्लीमा नसरीन साफ शब्दों में कहती हैं कि ''हमारा विरोध पुरुष जाति से नहीं है, विरोध है पुरुष की उस सामंती मनोवृत्ति से, जो नारी को दासी से अधिक दर्जा नहीं देती ।''[8] वहीं आशारानी व्होरा का मानना है ''अधिकारों की मांग नहीं, अधिकारों का अर्जन ही वह लक्ष्य है, जिसके लिए हमें अपने आपसे और अपने बाहर दो मोर्चों पर दुहरा संघर्ष करना है । यह संघर्ष जितना तीव्र होगा, जीत उतनी ही सुनिश्चित होगी ।''[9] मृणाल पांडे लिखती है ''स्त्री के अस्तित्व को, इसके पुरुष से जुड़े संबंधों तक ही सीमित करके न देखा जाए बल्कि पुरुष की ही तरह उसे भी मानवता का एक भिन्न तथा अनिवार्य और पुरुक तत्त्व माना जाए ।''[10] इसलिए जो लोग इसे केवल उग्रता मानते हैं वह तर्कसंगत नहीं लगता ।

1.1.1 मातृसत्तात्मक परिवार और स्त्री जीवन

आज से ही नहीं अनादि काल से भारतीय नारी पितृसत्तात्मक समाज में बंधिनी रही है । परंपरागत दृष्टि से स्त्री के प्रति व्यवस्था का रवैया निश्चित मानदण्डों, आदर्शों के नियति व्यवहारों से संचालित होता रहा है जिसमें स्त्री को तयशुदा भूमिका में, निर्धारित आदर्श, आचरण संहिता के अनुसार जीना पड़ा । पुरुष के अत्याचार एवं अन्याय को सहना उसकी

नियती बन गयी । बचपन में पिता, किशोरावस्था में भाइयों, युवावस्था में पति और बुढ़ापे में बेटों की अधीनता लंबे समय तक भौतिक, आर्थिक, भावनात्मक परावलंबन स्त्री जीवन का केन्द्रीय सत्य रहा है । लेकिन स्थिति हमेशा से ऐसी न थी । कुछ ऐतिहासिक तथ्य प्राप्त होते हैं कि पितृसत्तात्मक व्यवस्था से पूर्व आदिम कबीलाई व्यवस्था में कहीं-कहीं पर मातृसत्तात्मक समाज था जिसमें स्त्री न केवल पूज्य थी वरन् समाज तथा परिवार की डोर भी उसके हाथ में थी । सर्वप्रथम मातृसत्तात्मक परिवार का अर्थ स्पष्ट करना आवश्यक हो जाता है और यह जानना भी जरूरी हो जाता है कि मातृसत्तात्मक परिवार के स्थान पर पितृसत्तात्मक व्यवस्था का उदय कैसे हुआ ?

मातृसत्तात्मक परिवार का सामान्य अर्थ इस तरह लगाया जाता है कि ''ऐसा परिवार जिसमें सत्ता स्त्री की हो । अर्थात ऐसा समाज जिसमें स्त्री का वर्चस्व हो । उसे निर्णय लेने का अधिकार हो । यही नहीं, बल्कि संपूर्ण परिवार की बागडोर स्त्री के हाथ में हो । इस शब्द का समकालीन अर्थ इस प्रकार मिलता है - ''ऐसा परिवार जिसमें माँ (यानी स्त्री) के हाथ में सम्पत्ति और परिवार निर्णय के सारे अधिकार हों ।''[13] आज की स्त्री शिक्षित है, आर्थिक रूप से सबल है तथा बौद्धिक रूप से सक्षम है । भारत में आज मातृसत्तात्मक परिवार मेघालय (पूर्वात्तर राज्य) में मिलता । लेकिन चूंकि वहां सम्पत्ति का अधिकार परिवार में सबसे छोटी बेटी को प्रदत्त है, अत: उससे विवाह कर धन हड़पने की घटनाएंगी देखने को मिलती है । नासिरा ने इन घटनाओं की निंदा अपने लेख संग्रह 'औरत के लिए औरत' में की है ।

1.1.2 आदिम जीवन व्यवस्था और कबीलाई समाज

आरंभिक जीवन व्यवस्था और कबीलाई समाज में मनुष्य भौतिक जीवन की चिंताओं से ग्रस्त था । इस युग में नैतिकता, आचार संहिता, धर्म, जाति, ऊँच-नीच, स्त्री-पुरुष आदि भेदभाव का झंझट न था । जीवन निर्वाह के लिए कंद मूल, फल आदि उपलब्ध थे । कपड़ों की चिन्ता न थी, इसलिए लज्जा या शर्म किस चिडिया का नाम है यह भी उन्हें ज्ञात न था । क्योंकि यह मानव जीवन की आरंभिक अवस्था थी । स्त्री और पुरुष अपने मन के राजा थे । स्वतंत्र प्रकृति में विहार करते थे । परतंत्रता की चिंता न थी । इस बात की पुष्टि उदाहरण के माध्यम से की जा सकती है । ''मैं नारी हूँ, पितृसत्तात्मक युग से मातृसत्तात्मक युग की नारी, जिसने वनों का शासन किया, जनों का निग्रह । तब मैं नितान्त नग्नावस्था में गिरि - शिखरों पर कुलांचे भरती थी, गुहा-गहवरों में शयन करती थी, वन वृक्षों के अपाद-मस्तक नाप लेती

थी, तीव्र गतिका नदियों का अवगहन करती थी ।''[14] इससे यह अनुमान लगाया जा सकता है कि स्त्री कितनी संघर्षशील थी ।

मातृसत्तात्मक समाज या परिवार की शुरुआत घुमक्कड़ जातियों से शुरु हुई थी । तब पशुपालन ही मुख्य पेशा था । पुरुष पशुओं के झुण्ड लेकर चरगाहों में भटकते तो स्त्रियाँ घर और बच्चों की देखभाल करतीं । घर में पिता की उपस्थिति नियमित रूप से न रहती, इस तरह परिवार की सत्ता धीरे-धीरे उसके हाथों में आने लगी और मातृसत्तात्मक परिवार स्थापित होने का अवसर प्राप्त हुआ । इसका तथ्य हमें इस रूप में मिलता है 'मेघालय का खासी समुदाय' लड़ाकू नस्ल (मार्शल रेस) की रही है । जगदीश्वर चतुर्वेदी के अनुसार ''ऐतिहासिक दृष्टिकोण से विचार करें तो पाएंगे कि भारत में ईसा पूर्व 5500 वर्ष से पितृसत्ता का आगमन हुआ । वैदिक आर्यों को पितृसत्ता की विकसित अवस्था माना जाता है ।''[15] स्पष्ट बात है कि इससे पूर्व मातृसत्तात्मक परिवार अस्तित्व में रहे हैं ।

इस सन्दर्भ में सीमोन द बोउवार का मत है कि ''प्रागैतिहासिक यायावर समाज में शारीरिक कमजोरी के बावजूद औरत, पुरुष की इतनी अधीनस्थ नहीं थी कि वह गुलाम कही जाए । उन दिनों पुरुषों के सम्मुख स्त्री को समर्पण के लिए विवश करने वाली न कोई संस्थागत न व्यवस्थागत सम्पत्ति की अवधारणा और न कोई न्याय व्यवस्था ही थी ।''[16] तो कुल मिलाकर यह अनुमान लगाया जा सकता है कि उस दौरान स्त्री की स्थिति अच्छी थी ।

कालान्तर में कृषि व्यवस्था में भी नारी पूज्यनीय थी क्योंकि उसकी तुलना भूमि से की जाती थी । भूमि की तरह उर्वरा और जीवनदायिनी होने के कारण ही उसे भूमि कहा गया । कृषि समुदाय में असाधारण स्थान प्राप्त करने का मुख्य कारण उसकी प्रजनन शक्ति थी । उसका प्रजनन पुरुषों के लिए रहस्यात्मक था । खेती-बाड़ी के काम के लिए मानव शक्ति तथा मेहनत की आवश्यकता थी । उस युग में संतान का महत्व भी बढ़ गया और साथ ही साथ स्त्री का भी । यायावरों में प्रजनन आकस्मिक था तो लोग उससे अनभिज्ञ थे । कृषि युग में पुरुषों की माँ प्रकृति की तरह लगने लगी । पुरुष अपनी शक्ति को पहचान नहीं पाया था । इसलिए यौन शुचिता का दबाव भी न था । वह स्वयंवर का चुनाव कर सकती थी । इसलिए स्त्री-पुरुष सामूहिक रूप से धार्मिक एवम् आर्थिक अस्तित्व के भागीदार थे । उनका जीवन शुद्ध रूप से जैविक था । किसी भी प्रकार का बंधन न था क्योंकि वह कबीले से जुड़ी हुई थी, पति की दासी न थी । दूसरे शब्दों में कहा जाए तो वह कबीले की आत्मा थी । भय मिश्रित पुरुष, श्रद्धा से उसकी आराधना करता था । लेकिन जैसे-जैसे स्त्री की भूमिका

व्यापक होती गयी वैसे ही वह संपूर्ण रूप से पुरुष के लिए अन्या बनती रही । उसने जन्म भी दिया और विनाश भी खुद करती रही । ''मनमानी, वैभवशाली प्रकृति की तरह क्रूर, वह स्त्री एक साथ मांगलिक और अशुभ दोनों थी । कभी वह दुर्गा बनी, कभी काली । पूरे पश्चिमी एशिया में वह भिन्न भिन्न नामों से पूजी गई । बेबीलोन में वह 'इश्तर' कहलाई, सामी लोगों में 'अस्ताते' और 'गाइया', 'रिया' और 'सिबिल' कहलाई ग्रीक सभ्यता में । मिस्रप्ट में उसको आइसिस कहकर संबोधित किया गया ।''(17)

भगवती शरण उपाध्याय ने काव्यात्मक भाषा में नारी के बारे में कहा है कि ''स्वर्ग'' हो या 'नरक' हर जगह स्त्री शक्ति का दबदबा था । वह पवित्रता की प्रतीक रही इसलिए पूज्य बनी । इसे ठोस बनाने के लिए यह उदाहरण काफी है ''पुरुष मेरा दास था, मेरे श्रम से उपार्जित आहार का आश्रित । मेरे अंग-अंग में शक्ति बसती थी, रोम-रोम में स्पंदन था । शिराएँ रज्जु की भाँति स्नंध पर, वक्ष पर, भुजाओं पर, जानुओं के विस्तार में जैसे उलझी खिंची रहती । शिकार से लौट कंधो पर मृग और सूअर लाद जब मैं उछलती-कूदती पसीने से लथपथ उपत्यका में उतरती तब मेरा परिवार मुझे घेर लेता । मेरा गृहस्थ नर, मेरी शक्ति मण्डित बालक बालिकाएँ ।''(18) इससे स्पष्ट है कि नारी घर और बाहर अपनी शक्ति के बारे में ताल ठोंक चुकी थी ।

महाभारत काल में भी मातृसत्तात्मक परिवार के अंश दिखायी देते हैं । वेद शर्मा लिखते हैं - ''औरत उत्तर कथा'' में ही नहीं अन्य स्थानों पर भी द्रौपदी को लेकर अति सचेतता बरती जाती है । उन्हें पाँच पवित्र कन्याओं में भी गिना जाता है । कभी सत्यभामा महाभारत में पूछती है - ''द्रौपदी तुम पांच-पांच पतियों को कैसे सन्तुष्ट करती हो ।''(19) इस तरह यह कहा जा सकता है कि राज्य व्यवस्था में स्त्री-पुरुष सम्बन्ध बिलकुल अलग प्रकार के थे । वहां पाँच पतियों के साथ रहकर भी द्रौपदी पतिव्रता कहलाई गयी । द्रौपदी ही क्यों, कुंती, माद्री तक के भी एक से अधिक पति थे । यही नहीं, माता सत्यवती ने भी अपनी बहुओं को वंश चलाने की खातिर ऋषि व्यास के सामने नग्न अवस्था में खड़ा किया था । कहना न होगा कि उस युग में सन्तान प्राप्ति के लिए अन्य पुरुषों का सहारा लिया जाता था।

दामोदर दत्त कौशाम्बी के अनुसार 'मातृसत्तात्मक समाज में पति (गर्भ धारण करने के लिए चुना गया व्यक्ति) को बलि करने का विधान था । इस बात का आधार लेते हुए वेद वर्मा अनुमान लगाते हैं कि ''क्या इसलिए धृतराष्ट्र के भाई पांडु ने स्वयं गर्भ धारण न कराके कुंती और माद्री को अन्य प्रतिष्ठित व्यक्तियों के साथ गर्भधारण करवाते रहे । इससे पांडु भी बच

गये और सूर्य, पवन, इन्द्र इत्यादि भी बचते रहे ।''[20] बात कुछ भी हो लेकिन उस युग में स्त्री-पुरुष संबंधों में आज की सी जर्जरता न थी । उस दौरान पुत्रों को पिता के नाम से नहीं बल्कि माता के नाम से सम्बोधित किया जाता था जैसे कि अर्जुन को कौन्तेय, कर्ण को राधेय और कृष्ण को यशोदानंदन । कण्व ऋषि जिन्होंने 'ऋग्वेद' के दसवें मंडल की स्थापना की, वह भी दासीपुत्र कहलाये जबकि उनके पिता ब्राह्मण थे ।

आज के संदर्भ में अगर बात की जाए तो हमारे देश में मातृसत्तात्मक समाज की बेहतरीन मिसाल मेघालय का खासी परिवार है । अरूण प्रकाश लिखते हैं 'वहाँ के खासी समुदाय की सबसे छोटी बेटी परिवार की संपत्ति की स्वामिनी ही नहीं, वह परिवार का प्रधान भी होती है ।''[21] राजधानी शिलाँग और उसके आस-पास की स्त्रियां खेती, व्यापार, दफ्तर आदि कार्यें में अग्रणी भूमिका निभाती पायी जाती हैं । डॉ. वेद वर्मा के अनुसार ''थाइलैंड और उसके आस पास का समाज आज भी मातृसत्तात्मक समाज है । केरल का समाज 18 वीं शताब्दी तक मातृसत्तात्मक था ।''[22] लेकिन केरल का समाज आज भी पूर्ण रूप से मनुवादी पितृसत्तात्मक समाज में परिवर्तित नहीं हुआ है । इसका स्पष्ट विवरण शिवशंकर तकषी पिल्लई के उपन्यास 'कयर' (रोप-रस्सी) में देखने को मिलता है । आगे वे ऐतिहासिक प्रमाण देते हुए लिखते हैं कि ''प्राचीन भारत में ललितादित्य ने जब कर्नाटक पर चढाई की थी तो वहाँ राज्यशीर्ष रानी थी ।''[23] स्पष्ट है, कर्नाटक में भी मातृसत्तात्मक परिवार रहे हैं । आज भी कर्नाटक के 'कोड कनाल' में मातृसत्तात्मक परिवार के अवशेष बाकी हैं ।

कतिपय विचारकों का मानना है कि मातृसत्तात्मक समाज का पूर्णतया अंत हो गया । हालांकि उपर्युक्त उदाहरणों से यह अनुमान गलत ठहरता है । खासी समुदाय के पुरुष मातृसत्तात्मक समाज का समाप्त करने के लिए आवाज उठाने लगे हैं । लेकिन उनका यह सपना कब पूरा होगा, निश्चित रूप से कहा नहीं जा सकता ।

एग्लेंस ने इस समाज के अंत को देखते हुए यह कहा था ''मातृसत्ता से पितृसत्तात्मक समाज का अवतरण वास्तव में औरत जाति की सबसे बड़ी ऐतिहासिक हार थी ।''[24] आज की स्थिति को मद्देनजर रखते हुए एग्लेंस का यह दृष्टान्त कि घर के अंदर तथा बाहर पुरूष ने अपना अधिकार जमाया है तथा नारी को मिट्टी में मिला दिया है और नैतिकता और अनैतिकता के बंधन में जकड़ लिया है, सत्य ही सिद्ध होता है । मातृसत्तात्मक समाज रहे ना रहे, या आगे बने ना बने लेकिन इसकी उपस्थिति से नारीवादी परिप्रेक्ष्य को जरूर बल

मिला है ।

1.2 स्त्री विमर्श का स्वरुप

सामंतवादी व्यवस्था में नारी संपत्ति, उपभोग, और विलास का प्रतीक रही है । पुरुष वर्चस्ववादी की ओर संकेत करते हुए फ्रेडरिक एंग्लेस ने लिखा है कि ''अब घर के अंदर भी पुरुषने अपना आधिपत्य जमा लिया है। नारी पदच्युत कर दी गयी । वह पुरुष की वासना की दासी, संतान उत्पन्न करने का एक यंत्र मात्र बनकर रह गई । बाद में धीरे-धीरे, तरह-तरह के आवरणों से ढंककर, सजाकर और आंशिक रूप में थोड़ी नरम शक्ल देकर पेश किया जाने लगा, पर वह कभी दूर नहीं हुई ।'' इसका मुख्य कारण वे मातृसत्ता का विनाश मानते हैं जो नारी जाति की विश्व ऐतिहासिक पराजय है ।''(25)

डॉ. सूर्यनारायण के. रणसूभे के अनुसार ''दुनिया की पुरुष प्रधान संस्कृति ने स्त्री को उसके जैविक रूप में ही स्वीकारा है, एक जनन यंत्र के रूप में । उसे कहीं भी उसने व्यक्ति के रूप में स्वीकारा नहीं था । व्यक्ति के रूप में स्वीकारा जाए, ऐसी उसकी माँग बहुत पुरानी है । संभवत: विश्व भर में ऐसी माँग करने वाली तेजस्वी स्त्री द्रौपदी है जिसने भरे दरबार में तत्कालीन सभी तथाकथित पुरुषों से यह प्रश्न किया था कि मैं द्यूत में लगाई जाने वाली वस्तु हूँ, या व्यक्ति ? नारी मुक्ति का अर्थ ही है, नारी की वस्तु रूप से मुक्ति ।''(26)

धर्मपाल के अनुसार ''निजी स्वार्थवश तथा निजी वर्चस्व बनाए रखने के लिए पुरुष ने अधिकतर नारी को स्वयं से हीनतर प्रस्थापित किया । यही कारण है कि समूचे विश्व के पुरुष समान सोच रखते आए हैं । वेद-ऋषि, मुनि अवतार अथवा पुरुष सभी ने नारी की भर्त्सना की, उसमें अवगुण देखे और स्वयं को सर्वश्रेष्ठ जताने की गाथाएं लिखी और यह पक्षपातपूर्ण विचारधारा नारी को हीनतर करने में सफल हुई और नारी आज भी इसी प्रकार शिकार है ।''(27) कहना न होगा कि नारी की अपनी अस्मिता को लेकर संघर्ष आज भी जारी है ।

1.2.1 पितृसत्तात्मक व्यवस्था : आदिमयुग-कबीलाई समाज

जगदीश्वर चतुर्वेदी लिखते हैं कि ''ऐतिहासिक दृष्टिकोण से विचार करें तो पाएंगे कि भारत में ईसा पूर्व 5500 वर्ष से पितृसत्ता का आगमन हुआ । वैदिक आर्यों को पितृसत्ता की विकसित अवस्था माना जाता है ।''(28) ''सीमोन विश्व की प्रत्येक संस्कृति में पाती हैं कि या तो स्त्री को देवी रूप में रखा गया या गुलाम की स्थिति में । अपनी इन स्थितियों को स्त्री ने सहर्ष स्वीकार किया, बल्कि बहुत सी जगहों पर वह सह अपराधिनी भी रही ।''(29)

लेकिन आज स्त्री ने अपनी शक्ति को पहचान लिया है, जिसके चलते पुरुष वर्चस्ववादी समाज आतंकित हो गया है । स्त्री को पीछे ठेलने के लिए 'वेद', 'पुराणों', 'आख्यानों', की दुहाई देकर उसकी स्थिति को पुनः स्थापित करने की कोशिश की जा रही है । वैदिक युग की स्त्री के सम्बन्ध में जो मान्यताएँ प्रचलित हैं वे वास्तविक सत्य नहीं हैं । वैदिक युग के संपूर्ण इतिहास को वहन करने वाले ग्रन्थ मुख्यतः 'ब्राह्मण', 'आख्यानक', 'उपनिषद' और 'सूत्रसाहित्य' आदि हैं । इन ग्रंथों का मंथन करें तो स्त्री का जो चित्र उभरकर सामने आता है, उसमें स्त्री को कहीं भी मनुष्यतक नहीं माना गया है । पूर्व वैदिक काल में कुछ स्त्रियों के उल्लेख जरूर मिलते हैं । लेकिन उनमें से अधिकांश ब्राह्मण वर्ग से संबंधित थीं । उस समय साधारण स्त्री का कोई महत्व नहीं था । कुछ गिनी-चुनी स्त्रियों के शिक्षित होने से सामाजिक ढाँचे में परिवर्तन आना संभव नहीं था ।

भारतीय संस्कृति के उन्मेष काल में नारी की प्रतिष्ठा को पुरुष के समानान्तर ही स्वीकारा गया था । पूर्व वैदिक काल की सामाजिक, धार्मिक व्यवस्था में ऐसे संकेत मिलते हैं कि इस कालखण्ड में स्त्रियों को समाज में प्रतिष्ठा प्राप्त थी । बौद्धिक एवं आध्यात्मिक जीवन में उन्हें पुरूषों के समान ही अधिकार प्राप्त था । वेदों में मंत्र की द्रष्टा ऋषिकाओं के रूप में भी प्रसिद्ध महिमामयी एवं विदुषी स्त्रियाँ अपने सद्‌गुणों से प्रतिष्ठित हैं । ''ऋग्वेद में रोमशा, लोपामुद्रा, श्रद्धा, कामायनी, यमी, वैवस्वती, उषा, इला, विश्ववारा, अपाला, घोषा, सूर्या, चर्मा, वाग्भणी, शाश्वती, ममता एवं उशिज आदि ऋषिकाओं के नाम मन्त्र द्रष्टा के रूप में प्राप्त होते हैं ।''(30) इसी आधार पर उन्हें सिद्ध करने का प्रयास किया गया । इन्हें कहीं देवमाता, कहीं कन्या तो कहीं भौतिक शक्तियों की संचालिका कहा गया है ।

लेकिन ''बहुत पहले एक नारीवादी ने कहा था अब तक औरत के बारे में जो कुछ भी लिखा गया उस पूरे पर शक किया जाना चाहिए, क्योंकि लिखने वाला न्यायाधीश और अपराधी दोनों ही हैं ।''(31) बात सही भी लगती है क्योंकि स्त्री का कोई सुसंगत चित्रण प्राप्त नहीं होता है । कारण स्पष्ट है कि उन्हें कोई महत्व नहीं दिया गया । वैदिक सामज पितृसत्तात्मक होने से उसमें पुत्री से ज्यादा पुत्र को वरीयता दी गई है । पुत्र कामना वर्णन कई स्थानों पर दृष्टिगोचर होता है । उस युग में बहु विवाह प्रथा भी थी; कालान्तर में उत्तर वैदिक काल में वर्ण व्यवस्था के नियम और अधिक कठोर हो गये । बहु विवाह के साथ-साथ दासी प्रथा भी पनपने लगी थी । ''यज्ञ में बंदी बनाकर लाई गई स्त्रियों से जब अन्तःपुर भर जाता था तो रथ भर-भर कर युद्ध कराने वाले पुरोहितों और ऋषियों को स्त्रिया दान में दी जाती थी । अतः वह दान की वस्तु मात्र थी ।''(32) उसका अपना कोई

स्वतंत्र अस्तित्व नहीं था । वह केवल पुरुष की अनुगामिनी थी । कुछ उन्मुक्त काम सम्बन्धों के अनेक उदाहरण मिलते हैं पर यह स्वतंत्रता पुरुष-वर्ग तथा गणिकाओं को ही थी । पुरुष का आधिपत्य सर्वत्र था । इस युग में नारी के दो रूप मिलते हैं, दासी और गणिका ।

इसी प्रकार रामायण, महाभारत काल में महिलाओं का वर्णन विदुषियों के रूप में कम और तप, त्याग, नम्रता, पति सेवा आदि गुणों से विभूषित गृहस्वामिनी के रूप में अधिक मिलता है । महाभारत काल में पाण्डवों द्वारा द्रौपदी को जुए में दांव पर लगा देना और रामायण काल में धोबी द्वारा सन्देह व्यक्त करने पर मर्यादा पुरूषोत्तम राम द्वारा सीता को वनवास देना यही स्पष्ट करता है कि पत्नी पति की संपत्ति थी, वह अधिकारपूर्ण उसके साथ मनचाहा व्यवहार कर सकता था । महाभारत और रामायण काल के पश्चात् स्त्री की स्थिति में और अधिक गिरावट आने लगी ।

मनु द्वारा प्रणीत वर्ण व्यवस्था एवं श्रम विभाजन के अनुपालन में समाज व्यवस्था श्नैः श्नैः रूग्ण होती गई । मनुस्मृति (1/2-3) के इस उदाहरण से उस युग की स्त्री की स्थिति का अनायास ही पता लगाया जा सकता है -

''अस्वतन्त्रः स्त्रियाः कार्याः पुरुषैः सर्वेर्दिवानिशम् ।

विषयेषु च सज्जन्यः संस्थाप्याः आत्मनों वशे ।

पिता रक्षति कोमारे, भर्ता रक्षति यौवने ।

रक्षन्ति स्थविरे पुत्रा, न स्त्री स्वातन्त्र यमहीति ।।[33]

(स्त्रियों को परतंत्र रखना चाहिए । पुरुषों का कर्तव्य है कि स्त्रियों को रात-दिन वश में रखे । कुमार अवस्था में स्त्री की रक्षा पिता करता है, युवावस्था में स्त्री की रक्षा पति और वृद्धावस्था में पुत्र, स्त्री कभी स्वतंत्र रहने योग्य नहीं।)

इसका परंतु दुष्परिणाम यह हुआ कि ''भारतीय स्त्री का दायरा घर की दीवारों तक सीमित होकर रह गया । जिस समाज की आधी शक्ति लक्ष्मण रेखा के अन्दर बांध दी जाए उसका बचाव की मुद्रा में आ जाना स्वाभाविक था ।''[34] लेकिन प्राचीन आर्य नारी के सहधर्मचारिणी तथा सहभागिनी के रूप में कहीं भी पुरुष का अन्धानुसरण या अपने आपको छाया बना लेने का अभ्यास प्रतीत नहीं हेाते हैं, परन्तु पत्नी वैभव का उपहास करती हुई पूछती है - 'यदि ऐश्वर्य से भरी सारी पृथ्वी मुझे मिल जो तो क्या मैं अमर हो सकूंगी ?' चकित विस्मित पति कह देता है - 'धन से तुम सुखी हो जाओगी, अमर नहीं ।' पत्नी का

विद्रूप हँसी में उतर मिलता है, जिससे मैं अमर न हो सकूंगी, उसे लेकर करूँगी ही क्या ? आज भी 'तमसो मा ज्योतिर्गमय मृत्यों मा अमृतं गमय' आदि प्रवचनों से ज्ञात होता है कि गृह की वस्तु मात्र समझी जानेवाली स्त्री ने कभी जीवन को कितनी गंभीरतामयी दार्शनिक दृष्टि से देखने का प्रयत्न किया था ।''(35)

बौद्ध काल में महात्मा बुद्ध भी नारी को संघ में दीक्षित कराने के पक्ष में नहीं थे । उनका कथन था - ''नारी के प्रवेश से संघ की आयु क्षीण हेा जाएगी । वह सहस्त्र वर्ष जीने के बदले पाँच सौ वर्ष भी नहीं जिएगा ।''(36) लेकिन बौद्ध धर्म में प्रवेश पाने वाली भिक्षुणी के लिए भी कड़े नियम लागू किये गये थे । बाद में वज्रयानियों के समय में नारी का भोग्या रूप छोड़ कोई अन्य रूप सामने नहीं आया ।

जगदीश्वर चतुर्वेदी कहते हैं ''पितृसत्तात्मक नजरिए के कारण स्त्री का क्रमशः अधिकारहीन जयघोष हुआ । साहित्य में स्त्री को भोग की वस्तु के रूप में देखा गया । उन तमाम क्रियाओं को रूपायित किया गया जिनसे भोगवाद या सुखवाद को विस्तार मिले । दूसरी और भोगवाद के विकल्प के तौर पर सन्यासवाद या वैराग्य को स्थापित किया गया । वस्तुगत रूप में देखें तो विलासिता पितृसत्ता का ही अंग है ।''(37)

पुरुष वर्चस्व आज पितृसत्तात्मक के नाम से काफी प्रचलित है । 'पुरुष वर्चस्व या पितृसत्ता का सामान्य अर्थ पुरुष का स्त्री पर प्रभुत्व माना जाता है ।' अरूण प्रकाश लिखते हैं ''पितृसत्ता एक विचारधारा के रूप में काम करती है । इसके पीछे फ्रांसीसी मनोविश्लेषक और संरचनावादी जैक लाकां का यह तर्क है कि ''समाज की संस्कृति पर लिंग के प्रतीक का दबदबा है । पितृसत्ता में परिवार की आर्थिक स्थिति, यौन सम्बन्ध और सांस्कृतिक मामलों में पुरुष स्त्री पर हावी रहता है । स्त्री अपने घरेलू श्रम का कोई भुगतान नहीं पाती और इसी के बदले उसका जीवनयापन होता है ।''(38) जबकि चिद्रा मुद्गल का मानना है ''पितृसत्तात्मक समाज में सर्वविदित है कि अपनी सर्वोपरिता कायम रखने के लिए स्त्री को स्त्रीत्व की जो परिभाषा सौंपी है उसमें रूढ़ि की घेराबंदी ही नहीं, घोर असमानता और अमानवीयता के ऐसे अंधविश्वासी अनुशासन दृष्टिगत होते हैं कि एक क्षण को दिल दहल उठता है कि शक्तिरूपा प्रतिष्ठित की गयी नारी अस्तित्वगत सामाजिकता आखिर क्या है ?''(39)

पुरुष वर्चस्व वाले समाज में बड़ी चालाकी से नारी को संपत्ति और सत्ता के उत्तराधिकार से वंचित कर दिया गया । वह पिता की विरासत भर का एक हिस्सा बनकर रह गई थी । रूढ़ियां इस कदर बढ़ीं कि कन्या का जन्म बोझ लगने लगा, उसके जन्म के साथ ही हत्या का

प्रचलन शुरू हो गया, उससे जीने का अधिकार तक छिन लिया गया । भ्रूण हत्या इसका विकसित रूप है ।

तसलीमा नसरीन का कहना है ''स्त्री को डरना एवं लज्जालु होना पुरुष प्रधान समाज ने सिखाया है, क्योंकि भयभीत एवं लज्जालु रहने पर पुरुषों को उस पर अधिकार जताने में सुविधा होती है । इसलिए डर और लज्जा को 'स्त्री' कहा जाता है । समाज में कुछ ही लोग होंगे जो निर्भीक और लज्जाहीन स्त्री को बुरा नहीं कहते हों ।''(40)

इसी तरह अनामिका के विचार हैं ''आज्ञाकारिता के कठघरे में जकड़ने वाले यह क्यों भूलते हैं कि सीता का सबसे बड़ा सच है लक्ष्मण रेखा लाँघ जाना यानी आपात स्थिति में अपने विवेक के हिसाब से नियमावलियों में परिवर्तन का साहस ।''(41) अनामिका लिखती हैं ''इससे बडा सांस्कृतिक षड्यंत्र कोई नहीं हो सकता कि सीता, सावित्री, जैसी बागी स्त्रियों को मूक आज्ञाकारिता से एकाकार करके देखा जाए। न सीता कठपुतली थी, न सावित्री'' । (42) यह कम आश्चर्यजनक बात नहीं कि सदियों से स्त्री को आदर्श की प्रतिमूर्ति के रूप में ही देखा एवम् सराहा गया है ।

हमारे जातीय सामूहिक अवचेतन में पुरुषों की श्रेष्ठता की यह धारणा इतनी अधिक रची बसी है कि हम इससे अलग सोच ही नहीं सकते । इस संदर्भ में प्रभा खेतान का कथन है – ''स्त्री पैदा होती है ठंडे उच्छवासों के बीच । उसकी पहली रूलाई सुनकर एक ही आवाज गूँज उठती है, बेटी आ गई । आज के युग में तो बेटी के पैदा होने की भी जरूरत नहीं क्योंकि स्केनिंग के द्वारा भ्रूण के सेक्स का निर्धारण गर्भावस्था में ही हो जाता है । यदि लड़की है तो समाज की, परिवार की, पिता और बहुधा स्वयं गर्भ धारणा करने वाली जननी की पहली प्रतिक्रिया है – हटाओ इसे, खत्म करो, दूसरी हुई तब भी किसी हाल में नहीं चाहिए । और औरत बच्चा पैदा करने की मशीन के सिवा है ही क्या ? क्या फर्क पड़ता है, फिर पेट रह जाएगा, तीसरी या चौथी बार कभी – न – कभी गर्भ में बेटा तो आएगा ही और यदि नहीं आया तो टेस्ट ट्युब में लड़का पैदा करेंगे ।''(43) आज के युग में जहाँ शिक्षित लोगों के विचार ऐसे हों तो प्राचीन युग की स्थिति पर आँसू बहाना व्यर्थ है । तब पुरुष वर्चस्व था जिसने धर्म का सहारा लेकर भय उत्पन्न किया था । प्रभा खेतान के शब्दों में – ''पितृ सत्ता अपने आप को मजबूत करने के लिए पहले धर्म का सहारा लेती थी, आज विज्ञान का सहारा लेती है ।''(44) हालांकि भारत सहित दुनिया के अधिकांश देशों में गर्भावस्था में भ्रूण में पल रहे बच्चे के सेक्स का निर्धारण कानूनन अपराध करार दिया गया है । परंतु चोरी – छिपे यह गैर – कानूनी कृत्य

जारी है । कई स्वयंसेवी संस्थाएं भ्रूण हत्या को भी कानून के जरिए रोकने के लिए प्रयासरत हैं ।

पुरुष चाहता है कि उसकी पत्नी केवल पति के ही बीज धारण करे । पत्नी की स्वच्छंदता को नियंत्रित करना इस व्यवस्था के ठेकेदारों ने अनिवार्य समझा । पुरुष चाहे तो स्वच्छंदता के चलते असंख्य स्त्रियों के संपर्क में आ सकता है । लेकिन स्त्री के पास यह पर्याय न था और न है । यद्यपि 'चित्रलेखा' तथा वैशाली की नगरवधु 'आम्रपाली' सरीखी महिलाएं भी इतिहास में रही हैं पर वे अपवादस्वरुप हैं एवं भारतीय नारी की प्रतिनिधि अथवा पर्याय नहीं हैं ।

1.2.2 सामंती व्यवस्था में नारी

जो लोग मध्ययुग को स्वर्ण युग कहते नहीं अघाते, वह शायद इस युग की 'स्त्री' की स्थिति से बेखबर हैं । सीमोन द बोऊवार कहती हैं ''जिस सामंती प्रेम का वर्णन करते हुए साहित्य नहीं थकता वह वास्तव में औरत की कुण्ठा की कहानी है ।''(45) मध्ययुग में मुसलमानों के आक्रमण एवं मुगलकालीन शासन के बाद स्त्रियों की भूमिका बदलती गई । उस पर नियंत्रण कड़ा हो गया । भगवती शरण उपाध्याय ने बड़े काव्यात्मक ढंग से उसकी स्थिति की ओर संकेत करते हुए लिखा है- ''कालान्तर में मैं उस युग में जन्मी जिसे इस देश के इतिहास में स्वर्ण युग कहते हैं । इस युग ने कला में, साहित्य में, शक्ति में, सज्जनता में उन्नति की और उन्नति कर आकाश को छू लिया, परन्तु मेरे लिए बन्धन जैसे - के - तैसे बने रहे । मेरे लिए किसी प्रकार की सुविधा न हुई । मेरे लिए मनु ने जन्म लिया और फिर अपनी लेखनी से उन्होंने हमारे ललाट पर वज्र प्रहार किया । अनुलोम-प्रतिलोम के शक्तिमान शिकंजे मेरे भाग्य को जकड़ चुके थे और पुरुष को स्वार्थसाधक अवसर दे चुके थे ।''(46) इस युग में भी व्यवस्था की शिकार नारी ही हुई ।

ब्राह्मणों ने रक्त की शुद्धता, सतीत्व की रक्षा और हिन्दू धर्म की रक्षा के नाम पर उसे अधिकाधिक सामाजिक बंधनों में जकड़ लिया । उसका स्वतंत्र अस्तित्व पूर्ण रूप से लुप्त हुआ । मुसलमान आक्रमणों के दौरान स्त्री अपहरण की घटना आम बात हो गयी थी । फलस्वरूप वह चारदीवारी में कैद हो गयी । नगरों के ध्वंस के साथ-साथ उस युग में स्त्री के मान का ध्वंस होता गया । हजारों की संख्या में लड़कियों को पकड़-पकड़ कर भारत से बाहर ले जाकर मध्य एशिया के बाजारों में उनका क्रय-विक्रय किया जाने लगा । इसी के परिणामस्वरूप भारत देश में आक्रमणकारियों के भय से बाल-विवाह की प्रथा का चलन हुआ एवं दिन के उजाले की बजाय रात के अंधकार में शादियां होने लगीं ।

यह जगप्रसिद्ध बात है कि सामंती युग सुरा और सुंदरी में डूबा रहता था । अकबर के हरम में जोधाबाई से मरियम तक सभी जातियों की नारियाँ थी । उनके संदर्भ में अबुल फजल ने गलत नहीं कहा था कि ''जो इन अनेक प्रकार की नारियों के पारस्परिक संघर्ष सफलतापूर्वक शान्त कर सकता है, वह निश्चय ही साम्राज्य आसानी से संभाल सकता है ।''(47) इस युग में बादशाहों, सरदारों, अमीर - उमराओं के हरम में हजारों की संख्या में स्त्रियाँ पत्नियोँ-उपपत्नियोँ, रखैलें और दासियों के रूप में रखी गयी । इतने बड़े-बड़े हरमों में उनकी दशा शोचनीय थी । दरबारों में नृत्यगायन करनेवाली सामान्य स्त्रियों की संख्या इतनी अधिक थी, कि स्वच्छंद काम सम्बन्धों को बढ़ावा मिल गया । मुगल बादशाहों, सरदारों तथा धनवान व्यक्तियों की बढ़ती विलासिता की प्रवृत्ति ने स्त्री को केवल विलासपूर्ति का साधन मात्र बना दिया ।

विलासिता की बढ़ती प्रवृत्ति के कारण 'स्त्री को कड़े से कड़े सामाजिक प्रतिबन्धों में जकड़ लिया गया । इसी युग में विभिन्न सामाजिक कुरीतियों का जन्म हुआ जैसे, पर्दाप्रथा, सती प्रथा, बाल विवाह, जौहर प्रथा, दासी प्रथा आदि । उस दौरान मुस्लिम समाज में स्त्रियों की पवित्रता पर निगाह रखने के लिए घरों में जन नोखाने व बुरका पहनने के नियम बने । हिन्दू परिवारों में भी पर्दा-प्रथा थी । लेकिन इस युग में वह अत्यंत क्रूर रूप में सामने आयी । अब स्त्री पिता, भाई के सामने भी पर्दा रखती । संबंधी, स्वजनों के सामने बिना पर्दा निकल जाना मर्यादा के प्रतिकूल माना जाता था । सती दाह तो चल ही रहा था । अल्बरूनी से लेकर 'औरंगजेब नामा' तक सती प्रथा का उल्लेख मिलता है । इसमें लिखा है ''पति की मृत्यु के बाद किसी अन्य पुरुष से विवाह नहीं कर सकती थी । उसे या तो सती होना पड़ता था या विधवा रूप में तपस्या करनी पड़ती थी ।''(48) लेकिन विधवा जीवन से सती हो जाना बेहतर समझा जाता । बंगाल की बाल-विधवाओं को काशी लाकर छोड़ दिया जाता था । दक्षिण भारत और महाराष्ट्र में विधवाओं का सिर मुड़वाकर उनके सौन्दर्य को नष्ट किया जाता था । रंगीन कपड़े तथा आभूषण उनके लिए वर्जित था । खान-पान, रहन-सहन पर भी कठोर बंधन लगाये गये थे । सती प्रथा तो चल ही रही थी, फिर जौहर प्रथा भी जोर पकड़ने लगी जिसमें पति की मृत्यु के पश्चात् पत्नियां अपने आपको अग्नि को समर्पित करतीं । जौहर भी सती की भाँति प्राचीन हथियार रहा जिसे सती की रक्षा के लिए अख्तियार किया गया । ''स्त्री के सामने केवल दो रास्ते थे - या तो जौहर से अपनी रक्षा करना या तक्षशिला के बाजारों में पिता द्वारा बेचा जाना ।''

इसी युग में देवदासी का परिवर्तित रूप सामने आया । आठवीं सदी तक देवदासियों के प्रति पवित्र भावना थी । लेकिन इस युग में बादशाहों, राजाओं और पुजारियों ने मिलकर व्यभिचार फैलाया । नर्तकियाँ देवदासी बन गईं और 'देवदासी' शब्द वेश्या का पर्याय बन गया । इस तरह स्त्री अनेकानेक बंधनों में जकड़ती गयी । मुख्य रूप से इस युग की स्त्री को भोग की वस्तु तथा प्रदर्शन की सामग्री मात्र समझा गया ।

इतने प्रतिबंध, अंधविश्वासों, कुरीतियों के बावजूद कुछ स्त्रियों ने अहम भूमिका निभायी है । शासन क्षेत्र में रजिया बेगम, चांद बीवी, ताराबाई, अहिल्या होलकर आदि की भूमिका अविस्मरणीय है । मध्ययुग ने हमें जहां पद्मिनी, कर्णदेवी जैसी वीर बालायें दीं, वहीं मीरा, सहजो जैसी सन्त साधिकायें भी दीं । दूसरी ओर 'स्त्री' समाज की सबसे निम्न कोटि का जीव बनकर रह गया जिसका न अपना कोई स्वतंत्र अस्तित्व रहा, न अस्मिता रही । 10वीं सदी से 19वीं सदी तक स्त्री अपने समाज के अंधेरे गर्त में हाथ-पाव पटकती रही ।

1.2.3 नवजागरण काल और स्त्री की भूमिका

सामंती व्यवस्था के तहत् हम देख ही चुके हैं कि किस तरह इस युग में स्त्री की स्थिति लगातार गिरती गयी । अनेक कुप्रथाओं ने स्त्री की कमर तोड़ दी । मुगलों के आक्रान्त से वह अभी-अभी उबर ही रही थी कि उस पर अंग्रेजी शासन सत्ता का घोर संकट आन पड़ा । इस समय संपूर्ण भारतवर्ष गुलामी के बंधन में जकड़ा हुआ था । देखते-ही-देखते सारे राजे-रजवाडे, अंग्रेजी साम्राज्य के अधीन होते गये ।

अंग्रेजों के बढ़ते शोषण चक्र का मुकाबला करते हुए सन 1857 में प्रथम स्वाधीनता संग्राम लडकर भारतवासियों ने अपनी देशभक्ति का परिचय दिया । महादेवी वर्मा का कहना है ''प्रथम बार भारत की भिन्न-भिन्न जाति, धर्म और संप्रदायों के व्यक्तियों ने एक होकर विदेशी शासन से मुक्त होने का प्रयास किया और नारी ने संपूर्ण प्राण प्रवेग के साथ अपने सहयोगी होने का प्रमाण दिया । शत्रुओं ने भी जिसका सुयोग्यतम सेनापति होना स्वीकार किया है, उस झाँसी की वीरांगना को यदि तत्कालीन पुरुष समाज का विश्वास और अनुकूल परिस्थितियाँ प्राप्त होतीं तो संभवत: कथा दूसरी होती । अनेक अन्त:-बाह्य दुर्बलताओं तथा अपने ही व्यक्तियों के विरोध के कारण विद्रोह असफल हुआ । तब से उसकी यात्रा आलोक से और अधिक आलोक की ओर अग्रसर होती रही है ।''[49] सन 1857 की क्रान्ति भले ही असफल हो, लेकिन यह नहीं भूलना चाहिए कि पहली बार भारतीय समाज के विभिन्न वर्गों ने कंधे से कंधा मिलाकर औपनिवेशिक दासता का जबरदस्त प्रतिरोध किया

जिसमें रानी लक्ष्मी बाई की भूमिका अद्वितीय रही जिसने न केवल अपनी वीरता का परिचय दिया बल्कि अंग्रेजों के विरूद्ध सैन्य संचालन करते हुए अपने प्राणों की आहुति देकर प्रथम संग्राम को बल प्रदान दिया । इस क्रान्ति में झाँसी की रानी लक्ष्मीबाई के अतिरिक्त, लखनऊ की बेगम हजरत महल, दिल्ली की जमानी बेगम, चौहानी रानी, कित्तुर की रानी चिन्नमा ने भी महत्वपूर्ण भूमिका निभायी ।

1857 की असफल क्रान्ति के पश्चात् भारत में ब्रिटिश साम्राज्य अधिकाधिक प्रबल हुआ । भारतीय जनता को शांत करने के लिए तथा अपने लाभ हेतु अंग्रेजों ने विधान सभाओं, नगरपालिकाओं, जिला परिषदों की स्थापना की । रेल, डाकघर, चिकित्सालय खोले । शिक्षा के प्रचार-प्रसार के लिए कॉलेज तथा विश्वविद्यालयों की स्थापना की । फलस्वरूप भारत में नवजागरण की लहर आयी । ''इस नवजागरण का आधार वस्तुत: आत्मजागरण था, जिसने तत्कालीन कुरीतियों और चुनौतियों का सामना करने के लिए अपने स्वर्णिम अतीत के पुनरुत्थान का संकल्प व्यक्त किया परंतु यह उत्थान अतीतोन्मुख न होकर भाविज़्योन्मुख था । इसलिए इसमें समसामायिक बोध के अंतर्गत परिष्कार का लक्ष्य भी सन्निहित किया गया, यानी यह जागरण पुरानी नींव पर एक प्रकार से नया भवन खड़ा करने का जैसा था ।''(50)

भारत में समाजिक पुनर्जागरण और राजनीतक चेतना का विकास साथ-साथ हुआ । इस समय भारतीय समाज को अज्ञानता, गरीबी, शोषण, दासता, परंपरागत रूढ़ियों से एक साथ संघर्ष करना पड़ा । भारतीय स्त्री सदियों से पुरुष वर्चस्व वाले समाज में रहने के लिए बाध्य हो गयी थी । धीरे-धीरे उसकी गणना दलित वर्ग में होने लगी थी । ऐसे युग में नवजागरण की अलख जगाने वाले महापुरुषों का प्रयत्न सचमुच भारतीय जन जीवन में नयी खुशियाँ लेकर आया । ''आत्महीनता और आत्मस्मृति की गर्त में डूबे भारतीयों को जब मुसलमानों के बाद पाश्चात्य जाति, अंग्रेजों का शासनाधिपत्य प्राप्त हुआ, तब जाकर उन्हें अपने सामाजिक, सांस्कृतिक, राजनैतिक पत्नोन्मुखता का बोध हुआ ।''(51) अंग्रेजों के प्रभुत्व ने एक ओर भारतीय स्वाभिमान तथा आत्मगौरव को झकझोर दिया तो दूसरी ओर वैज्ञानिकता तथा दार्शनिकता से परिचय होने का सुअवसर भी प्रदान किया। इस भारतीय आध्यात्मिकता तथा पाश्चात्य भौतिकता के मंथन से नई चेतना का प्रभात हुआ जिसका प्रकाश आगे चलकर राजा राम मोहन राय, ईश्वरचन्द्र विद्यासागर, स्वामी विवेकानंद, महर्षि अरविंद, महात्मा गांधी आदि ने फैलाया । लेकिन स्त्री की स्थिति में विशेष फर्क नहीं आया । अंग्रेजों ने 'सती प्रथा' पर रोक लगाने के

प्रयास जरूर किये थे, लेकिन दूसरी ओर हिंदुओं के धार्मिक विश्वास को ठेस नहीं पहुँचाना चाहते थे । लेकिन सबसे बड़ी उपलब्धि यह रही कि स्त्री के लिए इस युग में 'शिक्षा' क्षेत्र के द्वार जरूर खुल गये थे, भले ही वह धीमी गति से हो ।

हिन्दी में नवजागरण के नए झोंके आये परन्तु पुरुष वर्ग इन झोंकों से स्त्रियों को सुरक्षित रखते हुए उन्हें समानता देने से इन्कार करता रहा । सच पूछा जाए तो हिन्दी का सारा नवजागरण पुरुषों का आधा-अधूरा नवजागरण था । जिन महावीर प्रसाद द्विवेदी को हिन्दी नवजागरण का अग्रदूत माना गाया है वे भी नारी जागरण के पक्षधर नहीं थे । 'सरस्वती' पत्रिका के संपादन का दायित्व संभालने के बाद उन्होने 'जापान की स्त्रियाँ' (सरस्वती : संख्या 1, सन 1905) लेख लिखकर स्त्रियों के लिए मनुवादी व्यवस्था का समर्थन किया, ''जापान की स्त्रियाँ शिक्षित हैं पर लड़कन में अपने माता-पिता की आज्ञा में रहती हैं, विवाह हो जाने पर पति की आज्ञा में रहती है और विधवा हो जाने पर पुत्र की आज्ञा में रहती हैं, पति की हृदय से सेवा करती हैं ।''(52) यहाँ महावीर प्रसाद द्विवेदी अस्पष्ट रूप से 'आज्ञा' को स्त्री पर थोपते हैं । आचार्य रामचन्द्र शुक्ल जैसे प्रगतिशील विद्वान भी इस रूढ़िवाद से मुक्त न हो सके - ''जो शिक्षा स्त्रियों को मेम व निर्लज्ज बना दे वह शिक्षा नहीं वरन कुशिक्षा है । स्त्री का मुख्य उद्देश्य नम्र, सहिष्णु और शान्त बनना, गृह कार्य में दक्ष होना तथा उचित-अनुचित का ज्ञान पैदा करना है । जो शिक्षा निर्लज्ज बनाती है, उसके हम विरोधी हैं ।''(53) आगे चलकर समाज सुधारक आन्दोलन, भारतीय मुक्ति आंदोलन, पाश्चात्य स्त्री मुक्ति आंदोलन से स्त्री की स्थिति में सुधार आया ।

1.3 स्त्री विमर्श : भारतीय विचारक एवं विवेचन

भारत में सामाजिक पुनर्जागरण और राजनीतिक चेतना का विकास साथ-साथ हुआ है । इस काल में समाज को अज्ञानता, गरीबी, शोषण, दासता और अपनी प्राचीन रूढ़ियों से एक साथ लड़ाई लड़नी पड़ी । भारतीय नारी, जो सदियों से पुरुष-प्रधान समाज की दी हुई व्यवस्थाओं और पतनोन्मुख समाज की स्थितियों में रहने के कारण पिछड़े वर्गों में गिनी जाती थी, प्राय: समाज सुधार आन्दोलन का आधार बनी । उसे विदेशी दासता, पुरुष समाज की दासता और सामाजिक रूढ़ियों की जकड़न के विरुद्ध यानी एक साथ तीन-तीन मोर्चों पर लड़ना पड़ा । इसलिए उसके मुक्तिसंघर्ष को सामाजिक व राजनीतिक स्तरों पर अलग - अलग करके नहीं, एक साथ ही देखना होगा ।

1.3.1 समाज सुधार आन्दोलन की देन

भारतीय नारी का यह मुक्ति-संघर्ष 19वीं शताब्दी के प्रारंभ से ही शुरू हो गया था, जबकि बंगाल में 'ब्रह्म समाज', मुंबई में 'प्रार्थना समाज' एवं उत्तर भारत और पंजाब में 'आर्य समाज' की स्थापना हुई । ये तीनों संस्थाएं समाज सुधार को लेकर चलीं और इन्होंने अपने कार्यक्रमों में नारी उत्थान को प्रमुख स्थान दिया । जब कोई समाज अपने गौरवशाली अतीत से कटकर अज्ञान, अंधविश्वास, कुप्रथा, कुरीतियाँ, अकर्मण्यता के गर्त में डूब जाता है तो उस समाज की स्त्रियों को ही सर्वाधिक कष्ट झेलने पड़ते हैं । इसलिए मध्यकालीन पतनोन्मुख समाज में पंडितों ने स्त्रियों के लिए निर्धारित आचार-संहिताओं में बाल-विवाह, सती प्रथा, बहुपत्नी को अच्छी व्यवस्थाएँ माना और परदा प्रथा को दैहिक पवित्रता या कौमार्य रक्षा के लिए उचित मानकर स्त्री शिक्षा को पाप की संज्ञा दी और अंधविश्वास फैलाने में सफल हुए । राजा राम मोहन राय, स्वामी दयानंद, महादेव गोविंद रानडे, महर्षि कर्वे जैसे समाज सुधारक नेताओं ने इस स्थिति को लक्ष्य किया और अपने सुधार-आंदोलनों में नारी-उत्थान को प्रमुख स्थान दिया ।

भारतीय नवजागरण के प्रवर्तक राजा राम मोहन राय को स्त्री सुधार आन्दोलन का जनक माना जाता है । सबसे पहले उन्होंने समाज की समस्याएँ धर्म के माध्यम से हल करनी शुरु कीं। लेकिन बाद में उन्होंने यह जान लिया कि इन कुप्रथाओं की सबसे बड़ी शिकार तो स्त्री है । उन्होंने ही स्त्रियों में सोई हुई चेतना जागृत की । सबसे पहले उन्होंने सती प्रथा को हटाने का प्रयास किया । अत: इन्हीं के प्रयासों के फलस्वरूप 4 दिसंबर 1829 को सती प्रथा को कानूनन खत्म कराया जा सका । इसके पश्चात् उन्होंने विधवा विवाह, बाल-विवाह, बहुपत्नी प्रथा का सफाया करना चाहा । उनके कार्यों को संबोधित करते हुए मीराकांत लिखते हैं - ''महिलाओं की समस्याओं से जुड़े समाज सुधार के कार्य में राजा राममोहन राय को जिस आधार ने प्रेरणा दी, वह थी मानवतावादी तार्किक विचारधारा । उन्होंने स्त्री-पुरुष संबंध को भी इसी परिप्रेक्ष्य में देखा और यही कारण था कि सती प्रथा के बन्द हो जाने पर भी वे संतृष्ट नहीं हुए । उन्होंने बहुविवाह प्रथा के खिलाफ भी आवाज उठायी । महिलाओं के संपत्तिगत अधिकारों के लिए भी उन्होंने संघर्ष किया । साथ ही दहेज प्रथा व लड़कियों की बिक्री का भी उन्होंने जमकर विरोध किया । कुल मिलाकर वे मध्ययुगीन रूढ़ियों के विरुद्ध एक नई चेतना लाने के लिए जीवन पर्यंत सक्रिय रहे ।''(54)

सन 1886 में 'ब्रह्म समाज' दो भागों में विभक्त हुआ । देवेन्द्रनाथ टैगोर के नेतृत्व में

इसकी एक शाखा ने महिला शिक्षा और विधवा विवाह पर काफी कार्य किया । आगे चलकर केशव चन्द्र सेन के नेतृत्व में ब्रह्म समाज महिलाओं की समस्याओं के प्रति और भी अधिक सचेत बने । बालिका विद्यालय खोलकर महिलाओं को शिक्षा देने का मार्ग प्रशस्त कर दिया । सन 1872 ई. में 'सिविल मेरिज एक्ट' द्वारा अन्तर्जातीय विवाह को न्याय संगत ठहराया गया तथा विधवा विवाह की अनुमति दी गई । इस संदर्भ में नीरा देसाई का मानना है ''समाज में स्त्रियों की स्थिति सुधारने की दिशा में राजा राममोहन राय ने विधवाओं का अग्नि स्नान बंद करवाया और विद्यासागर ने विधवाओं को वैधव्य जीवन की यम यातनाओं से बचाया और कानून द्वारा पुनर्विवाह को अनुमति दिलाने का प्रयास किया ।''(55)

'प्रार्थना समाज' के माध्यम से गोविन्द रानडे ने मुख्य रूप से स्त्री उद्धार व स्त्री जागरण तथा अछूतोद्धार के प्रश्नों को उठाया । नारी शिक्षा हेतु उन्होंने स्त्रियों के लिए रात्रि पाठशालाओं का प्रबन्ध किया, महिला शिक्षा संघ एवम् विधवा आश्रमों की स्थापना की । विधवा विवाह संघ के प्रचार विभाग के अध्यक्ष होने के नाते उन्होंने 'इंदुप्रकाश' पत्रिका के माध्यम से विधवाओं की समस्याओं तथा यातनाओं की ओर लोगों का ध्यान आकृष्ट कर, लोकमत को भी जोड़ा ।

आर्य समाज के माध्यम से स्वामी दयानंद सरस्वती ने बेमेल विवाह, परदा प्रथा व दहेज प्रथा का विरोध किया । वे स्त्री शिक्षा के प्रबल समर्थक थे । इसलिए उन्हें बढ़ावा देने के लिए अलग-अलग स्थानों पर विद्यालय व कॉलेजों की स्थापना की । उन्होंने स्त्री और पुरुष, दोनों के लिए उच्च मानवीय मूल्यों की सिफारिश की जिससे स्त्रियों के लिए सामाजिक व राजनैतिक क्षेत्रों में भाग लेने का मार्ग खुल गया । यही नहीं, उन्होंने समाज के सभी वर्गों की स्त्रियों को शिक्षा देने की वकालत की । उनकी प्रेरणा से ही स्त्रियों ने समाज सुधार की गतिविधियों में भाग लेना आरंभ किया ।

रामकृष्ण परमहंस के शिष्य विवेकानंद ने स्त्री चेतना को गतिशील बनाने के लिए पूरे समाज को नये सिरे से आन्दोलित किया । भारतीय स्त्री के लिए कर्तव्य और दायित्व तथा उसके जीवन के विविध रूपों को परिभाषित करते हुए उन्होंने समाज निर्माण में स्त्री के महत्व को स्वीकारा । स्वामी विवेकानंद ने स्त्री स्वातन्त्र्य पर बल देते हुए उनके सती व दुर्गा रूप का स्मरण कराया । वे स्त्री शिक्षा के प्रबल हिमायती थे। वे चाहते थे कि स्त्रियों को ऐसी शिक्षा मिले जो उन्हें अधिकाधिक स्वावलंबी बना सके । वे सोचते थे कि अगर स्त्री को शिक्षा नहीं दी गयी तो देश की उन्नति संभव न होगी । उन्होंने कहा ''हम चाहते हैं कि भारत की स्त्रियों

को ऐसी शिक्षा दी जाये जिससे वे निर्भय होकर भारत के प्रति अपने कर्तव्य को भली भांति निभा सकें और संघमित्रा लीला, अहिल्याबाई और मीराबाई आदि भारत की महान देवियों द्वारा चलायी गयी परंपरा को आगे बढ़ा सकें ।''(56) वे जान चुके थे कि शिक्षा उनमें आत्मविश्वास, आत्मबल तथा आत्मरक्षा का भाव उत्पन्न करेगी ।

उन्नीसवीं शताब्दी के अंतिम चरण में थियोसोफिकल सोसायटी की नींव एक विदेशी महिला ब्लावटस्की ने रखी । उनके पश्चात् एनी बेसेन्ट ने उनके आधे-अधूरे कार्य को पूरा करने का बीड़ा उठाया । एनी बेसन्ट ने, सन 1917 ई. में कलकत्ता अधिवेशन में भारतीय राष्ट्रीय काँग्रेस का अध्यक्ष पद प्राप्त किया जिसके माध्यम से उन्होंने राजनीतिक अधिकारों की मांग के साथ-साथ महिलाओं की प्रतिगामिता सिद्ध की । इनके अतिरिक्त बालगंगाधर तिलक, गांधीजी, कर्वे, लोहिया, महात्मा फुले आदि ने भी स्त्री जागरण के द्वारा स्त्री जीवन को नया मोड़ दिया ।

बाल गंगाधर तिलक का योगदान स्त्री जागरण में महत्वपूर्ण है । वे समाज सुधार के पक्षधर थे । उन्होंने हिन्दूवादी नीति की आलोचना करते हुए, स्त्री की निर्बल अवस्था के लिए उसे जिम्मेदार ठहराया । अपने प्रसिद्ध पत्र 'केसरी' के तहत् हिन्दू स्त्री की निर्मम दशा को अपने लेखों के माध्यम से व्यक्त किया । महाराष्ट्र के कर्वे ने स्वयं विधवा से विवाह कर समाज के समाने उदाहरण प्रस्तुत किया । विधवाओं की दयनीय स्थिति की ओर उनका ध्यान गया था । इसलिए उस दिशा में उचित कदम उठाते हुए उन्होंने हिन्दू विधवा आश्रम तथा महिला विद्यालयों की स्थापना की । उन्हें आत्मनिर्भर बनाने के लिए विविध प्रशिक्षण दिया । इसी क्रम में महात्मा गांधी का महत्वभी भुलाया नहीं जा सकता । उनके आगमन से भारतीय स्वतंत्रता आंदोलन का आधार व्यापक बना जो जन आन्दोलन के रूप में परिणत हुआ । गांधीजी ने ही घर की चारदीवारी में कैद नारी को आंदोलन से जोड़ा जिसके परिणामस्वरूप बड़ी संख्या में स्त्रियों ने सत्याग्रह आंदोलन, भारत छोड़ो आन्दोलन तथा सविनय अवज्ञा आंदोलन में भाग लिया और वे जेल भी गयीं । उनकी पुकार पर सरोजनी नायडू, सरला देवी, चौधरानी, सरला राय, लेडी अबाला बोस, शारदा बेन मेहता, कमला देवी चट्टोपाध्याय, कस्तूरबा गांधी, कमला नेहरू, अरूणा आसफ अली, ललिता शास्त्री आदि महिलाओं ने भारतीय स्वतंत्रता आंदोलन में सहयोग दिया । गांधी जी का मानना था कि स्वतंत्रता आंदोलन में स्त्री को भी पुरुषों के कंधे से कंधा मिलाकर सहयोग देना चाहिए । ''भारतीय आंदोलन में, सही मायने में गांधीजी के नेतृत्व में महिलाओं का आंदोलन आगे बढ़ा ।

गांधीजी की आवाज सुदूर गाँवों तक पहुंची और देश की आजादी के उद्देश्य को लेकर महिलाओं ने रातों रात पर्दे को तिलांजलि दे डाली । देशभक्ति से प्रेरित होकर, सब बाधाओं को पीछे छोड़कर हजारों महिलाएँ स्वतंत्रता आंदोलन की लडाई में कूद पड़ीं । सविनय आंदोलन (1930-31) के दौरान लगभग बीस हजार महिलाएँ जेल गयीं ।''(57) गांधीजी ने स्त्रियों को सम्मानजनक स्थान दिलाने तथा विकास की दिशा में मोड़ने के लिए अथक प्रयत्न किए । 8 अगस्त 1942 ई. को गांधी के नेतृत्व में 'करो या मरो' और 'अंग्रेजों भारत छोड़ो' की आवाज बुलन्द हुई जिसकी गूँज देश के कोने-कोने में फैल गयी । यह कहना गलत न होगा कि स्त्री चेतना और उनकी समर्पित भागीदारी से ही स्वतंत्रता आन्दोलन समय पर सफल हो पाया । महात्मा ज्योतिबा फुले ने स्त्री शिक्षा के लिए स्वयं पत्थर भी झेले लेकिन अपने कार्य से मुँह नहीं मोड़ा ।

राजा राममोहन राय, महर्षि दयानंद, ईश्वरचंद विद्यासागर, स्वामी विवेकानंद, महात्मा गांधी, महर्षि कर्वे आदि ने अन्धविश्वास की कुरीतियों का पर्दाफाश करके सती प्रथा का उन्मूलन, बाल विवाह पर रोक, विधवा विवाह की स्वीकृति दी तो दूसरी ओर निरक्षरता समाप्ति का अभियान चला कर शिक्षा का प्रचार प्रसार किया एवं स्त्रियाँ जो पति की संपत्ति से सर्वथा वंचित कर दी गयी थीं, उन्हें सम्पत्ति का कानून बनवाकर ऊँचा उठाने का प्रयास किया । गांधीजी की प्रेरणा से उन्होंने आंदोलन में सहयोग दिया । इन समाज सुधारकों के प्रेरणास्वरूप उनमें 'स्त्री जागरण' की भावना प्रबल हुई और आगे चलकर इसी ने स्त्री मुक्ति आंदोलन का जन्म दिया ।

1.3.2 पाश्चात्य स्त्री मुक्ति आन्दोलन

''सामाजिक पराधीनता, पुरुष अधीनता, प्रचलित आदर्श, विश्वासों, मान्यताओं व मूल्यों के बंधन से नारी को मुक्त करने का प्रयास ही नारी मुक्ति आन्दोलन है ।''(58) इस नारी मुक्ति आन्दोलन की पृष्ठभूमि में फ्रान्स की राज्यक्रान्ति तथा इंग्लैंड की औद्योगिक क्रान्ति विशेष महत्व रखती है । इन क्रान्तियों से स्त्री की बुनियादी स्थिति में परिवर्तन की आशा की गयी थी क्योंकि पश्चिम की स्त्री भी समान रुप से शोषण की शिकार थी ।

'स्त्री मुक्ति' का नारा करीब-करीब दुनिया भर की सभी स्त्रियों का नारा रहा है । इससे स्पष्ट है कि मानवता का आधा हिस्सा पराधीन था । ''नारी मुक्ति का सवाल जब-जब उठता है तो यह स्पष्ट है कि नारी पराधीन है, गुलाम है । वर्तमान सामाजिक व्यवस्था का रेशा-रेशा पुरुषों द्वारा पुरुषों के लिए निर्मित है । पुरुष द्वारा नारी पर थोपी हुई गुलामी का ठोस रूप घर

की चारदीवारी में नारी को कैद रखना और उसे संतान उत्पत्ति की मशीन समझना है।''[59] आज स्त्री समान अधिकार प्राप्ति हेतु संघर्षशील है । इसलिए इस युग को 'स्त्री जागरण' का युग भी कहा जा रहा है । उनके अधिकारों, उनकी सुरक्षा की दृष्टि से अनेक नियम-अधिनियम बनाये जा रहे हैं । सही मायने में स्त्री अधिकारों के प्रति नवीन चेतना पाश्चात्य देन है । अत: पाश्चात्य देशों में स्त्री मुक्ति आन्दोलन का ऐतिहासिक परिप्रेक्ष्य क्या रहा है, यह जानना जरूरी है ।

पाश्चात्य स्त्री भी स्वतंत्रता एवं समानता के अधिकार से वंचित थी । पाश्चात्य देशों में भी स्त्रियां पुरुषों के अधीन रहने को अभिशप्त थीं, चाहे सामाजिक रूप में हो या आर्थिक, राजनीतिक तौर पर, उन्हें पुरुषों की गुलामी ही करनी पड़ती थी। उनके ऊपर ही आश्रित रहना पड़ता था। उन तथाकथित देशों में भी स्त्री दोयम दर्जे की नागरिक थी । औरत के इस दोयम दर्जे का मूल कारण उसकी आर्थिक निर्बलता रही है । यहाँ के सामाजिक नियम स्त्री को केवल विवाह एवं सन्तानोत्पत्ति के अधिकार मात्र प्रदान करते थे । विवाह के अतिरिक्त यहाँ की स्त्री किसी अन्य अधिकार की हकदार नहीं थी । वह पूर्णत: दासी थी । आज की भाँति वह सार्वजनिक कार्यों में भाग नहीं ले सकती थी और ना ही उसे मतदान का अधिकार प्राप्त था । लेकिन फ्रान्स की राज्यक्रान्ति और इग्लैंड की औद्योगिक क्रान्ति ने स्त्रियों की स्थिति में भारी परिवर्तन लाये । ''जाहिर है उच्चादर्शों से अनुप्रेरित ये क्रान्तियाँ समाज के हर वर्गों व क्षेत्रों को छूने के क्रम में स्त्री जाति से अलग नहीं रह सकती थीं ।''[60] औद्योगिक क्रान्ति के प्रभाव का चित्रण मार्गरेट वेन्स्टन इन शब्दों में करती हैं ''पश्चिम देशों में नारी को घर से बाहर लाने में औद्योगिक क्रान्ति का बहुत बड़ा हाथ है । स्त्रियों को कारखानों और मिलों में काम करना पड़ा । बाद में उनका वहाँ शोषण किया जाने लगा । काम की स्थितियाँ और भी खराब होने लगीं तो उन्होंने इसके विरूद्ध आवाज उठानी शुरू की । कठोर परिश्रम के बावजूद उन्हें कम आमदनी पर काम करना पड़ता था । स्त्रियों की हैसियत पुरुषों से कमतर होती थी । उत्पादन के साधनों पर स्वामित्व रखने वाले लोगों तथा उत्पादन के लिए अपनी श्रम शक्ति बेचनेवालों के बीच विभाजन पूँजीवादी समाज में वर्गों का प्रस्थान बिन्दु होता है ।''[61] इससे स्पष्ट है कि पितृसत्ता के ठेकेदार पूँजीपति स्त्रियों का शोषण कर रहे थे ।

क्रान्तियों से प्रेरित होकर विविध देशों में लोकतांत्रिक प्रणाली का विकास होने लगा । इस विकास के साथ ही जनता के प्रतिनिधित्व व मताधिकार की मांग प्रबल हो उठी जो

कालान्तर में स्त्री आन्दोलन का सबसे प्रमुख अंश बन गयी । राज्यक्रान्ति क्री वास्तविकता की ओर इशारा करते हुए राजकिशोर कहते हैं - ''फ्रांस की राज्य क्रान्ति के जनक रूसो ने स्वतंत्रता, समता और बंधुत्व का जो नारा दिया, वह वस्तुतः पुरूष समाज के लिए ही था, नवयुग के उस महास्वप्न में स्त्रियाँ कहीं नहीं थीं ।''(62) जो भी हो, इस क्रान्ति से स्त्रियों को अपने अधिकार माँगने में जरूर प्रेरणा मिली । तत्पश्चात् स्त्री समस्या का प्रश्न स्वयं स्त्री विदुषियों द्वारा उठाया जाने लगा । स्त्री की मानसिकता के विकास की कहानी लगभग हर देश का सामाजिक इतिहास कहता है ।

सर्वप्रथम सन 1972 ई. में 'मेरी वाल्सटन' ने 'विन्डिकेशन ऑफ दि राइट्स ऑफ विमेन' नामक पुस्तक लिखकर इग्लैंड में स्त्री अधिकारों के लिए सर्वप्रथम आवाज उठायी । स्त्री चिंतन को अभिव्यक्त करनेवाला प्रथम ग्रंथ होने का गौरव भी इस पुस्तक को प्राप्त हुआ । 'विन्डिकेशन ऑफ दि राइट्स ऑफ विमेन' में लिंग भेद भूलकर स्त्रियों में मानवोचित गुणों को विकसित करने का आहवान किया गया था क्योंकि अब तक स्त्री को शारीरिक रूप से कमजोर-नाजुक कहकर खारिज कर दिया गया था, जो वास्तव में उसके नैसर्गिक गुण हैं । उसे भोग की वस्तु मात्र समझा गया था ना कि मनुष्य । इसलिए उसे शिक्षा से वंचित रखा गया था जबकि क्षमता उसके पास भी थी । लिंग के आधार पर उन्हें कई अधिकारों से वंचित रखा गया जिसका ज्ञान मेरी वाल्स्टन को था । वाल्स्टन के बाद 1844 ई. में फ्रान्स की 'फ्लोरा ट्रिरटन' ने स्त्रियों की माँगें प्रस्तुत करने के लिए एक महिला संगठन की स्थापना की । लेकिन वह योजना असफल रही । सन 1849 ई में 'जॉन डेराडन' नामक महिला संसद की सदस्या पद के लिए खड़ी हुई । दुर्भाग्यवश सैनिक क्रान्ति के कारण वह चुनाव नहीं हो पाया ।

इंग्लैंड की केरोलीन नार्टन ने स्त्रियों को पुरुषों के समान अधिकार देने हेतु आन्दोलन शुरू किया, परन्तु शक्तिशाली वर्ग ने वह भी कुचल डाला । सन 1931 में मजदूर श्रमिक वर्ग के राष्ट्रीय संगठन ने पुरुषों के साथ-साथ स्त्रियों के मताधिकार की माँग की अनुमति दी । जॉन स्टुअर्ड मिल ने, अपनी पुस्तक 'द सब्जेक्शन ऑफ विमेन' के माध्यम से स्त्री मुक्ति और उसके मताधिकार के लिए आवाज उठायी । 'हाऊस ऑफ कॉमन्स' में महिला मताधिकार के पक्ष में भाषण देते हुए उन्होंने कहा- ''स्त्री और पुरुष के बीच सामाजिक संबंधों का संचालन वाले नियम जो एक सेक्स को श्रेष्ठ और दूसरे को उसके अधीन बताते हैं, अपने आप में गलत हैं । इन्हें पूर्ण समानता के नियम द्वारा बदल देना चाहिए, ताकि न तो किसी एक पक्ष में अधिक

शक्ति रहे और न ही किसी एक की अधीनता ।''[63] उनकी बात पर अमल तब से लेकर आज तक स्त्रियाँ कर रही हैं लेकिन बदलाव की कोई गुंजाइश नहीं । इस मुद्दे को खारिज करने के लिए पितृसत्तात्मक समाज तत्पर खड़ा है । उनके भाषण की काफी निंदा की गई । लेकिन संघर्ष तो आरंभ हो चुका था । फलस्वरुप पहले सन् 1869 में इंगलैंड में महिलाओं को नगरपालिका चुनाव में मत देने का अधिकार मिला और फिर सन् 1928 में विधानसभा तथा संसद के चुनावों में भी मत देने का अधिकार मिला ।

इसके पश्चात् 8 मार्च 1857 ई. को न्यूयार्क की सडकों पर कपडा मिलों में काम करने वाली स्त्रियों ने अधिक वेतन और काम के घंटे सोलह घण्टों से घटाकर दस करने की माँग कोा लेकर असफल प्रदर्शन किया था । इस घटना का अपना एक ऐतिहासिक महत्व है, जिसे आशारानी व्होरा ने इस रूप में व्यक्त किया है, ''विश्व में महिलाओं का यह प्रथम प्रदर्शन था, जिसे उस समय के ट्रेड यूनियनों ने पसंद नहीं किया । किसी प्रकार के समर्थन के अभाव में यह आंदोलन पुलिस द्वारा कुचल दिया गया, पर महिला इतिहास में यह एक अमिट लकीर छोड़ गया । इस प्रथम संगठित प्रदर्शन को ही महिला आंदोलन की प्रेरणा मानते हुए, आठ मार्च सदा के लिए 'अन्तर्राष्ट्रीय महिला संघर्ष दिवस' के रूप में मनाया जाने लगा है ।''[64] आज भी आठ मार्च को महिला दिवस के रूप में विश्वभर में मनाया जाता है । स्त्री-सशक्तिकरण के स्वर बुलंद करने की घोषणाएं होती हैं, दुनिया भर में कार्यक्रम आयोजित होते हैं और स्त्री स्वतंत्रता व चेतना को लेकर संकल्प लिए जाते हैं । इस वर्ष अंतर्राष्ट्रीय महिला दिवस मनाते हुए सौ वर्ष पूरे हो रहे हैं इसलिए पूरे विश्व में इसे अलग ढंग से मनाया जा रहा है । एक शतक पहले क्वारा जेटकिन ने 1910 में, 8 मार्च को अंतर्राष्ट्रीय महिला दिवस के रुप में मनाने की घोषणा की थी । इस घोषणा के साथ ही महिलाओं ने अपने अधिकारों की लड़ाइयां शुरु कीं और ज्यादातर लड़ाइयां जीती । कई मायने में वे आज बाबरी के मुकाम पर हैं । इस सफलता की खुशी को बांटने और नए आयामों को रेखांकित करने के लिए एक अद्‌भुत अभियान की रुपरेखा तैयार की गई है । इस अभियान के तहत 8 मार्च 2009 से 8 मार्च 2010 तक पूरे विश्व में अनेक कार्यक्रम किए गए । वर्ष के अंत में उनका समापन हर देश में विराट आयोजन के रुप में हुआ। हर देश में पूरे एक वर्ष तक चलने वाले इस कार्यक्रम में महिलाओं को प्रभावित करने वाले तमाम राजनीतिक, आर्थिक और सामाजिक मुद्दों पर गहराई से विचार-विमर्श किया जागया ।

सन 1865 ई. में ऐलिजाबेथ मिलर, लूसी स्टोन ने मिलकर अमेरिका में महिला मुक्ति

आन्दोलन शुरू किया । इस संदर्भ में नीरा देसाई के विचार इस प्रकार हैं – ''अमेरिकी नारी का स्वतंत्रता संग्राम सन 1778 से शुरू हुआ । ब्रिटेन और अमेरिकी जनता के स्वतंत्रता संग्राम के दौरान जब अमेरिकी जनता ने प्रतिनिधित्व की माँग करते समय हमारी मांगें न भूले । यदि हमें समान अधिकार नहीं दिया गया तो हमें विद्रोह करना पड़ेगा ।''(65) समान अधिकार के अभाव में ही उन्हें यह कदम उठाना पड़ा जिसने आगे आन्दोलन का रूप धारण कर लिया । इसके पश्चात् कई स्त्रियों ने मोर्चा संभाला ।

संसार भर की महिलाओं के जीवन में नई आशा का संचार हुआ । इस विश्वव्यापी घोषणा द्वारा महिलाओं को समानता, विवाह करने यानी जीवनसाथी चुनने की स्वतंत्रता, पदग्रहण करने, नौकरी करने तथा श्रम का पूरा मूल्य प्राप्त करने क अलावा सामाजिक कार्यों में भाग लेने के अधिकार मिल जाने से उनकी स्थिति कानूनी तरीके से सुरक्षित हो गई । यद्यपि बहुत से देशों में महिलाओं को पुरुषों के समकक्ष राजनीतिक अधिकार प्राप्त नहीं थे । सन 1950 तक विश्व के कुल 56 देशों की महिलाओं को ही ये अधिकार प्राप्त थे । किन्तु इस घोषणा के बाद यह संख्या दुगुनी हो गई ।

भारत, श्रीलंका, स्वीडन की बात छोड़कर 29 देश ही ऐसे हैं जहां महिलाओं को मंत्री पद दिए गए हैं । लैटिन अमेरिकी देशों में राजनीति में भाग लेने वाली महिलाओं को अपने पति का अनुमति पत्र दिखाना पड़ता है । वे अपने बच्चों के बारे में भी कोई फैसला नहीं कर पाती हैं । इसी प्रकार भारत में भी आज बहुत सी कुप्रथाएं यथावत चालू हैं, जैसे बाल विवाह, सती प्रथा, स्त्री-पुरुष में असमानता अदि । यद्यपि जिन-जिन देशों में क्रांति हुई है और जो देश स्वतंत्र हुए हैं, वहां के रुढ़िगत नियमों में भी शासकीय स्तर पर ही नहीं, व्यक्तिगत और सामाजिक स्तर पर बदलाव आया है ।

महिलाओं के आंदोलन, उनकी स्वतंत्र अभिव्यक्ति और अस्मिता के सफल न होने के पीछे एक बड़ा कारण है, महिलाओं का शिक्षित न होना । विश्व भर में आज भी निरक्षर व्यक्तियों की संख्या का बहुत बड़ा भाग महिलाओं का है । नियमों में बंधकर घर की चाहरदीवारी में बंद केवल चौकेचूल्हे तक सीमित रखी जाने वाली महिलाओं ने अपनी नियती यही समझी और वे निरक्षर ही बनी रहीं । यद्यपि अब स्थितियां बदल रही है और महिलाओं में शिक्षा का प्रसार भी हो रहा है । विकसित देशों की स्थित बेहतर है । विकासशील देशों में भी स्थिति को संतोषजनक कहा जा सकता है ।

महिलाओं में नौकरी का आकर्षण उन्नत देशों में अधिक है, जबकि अन्यत्र ऐसा नहीं है।

धीरे-धीरे भारत में भी शिक्षा के साथ महिलाओं में नौकरी का आकर्षण बढ़ता जा रहा है । ग्रामीण क्षेत्र की महिलाएं भी अपने गृह उद्योग में पर्याप्त वैज्ञानिक सुधार कर, उसे बढ़ा रही हैं । राजनीतिक और सामाजिक जीवन में भले ही, विश्व की महिलाओं के अधिकारों में संपन्नता न हो, लेकिन आज महिलाओं की स्थिति में मोटे तौर पर काफी सुधार हुआ है ।

वर्ष 2005 में चीन की राजधानी बीजींग में आयोजित महिला विश्व सम्मेलन संयुक्त राष्ट्र संघ के इतिहास में ऐसा सबसे बड़ा सम्मेलन था, जिसने महिलाओं के वैश्विक आंदोलन के गतिशील बनाकर सुरक्षात्मक कवच और सामूहिक कार्यों में महिलाओं के विकास, समानता और शांति जैसे मुद्दों को महत्व दिया गया । यह सच है कि अब महिलाओं की आवाज सुनी तो जाने लगी है, साथ ही यह भी महसूस किया जाने लगा है कि इस आवाज को निरंतर बुलंद करते रहना भी जरूरी है । कारण, महिलाएं आज भी जहां वैश्विक चुनौतियों से जुझ रही हैं, वहीं आर्थिक अनिश्चितता उत्पीड़न और दिल दहला देने वाली हिंसक घटनाओं ने एक बार फिर पूरे विश्व का ध्यान आकर्षित किया है, इसी के साथ पिछले दो दशकों में महिलाओं ने आगे बढ़कर जिन क्षेत्रों में उपलब्धि हासिल की और अपनी सफलताओं के मानक स्थापित किए, वे भी पुरुष समाज द्वारा बर्दाश्त न किए जाने के कारण हाशिए में पड़ते जा रहे हैं । निश्चय ही, आज महिलाओं को जिन चुनौतियों का सामना करना पड़ रहा है, उनके समाधान के लिए सरकार और सामाजिक संगठनों और विभिन्न समुदायों की महिलाओं की आवाज सुननी होगी और उन्हें निर्णायक भूमिका देनी होगी ।

सन् 1869 ई. में ही पहली बार 'हेग' में महिलाओं की एक कॉन्फ्रेस हुई और 8 मार्च का दिन, 'महिला संघर्ष दिवस' के रूप में सर्वसम्मत स्वीकृत किया गया । इसके पश्चात् सन 8 मार्च 1913 को 'जार' के रूस में महिलाओं ने सड़कों पर एक जुलूस निकाला और युद्ध-विरोधी नारे लगाये । इस आन्दोलन में प्रथम विश्व युद्ध के पश्चात् गति आयी । महिलाओं के युद्ध विरोधी नारों से सारा यूरोप गूँजने लगा । 8 मार्च 1923 ई में हजारों की संख्या में स्त्रियों ने प्रदर्शन किया क्योंकि जर्मनी में उस समय स्त्रियों को युद्ध हेतु अधिक बच्चे पैदा करने के लिए प्रेरित किया जा रहा था जैसे कि वह बच्चे पैदा करने की मशीन हो । तब शायद उनमें अस्तित्वबोध जागृत नहीं हुआ होगा । आगे चलकर द्वितीय विश्व युद्ध के बाद आन्दोलन ने और अधिक जोर पकड़ा ।

अमेरिका की देखा देखी इग्लैंड में स्त्री जागृति का स्वर औद्योगिक क्रान्ति के फलस्वरूप उद्‌भूत हुआ था । सन 1838 ई में मताधिकार आन्दोलन के नेताओं ने मताधिकार प्रस्ताव

रखा था । सन 1967 में ब्रिटिश संसद में जॉन स्टुअर्ट मिल ने इसके लिए अथक प्रयास किये थे । लेकिन वे असफल रहे । इसके पश्चात् सन 1869 ई. में टैक्स भरनेवाली स्त्रियों को नगरपालिका में मतदान का अधिकार मिला । सन 1897 ई. में 'नेशनल युनियन ऑफ सफरेज सोसायटी' की स्थापना की गई । पार्लियामेंट में कई बार आवेदन पत्र दिए गये, जूलूस निकाले गये । इस तरह 19 वीं सदी के अंत तक इग्लैंड में स्त्रियों को मत देने का अधिकार प्राप्त हुआ । प्रथम विश्वयुद्ध में स्त्रियों की भागीदारी तथा सेवाओं को मद्देनजर रखते हुए सन 1918 ई. में कुछ शर्तो सहित तथा अनेक संघर्षों के बाद सन 1928 ई. में मतदान करने का पूर्ण अधिकार प्रदान किया गया ।

भले ही नारी मुक्ति के क्षेत्र में फ्रांस अग्रणी रहा हो, लेकिन वहाँ भी स्त्रियों की स्थिति में अधिक परिवर्तन नहीं आया था । मताधिकार के लिए उन्हें भी संघर्ष करना पड़ा । इस संदर्भ में सिमोन द बोउवार लिखती हैं – ''सन 1879 ई. की समाजवादी काँग्रेस ने घोषणा की कि स्त्री-पुरुष दोनों समान हैं । फिर भी, नारी मुक्ति का आहवान एक गौण मसला बनकर रह गया क्योंकि यहां सवाल तो श्रमिक संघर्ष और सर्वहारा की मुक्ति का था । इसके विपरीत बुजुर्वा स्त्रियाँ सामजिक संस्थाओं के चौखट में स्थित होकर भी नये अधिकारों की माँग कर रही थीं । दरअसल वे क्रान्तिकारी नहीं थीं, उनका दृष्टिकोण सुधारवादी था । उदारवादी पुरुष यह चाह रहे थे कि स्त्री अपनी गरिमा न खोये । घर स्त्री का मंदिर है । यदि वह राजनीति में भाग लेती है, वोट का अधिकार मांगती है तो वह अपना लालित्य खो देगी ।''(66) इससे यह स्पष्ट होता है पुरुष चाहे किसी भी देश या वर्ग का हो, वह यही सोचता है कि स्त्री घर की शोभा बने और अपने अधिकार को न माँगे ।

फ्रान्स में सन् 1901 ई. में पहली बार 'चेंम्बर ऑफ डिप्यूटिस' के सामने मताधिकार की माँग रखी गयी तथा सन 1909 ई. में नारी मताधिकार के लिए फ्रांसीसी यूनियन की स्थापना हुई । अत: काफी संघर्ष के बाद सन् 1932 में आकर सीनेट और चेम्बर के बीच लम्बे विचार-विमर्श के बाद यह अधिकार पास हो गया । सन् 1945 में पेरिस में वीमेंस इंटरनेशनल डेमोक्रेटिक फेडरेशन की स्थापना की गई तथा विश्व भर की महिलाओं को युद्ध विरोधी आंदोलन संगठित रुप से चलाने के लिए कहा गया । आंदोलन का मुख्य उद्देश्य महिलाओं के अधिकारों के लिए संघर्ष, नि:शस्त्रीकरण तथा शांति की स्थापना थे ।

इस प्रकार हम देखते हैं कि पाश्चात्य स्त्रियाँ जो आज स्वतंत्र जीवन रही हैं, इसके लिए उन्हें कई संघर्ष करने पड़े हैं । उन्होंने अपनी स्थिति सुधारने हेतु अनेक मताधिकार आंदोलन

चलाये, मताधिकार के पश्चात् धीरे-धीरे अन्य अधिकार भी सुलभ होते गये और वे राजनीति के क्षेत्र में भी बेधड़क उतरीं । इस संदर्भ में सिमोन द वोउवार के विचार हैं - ''अन्त में 'संयुक्त राष्ट्र संघ' ने 1945 तक आते-आते दुनिया की सारी स्त्रियों और पुरुषों के लिए समान अधिकार का ऐलान किया और अधिकतर देशों ने स्त्रियों को वोट का अधिकार देकर राजनैतिक जीवन में उनको प्रवेशाधिकार दिया ।''(67) इस तरह मतदान अधिकार के लिए जो स्वर स्त्रियों में उठा था, वह शांत हो गया। लेकिन इस एकमात्र अधिकार से उनकी सारी समस्याएँ खत्म नहीं हुई थीं । अपने अधिकार के प्रति जनमानस चेतना उत्पन्न कराने के लिए ऐसी अनेक स्त्रियाँ आगे आयीं जिन्होंने साहित्य के माध्यम से इस आंदोलन को गति प्रदान की ।

पाश्चात्य परिवेश में स्त्री विमर्श और स्त्री विमुक्ति आन्दोलन की अगली कड़ी में हम भारतीय स्त्री मुक्ति आन्दोलन का विहंगावलोकन कर सकते हैं ।

1.3.3 भारतीय स्त्री मुक्ति आंदोलन

सन 1885 में लार्ड ए. ओ. ह्यूम ने काँग्रेस की स्थापना की जो भारतीय स्वतंत्रता संग्राम में महत्वपूर्ण स्थान रखती है । स्वतंत्रता संग्राम के अधिकाधिक सेनानी इस संस्था से जुड़े थे । कालान्तर में महिला नेताओं और कार्यकर्ताओं का योगदान भी सम्मिलित होता गया जिनमें एनी बेसेन्ट, सरोजिनी नायडू, राजकुमारी अमृत कौर, लीला रे, दुर्गाबाई देशमुख आदि प्रमुख थीं । इस संस्था के संस्थापक ए. ओ. ह्यूम ने 1895 में यह घोषणा की थी कि ''उन सभी कार्यकर्ताओं को, चाहे वह किसी भी राजनीतिक विचारधारा का हो, इतना स्मरण रखना चाहिए कि देश में स्त्रियों की प्रगति के साथ-साथ तथा समानन्तर स्तर पर कदम से कदम मिलाकर उनकी भागीदारी यदि नहीं होगी तो राजनतिक मताधिकार के लिए किया गया श्रम बेकार होगा ।''(68) विदेशी महिला द्वारा हमारे देश की स्त्रियों को प्रेरित करने वाली मुख्य संस्था 'थियोसोफिकल सोसायटी' थी । इस संस्था ने 1914 ई. तक भारतीय नारी की सामाजिक स्थितियों को सुधारने का कार्य किया । सन 1917 में काँग्रेस का अध्यक्षीय पद प्राप्त होने पर एनी बेसेन्ट ने राजनीतिक क्षेत्र में महिलाओं की सहभागिता पर जोर दिया । अध्यक्षा होने के नाते उन्होंने यह प्रस्ताव रखा कि ''स्थानीय सरकार तथा शिक्षा के क्षेत्र में जितने भी प्रतिनिधियों का चुनाव हो, उनमें स्त्री और पुरूषों के लिए मताधिकार एवं पात्रता की समान कसौटी निर्धारित होनी चाहिए ।'' इस प्रस्ताव ने भारतीय महिलाओं को राजनैतिक क्षेत्र में प्रवेश दिलाने में महत्वपूर्ण भूमिका निभायी और स्त्री मुक्ति आन्दोलन

को नया मोड़ दिया । इसी वर्ष सरोजिनी नायडू के नेतृत्व में महिलाओं ने मताधिकार की मांग की । भारतीय राजनीति में सक्रिय रूप से भाग लेने का, भारतीय स्त्रियों का यह पहला आहवान था । सन 1919 ई. में इग्लैंड की पार्लियामेंट के समक्ष इन्हीं लोगों ने मताधिकार की मांग रखी । सन 1925 ई. में सरोजिनी नायडू काँग्रेस की अध्यक्ष बनीं । उन्होंने माउंट फार्ट रिफार्म्स का विरोध किया क्योंकि उसमें स्त्रियों को मतदान का अधिकार नहीं था । जबकि सन 1921 में मतदान द्वारा चुनी जाने वाली विधान सभाओं को स्त्रियों के लिए मताधिकार प्रदान करने का अधिकार सौंपा गया था । सन 1923 में केन्द्रीय विधानसभाओं को अधिकार तो दिया पर ये सारे अधिकार सीमित दायरे में थे, क्योंकि वयस्क मताधिकार उस समय तक लागू नहीं था । सन 1926 में पहली बार स्त्रियों ने चुनाव में भाग लिया । सन 1927 महिलाएं विधानसभा में आयीं । इसी वर्ष 'अखिल भारतीय महिला संगठन' की स्थापना हुई । सन 1929 ई. में बाल-विवाह निषेध अधिनियम पास हुआ जो स्त्रियों की सामाजिक स्थिति को सुधारने में सहायक सिद्ध हुआ । इसके फलस्वरूप स्त्री शिक्षा में प्रगति तथा व्यक्तित्व विकास के अवसरों में वृद्धि होती गयी ।

स्वदेशी आन्दोलन ने स्त्रियों में प्राण पूर्ण सहयोग दिया । स्त्रियों द्वारा विदेशी कपड़ो की होली जलाना आम बात थी । स्वदेशी आन्दोलन में सुशीला देवी, सरला देवी, चौधरानी सत्यभामा तिलक, वासंती देवी आदि ने महत्वपूर्ण भूमिका निभायी । 'जलियांवाला बाग काण्ड' में महिलाओं ने जिस अदम्य धैर्य और साहस का परिचय दिया वह सचमुच भारतीय स्वतंत्रता संग्राम में एक स्वर्णिम अध्याय है । हजारों की संख्या में इन महिलाओं ने कारावास की यातनाएं भोगीं । उनके धैर्य और आत्मविश्वास को देखते हुए पुरुष चकित रह गये । इस संदर्भ में सुभाषिणी पालीवाल लिखती हैं - ''उनकी कोमलता तथा शक्तिहीनता की ओर से आशंकित आंदोलनकारी नेता यह देखकर चमत्कृत रह गए कि साम्राज्यवाद की ओर से आंदोलन को कुचलने के लिए ढाये जाने वाले कहर-क्रूरतम दमन के साथ कठोर से कठोर, निर्मम से निर्मम आघात झेलने में महिलाएँ पुरुषों की अपेक्षा कहीं अधिक दृढ़ता का परिचय दे रही थीं । शायद युगों से अनाचार झेलती नारी में प्रचण्ड सहनशक्ति विकसित हो गयी थी ।''(69) जब जब सहनशीलता और शक्ति का प्रश्न उठा, तब-तब स्त्रियों ने बखूबी भूमिका निभायी है ।

इसके पश्चात् सरोजिनी नायडू ने 'गोलमेज सम्मेलन' में स्त्रियों का प्रतिनिधित्व किया । सन 1937 ई. में मंत्रिमंडल बना जिसमें रेणुका रे, अम्मु स्वामी नायन, राधाबाई एवं

सुब्रमण्यम केन्द्रीय विधान सभा की सदस्या बनीं । सुभाषचन्द्र बोस द्वारा संगठित 'आजाद हिन्द फौज' से जुड़ी शाखा 'रानी झाँसी रेजीमेंट' में लगभग एक हजार स्त्रियों ने भाग लिया । इसका नेतृत्व लक्ष्मी स्वामीनाथन ने किया । इसे बनाने का एकमात्र उद्देश्य यही था कि आजादी की लड़ाई में भाग लेने से स्त्रियों को भी आजादी मिलेगी । किंतु यह स्वप्न, स्वप्न ही रह गया।

स्त्री में जो जागरण आया, उससे नारी को अपने खोये हुए अधिकार पुन: मिले । इसमें मताधिकार, कृति की सम्पत्ति में अधिकार एवं नागरिक के सभी अधिकार शामिल थे । उसे तलाक, दहेज एवं उत्तराधिकार संबंधी सभी अधिकार मिलने पर कानूनी तौर पर उसकी स्थिति ठीक होने लगी। किन्तु, समाज की दृष्टि संकीर्ण ही बनी रही, क्योंकि भारत में सांस्कृतिक पुनर्जारण तो हुआ, किन्तु सामाजिक क्रान्ति नहीं हुई । स्वतंत्रता प्राप्ति के प्रश्चात महिला संगठनों, महिला विचारकों के संयुक्त प्रयासों से अनेक सुधार कानून पास किए गये । राष्ट्रव्यापी और राजनीतिक महिला संस्थाओं की स्थापना हुई, उन्होंने स्त्रियों के सामाजिक जागरण शैक्षणिक उत्थान और महिला एवं बाल कल्याण की दिशा में एक साथ कई कार्य प्रारंभ कर दिये । स्वतंत्र भारत के संविधान द्वारा लिंग, जाति, संप्रदाय आदि के आधार पर बने भेदभाव को कानूनन समाप्त करने की कोशिश की गयी ।

आज देश में तमाम महिला संगठन कार्यरत हैं । उनमें केन्द्रीय समाज कल्याण बोर्ड, राष्ट्रीय महिला आयोग, महिला बाल-कल्याण परियोजनाएँ, कस्तूरबा स्मारक निधि, भारतीय ग्रामीण महिला संघ, अखिल भारतीय महिला परिषद की विभिन्न शाखाएँ, नारी रक्षा समिति आदि मुख्य हैं । सन 1975 को 'महिला वर्ष' घोषित किया गया जिसके फलस्वरूप केन्द्रीय एवं राज्य स्तर पर महिला कल्याण और स्त्रियों की सामाजिक स्थिति में सुधार लाने की कई योजनाएँ बनाई गयीं । लेकिन ये सब योजनाएँ कागजी घोड़े बनकर रह गयीं । नारी स्वातन्त्र्य के उद्घोष के बाद की विडम्बना यही रही कि व्यवहार और सिद्धान्त के बीच अन्तर स्पष्ट दिखाई देता है। यद्यपि समाज आज कई मायनों में संकीर्णता को छोड़ चुका है, फिर भी नारी पूर्ण रूप से मुक्त नहीं । पर भारतीय नारी-संघर्ष के बारे में एक बात स्पष्ट है कि हमारे यहाँ का 'नारी मुक्ति संघर्ष' पश्चिम के 'नारी मुक्ति संघर्ष' से सर्वथा भिन्न है । वहाँ स्त्रियों ने लगभग एक सदी की अवधि तक अपनी मुक्ति की लड़ाई पुरूषों से मुक्ति के रूप में उनके विरूद्ध खड़ी होकर, अपमान झेलकर, सरेआम लड़ी । भारत में यह लड़ाई विदेशी दासता व प्राचीन रूढ़ियों के विरूद्ध एक साथ लड़ी गई, जिसमें स्त्री-पुरूष प्रतिद्वन्द्वी नहीं

बल्कि सहयोगी थे ।

1.3.4 आधुनिक-बोध

आधुनिकता, आधुनिक बोध, युग बोध आदि नये साहित्य के सन्दर्भ में सर्वाधिक चर्चित शब्द हैं । साहित्य की प्रत्येक विधा के साथ आधुनिकता से जुड़े शब्दों का प्रयोग और विचार-विनिमय पर्याप्त मात्रा में होता रहा है । भारतीय संदर्भ में आधुनिक बोध को बहुत समय तक पश्चिमी जीवन पद्धति का ही पर्याय समझा जाता रहा है । आज भी ऐसे मतों की कमी नहीं है ।

भारतीय जीवन और साहित्य में आधुनिकता बोध का उदय प्रथम स्वतंत्रता संग्राम और ब्रह्म समाज की स्थापना के साथ प्रारंभ हुआ । इसे समग्र रूप में जानने के लिए आधुनिक-बोध की परिभाषा जानना आवश्यक होता है । आधुनिकता - बोध से संबंधित अनेक विचारकों ने अपने मत प्रकट किए हैं । रमेश कुन्तल मेघ का मत है - ''बोध विवेक तथा बुद्धि से नियत है अर्थात् ज्ञानस्वरूप एवं कर्मस्वरूप है । यह काल की चेतना से आधुनिक और सामाजिक-भौतिक सक्रियता से मूर्त होता है । अत: आधुनिक बोध चेतना ऐतिहासिक (काल) एवं समाज की यथार्थ स्थिति (नियति) है । आधुनिक-बोध द्वयात्मक है; ज्ञानरुप एवं क्रिया रुप, अमूर्त एवं स्थूल, अनेक एवं एक ।''(70) इससे निष्कर्ष निकलता है कि आधुनिक बोध तो एक द्वयात्मक एकता तथा इकाई है । अज्ञेय ने इसे इस रूप में चित्रित किया है - ''केवल वर्तमान ही आधुनिकता नहीं है । आज का मनुष्य, ईश्वर, धर्म, मानवता आदि के संदर्भ में अलग दृष्टि से विचार करता है । वह रूढ़िगत मान्यताओं को अलग नजरिए से देखता है । वे कहते हैं - ''आधुनिक वही है, जिसकी संवेदना बदली हुई है । आधुनिक मनुष्य वह है जो पर्यावरण परिवेश के प्रति सजग हो चुका है । यह सतर्कता, सजगता पूरे, ढाँचे में परिवर्तन लाती है । यांत्रिक और वैज्ञानिक युग के भावबोध में परिवर्तन का दूसरा नाम आधुनिक है, तथा इससे उत्पन्न बोध आधुनिक बोध है ।''(71) अज्ञेय का मानना है कि आधुनिक बोध यांत्रिक एवं वैज्ञानिक युग की देन है ।

डॉ. धनंजय वर्मा ने आधुनिक बोध के स्वरूप को स्पष्ट करते हुए कहा है - ''आधुनिकता धारणा और प्रत्यय से अधिक व्यक्ति की वृत्ति और बोध या दृष्टि से ही सीधे संबद्ध है ... निरन्तर नये होते चलने की गतिशीलता की चेतना और वृत्ति और बोध या दृष्टि से ही सीधे संबद्ध है .... निरन्तर नये होते चलने की गतिशीलता की चेतना और वृत्ति आधुनिक कही जायेगी .... नये के प्रति एक तत्परता, उससे संपृच्छि और तटस्थ होकर बौद्धिक प्रौढ़ता प्राप्त

अन्तर्विवेकाश्रित प्रतिक्रिया करने का स्वाभाव आधुनिक व्यक्ति की वृत्ति कही जायेगी .... आधुनिक काल सापेक्ष है और व्यक्ति एटीच्यूड, टेम्परामेंट और उसके समूचे अन्तर्बाह्य व्यक्तित्व से जुडा है ।''(72) उनके अनुसार परिवेश बोध मात्र व्यक्ति को आधुनिक नहीं बनाता है परन्तु परिवेश का प्रभाव व्यक्ति पर जरूर पड़ता है । उन्होंने गतिशीलता की चेतना वृत्ति को आधुनिक बोध माना है । उनका मानना है आधुनिक दृष्टि सापेक्ष है वह व्यक्ति के एटीट्यूड टेम्परामेंट और उसके समूचे अन्तर्बाह्य व्यक्तित्व से जुड़ा है । उन्होंने वृत्ति को महत्वपूर्ण मानते हुए बौद्धिक प्रौढ़ता, अन्तर्विवेक, गतिशीलता को एक साथ जोड़ा है ।

डॉ. नगेन्द्र ने आधुनिकता पर विचार प्रकट करते हुए कहा है ''आधुनिक एक विशेष का द्योतक है, भारतीय इतिहास में आधुनिक युग का प्रारंभ एक प्रकार से 18 वीं शती का उत्तरार्द्ध माना जाता है.... यूरोप के इतिहास में आधुनिक युग का आरंभ मूलत: 15वीं सदी के पुनर्जागरण के साथ ही हो गया था । इस काल वाचक अर्थ का दूसरा रूप भी है । जैसा कि शब्दार्थ से स्पष्ट है कि आधुनिकता का यहाँ अतीत से भिन्न या नये का वाचक होता है । इस अर्थ में आधुनिक चरण रहे होंगे, जो आज प्राचीन बन गये हैं । ... दूसरा अर्थ विचार-परक है, जिसके अनुसार आधुनिक एक विशिष्ट दृष्टिकोण, मध्य युगीन विचार-पद्धति से भिन्न एक नये जीवन दर्शन का वाचक है । .... इनमें प्रथम और आधारभूत तत्व हैं । अपने देश-काल के साथ जीवन एवं सचेतन संबद्ध... विवेकयुक्त वैज्ञानिक दृष्टिकोण आधुनिकता का दूसरा प्रमुख तत्व है ... जीर्ण पुरातन का त्याग, संशोधन तथा पुनर्मूल्यांकन की पद्धति से नव-नव रूपों के विकास की आकांक्षा वैचित्य और नवीनता के प्रति आकर्षण आधुनिकता का सहज अंग है ।''(73) इससे स्पष्ट होता है कि हर एक में जीवन दृष्टि परिवेश से प्रभावित होती है, परन्तु आज व्यक्ति परिवेश के प्रति सामाजिक और भौगोलिक या अपेक्षाकृत अधिक प्रबुद्ध और सजग है वैज्ञानिक दृष्टिकोण के कारण जीवन-दृष्टि व्यवहारिक और यथार्थपरक बनी । नगेन्द्र ने एक तरफ आधुनिकता को 'रिनेसॅन्स' ***(renaissance)***से जोड़ा है तो दूसरी तरफ आधुनिकता को उन्होंने कालातीत भी कहा है ।

आधुनिक भारतीय परिवेश

आधुनिक भारतीय परिवेश से तात्पर्य है, स्वतंत्रता के पश्चात् का भारतीय परिवेश । इस संदर्भ में कई विद्वानों ने अपने मत प्रस्तुत किये हैं । भारतीय परिवेश के. दामोदरन के अनुसार ''भारत पुराने और नये के बीच संघर्ष के पीड़ापूर्ण दौर से गुजर रहा है । जनता के विभिन्न वर्ग तथा समूह राष्ट्र के सामने उपस्थित समस्याओं विभिन्न समाधान प्रस्तुत कर रहे

हैं .... प्रतिक्रियावादी तत्वों का अब भी जनता पर शक्तिशाली प्रभाव है । ये प्रतिक्रियावादी के तत्व प्राय: ही पृथकतावादी प्रवृत्तियों तथा धार्मिक, साम्प्रदायिक एवं जातीय विद्वेषों को प्रोत्साहति करते हैं ।''(74) विदेशी और भारतीय विचारों के बीच में भारतीय मनुष्य संघर्ष करने पर मजबूर हो गया था । उसे यह अनुमान लगाना कठिन हो गया कि कौन सा रास्ता सही है । एक द्वन्द्व की स्थिति उत्पन्न हो गयी थी । ऊपर से तकनीकी सभ्यता विकास के चलते मानव जीवन विध्वंस हो गया । इस संदर्भ में डॉ. नित्यानंद तिवारी का मानना है ''आज हम तकनीकी बर्बर सभ्यता में जीने के लिए बाध्य हैं जो प्रागैतिहासिक बर्बरता से कई अर्थों में मेल खाती है, जहाँ कोई स्थापित मूल्य, पद्धति और विश्वास नहीं, फर्क सिर्फ इतना है कि तब हम असंस्कृत और असभ्य थे और आज हम अपनी तमाम सांस्कृतिक विरासत को लादे हुए भी रास्ते खोज रहे हैं ।''(75) तकनीकी सभ्यता के चलते मानवीय मूल्य धीरे-धीरे कमजोर पड़ने लगे थे और मनुष्य सांस्कृतिक संकट को महसूस कर रहा था क्योंकि उसके पास रास्ते कई थे लेकिन वह मंजिल से दूर था । भारतीय परिवेश की पृष्ठभूमि में विभाजनजनित मूल्य विघटन, शहरीकरण एवं औद्योगिकीकरण, भौतिकवादी एवं वैज्ञानिक दृष्टिकोण, व्यक्तिवाद, आर्थिक समस्या, मोहभंग आदि तमाम स्थितियों ने भारतीय जनमानस को भी प्रभावित किया ।

शहरीकरण और औद्योगिकीकरण के चलते भारतीय जनता के पारंपारिक विश्वासों तथा संस्कारों में क्रांतिकारी परिवर्तन आया । पारिवारिक जीवन बिखर गया । शहरीकरण के प्रभाव से अस्तित्व की तलाश में व्यक्ति गाँव से शहर की ओर रूख करने लगा । इसका एक कारण आर्थिक उपार्जान भी रहा । इससे संयुक्त परिवार एकल परिवार में तब्दील हो गये । सम्बन्धों में अलगाव की भावना आयी जिसने संत्रास, निराशा व पलायनवाद आदि की भावना को जन्म दिया । औद्योगिकीकरण के चलते ये यह सब परिवर्तन आने लगे थे । ''यांत्रिकता और औद्योगिकीकरण ने व्यक्ति और व्यक्ति के आपसी सम्बन्ध को बदल दिया, उसे झकझोर दिया, यंत्र मनुष्य और मनुष्य के बीच एक तीसरी प्रबलतम शक्ति बन गया ।'' इच्छा पूरी न होने पर मनुष्य में कुण्ठा की भावना प्रबल हो गयी । बेकारी, एकाकीपन की स्थिति में उसे अपने अस्तित्व की सार्थकता खत्म होते दिखायी देने लगी और वह टूटसा गया ।

1.4 स्त्री विमर्श : पाश्चात्य विचारक और विवेचन

'स्त्री' विषय के बारे में बेबल के विचार हैं - ''औरत और सर्वहारा दोनों ही दलित हैं

और दोनों के सामाजिक जागरण की संभावना यांत्रिक सभ्यता में अधिक पायी जाती है । औरत की समस्या उसकी श्रम की क्षमता की समस्या में न्यूनीकृत की जा सकती है किंतु आधुनिक विकसित यांत्रिकी ने क्षमता के स्तर पर भी स्त्रियों को पुरुष के बराबर खड़ा कर दिया है ।''(11) बेबल ने भी स्त्री को पुरुष के समानान्तर खड़ा करने की कोशिश की है । मादाम स्ताण्डेल का मत है ''स्त्री विलक्षण बौद्धिकता को लेकर जन्मती है, वह समाज के स्वार्थ में खत्म हो जाती है । सच्चाई तो यह है कि कोई जीनियस होकर जन्मता वह जीनियस हो जाता है, और स्त्री की परिस्थिति तो ऐसी है, जो उसे कुछ बनने नहीं देती ।''(12) इसलिए उसकी बौद्धिकता को लेकर संदेह पैदा करना व्यर्थ है । पुरुष भी जानते थे कि वह बुद्धिमति है, इसलिए उसे पहले मान अर्जन से दूर रखा होगा । गार्गी, मैत्रेयी आदि इसके दृष्टांत हैं । प्रकांड पंडित मंडन मिश्र को शास्त्रार्थ में एक महिला ने ही पराजित किया । प्रसंगवश इस विषय का विस्तृत विवेचन अन्य अध्यायों के अंतर्गत किया जाएगा ।

समकालीन कथा साहित्य और नारी लेखन

हिन्दी में समकालीन और 'समसामयिक' शब्द अपने मूल अर्थ में अंग्रेजी के 'काण्टेम्पोरेरी' तथा 'कोइवल' (Coeval) शब्द पर्याय के रूप में प्रयुक्त हुए हैं । अंग्रेजी भाषा के काण्टेम्पोरेरी शब्द के लिए हिन्दी में दो पर्याय 'समकालीन' और 'समसामयिक' का प्रयोग होता है ।

समकालीनता का सीधा सम्बन्ध समसामायिकता से है । वह रचना समकालीन कही जायेगी, जो अपने समय बोध को व्यक्त करे । डॉ. नरेन्द्र मोहन समकालीनता को कालखण्ड तथा इतिहास - दोनों से अनिवार्यत: सम्बद्ध मानते हैं, ''समकालीनता का अर्थ किसी कालखण्ड या दौर में व्याप्त स्थितियों और समस्याओं का चित्रण, निरूपण या बयान, भर नहीं है बल्कि उन्हें ऐतिहासिक अर्थ में समझना उनके मूल स्त्रोत तक पहुँचना और निर्णय ले सकने का विवेक अर्जित करना है । ... समकालीनता एक ठहरी हुई गतिहीन और जड़ स्थिति नहीं है, बल्कि ठहराव, गतिहीनता, और जड़ता को सख्ती और निर्ममता से तोड़ने वाली यह गतिमान ऐतिहासिक प्रक्रिया और चेतना है ।''(76) यहाँ गतिहीनता और जड़ता को तोड़ने से अभिप्राय है कि समकालीन रचनाकार स्वयं को समसामयिक वस्तुस्थिति की स्वीकृति तक ही सीमित नहीं रखता, बल्कि वह उसके परिवर्तन का भी इच्छुक होता है तथा उसके लिए रचनात्मक सक्रियता का निर्वाह भी करता है ।

कुछ लोग समकालीनता और आधुनिकता को समान समझते हैं । लेकिन समकालीनता और आधुनिकता में अन्तर है । आधुनिकता की परिभाषा निरंतर बदलती रहती है जबकि

समकालीन शब्द में कालखण्ड को व्यक्ति अथवा लेखक जीवन-काल, उसकी रचना धर्मिता से जोड़ते हुए एक निश्चित सीमा में बाँधकर स्थिर कर देते हैं । लक्ष्मीकान्त वर्मा के अनुसार ''आधुनिकता युग-विशेष गुण है, समसामायिकता स्थिति विशेष का आयाम है ।''(77) तो स्पष्ट है कि वह सब कुछ जो समकालीन है, वह आधुनिक हो या जो आधुनिक है, वह समकालीन हो ही । फिर भी समकालीनता आधुनिक बोध की न केवल एक अनिवार्य आवश्यकता है, अपितु उसका जीवंत संस्कार भी ।

यह तयशुदा तथ्य है कि हिन्दी साहित्य क्षेत्र में प्रारंभ से ही पुरूषों का वर्चस्व रहा है । आजादी के पश्चात् पुराने रचनाकारों सहित अनेकानेक नये रचनाकार भी हिंदी साहित्य को समृद्ध करने की दिशा में अग्रसर हुए हैं। इस नयी पीढ़ी के साथ इस युग में अधिकाधिक स्त्री लेखिकाओं के आगमन ने उनकी प्रतिभा से लोगों को परिचित ही नहीं बल्कि पुरुष रचनाकारों के वर्चस्व को भी चुनौती दी । स्त्री अनादि काल से साहित्य के केन्द्र में रही है । समय के साथ-साथ उनकी स्थिति तथा स्वरूप में भी बदलाव आया जिसका चित्रण समय के अनुरूप विभिन्न रचनाकारों द्वारा हुआ है । लेकिन अब तक उसकी मन: स्थिति का चित्रण मुख्य रूप से पुरूष ही करता आया था । इसका मतलब कदापि यह नहीं कि इससे पूर्व महिला रचनाकारों ने साहित्य में अपना योगदान नहीं दिया । महिला लेखन की धारा प्राचीन काल से ही बहती हुई इस काल तक पहुँची है । इसके योगदान को नजरअंदाज नहीं किया जा सकता । मध्यकाल में अनेक कवयित्रियों ने विश्वसाहित्य को अपना समुचित योगदान दिया । मीरा का योगदान आज भी प्रासंगिक एवम् अविस्मरणीय है ।

हिन्दी कथा लेखन का आरंभ लगभग उन्नीसवीं सदी के मध्य में आरंभ होता है । हिन्दी महिला कथाकार के रूप में 'राजेन्द्रबाला घोष' बंग महिला अपनी ताल ठोक चुकी थी । इनकी 'दुलईवाली' कहानी के पश्चात् उनसे प्रेरणा पाकर अनेक महिला रचनाकार साहित्य के क्षेत्र में उतरीं, जिनमें शैल कुमारी देवी, यशोदा देवी, रूक्मणी देवी, गोपाल देवी, प्रियम्वदा देवी, कवयित्री ठाकुर तेज रानी दीक्षित, श्रीमती पूर्ण शशि देवी आदि प्रमुख हैं । इन महिलाओं ने नारी मन की दुर्बलता, उनका मानसिक संघर्ष, प्रेम त्याग आदि को लेखनीबद्ध किया था । लेकिन उसकी परिस्थिति के अनुरूप वह आदर्श स्त्री की छवि ही चित्रित करती रही । परंपरागत दबाव के कारण नारी मन की छटपटाहट और सत्य अनकहा ही रहा । आधुनिक काल के आरंभ में श्रीमती उषा देवी मित्रा, कंचनलता, सब्बरवाल, रजनी पणिकर आदि का योगदान भी भुलाया नहीं जा सकता । लेकिन स्वतंत्रता के पश्चात् हिन्दी साहित्य में

जीवन और चेतना का बहुमुख प्रारूप अभिव्यक्त होने के लिए छटपटाने लगा । ''महिला लेखिकाओं ने नारी चेतना को भरपूर स्थान दिया । नारी मुक्ति मात्र केवल शब्द नहीं, उसे व्यवहार में लाना अनिवार्य है । नारी का अपना जीवन है और उसे भी सिर्फ महिमामंडित होकर नहीं जीना अपितु, मानव प्राणीमात्र बन कर भी जीना है ।''(78) इस यथार्थ चेतना को इस युग की लेखिकाओं ने बहुमुखी समझा और अपने लेखन में साकार किया है । इसलिए उनका लेखन बहुस्तरीय, सच्चा व ईमानदार लगता है ।

सन साठ के पश्चात् का काल स्त्री मुक्ति विचारधारा की दृष्टि से अत्यंत महत्वपूर्ण माना जाता है । क्योंकि ''सन 1960 के बाद भारतीय सामाजिक परिप्रेक्ष्य में स्त्री जीवन, परंपरागत मान्यताओं से एकबारगी दूर हटकर अपने विकास की नई भावभूमि तलाशने लगा । भारतीय स्त्री शिक्षित-अशिक्षित, घरेलू-कामकाजी, शहरी एवं ग्रामीण तथा आंचलिक सभी क्षेत्रों की नारी की मानसिकता में बदलाव के चिन्ह कहीं कम और कहीं ज्यादा दिखाई देने लगे । संयुक्त परिवारों के विघटन के कारण भारतीय स्त्री में विवाह के प्रति भी नवीन दृष्टि उत्पन्न हुई । नैतिकता के प्रति मुक्त सोच ने स्त्री-पुरुष सम्बन्धों की नवीन व्याख्या की । व्यक्ति स्वातन्त्र्य की भावना ने सामाजिक घरातल पर नवीन मूल्यों को उभारा है । उत्तरशती के नये आर्थिक परिवेश में मध्यवर्ग बहुत सशक्त होकर उभर आया । पूँजीवाद के निरन्तर शोषण ने सामाजिक जटिलताओं को जन्म दिया । इन जटिलताओं ने नवीन सामाजिक मूल्यों को जन्म दिया ।''(79) ये सारी बातें इस युग की लेखिकाओं की रचनाओं में दृष्टिगोचर होती हैं । इस दशक में लेखिकाओं की संख्या में बहुत अधिक वृद्धि हुई । इस काल का स्त्री लेखन सर्वाधिक स्त्रीवादी लेखन रहा है । लेखिकाओं की संख्या में बहुत अधिक वृद्धि हुई । लेखिकाओं के जीवनानुभव सत्य और विशिष्ट हैं । उनकी जीवन सम्बन्धी धारणाएँ नयी और आधुनिक हैं ।

इस युग की लेखिकाओं ने यह महसूस किया कि उन्हें अपनी संघर्षपूर्ण स्थितियों से उभरकर, जीवन निर्वाह हेतु घर से बाहर आना होगा और समाज की टूटी-फूटी मर्यादाओं, पुराने संस्कारों को बदलने के लिए आवाज मुखर करनी होगी । इस बात का ठोस प्रमाण देते हुए, उस वक्त की रचना स्त्री रचनाकारों के संदर्भ में स्त्रियों का आत्मकथन प्रस्तुत करना अधिक तर्क संगत होगा । इस्मत चुगताई लिखती हैं - ''किसी के साथ जुल्म, ज्यादती, नाइंसाफी होती है तो मैं पूरे गुस्से के साथ नाइंसाफी के खिलाफ बोल उठती हूँ ।'' शशिप्रभा शास्त्री का कथन है - ''उनका कथानक छोटी सी घटना से यथार्थ लेकर भयंकर मंजर तक

को आत्मसात कर लेता है और उसका यथास्वर दे देता है ।'' सूर्यबाला इस यथार्थ को स्वीकृति देती हैं कि ''उन्हें मृत्यु नहीं, जीवन प्रिय है । इन दोनों के बीच की यथार्थ स्थिति दूर नहीं रह सकती ।'' कृष्णा अग्निहोत्री का मानना है ''शोषण अन्दर के सत्य को उभारता है और बेबाक ईमानदारी और निडरता से छोटी-छोटी घटनाओं की संवेदनाओं को यथार्थ के स्वर देने में छटपटाहट बरकरार रहती है । गलत मुझे टोकता है, कुरेदता है और उसका विरोध साहित्य में होता है । आधुनिक समसामयिक समस्याओं को मैं नज़रअंदाज नहीं कर सकती ।'' मणिका मोहिनी ने आधुनिक मानसिकता के उलझाव को अपनी रचनाओं में बचूबी व्यक्त किया है। बिन्दु सिन्हा आजादी के बाद व पूर्व स्थिति से जुड़ी हैं। मालती जोशी गृहस्थ जीवन के समाज का निचोड़ रूप लिखना चाहती हैं । निरूपमा सेवती ने महानगरीय जीवन की यथार्थ चेतना प्रस्तुत की है। राजी सेठ कहती है ''रचना की प्रेरणा अधिकतर घटना से अधिक घटना के प्रभाव के अवलोकन से शुरू होती है । ये बिन्दु कल्पना और यथार्थ रसायन उन्हें लिखने पर बाध्य करते हैं ।''(80)

सुधीजन जानते हैं कि वर्तमान जीवन व्यवस्था ने सभ्यता के तीव्र आधुनिकीकरण, महानगरीकरण ने परिवार इकाई को खण्ड-खण्ड कर दिया । संयुक्त परिवार एकल परिवार में तब्दील हो गये । भौतिक संस्कृति के दबाव के कारण भी व्यक्तिगत प्रगति की लालसाएँ बढ़ती गयीं । इससे पारिवारिक जीवन में कलह एवं विघटन उत्पन्न हुआ । शिक्षा के प्रचार - प्रसार ने स्त्री को भी सक्षम बना दिया था । महँगाई तथा उन्नत जीवन की लालसा के कारण पति-पत्नी दोनों कामकाजी हो गये । मध्यवर्गीय नारी अधिकारों को प्रति अधिक सजग हुई । अत: उसमें भी आर्थिक स्वतंत्रता की ललक उत्पन्न हो गयी । इस प्रकार समाज व परिवार की आर्थिक संरचना में बहुत परिवर्तन आ गए ।

बढ़ते हुए औद्योगिकीकरण ने लघु व कुटीर उद्योगों का खात्मा कर दिया । इससे जहाँ पारिवारिक विघटन और अशान्ति की समस्या उत्पन्न हुई, वहीं शोषण और मुनाफाखोरी को भी बढ़ावा मिला । औद्योगिकीकरण की तीव्र प्रक्रिया ने सामाजिक मूल्यों तथा मनोवृत्तियों को भी काफी हद तक प्रभावित किया । संचार माध्यमों की अन्तर्राष्ट्रीय पहुँच नौवें दशक की सबसे बड़ी सामाजिक-सांस्कृतिक घटना है । इससे पश्चिमी संस्कृति ने भारतीय जनता को काफी हद तक प्रभावित किया । भौतिकवाद भारतीय संस्कार व संस्कृति पर हावी होने लगा। ईश्वरीय सत्ता पर प्रश्न चिह्न लग गया । आम आदमी की दृष्टि में ईश्वर का दीन-बन्धु करुणा सिन्धु रूप धूमिल पड़ गया । उसे ईश्वर गूँगा-बहरा और हृदयहीन लगने लगा । यही नहीं, उसे ईश्वर पाखण्डियों का काल्पनिक सृजन भी लगने लगा ।

विगत पच्चीस-तीस वर्षों में राजनीतिक, सामाजिक, आर्थिक, नैतिक, सांस्कृतिक, धार्मिक सभी क्षेत्रों में तेजी से परिवर्तन हुआ है । भ्रष्टाचार, उपभोक्तावाद, बाजारवाद, संचार माध्यमों का प्रचार-प्रसार, आतंकवादियों के आतंक, आधुनिकता की अंधाधुन्ध होड़, बेरोजगारी की समस्या, सांप्रदायिक-जातीय दंगे, महँगाई की मार आदि कारणों से आम आदमी का जीवन नरक बन गया । समसामयिक भोगेच्छा, सुख, दिशाहीनता, हिंसा, आतंक, भय, चाटुकारिता चापलूसी, अंधा धुन्ध स्पर्ध्दा आदि ने समाज को काफी हद तक प्रभावित किया जिसका प्रभाव कालान्तर के साहित्य पर भी पड़ा ।

समकालीन नारी लेखन

हिन्दी कथा साहित्य के प्रारंभिक सत्तर वर्षों का इतिहास उसकी युग सापेक्षता को प्रमाणित करता है । जहाँ तत्कालीन राजनीतिक एवं सामाजिक आर्थिक परिस्थितियों ने उसके स्वरूप का निर्माण किया, वहीं विभिन्न कहानी आन्दोलन ने उसकी शक्ति को प्रतिपादित करने की कोशिश की । विभिन्न साहित्यकारों ने विविध आन्दोलनों के प्रभाव अपने व्यक्तित्व के अनुरूप ग्रहण किये । स्वतंत्रता से पूर्व प्रगतिशील लेखक संघ के उदय के कारण कथा-साहित्य पर उनका दूरगामी प्रभाव पड़ा । अकहानी-सचेतन कहानी आदि आन्दोलन अस्तित्व में आये । उसके उपरान्त कई आन्दोलन उभरे और विलुप्त हो गये । लेकिन समकालीन कहानी आन्दोलन विकसित होता गया । हिन्दी साहित्य में महिला साहित्यकारों की उपस्थिति कोई नई बात नहीं है । इतिहास गवाह है कि स्त्रियों ने अपनी बुद्धि से समय-समय पर हमें प्रभावित किया है ।

स्त्री विमर्श

आधुनिक युग ने जहाँ स्त्री के व्यक्ति स्वातंत्र्य को उभारा है, वहीं उसके जीवन में असंख्य महिलाओं को शामिल भी किया है । वह आज भी अपनी दयनीय स्थिति से उबर नहीं पायी है । उसका आंतरिक द्वन्द्व एवम् विद्रोह दोनों उसकी वाणी को बुलंद करते दिखायी देते हैं । स्त्री विमर्श, विश्वस्तर पर भी आज की तारीख में साहित्य का प्राणतत्व बन गया है ।

इसे विडम्बना कहना चाहिए कि आधुनिक युग में भी जैसे आँसू ही स्त्री की बुनियादी पहचान बने हुए हैं - वह चाहकर भी अपनी अलग पहचान नहीं बना सकी है । प्रभा खेतान के पास 'आओ, पेपे घर चलें' की पात्र वृद्धा आइलिन कहती है - ''औरत कहां नहीं रोती ।

वह जितना ही रोती है, उतना ही औरत हो जाती है ।''[81] यह एक कटु सत्य है स्त्री - जीवन की और जैसे हमने भी कहा है कि बदले हुए समय की औरत इस पहचान के खिलाफ विद्रोह करती हुई भी अंततः बहुतेरे सामाजिक दबावों के समक्ष लाचार होकर रह जाती है । प्रभा खेतान के अन्य एक उपन्यास 'छिन्नमस्ता' में शहरी जीवन संघर्षों में फंसी, उसकी नायिका प्रिया के विद्रोही तेवर में उसकी लाचारी इस प्रकार झलकती है - ''मुझे प्रेम, सेक्स, विवाह ये सारे सदियों पुराने घिसे हुए शब्द लगने लगे थे । नहीं, शब्द नहीं, मांस के ताजा टुकड़े । लहू टपकते इन शब्दों के पीछे की दीवानगी और आदि काल से चली आ रही परंपराओं का चेहरा सिर्फ औरत के आंसुओं से तरबतर है ... नहीं, मैं औरत नहीं बनना चाहती थी ।''[82] प्रिया जानती है कि परम्परागत पुरुष वर्चस्व के अधीन रहनेवाली स्त्री, पुरुष से टकराती है । 'वस्तु' रूप से उभर नहीं पायी है इसलिए वह बिफरकर कहती है कि मैं औरत नहीं बनना चाहती थी। औरत से जुड़ी है संघर्ष की गाथा इसलिए स्त्री जीवन को यह पात्र नकार रही है।

स्त्री के हाथ में जब कलम आई तब उसने हर विधा में लिखा । उपन्यास तो लोकतंत्र की उपज है । उसके महाकाव्यात्मक पटल पर उसका जिया-भोगा, उसका अनुभूत और बदले कुछ समय में उसका अर्जित यह सब उसमें अधिक विशद बनकर उभरा । एक के बाद एक, नई सदी की शुरुआत तक, जिस तरह स्त्री कथाकारों की रचनाएं सामने आईं और अपने पूरे महत्व के साथ पहचानी गईं, स्त्री-लेखन के वजूद को अस्वीकार करना संभव नहीं रहा । स्त्री कथाकारों की लंबी सूची या उनकी कथाकृतियों में जो कुछ लिखा गया, उसका तथाकथित वर्णन करने के बजाए बेहतर होगा कि इस दौर की कुछ प्रमुख रचनाकारों का जायजा लिया जाए ।

मन्नू भंडारी के 'आपका बंटी' उपन्यास से शुरू करें तो इस उपन्यास की मुख्य समस्या शिक्षित स्त्री-पुरुष या कहें शिक्षित पति-पत्नी के अपने-अपने अहं के जबर्दस्त टकराव के फलस्वरूप उसके दाम्पत्य-जीवन के विघटन की समस्या तलाक और फलस्वरूप एक-दूसरे को पराभूत करने की मानसिकता से अपना अलग-अलग दाम्पत्य जीवन शुरू करने के बावजूद, गुजरे हुए कल के दंशों को न भुला पाने की असमर्थता औरत में किस तरह की प्रतिहिंसा को जन्म देती है, उपन्यास की नायिका शकुन इसका साक्ष्य है । डॉ. सूर्यबाला के 'यामिनी कथा' उपन्यास में विभक्त माँ और विभक्त पत्नी का मानसिक संत्रास उजागर हुआ है । वर्तमान पति और पूर्व पति से उत्पन्न संतानों को लेकर उपजे तनाव और संत्रास को

झेल रही स्त्री, लेखिका की गहरी संवेदना के साथ इस उपन्यास में रू-ब-रू होती है ।

उषा प्रियंवदा का 'पचपन खम्भे लाल दीवारें' उपन्यास सीमित आयवाले मध्यवर्गीय परिवार में बड़ी बेटी सुषमा के अनब्याहे रह जाने की समस्या को इस बिन्दु पर गहरे त्रासद संदर्भों के साथ उठाता है कि शिक्षित होने और कालेज की अपनी नौकरी के चलते समूचे परिवार के भरण-पोषण की जिम्मेदारी निभाने के नाते, माँ-बाप को अपने इसी रूप में वह स्वीकार्य है । उनकी निगाहों में उसके बजाय उसके भाई बहनों की जिंदगियां है । ढलती जवानी में नील नामक युवक के साथ भावनात्मक और फिर शारीरिक संबंध बनते हैं, परंतु सुषमा जानती है कि दोनों के बीच उम्र का जो अंतराल है, वह उसके वैवाहिक संबंध को स्थायी नहीं रहने देगा और समाज भी इस विवाह को मान्यता प्रदान नहीं करेगा । इसलिए वह नील की जिंदगी से अलग हो जाती है । अकेलापन ही उसकी नियति बनता है । सुषमा, नील से कहती है - ''मेरी जिंदगी खत्म हो चुकी है । मैं केवल साधन हूं । मेरी भावना का कोई स्थान नहीं । मैंने अपने को ऐसी ज़िंदगी के लिए ढाल लिया है । तुम चले जाओगे तो मैं फिर अपने को उन्हीं प्राचीरों में बंद कर लूंगी ।'' (83) 'पचपन खम्भे लाल दीवारें'' का हॉस्टल वस्तुतः अपनी सारी बाहरी भव्यता के बावजूद मृत रूढ़ियों, त्रासद बंधनों और मान्यताओं का प्रतीक है । वहीं उषा प्रियंवदा का 'रूकोगी नहीं राधिका' उपन्यास याचिका राधिका के अंतहीन भटकाव की कहानी कहता है, जो अपने विधुर पिता के अपने ही हम उम्र लड़की से विवाह करने के नाते, हम-उम्र विमाता से सामंजस्य बिठा नहीं पाती, पिता के प्रति वितृष्णामूलक विरक्ति के फलस्वरूप घर से बाहर निकल जाती है और एक के बाद एक नये-नये युवकों के संपर्क में आकर भी भीतर से एकदम रिक्त रह जाती है । विदेश में भी उसे सुकून नहीं मिलता । वह स्वयं अनुभव करती है कि उसे जैसे एक लंबी अंधेरी, सर्द सुरंग में एक लक्ष्यहीन और अन्तहीन यात्रा की नियति ही मिल गई हो । अनिश्चित भविष्य के अलावा कुछ भी उसे नहीं मिल पाया ।

शिवकुमार मिश्र के अनुसार ''मृदुला गर्ग के उपन्यास स्त्री विमर्श में अपनी अलग पहचान रखते हैं । उनके चर्चित उपन्यास 'चितकोबरा' और 'कठगुलाब' हैं । मुक्त शरीर-संबंधों के लिए चर्चित 'चितकोबरा' उपन्यास की नायिका मनु अपने पति महेश से बेहद प्यार करती है । महेश पत्नी से तो पतिव्रत्य की अपेक्षा करता है पर स्वयं मुक्त रहना चाहता है । विवाह जैसी चीज को वह फालतू मानता है । उसके विचारों से आहत मनु जब स्वयं अन्य व्यक्ति की ओर मुड़ती है, महेश पुनः उससे जुड़ जाता है । 'कठगुलाब' की कथा

अराजकता की हद तक पहुंचे स्त्री-पुरुषों और उनके संबंधों की कथा है । मृदुला गर्ग का मानना है - ''स्त्री कहीं की हो, किसी वर्ग की हो, पुरुष के लिए वह महज देह है । उसके भ्रम का शोषण और उसका यौन शोषण ही जैसे उसकी नियति है । इस उपन्यास में हर तरह की स्त्रियां हैं - विवाहिताएं, कुमरयां, विधवाएं और तलाकशुदा, सब । उनके बीच अकेला एक पुरुष है । वह सबसे जुड़ता है, पिता बनना चाहता है पर बन नहीं पाता । बांझ औरतों की प्रतीक कथा है 'कठगुलाब' और नरसुअरों को भी विक्षुब्ध कर देने वाला आख्यान है, यह उपन्यास । रास्ता क्या है ? मृदुला गर्ग का संकेत है कि स्त्री आत्मनिर्भर बनकर, अपने बूते स्वाभिमान का जीवन जीये ।''(84)

कृष्णा सोबती के 'मित्रो मरजानी' उपन्यास की नायिका मित्रो मध्यवर्गीय पंजाबी परिवार की स्त्री - संबंधी नैतिक - सामाजिक मान्यताओं को पूरी तरह ध्वस्त करती, एक निहायत दुस्साहसी स्त्री के रूप में हमारे सामने आती है । हिन्दी उपन्यास की मित्रो शायद पहली ऐसी नारी है जो बेबाक तरीके से सारी परंपरागत नैतिक - सामाजिक रूढ़ियों को चुनौती देते हुए अपने मन की तड़प ही नहीं, अपने शरीर की जरूरत को भी खुलकर व्यक्त कर सकी है । पुरुष वर्चस्ववादी इस समाज में पुरुष स्त्री को नंगा करे, यह सबकी समझ में आता है पर औरत जब अपने को उघारती है तो लोगों को नैतिक मूल्य याद आने लगते हैं । कृष्णा सोबती ने बेबाकी से अपने अन्य उपन्यास 'सूरजमुखी अंधेरे के' में भी स्त्री के ऐसे ही दु:साहस या स्वैचार का मुखर आख्यान किया है । बचपन में ही बलात्कार की शिकार बनी स्त्री आजीवन उसके दंश से उबर नहीं पाती । काम-विकृति से ग्रस्त, वह एक के बाद एक अनेक पुरुषों से महज बदले की भावना से जुड़ती है । आज नैतिक मूल्यों में तेजी से बदलाव आने लगे हैं । महिला रचनाकारों ने अपने स्त्री पात्रों के माध्यम से पुरुष प्रदत्त नैतिक मूल्यों के सामने नयी चुनौतियाँ उत्पन्न की हैं । कहना न होगा कि कृष्णा सोबती के स्त्री पात्र अपनी आदिम इच्छा को नकारती नहीं, बल्कि मान्यता देती है ।

विवेच्य लेखिका नासिरा शर्मा के 'शाल्मली' उपन्यास की नायिका शाल्मली की त्रासदी यह है कि पति के रूप में उसे निपट दिमागी रूप से बौना पति मिला है । अप्रतिम धैर्य और सहिष्णुता के साथ उसके पुरुष होने के दर्प और दंभ को सहती है, परंतु उसका पति नरेश उसे चाहते हुए भी उसके प्रति इस नाते आशंकित रहता है कि उसे उसके गुणों के कारण और लोग भी चाहते होंगे । परिवार न टूटे, इसलिए वह उसे बर्दाशत करती है । नरेश की पुरुष-मानसिकता शाल्मली को सावधान करती है - ''जानना चाहोगे पुरुष की दृष्टि में

औरत क्या है ? भोगने की वस्तु । वही उसकी पहचान है । इसलिए तुम औरत की तरह रहो, इसी में तुम्हारा उद्धार है और इस घर का कल्याण और गृहस्थी का सुरब ।'' नासिरा ने शाल्मली के धैर्य और सहनशीलता के जरिए वस्तुत: यह कहना चाहा है कि स्त्री – मुक्ति बड़ा सवाल है जिसके लिए समाज में बुनियादी बदलाव की जरुरत है । स्त्री को अपनी सहनशक्ति का पग-पग पर परिचय देना पड़ा है और भविष्य में देना पड़ेगा, क्योंकि परिवार और रिश्तों – सम्बन्धों को बचाने की सर्वप्रथम शर्त है धैर्य और सहनशीलता । 'ठीकरे की मंगनी', 'कुइयांजान', 'जिंदा मुहावरे' उपन्यास स्त्री-विमर्श पर लिखी उनकी चर्चित कृतियां हैं । वैसे नासिरा शर्मा के कथा-लेखन का फलक विस्तृत है, देश से देशांतर है । इसलिए स्त्री कथाकारों, यूं कहें कि पुरुष कथाकारों में भी वे अपवाद हैं । ईरान-अफगानिस्तान पर उन्होंने दौरोपरांत व अध्ययन-जन्य काफी लिखा है ।

चित्रा मुदगल का 'आवां' आज के युग का बहुचर्चित उपन्यास है । वस्तुत: समूची सामाजिक संरचना ही कुम्हार का वह आवां है जिसमें सदियों से स्त्री कच्ची ईट की मानिंद पक रही है, मजबूत हो रही है, टूट रही है, राख बन रही है । उपन्यास में स्त्री चरित्रों की एक बड़ी और वैविध्यपूर्ण दुनिया है, परंतु केंद्र में है नमिता पाण्डे और उसकी नारकीय जिन्दगी । उपन्यास में नमिता का जीवन संघर्ष चित्रित है जो अपने रूढ़िग्रस्त परिवार की मामूली जिंदगी से उठ कर सफेदपोश वर्गों की चकाचौंध भरी दुनिया में शामिल हो जाती है । संजय कानोई नामक हीरे के व्यापारी का वह गर्भ धारण करती है, परंतु जब उसे पता चलता है कि संजय ने केवल संतान की खातिर उसकी कोख को, किसी दलाल को पैसे देकर खरीदा है, उसका मोह भंग हो जाता है । अजन्मी संतान से मुक्त होकर वह फिर एक बार अपनी रूढ़िग्रस्त, धन लोलुप मां के पास नहीं, मजदूरों की उसी चाल में जाती है जहां से उसने जिंदगी की शुरुआत की थी । वह अपने को झोंक देती है उन लोगों के बीच जिनमें वह उज्ज्वल भविष्य की रवानगी देखती है ।

प्रभा खेतान के 'छिन्नमस्ता' उपन्यास में संयुक्त परिवार की एक उपेक्षित, बचपन में ही यौन-शोषण के हादसे से गुजरी और आगे भी पुरुष की लोलुप वासना से लहूलुहान एक लड़की प्रिया का अपने को संभालने, अपनी अस्मिता को बनाए रखने और पुरुष वर्चस्ववादी समाज में अपने को फिर से स्वाभिमान के साथ जीवन की मुख्य धारा में लाने का दुर्द्धर्ष संघर्ष चित्रित है । अपने को फिर से जिंदा करने का उसका संकल्प और संघर्ष, रूढ़िग्रस्त समाज की सारी चुनौतियों के बावजूद एक मिसाल बनकर सामने आता है । 'आओ पेपे घर

चलें' की आइलिनव की तरह प्रिया का भी मानना है - ''औरत कहां नहीं रोती, सड़क पर झाड़ू लगाते हुए खेतों पर काम करते हुए, एयरपोर्ट पर बाथरुम साफ करते हुए, या फिर सारे भोग-ऐश्वर्य के बावजूद पलंग पर रात - रात भर, अकेले करवटें लेते हुए, हजारों सालों से उसके ये आंसू बहते जा रहे हैं ।''(85) किन्तु दृढ़ संकल्प की प्रिया, औरत की इस छवि को मिटाने के लिए अपने आप को संघर्ष में झोंक देती है - एक मिसाल बनकर उभरती है । वह कहती है - ''मेरे साथ मेरा अकेलापन है । पर यह अकेलापन मुझे जीवन का अर्थ समझा रहा है । कैसे मैंने अपने आपको बचाया है ? अपने मूल्यों को जीवन में संजोया है । हां, टूटी हूँ... बार - बार टूटी हूँ, पर कहीं तो चोट के निशान नहीं । दुनिया के पैरों तले रौंदी गई, पर मैं मिट्टी के लौंदे में परिवर्तित नहीं हो पायी हूँ । अड़तालीस की इस उम्र में पूरी की पूरी साबुत औरत हूँ, जो जिंदगी को झेल नहीं रही, बल्कि हंसते हुए जी रही है ।(86) अदम्य साहस है इस औरत में । सन्नद्ध है वह जिंदगी के समर में जूझने के । यह और बात है कि उसकी हंसी के पीछे जो दर्द छिपा है उसकी भी अपनी सच्चाई है । उनके अन्य उपन्यास 'आओ, पेपे घर चलें' तथा 'अपने - अपने चेहरे' भी स्त्री विमर्श की जमीन पर रचे गए हैं । वे हमारे समय की संवेदनशील जाग्रत स्त्री कथाकारों की पहली कतार की लेखिका हैं ।

इन लेखिकाओं की अगली कड़ी के रूप में नासिरा शर्मा का नाम भी शामिल है । नासिरा शर्मा इस अर्थ में स्त्री कथाकारों में उल्लेखनीय हैं कि उनकी रचनाशीलता के जरिए स्त्री-विमर्श का दायरा विस्तृत हुआ है । स्त्री - विमर्श को लेकर प्रायः यह सवाल उठाया जाता रहा है कि उसके केन्द्र में महानगरों और नगरों के शिक्षित मध्यवर्ग या उच्च मध्य वर्ग की ही स्त्रियों के जीवन संदर्भ हैं, जब कि स्त्री का संसार हमारे समाज की आधी आबादी वाला सांसार है और इस संसार में गंवई-गांव की, कस्बों की, कस्बों और छोटे-शहरों की वे स्त्रियां भी हैं जो मजबूरन पूरी जिन्दगी अपने घर-परिवारों की सीमित चौहद्दियों में गीली लकड़ी की तरह सुलगती धुंधुआती रहती है । चाहकर भी उसके चौखटों से बाहर नहीं आ पाती, अपवाद स्वरूप आने की हिम्मत भी करती है तो मर्यादाओं के नाम पर रौंद और कुचल दी जाती है । इस दुनिया में हाशिये की जिंदगी जीने वाली उन जनजातियों की स्त्रियां भी हैं, जो जरायमपेशा जातियां हैं और जिनकी अपनी सामाजिक-नैतिक मर्यादाओं की अलग पहचान है । बावजूद इसके तथाकथित सभ्य समाज जिन्हें अनैतिक मानकर जिनके प्रति या तो मन में वितृष्णा पाले हुए है या जिनसे कतई उदासीन है । अनुभवों की एक विशद और एकदम अछूती संपदा उनके इन उपन्यासों में है । इसके अलावा जिस खुलेपन और साहस के साथ मैत्रेयी स्त्रियों की इस दुनिया की पक्षधर बनकर आयी हैं - अपनी जिस

रूढ़िभंजक छवि से उन्होंने हमें रू-ब-रू किया है, उसका अपना एक स्वतंत्र महत्व है । मैत्रेयी बोल्डनेस के साथ यथार्थ को उजागर करती हैं । यों तो मैत्रेयी ने दस छोटे-बड़े उपन्यासों की रचना की है, परंतु स्त्री विमर्श के दायरे में मुख्य रूप से उनके 'इदन्नम', 'चाक', 'अल्मा कबूतरी', 'कहीं ईसुरी फाग' विशेष रूप से चर्चित हैं । इनके अतिरिक्त, राजी सेठ, मेहरून्निसा परवेज, मंजुल भगत, चन्द्रकांता, अलका सरावगी, गीतांजलि श्री के उपन्यास भी स्त्री-विमर्श से जुड़े उपन्यास हैं, जो स्त्री जीवन संदर्भ और उसकी अस्मिता से जुड़े सवालों को विमर्श केन्द्र में लाते हैं जो आजादी के पूर्ववर्ती लेखन में नहीं उभर सके थे। स्त्री विमर्श से संबंधित कहानियों की बात की जाए तो कह सकते हैं कि आज साहित्यकारों ने सामाजिक परिप्रेक्ष्य में महिलाओं ने समस्याओं की ओर ध्यान देना शुरु किया है । ममता कालिया की कहानी 'जनमी थी औलाद', चित्रा मुद्गल की 'प्रेतयोनि', मृदुला गर्ग की 'दुनिया का कायदा' और 'तीन किलो की छोरी', नासिरा शर्मा की 'फैसला' या मैत्रेयी पुष्पा की 'गोमा हंसती है' या 'पियरी का सपना', राजी सेठ का 'अनावृत' और अखिलेश की 'यक्षगानु', 'देहभर नहीं', 'नासिरा शर्मा की 'संगसार', 'बुतखाना' व 'इब्ने मारियम' आदि कहानियों की एक लम्बी सूची है । गोविन्द की कहानी 'लहर' को भी हम इस सूची में शामिल कर सकते हैं । यह कहानी किसी महिला ने लिखी होती तो फौरन कहा जाता कि यह कहानी नारीवादी व्याख्या के इर्द गिर्द बुनी गई है और इसमें कहानी कम और औरत की स्थिति पर वक्तव्य या टिप्पणी ज्यादा है और लेखिका को फेमिनिस्ट होने का फतवा दे दिया जाता । फेमिनिस्ट हमारे यहां लगभग गाली के रूप में ही इस्तेमाल किया जाता है । बहुत सी महिलाएं भी इस विशेषण से परहेज करती हैं । जबकि फेमिनिस्ट होने का एक सीधा सादा अर्थ है औरतों के प्रति एक जुड़ाव, एक सरोकार ... और कोई भी पढ़ा लिखा संवेदनशील व्यक्ति एक शोषित कौम के हरम में खड़े होने से इन्कार नहीं कर सकता । यह कहना गलत न होगा कि मुख्य रुप से दसवें दशक के कथा साहित्य में स्त्री - विमर्श विषय हाशिये से निकल कर केन्द्र में आ गया । स्त्री और पुरुष समाज की दो महत्त्वपूर्ण इकाइयाँ हैं । एक की भी गति बाधित हुई तो समाज की उन्नति कदापि सम्भव नहीं है । इस सत्य को इक्कीसवीं सदी का विश्व स्वीकारने लगा है । हजारी प्रसाद द्विवेदी ने कहा था, ''कोई भी सामाजिक व्यवस्था जो समय के साथ न बदले वह स्वयं तो डूबती ही है, उसे भी ले डूबती है जिसके लिए वह बनी है ।''[87] अर्थात् किसी भी देश में सार्थक बदलाव की क्रान्ति तभी सफल हो सकती है जब उसमें महिलाओं का महत्त्वपूर्ण योगदान शामिल हो ।

सन्दर्भ सूची

1.	रोहिताश्व	:	शोध कर्ता की निजी वार्ता, हिन्दी विभाग गोवा विश्वविद्यालय दि. 23.08.2008		
2.	कृ. पा. कुलकर्णी	:	व्युत्पत्ति कोश	पृ.	804
3.	मंगल कोप्पेकर	:	साठोत्तरी हिन्दी लेखिकाओं की कहानियों में नारी	पृ.	22
4.	भोलानाथ तिवारी	:	बृहद पर्यायवाची कोश	पृ.	68
5.	हरदेव बाहरी	:	हिन्दी शब्द कोश	पृ.	646, 544
6.	नामवर सिंह	:	हंस, दलित विशेषांक वर्ष 2003	पृ.	195
7.	रेखा कस्तवार	:	स्त्री चिन्तन की चुनौतियाँ	पृ.	15
8.	मोहन कृष्ण बोहरा	:	तस्लीमा के हक में	पृ.	100
9.	आशारानी व्होरा	:	भारतीय नारी: दशा और दिशा	पृ.	16
10.	मृणाल पांडे	:	स्त्री देह की राजनीति से देश की राजनीति तक	पृ.	21
11.	बेबल द्वारा	:	द सेकण्ड सेक्स	पृ.	36
12.	सीमोन द बोऊवार	:	द सेकण्ड सेक्स	पृ.	62
13.	अरूण प्रकाश	:	('वसुधा' विशेषांक 59-60): स्त्री मुक्ति का सपना	पृ.	58
14.	भगवती शरण उपाध्याय	:	खून के छींटे इतिहास के पन्नों पर	पृ.	09
15.	जगदीश्वर चतुर्वेदी	:	स्त्रीवादी साहित्य विमर्श	पृ.	206
16.	सीमोन द बोऊवार	:	द सैकण्ड सेक्स	पृ.	51
17.	सीमोन द बोऊवार	:	द सैकण्ड सेक्स	पृ.	52
18.	भगवती शरण उपाध्याय	:	खून के छींटे इतिहास के पन्नों पर	पृ.	09
19.	वेद वर्मा	:	हंस, जुलाई, 1995	पृ.	79
20.	वेद वर्मा	:	हंस, जुलाई, 1995	पृ.	79
21.	अरुण प्रकाश	:	('वसुधा' विशेषांक 59-60) – स्त्री मुक्ति का सपना	पृ.	60

22.	वेद वर्मा	:	हंस, जुलाई, 1995	पृ.	79
23.	वेद वर्मा	:	हंस, जुलाई, 1995	पृ.	79
24.	सीमोन द बोऊवार	:	द सैकण्ड सेक्स	पृ.	52
25.	जगदीश्वर चतुर्वेदी	:	स्त्रीवादी साहित्य विमर्श	पृ.	206
26.	डॉ. सूर्यनारायण रणसूभे	:	उपलब्धि : नारीवादी या नारी मुक्ति की अवधारणा	पृ.	54
27.	धर्मपाल	:	नारी : एक विवेचन	पृ.	01
28.	जगदीश्वर चतुर्वेदी	:	स्त्रीवादी साहित्य विमर्श	पृ.	206
29.	प्रभा खेतान	:	स्त्री उपेक्षिता (प्रस्तुति संदर्भ)	पृ.	21
30.	सुमन राजे	:	हिन्दी साहित्य का आधा इतिहास	पृ.	18
31.	सीमोन द बोऊवार	:	द सैकण्ड सेक्स	पृ.	28
32.	अमर ज्योति	:	महिला उपन्यासकारों के उपन्यासों में नारीवादी दृष्टि	पृ.	15
33.	प्रीति मिश्र	:	हिन्दू महिलाओं के जीवन में धर्म का महत्व	पृ.	24
34.	डॉ. प्रतिमा सिंह	:	'वसुधा' विशेषांक 59-60	पृ.	202
35.	महादेवी वर्मा	:	श्रृंखला की कड़ियां	पृ.	11
36.	अमर ज्योति	:	महिला उपन्यासकारों के उपन्यासों में नारीवादी दृष्टि	पृ.	18
37.	जगदीश्वर चतुर्वेदी	:	स्त्रीवादी साहित्य विमर्श	पृ.	208
38.	अरुण प्रकाश	:	(59-60 विशेषांक 'वसुधा')	पृ.	56
39.	चित्रा मुदगल	:	भूमिका (समकालीन महिला लेखन)	पृ.	07
40.	तसलीमा नसरीन	:	औरत : उतरकथा	पृ.	153
41.	अनामिका	:	समन्वित नारीवाद और भारतीय देवियाँ	पृ.	179
42.	अनामिका	:	समन्वित नारीवाद और भारतीय देवियाँ	पृ.	179
43.	प्रभा खेतान	:	औरत : उत्तर कथा	पृ.	145
44.	प्रभा खेतान	:	औरत : उत्तर कथा	पृ.	144
45.	सीमोन द बोऊवार	:	द सैकण्ड सेक्स	पृ.	18
46.	भगवती शरण उपाध्याय	:	खून के छींटे इतिहास के पन्नों पर	पृ.	21

47.	भगवती शरण उपाध्याय	:	खून के छींटे : इतिहास के पन्नों पर	पृ.	25
48.	प्रीति मिश्र	:	हिन्दू धर्म में स्त्रियों की स्थिति	पृ.	17
49.	महादेवी वर्मा	:	नये दशक में महिलाओं का स्थान	पृ.	10
50.	ओम प्रकाश शर्मा	:	समकालीन महिला लेखन	पृ.	66
51.	रमेश चन्द्र शर्मा	:	हिंदी साहित्य का इतिहास	पृ.	66
52.	श्रुति	:	जून-दिसंबर 2007, हिन्दी अनुशीलन		
53.	भवदेव पाण्डेय	:	नारी मुक्ति के नए पाठ	पृ.	21
54.	मीराकांत	:	अंतरराष्ट्रीय महिला दशक और हिन्दी पत्रकारिता	पृ.	63
55.	मीरा देसाई	:	भारतीय समाज में नारी	पृ.	51
56.	प्रीति मिश्र	:	हिन्दू महिलाओं के जीवन में धर्म का महत्व	पृ.	51
57.	ओम प्रकाश शर्मा	:	समकालीन लेखन	पृ.	80-81
58.	ओम प्रकाश शर्मा	:	समकालीन लेखन	पृ.	84
59.	विनोद मिश्र	:	'वसुधा' (विशेषांक 59-60)	पृ.	187
60.	ओम प्रकाश शर्मा	:	समकालीन महिला लेखन	पृ.	84
61.	मार्गरिट वेन्सल	:	विशेषांक 'वसुधा' (अंक 59-60)	पृ.	175-176
62.	राजकिशोर	:	क्या यह नारीवाद के अवसान समय है)- जनसत्ता, (30 जून, 1998)	पृ.	08
63.	जॉन स्टुअर्ट मिल	:	व्यक्ति स्वातंत्र्य का पुजारी	पृ.	48
64.	आशारानी व्होरा	:	भारतीय नारी : दशा और दिशा	पृ.	155
65.	नीरा देसाई	:	भारतीय समाज में नारी	पृ.	204
66.	सीमोन द बोउवार	:	द सेकेण्ड सेक्स	पृ.	64
67.	सीमोन द बोउवार	:	द सेकेण्ड सेक्स	पृ.	65
68.	ओम प्रकाश शर्मा	:	समकालीन महिला लेखन	पृ.	77
69.	सुभाषिणी पालीवाल	:	भारत में महिला शिक्षा और साक्षरता	पृ.	80-81
70.	रमेश कुन्तल मेघ	:	आधुनिक बोध और आधुनिकीकरण	पृ.	245
71.	अज्ञेय	:	आधुनिक हिंदी साहित्य	पृ.	19
72.	डॉ. धनंजय वर्मा	:	आस्वाद के धरातल	पृ.	35

73.	डॉ. नगेन्द्र	:	आलोचना, जुलाई, अंक 1995	पृ.	42
74.	के. दामोदरन	:	भारतीय चिन्तन एवं परंपरा	पृ.	507
75.	नित्यानंद तिवारी / निर्मला जैन	:	इतिहास और आलोचना के वस्तुवादी सरोकार	पृ.	
76.	नरेन्द्र मोहन	:	समकालीन कहानी की पहचान (भूमिका)	पृ.	7-8
77.	लक्ष्मीकांत वर्मा	:	नयी कहानी के प्रतिमान	पृ.	264
78.	नीहार गीते	:	महिला उपन्यासकारों के उपन्यासों में यथार्थ के विभिन्न रुप (आमुख)	पृ.	07
79.	अमर ज्योति	:	महिला उपन्यासकारों के उपन्यासों में नारीवादी दृष्टि	पृ.	41
80.	दिनेश चतुर्वेदी (संपा)	:	चर्चित कथाकारों की कहानियाँ (आत्मकथन)	पृ.	04
81.	प्रभा खेतान	:	आओ पेपे घर चलें	पृ.	15
82.	प्रभा खेतान	:	छिन्नमस्ता	पृ.	94
83.	उषा प्रियंवदा	:	पचपन खम्भे लाल दीवारें	पृ.	84
84.	शिवकुमार मिश्र	:	शब्द शिखर	पृ.	56
85.	प्रभा खेतान	:	छिन्नमस्ता	पृ.	220
86.	प्रभा खेतान	:	छिन्नमस्ता	पृ.	226
87.	डॉ. मुदिता चन्द्रा डॉ. सुलक्षणा टोप्पो	:	आधुनिक एवं हिंदी कथा साहित्य में नारी का बदलता स्वरुप	आवरण पृष्ठ	03

2. नासिरा शर्मा : व्यक्तित्व एवं कृतित्व

किसी भी रचनाकार के व्यक्तित्व निर्माण में उसके पारिवारिक परिवेश, वंश, कुल, गोत्र एवं शैक्षणिक अभ्यास एवं विचारधारा दर्शन का महत्वपूर्ण योगदान होता है । युगीन प्रभावों एवं ऐतिहासिक परिप्रेक्ष्य को भी व्यक्तित्व एवं कृतित्व निर्माण में अनदेखा नहीं किया जा सकता । साहित्यकार संवेदनशील प्राणी होता है, इसलिए उसके पारिवारिक प्रभाव एवं युगबोधी संदर्भ, चेतन तथा अवचेतन पर गहरा प्रभाव डालते हैं । समकालीन कथा लेखन की सशक्त हस्ताक्षर नासिरा शर्मा के कथा साहित्य का कैनवास महानगरीय जीवन, अंचल, खेत-खलिहान और नौकरीपेशा महिलाओं तक ही सीमित नहीं हैं बल्कि उनके समग्र लेखन का दायरा भारत की विभिन्न धर्म-संस्कृतियों वाले सामाजिक-आर्थिक परिवेश से आगे जाकर ईरान, इराक, अफगानिस्तान, जैसे मुस्लिम देशों के सामाजिक-सांस्कृतिक-आर्थिक परिदृश्यों को मापने में भी कामयाब हुआ है । जहां उनके लेखन में रचनाकार का विचारक व्यक्तित्व दिखाई देता है, वहीं साहित्यिक मानदण्डों की गहरी समझ, सामाजिक चिन्ताओं से सरोकार और मानवीय मूल्यों की स्थापना के प्रति प्रतिबद्धता भी उभरकर सामने आती है और इसी प्रतिबद्धता के कारण उसका लेखक मन देश-काल की सीमाओं का अतिक्रमण कर बाहर से अनुभव बटोर लाता है तथा महिला लेखन से जुड़ी भ्रांतियों को चुनौती देता हुआ समकालीन लेखन की अगली पंक्ति में पूरे सामर्थ्य के साथ आ खड़ा होता है ।

वस्तुत: नासिरा शर्मा ने हिंदी कथा साहित्य में मौलिकता एवं गुणात्मकता की दृष्टि से असाधारण योगदान दिया है । उन्होंने सशक्त कहानियां-उपन्यास लिखे हैं एवं उतने ही सशक्त

निबंध, रिपोर्ताज, संस्मरण आदि लिखकर हिंदी साहित्य के कोष को समृद्ध बना दिया है ।

2.1 जन्म, शिक्षा, अभिरूचि एवं परिवेश

विदित है कि लेखन-सृजन-कर्म के दौरान लेखक चुनाव करता है । इस चुनाव में रुचि, अभिरुचि और परिवेश सभी काम करते हैं । नासिरा शर्मा का जन्म अगस्त, 1948 में साहित्यिक नगरी इलाहाबाद में एक पढ़े - लिखे परिवार में हुआ । पिता जामिन अली स्वयं प्रोफेसर थे । इस प्रकार उनका लालन - पालन संभ्रांत परिवार में हुआ है । स्वयं तीन वर्षों तक नई दिल्ली स्थित ख्यातिनाम शिक्षण संस्थान जामिया मिलिया इस्लामिया में फारसी का अध्यापन किया । उर्दू, हिंदी, फारसी, पश्तो और अंग्रेजी यानी कुल पांच भाषाओं की निष्णात लेखिका की समस्त रचनाएं यही आभास देती हैं कि उनकी लेखिनी सदा सतर्क और सधी हुई रही हैं । न भटकाव, न बहकाव । लीक पर चलते हुए पात्र, काल को जीवंत बनाते हुए घटनाक्रम को इस खूबी से सधे हुए शब्दों में पिरोती हैं कि पाठक को कृति रुचिप्रद भी लगती है और सूचनाप्रद भी । मनोरंजन मात्र हेतु उन्होंने रचना कर्म नहीं किया है । स्वयं कहती हैं - ''सेक्स पर लिखना सरल है । पाठकों को आनंद भी मिलेगा । लेकिन स्त्री-पुरुष संबंधों में सेक्स के हिस्से पर लिखने के वक्त यदि इशारतन खूबसूरती से बात कह दी जाए और लेखक आगे बढ़ जाए तो बात ही कुछ और है । पाठक भाव को भी समझ जाता है तथा अश्लीलता भी नहीं झलकती है ।''(1)

नासिरा जन्मना मुस्लिम होने के साथ उन्होंने हिन्दू (ब्राम्हण) के साथ विवाह व्यक्तिगत जीवन में जो भी मिला हो, पर दोहरे अनुभव और जानकारी ने उनके लेखन को सुधरापन दिया है एवं उसका आयाम विस्तृत हुआ है । विवाहोपरांत व्यक्तिगत जीवन से भी वे काफी संतुष्ट व प्रसन्न दिखीं । नासिरा कहती हैं - 'मेरे पति स्वयं इलाहाबाद यूनिवर्सिटी में भूगोल के प्राध्यापक रहे एवं गोल्डमेडलिस्ट थे । पर कभी अहं उनके साथ नहीं रहा । ससुराल में भी भरपूर अपनत्त्व मिला । सास ने सदैव मुझे सर आंखों पर रखा । अलग धर्म से आई हुई होने के बावजूद उन्होंने कभी अलग होने का एहसास नहीं होने दिया । राजस्थान के अजमेर शहर में मेरी ससुराल है । पैतृक शहर के बारे में लेखिका कहती है - ''बाकी शहर देता है तो निचोड़ता भी है । इलाहाबाद ने पाला, पोसा, बड़ा किया और कहा-जाओ, जाकर नाम करो । इस शहर का पूरे एशिया महादेश में योगदान है ।''(2) परन्तु लेखिका यह स्वीकारती हैं कि उनका बचपन विभिन्नताओं से भरा गुजरा । वे कहती हैं -''मेरे परिवार का वातावरण साहित्यिक था । शुरु की पढ़ाई कॉंवेन्ट में हुई फिर हमीदिया में दाखिल कराया गया जहां हर टीचर की मुझ पर नजर रहती थी । मैं क्या करती हूं, क्या लिखती-पढ़ती हूं, बार-बार यह एहसास दिलाना कि तुम किसकी बेटी हो, तुम्हें यह काम नहीं करना चाहिए, तुमसे हमारी कुछ उम्मीदें हैं जिसने

अनजाने ही उस पिता से दूर करना शुरु कर दिया जिनकी कुछ झलकियां ही मुझे याद हैं । वह मुझे कोई 'सुपरमैन' लगते जिससे हर छोटा-बड़ा प्रभावित था और मुझे उनके इसी प्रभा मंडल को नकारने की जुर्रत पड़ी जिसने अरसे तक मुझे इस बात के लिए उकसाया कि मैं किसी को न बताऊं कि मैं किसकी बेटी हूं और मैं अपनी तरह जिऊंगी, चाहे कोई कुछ भी कहे । दोनों बड़ी बहनों के छोड़े पदचिह्न थे, उनकी जिंदगी का एक नक्शा सामने था । भाई सबसे बड़े थे । दूसरा भाई मुझसे छोटा था । यही दो मर्द हमारे घर में थे । बचपन से परिवार की प्रतिष्ठा एवं उसके अतिरिक्त गुणों की चेतना लगातार उठते-बैठते बाहर वाले देते थे जिससे जाने-अनजाने सचेत रहने की आदत पड़ गई थी । बचपन से ही एक विचित्र किस्म की जिम्मेदारी का अहसास जाग उठा था । घर में हर तरह का आराम था । नौकर-चाकर, सुख-सुविधा की कभी न थी । मां का एक ही अरमान था कि हम पढ़ें और खूब तरक्की करें । गांव-शहर दोनों से बराबर का नाता था । इसलिए जीवन भी एकाकी नहीं रहा । घर और स्कूल के मोहल्ले में जमीन-आसमान का फर्क था । घर के अलावा बहुत-सी बातें सहेलियों से मालूम पड़तीं इन्होंने देखने-समझने की दृष्टि दी । घर में पढ़ना-लिखना एक दिनचर्या जैसा था । बड़े अब्बा, दादा सब ही कवि थे । मेरी मझली बहन शायरा हैं । मेरे घर में हर माह एक बड़ा मुशायरा होता था, जहां से बहुत कवियों ने अपनी साहित्यक यात्रा शुरु की । बड़ी बहन भी लिखती थीं । ऐसे माहौल में लिखना अपने-आप शुरु हुआ । मगर इस अहसास के साथ कि सिर्फ लिखते जाना नहीं है बल्कि ऐसा कुछ लिखना हो जो आगे का पाठ हो ।''(3)

नासिरा ने अब तक कुल आठ उपन्यास, दस कहानी संग्रह, छह अनुदित पुस्तकें, राजनीतिक विश्लेषण पर दो पुस्तकें, तीन निबंध संग्रह, एक रिपोर्ताज (जहां फव्वारे लहू रोते हैं) तथा बच्चों के लिए क्रमश: हिंदू, उर्दू व फारसी में एक-एक कहानी संग्रह लिखी हैं । कुल तैंत्तीस पुस्तकों की रचयिता लेखिका ने इनके अतिरिक्त आठ टेली फिल्में और दूरदर्शन के लिए एक नाटक भी तैयार किया है जो इनके चर्चित कहानी संग्रह 'सबीना के चालीस चोर' की शीर्षक कहानी पर आधारित थी ।

कथा लेखिका और पत्रकार नासिरा के व्यक्तित्व का एक दीगर पहलू यह भी है कि इन्होंने भारत के अलावा इराक व अफगानिस्तान जैसे कठिन परिस्थितियों के जूझ रहे मुल्कों का दौरा किया । बच-बचाके, हिम्मत और जुझारुपन के साथ इन्होंने इन देशों के गांवों-शहरों-कस्बों में जाकर अलग-अलग घर-परिवार से घुल-मिलकर उनकी सामाजिक-आर्थिक-सांस्कृतिक और राजनीतिक स्थितियों को समझने की कोशिश की । लेखन यात्रा की यह विशेषता किसी अन्य साहित्यकार के पास नहीं रही । यह इकलौती पूंजी नासिरा ने अर्जित की

है और इन यात्राओं के क्रम में उन्होंने कई शीर्ष हस्तियों से साक्षात्कार भी किए जो न सिर्फ चर्चा में रहे, लेखिका की रचनाधर्मिता को परिष्कृत भी किया । उदाहरण के लिए , बंगलादेश के पूर्व राष्ट्रपति जिया-उर रहमान, अफगानिस्तान के गुलाबदीन हइकमत्यार, पीर गिलानी, पाकिस्तान की कवजि नाहिद किश्वर, मौलवी नूरानी, सैय्यद मोहम्मद राजी रिजवीं सहित पाकिस्तान में भारत के उच्चायुक्त एस. के. सिंह, सीरिया के मौलवी शामिल हैं । भारत में जिनके साक्षात्कार लिए उनमें उन्होंने पूर्व राष्ट्रपति ज्ञानी जैल सिंह, पूर्व प्रधानमंत्री अटल बिहारी वाजपेयी तथा पूर्व केंद्रीय मंत्री सुब्रहमण्यम स्वामी व आरिफ मोहम्मद खान शामिल हैं ।

नासिरा के व्यक्तित्व एवं कृतित्व के संदर्भ में ज्यादा कुछ नहीं लिखा गया है । छिटपुट रुप से टिप्पणियां लिखी गई हैं जो उनके उपन्यासों, कथा-संग्रहों के बारे में हैं या उन्हें विशेष सम्मानादि प्राप्त होने पर यथा, वर्ष 2008 में लंदन में इंदु कथा सम्मान प्राप्त होने पर प्रकाशित हुई हैं । यद्यपि सन् 1981 में ईरान की क्रांति पर, प्रकाशित 'सारिका' पत्रिका के विशेषांक की अतिथि संपादक होने के उपरांत विभिन्न पत्र-पत्रिकाओं में उनके अदम्य साहसी लेखिका होने को लेकर टिप्पणियां व लेख प्रकाशित हुए थे । हालांकि उन्हें 1994 में साहित्यिक पत्रिका 'वर्तमान साहित्य' का महिला विशेष अंक सम्पादित करने का भी श्रेय प्राप्त है । 'पुनश्च' नामक पत्रिका ने भी ईरान पर विशेष अंक छापा था जिसका संपादन लेखिका ने किया । नासिरा के कृतित्व के संदर्भ में ललित शुक्ल लिखते हैं - ''आप नासिरा शर्मा की कोई भी रचना उठा लीजिए, उसमें इंसानियत की पताका फहराती हुई मिलेगी । इसी बिन्दु पर अरब का मकसद पूरा हो जाता है । साथ ही, रचना साहित्य की कोटि में आकर कालजयी हो जाती है । नासिरा शर्मा का सम्पूर्ण लेखन प्राथमिक ज्ञान (First hand knowledge) प्राप्त करने के बाद शुरु होता है, इसलिए उसकी प्रामणिकता अविश्वसनीय नहीं होती । उनका सोच बनावटी और छद् म से भरा हुआ नहीं होता है । इसी कारण वह मानवीय यथार्थ के दायरों के अंदर रहता है । .... उनकी कहानियां पहले रेखाओं में उभरती है बाद में उनमें रंग भरा जाता है । तब कहीं जाकर पूरा चित्र पाठक के सामने आता है ।''[4] ललित शुक्ल के संपादकत्व में वर्ष 2010 में नासिरा शर्मा के व्यक्तित्व व कृतित्व पर 'नासिरा शर्मा: शब्द और संवेदना की मनोभूमि' शीर्षक से पुस्तक छपी है।

नासिरा शर्मा के कथा साहित्य पर जिन विचारकों ने अपने मत एवं विचार प्रकट किए हैं, उनमें डॉ. अजय नावरिया, वंदना शर्मा, फिरोज अहमद, रवींद्र कालिया एवं रोहिताश्व आदि शामिल हैं । फिरोज अहमद ने भी वर्ष 2009 में 'वाङ्मय' पत्रिका का एक अंक नासिरा शर्मा पर केन्द्रित बतौर विशेषांक प्रकाशित किया ।

2.1.1 पुरस्कार और सम्मान

नासिरा शर्मा ऐसी लेखिका हैं जिन्होंने संघर्ष के उपरांत तथापि अल्पावधि में ही साहित्य जगत में अपना अतुलनीय स्थान बना लिया है । उपन्यास, कहानी, निबंध, रिपोर्ताज, सीरियल लेखन, संस्मरण, आदि गद्य की विभिन्न विधाओं में अपना योगदान देकर साहित्य जगत में हलचल उत्पन्न की है । वह प्रतिभा संपन्न व्यक्तित्व तथा अपने विरले विषयों के चयन के कारण हमेशा चर्चा में रही । ईरान पर विशेष काम करने वाली वह इकलौती, भारतीय लेखिका हैं । आज वह अन्य विषयों के साथ 'स्त्री विमर्श' की भी एक सशक्त कड़ी मानी जाती है । इसलिए इस विषय से संबंधित कोई भी चर्चा, परिचर्चा, परिसंवाद या गोष्ठी उनके तथा उनकी रचनाओं के बगैर अधूरी समझी जाती है । उनकी इसी प्रतिज्ञा के कारण उन्हें समय-समय पर विभिन्न पुरस्कारों से सम्मानित किया गया । 'ईरान' के जीवन पर संघर्षशील रिपोर्टिंग करने के लिए उन्हें सन् 1980 में प्रतापगढ़, उत्तरप्रदेश में 'पत्रकार श्री' सम्मान दिया गया । सन् 1987-88 का हिंदी अकादमी, दिल्ली का 'अर्पण सम्मान' से उन्हें नवाजा गया । इसके अलावा सन् 1995 में भोपाल (मध्य प्रदेश) में विख्यात गजानन मुक्तिबोध राष्ट्रीय अवार्ड उन्हें दिया गया । सन् 1997 में बिहार सरकार के राजभाषा विभाग की तरफ से 'महादेवी वर्मा पुरस्कार' दिया गया । सन् 2000 में पुन: हिंदी अकादमी, दिल्ली ने उन्हें 'कीर्ति सम्मान' से सम्मानित किया । पिछले वर्ष सन् 2008 में ब्रिटेन की राजधानी लंदन में उन्हें कथा यू के नामक हिंदी संस्था द्वारा हाउस ऑफ लॉर्ड्स में आयोजित सम्मान समारोह में '14 वां अन्तर्राष्ट्रीय, इंदु शर्मा कथा सम्मान' जो उनके उपन्यास 'कुइंयाजान' के लिए दिया गया । उन्हें यह सम्मान ब्रिटेन के आंतरिक सुरक्षा राज्य मंत्री टोनी मेकनलटी ने दिया । इसके अतिरिक्त भारत-रूस साक्षरता क्लब एवं रुसी कला एवं संस्कृति केंद्र की ओर से उन्हें 'बाल साक्षरता के लिए भारत-रुस अवार्ड' (Indo-Russian Award for Children Literacy) से सम्मानित किया गया ।[5]

2.1.2 व्यक्तित्व के विविध आयाम

नासिरा शर्मा आम भारतीय नारी की तरह मध्यम कद-काठी एवं गौर वर्ण की महिला हैं । उनकी चमकती आंखों में जहां एक और स्नेहिल भाव झलकता है, वहीं दूसरी ओर वे लेखकीय व्यक्तित्व के अनुरूप पैनी नजर वाली तेज-तर्रार नारी भी प्रतीत होती हैं । प्रसंगवश 'सारिका' पत्रिका के कोई तीस वर्ष पूर्व एक अंक में लेखिका का व्यक्तित्व परिचय कुछ इस प्रकार दिया गया था - 'कंधों से नीचे जाते खुले-लंबे सीधे बाल-गोल चेहरा - चमकती हुई आंखें-चेहरे स टपकता बौद्धिक उजास और विश्वास । नाम - नासिरा शर्मा' ।

दिल्ली में मेरी उनसे उनके छतरपुर पहाड़ी स्थित सज्जित घर में अब तक दो मुलाकातें और लंबी बातचीत हुई है। जितनी देर मैं रहा, कुछ - न - कुछ खाद्य सामग्री वो मंगवाती ही रहीं । पहली बार मेरे पहुंचने में घर खोजने की वजह से थोड़ा विलम्ब हुआ । वैसे भी एक दिन पूर्व मैं कहकर नहीं आ सका था, क्योंकि दिसम्बर का महीना होने की वजह से फ्लाइट दो घंटे देर से दिल्ली पहुंची और रात के ग्यारह बजने को थे, इसलिए मैंने न आने के लिए उनसे खेद प्रकट किया और दूसरे दिन आने का वादा किया । दूसरे दिन मुझे ज्ञात हुआ कि उन्होंने मेरे इन्तजार में कई महत्वपूर्ण कार्यक्रम रद्द कर दिए या टाल दिए थे । डेढ़-दो घंटे की बातचीत के दौरान उन्होंने बड़े धैर्य और इत्मीनान के साथ विभिन्न विषयों पर बातचीत की । पहली मुलाकात (हालांकि फोन पर पहलें बातें हुई थीं) में ही काफी अपनत्व महसूस हुआ जो अक्सर नहीं होता । निश्चछल तथा साफगोई स्वभाव उनकी विशेषता है । उनकी खूबसूरत ज़बान, शब्दों के उम्दा उच्चारण, सटीक एवं चयनित शब्दों से सजे वाक्य और बोलने का अंदाज मखमल सरीखा मुलायम व फर्रयुक्त उनके व्यक्तित्व की शालीनता व बौद्धिकता को ऊंचाई प्रदान करता है । मीरा सीकरी के शब्दों में लेखिका की समझ बहुत अच्छी, विजन बहुत साफ और दृष्टि बहुत पैनी है । आपने बात शुरु की ही और आपसे बात पूरा करने से पहले ही वह रिक्त स्थान को पूरा कर देंगी और आप केवल हंस देंगे ।''(6)

नासिरा शर्मा अध्ययनशील नारी हैं । हिंदी, उर्दू, फारसी व अंग्रेजी में उन्होंने काफी रचनाएं पढ़ी हैं । वे कहती हैं - 'सबसे पहले तो मैं प्रेमचंद से ही मुतासिर रही हूं । कायदा तबस्सुम, कुर्तुल-एन-हैदर, मंटो, कृश्नचंदर, इस्सर, कृष्ण बलदेव वैद, अबदुल्ला को मैंने काफी पढ़ा है ।'(7) वह एक सम्मोहनकारी नारी व्यक्तित्व हैं । बिल्कुल 'अकल टाकस केविन' की रचनाकार हेरियटस्टो की तरह । उनके लेखन और बोलने की शैली में एक अभूतपूर्व पारदर्शिता, बौद्धिकता और सार्थकता परिलक्षित होती है ।

2.1.3 नासिरा शर्मा के व्यक्तित्व के विविध पहलू

नासिरा सादगी की कायल हैं । बाह्य चमक-दमक से उन्हें नफरत है । सादगीपूर्ण रहन-सहन उनके जीवन का अंग है । इसलिए दिल्ली जैसे महानगर में बस जाने के बाद भी वहां की चमक-दमक उन्हें प्रभावित नहीं कर पाई । उनका घर दिल्ली की भागदौड़ वाले इलाके से दूर छतरपुर पहाड़ी मंदिर के विपरीत दिशा में उस जगह स्थित है जहां ग्राम सुलभ शांति और सुकून मिलता है । स्थानीय निवासियों में आपाधापी नहीं । आस-पास पेड़ों की छांव और हरियाली मन को प्रफुल्लित कर देती है । यह जगह उन्होंने रहने के लिए खास तौर से चुनी । कहा जाता है कि किसी भी व्यक्ति का स्वभाव सामने वाले व्यक्ति के हाव-भाव से अंशत: प्रभावित हो जाता है । लेकिन नासिरा के संदर्भ में ऐसा नहीं कहा जा सकता

क्योंकि गंभीर व्यक्तित्व की धनी नासिराजी सामने वाले को जांचे - परखे बगैर उससे खुलकर बातें नहीं करतीं । किन्तु परिचयोपरांत उनके गंभीर चेहरे के पीछे छिपा मिलनसार व मददगार स्वभाव तत्काल परिलक्षित हो जाता है । वह भावुक महिला हैं, इसलिए आम जनता के दुख से व्यथित हो जाती हैं । दिल की इतनी अमीर कि अमीरी सलीका बन जाए । अन्याय के विरुद्ध आवाज उठाते वक्त उनका आक्रोश एवं गुस्सा सहज ही रचनाओं में दृष्टिगोचर होता है । हिम्मत और दिलेरी उनके व्यक्तित्व का दूसरा पहलू है । पहली बार देखने पर बहुत ही शांत, रिजर्व तथा गंभीर लगती हैं कि सामने वाले के मन में यह प्रश्न जरुर उठ सकता है कि इतने सुघड़ लहजे व तेज-तर्रार भाषा में साफगोई से लिखने वाली नासिरा यही है या कोई अन्य स्त्री । वस्तुत: वे एक स्वाभिमानी स्त्री हैं पर अहं से कोसों दूर । बच्चों से बहुत प्रेम है उन्हें । कहती हैं - 'बच्चे मुझे काफी अच्छे लगते हैं ।'(8) 'नंदन', 'चंपक' जैसी श्रेष्ठ बाल पत्रिकाओं में उन्होंने पांच सौ से भी अधिक कहानियां लिखीं ।

निडर व्यक्तित्व की धनी नासिरा अपनी बात को डंके की चोट पर कहती हैं । उनके व्यक्तित्व की यह विशेषता उनके द्वारा रचित पात्रों के माध्यम से भी परिलक्षित होती है । चाहे वह 'शाल्मली' की शाल्मली हो या 'जीरो रोड' की कविता, या फिर 'दूसरा ताजमहल' की नयना हो । यद्यपि नासिरा की साहसिकता से सभी वाकिफ हैं, तथापि उन्होंने स्वयं एक बार कहा था कि 'अदब ने, जिंदगी ने शराफत और इनसानियत के साथ-साथ बुजदिली भी पैदा कर दी हैं ।' इसे स्पष्ट करते हुए वे कहती हैं - 'मुझे अच्छी तरह याद है, क्योंकि आज भी मैं इस दर्द से गुजरती हूं और अपने अंदर तड़प-तड़प कर रही जाती हूं । मगर बहादुरी का कदम नहीं उठा पाती हूं जो अक्सर लोग प्रतिक्रिया के रुप में उठा लेते हैं । पर अपनी इस कमजोरी को पहली बार मैंने अगस्त 1996 में हुई एक दुर्घटना के बाद बहुत शिद्दत से महसूस किया कि मैं बदला लेने, किसी को नुकसान पहुंचाने और किसी को जलील करने की क्षमता कतई नहीं रखती हूं । और धैर्य के अथाह समंदर में, जिसका स्वाद नमकीन है, अक्सर मैं खारे पानी में डूबती-तैरती हूं । मगर ये आंसू बेचारगी के नहीं, आक्रोश के होते हैं । जब कभी फैसला लेने की घड़ी आई तो हमेशा मेरी कोशिश रही है कि मैं बहादुरी की इस चमचमाती तलवार को म्यान में रख बुजदिली से कोई ऐसा कदम उठाऊं जो उस रास्ते को जाए जहां दरवाजे दूसरों के लिए खुले हों, बन्द नहीं । यही मेरी ताकत है । यही वजह है, मेरे लेखन में या किरदारों में आपको वह 'बुजदिली' नहीं मिलती जिसका अर्थ भीरु, डरपोक होने से लगाया जाता है ।(9)

नासिरा का व्यक्तित्व पारदर्शी, उदार होने के नाते उनमें आत्मबल और दृढ़ता का संचार दिखाई देता है । उनका यह गुण उनकी नायिकाओं शाल्मली, पाशा, फरजाना, नीता,

कुसुम, सबीना आदि मैं भी झलकता है । किसी बात को रहस्यमयी रखना उनकी शान के खिलाफ है । उनके विचार, आचार और व्यवहार में भी खुलापन है जो उनके पारदर्शी व्यक्तित्व का ही परिणाम है । उनका गंभीर व्यक्तित्व उनके चिन्तन-मनन का द्योतक है । उन्होंने समाज में भारतीय परिवेश से इतर परिवेश में इतना-कुछ देखा - समझा है कि उससे जुदा नहीं हो पाई । ये सारे चिंतन-मनन और विश्लेषण उनकी कलम का सहारा पाकर कागज पर उतर पड़े । बिना किसी फर्क, भेदभाव के पूरी ईमानदारी से उन्होंने रचनाधर्मिता की है । वे कहती हैं -'' ... मैं सीमा व रंग भेद को नहीं पहचानती, मेरे लिए इनसान होना काफी है । वह कहां का है और किस धर्म व भाषा का है, इससे मुझे कोई फर्क नहीं पड़ता है । शायद इसी सोच के चलते मैं विदेशी धरती पर भारतीय किरदारों को नहीं ढूंढ़ती रही हूं, बल्कि जहां जिस जमीन पर जाने का मौका मिला वहीं के इनसानों के दुख-दर्द को समझने की कोशिश की । इस मामले में मैं कोई खानाबंदी नहीं कर पाई ।''(10)

2.1.4 युगीन परिवेश :

नासिरा शर्मा को साहित्य विरासत में मिला । उनका लेखन यूं तो तब से ही शुरु हो जाता है जब वह तीसरी कक्षा की छात्रा थी । विद्यालय की कहानी लेखन प्रतियोगिता में उन्हें पुरस्कार मिला था । जब सातवीं कक्षा की छात्रा थी तो उनकी कहानी 'राजा भैया' नामक पत्रिका में प्रकाशित हुई । यह उनकी पहली प्रकाशित रचना थी । वे कहती हैं - 'सन 1975 में जब हमने संजीदगी से सोचा कि कुछ लिखा जाए तो कहानी लिखना शुरु किया । सन् 1975 में 'सारिका' के नवलेखन अंक में मेरी कहानी 'बुतखाना' और 'मनोरमा' पत्रिका में 'तकाज़ा' प्रकाशित हुई ।(7) यानी जन्म के लगभग 28 वर्ष पश्चात विधिवत लेखन यात्रा शुरु हुई जो अनवरत जारी है । लेखिका की रचना-यात्रा के सरोकारों का फलक अत्यंत विस्तृत है । एक तरफ वह अन्तरराष्ट्रीय मुद्दों पर कलम उठाती हैं तो दूसरी और ठेठ भारतीय जीवन का चित्रण करती है । उनके लेखन में जहां मानवीय इतिहास अपने को संजोता है, वहीं समाज शास्त्र पैने और तीखे प्रश्न उठाता है । नासिरा कहती हैं - ''अपनी जिंदगी का शुरुआती हिस्सा मैंने मुस्लिम परिवेश में जिया है । शादी के बाद हिन्दू परिवेश को करीब से जानने-समझने का मौका मिला । मेरे एक तरफ हिंदू और दूसरी तरफ मुस्लिम समाज है । दोनों को अच्छी तरह जानती हूं । हिंदू अपने-आप में डूबा हुआ है । वह सिख, ईसाई और मुस्लिम को नहीं जानता । इससे दीवार बनी है । मुसलमानों को इस दौर में हिंदुओं से ज्यादा अपनी इज्जत, वफादारी और बरताव का ध्यान रखना पड़ेगा क्योंकि वह इस वक्त सबसे मुश्किल दौर में है । उसे दूसरों से ज्यादा खुलूस से पेश आना पड़ेगा ।''(11)

उनके साहित्य में स्वतंत्रता के पश्चात से लेकर आज तक के परिवेश का चित्र समाविष्ट है । पुरुष वर्चस्ववादी व्यवस्था में स्त्री की दमघोंटू स्थिति तथा आजादी के पश्चात ग्रामीण एवं शहरी जन-जीवन में आया परिवर्तन और परिरोध शक्तियों का संघर्ष अधिक रहा जिसे वह न्याय-अन्याय का संघर्ष मानती है । परिणामत: साहित्य का प्रयोजन न्याय को बल देना तथा अन्याय का प्रतिरोध करना है । युगीन परिवेश और लेखकीय प्रतिबद्धता के संदर्भ में कहा जा सकता है कि जहां देश के जीवन-मरण का संग्राम चल रहा हो, समाज के भीतर न्याय और दु:शील के भीतर महाभारत चल रहा हो, वहां सत्य से पीठ फेरकर शब्दों के घरौंदे बनाते बैठना साहित्यकार की स्वाधीनता नहीं, अपमृत्यु का मार्ग है । औद्योगिक प्रगति और पूंजीवादी व्यवस्था के साथ शहर बनते और विकसित होते गए । बेरोजगारों एवं गरीब तबके के लोगों का तांता शहर की ओर रुख करने लगा । नतीजतन पारम्परिक संयुक्त परिवार टूटने-बिखरने लगे और एकल परिवार की अवधारणा जन्म लेने लगी । समाज के संतुलन में परिवर्तन आने लगे । संयुक्त परिवार में रिश्तों की जो गरमाहट होती है वह एकल परिवार में ठंडेपन में तबदील होने लगी जिससे रिश्तों में दरारें, खटास और आए दिन परिवार टूटन के कगार पर नजर आने लगे । इसका खामियाजा पुरुष-स्त्री दोनों वर्गों को झेलना पड़ रहा है, बच्चे पीड़ित हो रहे हैं । पर स्त्री पर दोहरा बोझ पड़ रहा है । इन सभी संदर्भो व प्रसंगों का विवेचन नासिरा के कथा साहित्य में देखने को मिलता है । वे मानती हैं कि अस्सी प्रतिशत महिलाएं शोषित-पीड़ित हैं ।(9) लेखिका का कहना है कि 'आज की औरत सिर्फ घर या बाहर नहीं चाहती, वह दोनों ही चाहती है । 50-60 के दशक में औरत में घर से बाहर आने की छटपटाहट थी, उसने घर छोड़ा । जब वह बाहर निकली तो देखा कि बाहरी दुनिया में भी शोषण है । बाहर की दुनिया देखी । लेकिन फिर उसे अपने 'घर की याद आई' और 'शाल्मली' की सोच का जो सिलसिला 'ठीकरे की मंगनी' से शुरु होता है उसने एक तीसरा ठिकाना ढूंढ़ा जो उसके मायके और ससुराल से अलग था - उसका अपना घर ।''(12)

महानगरीय जीवन एवं औद्योगिक विकास के कारण सामाजिक भेदभाव, जातिगत बंधन शिथिल अवश्य हुए, विद्वेष की आग और सांप्रदायिकता की भावना को राजनीतिक दलों और मठाधीशों ने हवा दी । कृष्णा माहेश्वरी ने स्वीकार किया कि ''आजादी मिलने के पश्चात हमारे देश में कृषि उत्पादन, शैक्षणिक विकास और देश निर्माण आदि के समुचित प्रयत्न हुए हैं । अन्तर्राष्ट्रीयता पर हम एक महत्वपूर्ण राष्ट्र बन गए हैं । विज्ञान, चिकित्सा, शोध आदि ज्ञानार्जन के विभिन्न क्षेत्रों में हम आगे बढ़े हैं । जनतांत्रिक व्यवस्था को स्थिर रखने में भी हमारे व्यक्तिगत, सामाजिक और राष्ट्रीय जीवन में सामान्य जन की दृष्टि से कोई उल्लेखनीय उन्नयन नहीं हुआ ।''(13) विगत बासठ वर्षों के जनतंत्र और सभी क्षेत्रों में

निरंतर प्रगति के बावजूद इस कम्प्यूटर युग में आज भी करीब 40 प्रतिशत जनता निर्धनता की रेखा के नीचे किसी तरह जीवन यापन करते हुए अभावों को भोग रही है । निर्धनता और अशिक्षा ने सामाजिक असंतुलन को और बढ़ाया है । पर सच यह भी है कि निर्धन परिवार से युक्त समाज हो या मध्यमवर्गीय समाज हो या फिर उच्च-मध्यम परिवार हों, महिलाओं को अपने विचार प्रस्तुत करने की स्वतंत्रता आज भी न के बराबर देखने को मिलती है । यदि किसी परिवार में महिलाएं स्वतंत्र दिखती भी हैं तो अन्तर्धारा यह होती है कि पुरुष वर्ग इस आजादी को सहजता से पचा नहीं पाता है । उदाहरणस्वरुप भारत के सम्पूर्ण साक्षर राज्य केरल की पचास फीसदी महिलाओं को कर से बाहर निकलने के पहले इजाजत लेनी होती है । मताधिकार के संदर्भ में चर्चा हो जो कि लोकतंत्र का सबसे बड़ा हथियार है, तो भारत के चुनाव आयोग के आंकड़े के अनुसार पिछले चार दशकों में स्त्रियों और पुरुषों के बीच महिलाओं की भागीदारी का फर्क घटकर केवल 10 फीसदी रह गया है । देश में महिलाओं की संख्या 49.6 करोड़ (2001 की जनगणना के अनुसार) है । यानी, निम्नलिखित पंवितयां मन में आशा का संचार करती हैं -

तोड़ तोड़ के बंधनों को देखो
बहनें आती हैं
ओ देखो लोगों देखो
बहनें आती हैं
आयेंगी, जुल्म मिटाएंगी,
वो वो नया जमाना लाएंगी,
तारीकी को तोड़ेंगी, वो खामोशी को तोड़ेंगी
हां मेरी बहनें अब खामोशी को तोड़ेंगी
हां मेरी बहनें
अब डर को पीछे छोड़ेंगी
निडर, आजाद हो जाएंगी ...(14)

लेखिका नासिरा शर्मा ने अपनी सजगता और संवेदनशीलता से आज के समाज में महिलाओं की स्थिति को कुछ इस प्रकार स्पष्ट किया है -

''मुझे अपने बचपन वाले घर और शादी के बाद वाले घर में किसी जड़ता एवं बंधन का उस तरह सामना नहीं करना पड़ा जिस तरह घरेलू स्तर पर औरतें जूझती हैं । उसका कारण था कि दोनों परिवारों में औरत की स्थिति एवं विकास को लेकर सदस्य सजग थे। मगर जिंदगी का यही एक सच तो है नहीं। स्कूल, कॉलेज, विश्वविद्यालय, नौकरी की जगह,

बौद्धिक विचारों की टकराहट, प्रतियोगिता, ईर्ष्या, घृणा, इन सारी भावनाओं को भी समाज में रहकर झेलना पड़ता है, जिसको मैंने जबर्दस्त तरीके से झेला है । कुछ मेरे उसूलों और विचारों के कारण मुझे कीमत चुकानी पड़ी और कहीं पर व्यवस्था की बदहाली के कारण मुझे बहुत कुछ सहना पड़ा । यह सहना और कीमत अदा करना मेरी मर्जी से जुड़ा था । यदि मैं समझौता कर लेती, पिछले दरवाजे और शॉर्ट कट का इस्तेमाल करती, दाव-पेंच, धोखाधड़ी, झूठ और षड्यंत्रों का सहारा लेती हुई अबला नारी का नाटक करती तो सारी कठिनाइयों और संघर्षों से बच जाती, मगर ऐसा कर नहीं पाई क्योंकि सब कुछ होने के बावजूद मां का संघर्ष मैंने देखा, जो जीवन-मूल्यों को लेकर था । इंसानों की निगेटिव-पॉजीटिव तस्वीर मेरे सामने बहुत साफ थी । इसलिए झुकने, लपकने और जमा करने की कैफियत से मैं दूर रही । मेरी सोच और व्यक्तित्व का प्रभाव बहरहाल, मेरे लेखन पर पड़ेगा ही जिसके कारण शाल्मली और महरुख जैसा पात्र समाज के गर्भ से निकालने में सफल हो पाई । 'ठीकरे की मंगनी' पर कम मगर 'शाल्मली' पर बौछारें बहुत सुनीं और यह भी खामोशी से देखती रही कि जिनके तेवर कड़े थे, वे भी कुछ वर्षों बाद संतुलन और बराबरी की बात करने लगे और घर-बाहर, दोनों का ही महत्व उन सब ने स्वीकार किया ।

आज समाज में औरत ने बाहर की कमान संभाल ली है । प्रत्येक कार्यक्षेत्र में उसने अपना लोहा मनवा लिया है मगर ऐसी कर्मठ औरतों की छवि आज भी धूमिल हो उठती है जब शॉर्ट कट अपनाने वाली महिलाएं गलत समझौते कर उन्हीं की तरह लगने की कोशिश करती हैं, संघर्षरत औरतों की भाषा की नकल करती हुई साक्षात्कार देती हैं तब सब धन सत्ताईस सेर नजर आने लगता है । यही वे औरतें हैं जो 'वैम्प' बन कर मर्दों और औरतों की मेहनत का सेहरा अपने सर बांधती हैं । यह बेहद चौंकाने वाला सच है कि साहित्य में निष्ठावान, बलिदानी एवं शरीफ स्त्रियों के किरदार नजर आते हैं और बुरे पात्र उभरते जरूर हैं मगर उनको वह गरिमा नहीं मिलती है । मगर टी.वी. सीरियलों में बुरी औरतों को मुख्य भूमिका देकर उनकी साज-सज्जा और चालाकी की सारी परतें खोली जाती हैं जो झूठ नहीं है । परंतु यह सोचने वाला मुद्दा जरूर है । इस सिलसिले से मैं जरूरत से ज्यादा सचेत और क्रोधित हूं क्योंकि मुझे 'औरत' की इसी किस्म ने बहुत नुकसान पहुंचाया है और इसीलिए आज मैं दो तरह की औरतों को देखने में अपने को सक्षम समझती हूं । ऐसी औरतें हर कार्य क्षेत्र से लेकर घर-परिवार तक फैली हुई हैं । इनको छांटना, इनकी नैतिकता पर प्रश्न चिन्ह लगाना आज जागरुक स्त्री के सारे संघर्ष को नजर में रख मैं जरूरी समझती हूं । इसलिए भी कि नई औरत की भूमिका का सकारात्मक पहलू लोगों को साफ नजर आएगा और समाज की दृष्टि और मान्यताएं बदलेंगी ।''(15)

'शामी कागज', 'इब्ने-मरियम', 'संगसार' संग्रहों की कहानियाँ विभिन्न देशों, भाषाओं, रंगों से सराबोर होने के बावजूद इंसानी सरोकारों से गहरे जुड़ी हैं । कुल मिलाकर इंसान को उसके सही स्थान पर पुन: प्रतिष्ठित करने, उसके अंतस् को भेदने की कोशिश के तहत लिखी गई इन कहानियों के पात्र नये-नये नामों और भिन्न-भिन्न आचार-व्यवहारों के साथ कहीं भी मिल सकते हैं क्योंकि जीवन की तहों में छिपी इनकी सच्चाइयाँ और संवेदनाएं ईरानी, अफगानी, हिन्दुस्तानी नहीं हैं, हाड़-माँस के इंसानी जीवन के जज़्बात हैं जो सुख में उछल और दु:ख में उबल पड़ते हैं ।'पत्थर-गली' की कहानियों में रिश्तों की पतली लेकिन मजबूत डोर को थामे रखने की ललक कहानियों के बीच से रचनाकार की चिंताओं और दायित्वों को उभारते हैं । 'ठीकरे की मंगनी', 'शाल्मली' उपन्यास नारी-स्वातंत्र्य की सार्थक संकल्पना को ठोस मुद्दों और विवेकपूर्ण वक्तव्यों के साथ प्रस्तुत करते हैं । नारी के अंतर्मन का साक्षात्कार कराने से आरंभ होकर उसके स्वंतत्र अस्तित्व की स्थापना का जयघोष करने तक ये उपन्यास स्वतंत्रता के उपभोग के साथ जुड़े नैतिक उत्तरदायित्वों का विस्मरण नहीं होने देते । नारी-मुक्ति की दशा और दिशा के धुंधलके में नासिरा की पैनी दृष्टि उन संभावनाओं को टटोलती है, जो घट सकती हें । अब जब नारी-मुक्ति आंदोलन दोराहे पर खड़ा होकर आकार ग्रहण करने की कश्मकश में उलझा है, नासिरा की दृष्टि का ये पैनापन, सोच की ऐसी पारदर्शिता और दायित्वबोध का स्पंदन एक सूर्यबाला को छोड़कर अन्य जगहों पर लगभग नदारद ही है । प्रश्नों के चक्रव्यूहों और वस्तु स्थितियों की पेचीदगियों के बीच से आउटडेटेड और रूढ़िवादी करार कर दिए जाने का जोखिम उठाते हुए भी नासिरा, 'क्या मुक्ति 'घर' तोड़कर ही मिल सकती है ? जैसे ठोस मुद्दों को उठाने का दुस्साहस करती हैं ।

नासिरा के लेखन-फलक की व्यापकता को देखते हुए, उससे अंतरंग होते हुए, सहमत-असहमत होते हुए भी यह नि:संकोच कहा जा सकता है कि वर्तमान अतीत बनकर जब हमारी कारगुजारियों को अपने में समेट दर्पण बनकर हमारे आचरणों को प्रतिबिम्बित करेगा, उन क्षणों में नासिरा की कहानियाँ उन सबके साथ जो सत्ता और राजनीति के घृणित खेल में वैमनस्य की तेज़ आँधियों के बीच इंसानियत की डोर को अपने काँपते हाथों में थामे रखने का प्रयास कर रहे हैं, नासिरा के ईमानदार रचना-कर्म और संतुलित जीवन एवं कथा-दृष्टि की समर्थ गवाह होंगी ।

विषय की विविधता, जीवन की नाना अनुभूतियों और चिंतन के विविध आयामों का बिना किसी बौद्धिक जड़ता के सहज स्पर्श नासिरा की लेखकीय क्षमताओं को विस्तार देते हैं । इंसानी दु:खों के कारणों को जानने और उसकी छटपटाहट को शब्द देने की बेचैनी समस्त लेखन का अटूट हिस्सा बनकर उभरती है, लगभग अनिवार्यता की शिद्दत के साथ ।

संभवत: इसीलिए ये बेचैनी और सम्बंधों की मानवीय परिणतियाँ कहीं-कहीं व्यंग्यात्मक मुद्रा अख्तियार कर लेती हैं, कहीं आक्रोश बनकर फट पड़ती हैं तो कहीं तटस्थ आलोचक बनकर जिन्दगी का परत-दर-परत विश्लेषण करने लगती हैं, बेबस और निस्सहाय होकर इन सारे चक्रव्यूहों के बीच घिरे व्यक्ति के दर्द का मूक गवाह बन जाती हैं और कहीं स्थितियों की स्थिरता-अस्थिरता सामाजिक दबावों, निश्चयों-अनिश्चयों से निकलकर या यूँ कहें कि दुनियावी जिन्दगी से हटकर 'मेरी जन्नत मुझे वापस दे दो' की चीख के साथ एक रूहानी जिन्दगी की तलाश में अपने को होम कर देने को आतुर दिखती हैं ।

मानवीय संवेदनाओं के बहुरंगी संसार को शब्द देने का पूर्ण सामर्थ्य अपने में समेटे नासिरा का लेखन उनकी साहित्यिक और रचनात्मक प्रतिभा का साक्षी है न कि उनके साहित्यिक व्यक्तित्व का पहला अध्याय । रचनाकार के भीतर सृजन के बीच फूटने के लिए स्थान शेष रखते हुए नासिरा को उनकी मौलिक उपलब्धियों, प्रशंसा-नकार, स्वीकार, अस्वीकार और, अद्वितीयता के बीच एक 'अनंत संभावनाओं को अपने में समेटे एक बेचैन कलाकार' के रुप में देखना श्रेयस्कर होगा । रचनाकार की प्रतिबद्धता, संवेदनशील मन की छटपटाहट, स्थितियों को उसके मूल रूप में पकड़ने की लालसा यानी कुल मिलाकर अपने को पुन: पुन: तलाशने और तराशने की एक ईमानदार कोशिश के आलोक में नासिरा के कथा-लेखन की सूक्ष्मताओं, विविधताओं और व्यापकताओं को रेखांकित किया जा सकता है अथवा पहचाना जा सकता है ।

2.1.5 आर्थिक परिवेश :

स्वाधीन भारत की आर्थिक स्थिति में सुधार लाने और गाँव तथा नगरों में सामंजस्य स्थापित करने के लिए पंचवर्षीय योजनाएं बनाई गयीं । लेकिन इसका अधिक फायदा न हो सका । हां, श्वेतक्रांति का लाभ अवश्य हुआ । आज देश में दूध की समस्या नहीं रह गई है । हां, दूध महंगा जरूर हो गया है। उन दिनों चीन और पाकिस्तान के आक्रमण, प्राकृतिक विपदा जैसे अकाल, सूखा, बाढ़ आदि के कारण आर्थिक दृष्टि से देश की स्थिति जर्जर होती गयी । विदेश से भारी मात्रा में अनाज आयात करना पड़ा । कृषि विकास पर ज्यादा बल दिया गया । जमींदारी प्रथा समाप्त कर दी गई । सहकारी संगठनों की स्थापना हुई और सरकार की ओर से अनुदान दिए गए । देश की अर्थ व्यवस्था को सुगठित और सुव्यवस्थित बनाने के लिए बैंकों का राष्ट्रीयकरण किया गया । बीमा कंपनियां राष्ट्रीयकृत की गईं ।

अनेक प्रयत्नों के बावजूद आजादी के शुरु के 50-55 वर्षों में देश की आर्थिक स्थिति में अधिक सुधार नहीं आया था । इसके लिए कुछ हद तक सामाजिक परिवेश तथा राजनीतिक भ्रष्टाचार जिम्मेदार था । स्वार्थी, भ्रष्ट नेता एवं अवसरवादी प्रवृत्ति ने सारी योजनाओं को

निरर्थक बना डाला । गरीब और शोषित लोगों की स्थिति में कोई अन्तर नहीं आया परंतु एक नए साधन संपन्न वर्ग का जन्म जरूर हुआ । समाज में निरन्तर विषमता बढ़ती गई । ''1947-48 में दो सबसे इज्जददार घरानों टाटा और बिड़ला की कुल परिसम्पतियाँ चौदह-करोड़ थीं। कांग्रेस समाजवाद के पैंतीस सालों मे ये दोनों इजारेदार घराने सौ गुने से भी ज्यादा शक्तिशाली हो गये और 1981 में टाटाओं की परिसम्पतियाँ 1940 करोड़ रूपये और बिडलाओं की 1700 करोड़ रूपये तक पहुँच गयी ।''(16) उसके पश्चात हमारी संसद के आधे से अधिक प्रतिनिधि विभिन्न पूँजीवादी घरानों अथवा प्रविष्ठानों के नुमाइंदे रहे । यहाँ पर धूमिल की पंक्तियाँ चरितार्थ हो जाती है - ''संसद तेल की वह घानी है जिसमें आधा तेल और आधा पानी है ।''

बीसवीं सदी के अंतिम दशक तक आते आते आर्थिक परिवेश को देखें तो भारत में विदेशी मुद्रा का संकट उभर उठा, 'बैंक ऑफ इंडिया' के माध्यम से जब्त किया हुआ कई टन सोना अंतराष्ट्रीय बाजार में बेचा गया, कर्ज आदायगी में 25 टन सोना भारत से लन्दन पहुँच गया । सन 1992 में तत्कालीन वित्त मंत्री मनमोहन सिंह ने केन्द्रीय सरकार का नया बजट लोकसभा में पेश करके आयकर की दरों में कमी की और रूपए की मुद्रा को दूसरे देशों की मुद्राओं के संदर्भ में अंशत: विनिमय (कन्वर्टिबल) बनाया गया ।

सन् 1994 में बीमा उद्योगों के निजीकरण की सिफारिश समिति ने की । सन् 1995 में केन्द्रीय सरकार द्वारा मँहगाई भत्ते में वृद्धि कराई गई, भारत और अर्जेंटीना द्वारा पारस्परिक व्यापार को बढ़ाने के लिए कई समझौतों पर हस्ताक्षर किए गए । सन् 1996 में आर्थिक सर्वेक्षण ने 6.3 प्रतिशत जी. डी. पी. (सकल घरेलू उत्पाद) कुल घरेलू उत्पादन की वृद्धि रेखांकित की। सन् 1996-1997 के अंतिम बजट में 500 करोड़ धनराशि का घाटा दिखाया, सन् 1997-1998 के बजट में स्वेच्छा से आय बताने की परियोजना, निर्यात से होने वाले लाभों पर छूट, शेयर होल्डरों के हाथ आने वाले लाभांशों पर लगाए गए करों पर छूट आदि योजनाओं का प्रावधान किया गया, पाँचवे और फिर हाल में छठे वेतन आयोग की सिफारिश सरकार द्वारा मंजूर की गई । वर्तमान में भारत का आर्थिक पक्ष सबल है । संभाव नये व विपुल हैं । मंदी के माहौल में भी भारत का आर्थिक पक्ष मजबूत है । केन्द्र में यू. पी. ए. गठित नई सरकार की मजबूती और पुन: वापसी ने दुनिया का ध्यान इस ओर खींचा है ।

अंतराष्ट्रीय स्तर पर भारतवर्ष द्वारा विश्व मुद्राकोश और बहुराष्ट्रीय कम्पनियों से ऋण लेने के कारण, विदेशी पूँजी को देश में प्रश्रय मिलता रहा । मंदी के कारण भारतीय उद्योगों की स्थिति प्रभावित हुई है । देश में भ्रष्टाचार, लूट, बेकारी, आतंकवाद बढ़ रहे हैं । मुंबई सहित देश के कई हिस्सों ने आतंकवादी दंश को झेला है । पड़ोसी देश पाकिस्तान में

तालिबान की समस्या गहरा रही है । यद्यपि पाक सरकार उनके ठिकानों पर सैनिक हमले कर रही है । प्रस्तुत अध्ययन के क्रम में अग्रलिखित परिवेश के परिप्रेक्ष्य में नासिरा शर्मा के कथा साहित्य का प्रसंगानुसार विवेचन किया जायेगा ।

2.1.6 धार्मिक एवं सांस्कृतिक परिवेश

भारतीय जन समाज अपनी आस्थाओं और परम्पराओं में धर्म-भीरू और कर्मकाण्डी है । जन्म से लेकर मृत्यु तक सोलह संस्कार हैं । हर भारतीय अपने-अपने धर्म की हिदायतों, मान्यताओं और परम्पराओं में जीता है, चाहे वह उच्च वर्ग का हो या मध्य एवं निम्न वर्ग का । जन्म, विवाह, प्रीति भोजन एवं मृतक संस्कारों में कर्मकाण्ड का निर्वाह कमोवेश हर कोई अपने धर्म एवं मजहब के अनुसार करता है । खान पान, रहन-सहन, रीति-रिवाज एवं सांस्कृतिक जन-जीवन में भी अपने-अपने धर्म मजहब, ईमान एवं आस्था का अनुगमन हैं ।

धर्म को परिभाषित करना एवं उसके स्वरूप को निर्धारित करना अत्यधिक कठिन है । भारतीय समाज और संस्कृति में धर्म का अपना विशेष स्थान रहा है । भारत के संविधान में कहा गया है कि - ''भारत एक धर्मनिरपेक्ष देश है जिसके अनुसार हर व्यक्ति को अपनी इच्छा तथा विश्वास के आधार पर किसी भी धर्म का पालन करने का अधिकार है ।' धर्म जीवन को नियमित बना कर संकट सहन करने की शक्ति देता है, लेकिन व्यवहारिक स्तर पर धर्म के नाम पर जो अत्याचार इस देश में होता आया है, वह किसी से छिपा नहीं है । धर्म के साथ हमारे समाज में जाति भेद और साम्प्रदायिकता का घुन भी लगा हुआ है । नवीन विचारधारा, वैज्ञानिक दृष्टिकोण तथा औद्योगिक क्रांति आदि के कारण आधुनिक युग की धार्मिक-चेतना में परिवर्तन होने लगा । धार्मिक क्षेत्र में व्याप्त अनेक कर्मकाण्ड और आडम्बर का विरोध नए युग के आरंभ के साथ होने लगा । अंतरिक्ष यात्रा ने धर्म पर प्रश्न चिन्ह लगा दिया । सांप्रदायिक दंगे विभाजन के दौरान जो उत्पन्न हुए थे वे निरंतर बढ़ते ही गये । अयोध्या में बाबरी मस्जिद काण्ड ने सांप्रदायिकता की भावना को और भी ज्वलन्त बना दिया । नासिरा शर्मा ने 'जीरो रोड' नामक उपन्यास में इन समस्याओं पर भावनाएं व्यक्त की हैं और क्षोभ जाहिर किया है । 'राष्ट्र और मुसलमान' शीर्षक से प्रकाशित लेख संग्रह में आतंकवाद, दंगे जैसे समाज में बढ़ते नासूर पर लेखिका ने ज्वलंत विचार प्रकट किए हैं । मुस्लिम समाज सहित अन्य सामाजिक वर्गों की दशा-मनोदशा का इस लेख-संग्रह में वर्णन किया गया है ।

वर्तमान युग में सांप्रदायिक फसादों ने गंभीर स्वरूप धारण किया है । धार्मिक शक्तियां सांप्रदायिक तनावों को बढ़ा रही हैं, तथाकथित राजनीतिज्ञ इसका पूरा फायदा उठाकर अपना उल्लू सीधा कर रहे हैं । धर्म का स्त्री जीवन पर इतना प्रभाव है कि आज भी वह

धार्मिक मान्यताओं से उबर नहीं पा रही है, इसका सशक्त उदाहरण स्त्री द्वारा अपनी पति के जीवन रक्षा के लिए चंद्रमा की पूजा करना रहा है । इक्कीसवीं सदी की स्त्री शिक्षित होकर भी इस मान्यता की शिकार है । यह दुर्भाग्य की ही बात है ।

सांस्कृतिक परिवेश

प्रत्येक राष्ट्र की संस्कृति और सांस्कृतिक परम्पराएँ मान्यताएँ, विश्वास, रूचि, रहन-सहन व खान-पान की पद्धति अलग-अलग होती है । स्वतंत्रता के बाद देश की सांस्कृतिक स्थिति ने बड़ी तेजी से करवट बदली । सांस्कृतिक मूल्यों का पालन करने के बजाए व्यक्तिगत स्वतन्त्रता की भावना अधिक बढ़ने लगी । व्यक्ति भौतिकता का उपासक बन गया । वह परम्परा विरोधी, असंतोष और विद्रोह का प्रतीक बन गया । वैज्ञानिक प्रगति से एक ओर उसका जीवन सुखी होने लगा तो दूसरी और तनाव बढ़ने लगा । इस काल के जीवन में समस्याएँ, जटिलताएँ, द्वन्द्व और तनाव इस कदर बढ़ते गये, उतने पहले कभी नहीं बढ़े थे। अत: वह एक ओर विदेशी संस्कृति का अनुसरण कर महानगरों में स्वार्थ केन्द्रित व्यक्ति जीवन बना तो दूसरी ओर ग्राम, कस्बे एवं छोटे शहरों की जिन्दगी में परम्परागत सांस्कृतिक जीवन ही प्रासंगिक बना रहा । सामान्यत: शुद्ध आचरण परम्परा का दूसरा नाम संस्कृति है । संस्कृति का आधार धर्मशास्त्र और आध्यात्म था परंतु आगे चलकर इसका स्थान अंधविश्वास, अधर्म, आडम्बर, जाति प्रथा, संयुक्त परिवार, विवाह प्रथा, रीति रिवाज, स्त्री की स्थिति आदि बातें भारतीय संस्कृति की पहचान बनीं । 19 वीं - 20 वीं सदी का युग प्राच्य और पाश्चात्य संस्कृति की निकटता का युग है । ''[17] पाश्चात्य विचारधारा के व्यापक प्रभाव से पाश्चात्य संस्कृति का अंधानुकरण करने की प्रवृत्ति से भारतीय संस्कृति को गहरा धक्का लगा । व्यक्तिवाद और स्वार्थ ही जीवन का मूलाधार बन गया जिससे भाईचारा और मानवतावाद के प्रति विरक्ति आने लगी । ज्ञानवती के अनुसार ''त्याग के स्थान पर भोग की महत्ता बढ़ गई। 'सादा जीवन उच्च विचार' का सिद्धांत निरर्थक हो गया ।''[18] मानवीय मूल्यों के स्थान पर असत्य, अनैतिकता तथा भ्रष्टाचार का बोलबाला हो गया । धार्मिक, आडम्बर स्वार्थसिद्धि, धन लोलुपता के अवैद्य मार्ग, स्त्री विद्रोह, युवा आक्रोश आदि से सामाजिक अराजकता का उदय हुआ तथा सांस्कृतिक विघटन बढ़ने लगा ।

संक्षिप्त में कहा जाए तो आज सांस्कृतिक विकासकी दृष्टि से कला अकादमी, नाट्य अकादमी, फिल्म महोत्सव आदि के द्वारा सांस्कृतिक उपक्रमों को बढ़ावा दिया जा रहा है । आज परंपरागत संस्कृति की चौखट खंडित हो रही है । पाश्चात्य संस्कृति की ओर आकर्षण पहले से ही रहा है, लेकिन आज संगीत, नृत्य, गायन-वादन, क्रीड़ा, मनोरंजन, जनसंचार माध्यम, फिल्म आदि सभी क्षेत्रों में तेजी से परिवर्तन हो रहे हैं जिससे लोकनृत्य, लोकसंगीत, लोक कला, आदि पर प्रसारित पुराने कार्यक्रम लुप्त होते जा रहे हैं, उनका स्थान एफ. एम.

रेडियो यथा, रेडियो मिर्ची आदि कार्यक्रमों ने ले लिया है। साथ ही, दूरदर्शन के स्थान पर आज सैकड़ों नये चैनलों ने ले लिया है, जिससे एक तरफतो कला क्षेत्र में विकास हो रहा है पर दूसरी ओर सांस्कृतिक विघटन बढ़ रहा है । संस्कृति एवं परंपरा की सबसे बड़ी शिकार है स्त्री । किसी भी उत्पाद का विज्ञापन हो, उत्पाद स्त्री से संबद्ध हो न हो, उसमें नारी की तस्वीरें ही प्रदर्शित होती हैं ।

2.1.7 राजनैतिक परिवेश :

1947 की आजादी हमारे देश की तत्कालीन प्रमुख घटना रही है । 1947 की आजादी को कतिपय प्रगतिशील आलोचक सत्ता का हस्तान्तरण मानते हैं जिसे ब्रिटिश पूँजीपति वर्ग ने भारतीय पूँजीपतियों के नुमाइन्दों को सौंपा है जिस पर अनेक विचार-विमर्श हुआ है । मार्क्स मर्क्सिज्म एण्ड लिटरेचर' में इ. एम. एस. नम्बूदरीपाद के विचारानुसार ''वह एकता जो भारतीय स्वाधीनता आन्दोलन के भीतर स्थित रही थी और फलतः प्रगतिशील लेखकों में बनी हुई थी, उस पर भीषण आघात हुआ । सत्ता के हस्तान्तरण, भारतीय जनता द्वारा प्राप्त सत्ता के स्वरूप एवं वास्तविकता तथा आगे बढ़ने के परिप्रेक्ष्य के सवालों पर गहरे मतभेद खड़े हुए । ... इन गहरे विवादों के साथ बी. डब्ल्यू. ए. प्र. ले. स. कम्युनिस्ट और गैर कम्युनिस्ट दो व्यापक समूहों में विभाजित हो गया ।''(19)

स्वतंत्रता के नाम पर जो राष्ट्रीय स्तर पर नंगा नाच हुआ है वह कांग्रेस पार्टी के द्वारा नेहरु वंश का 35 वर्षीय आधिपत्य है । जवाहर लाल नेहरू के बाद उनकी पुत्री इंदिरा गांधी राष्ट्रीय नेतृत्व पर छाई रही और उनकी हत्या के बाद उनके पुत्र राजीव गांधी ने नेतृत्व की डोर संभाल ली । रोहिताश्व के विचारानुसार ''स्वतंत्रता प्राप्ति के 52 वर्षों के बाद भी विहंगम पर्यवेक्षण करें तो राजनैतिक क्षेत्र में काँग्रेस दल का प्रजातन्त्रीय आपा-धापी का खेल, भारत के शहीद और सच्चे क्रान्तिकारियों के प्रति सत्ता का उपेक्षा भाव, तेलंगाना का सशस्त्र आन्दोलन, राष्ट्रमंडल की सदस्यता, मिश्रित उद्योग-नीति, अहिंसा और पंचशील के लचर सिद्धान्त, गुलाम भारत के संविधान पर आधारित भारतीय गणतन्त्र का संविधान भारतीय समाज की यथास्थितिवादिता, इन सबके बावजूद एक ही प्रवृत्ति के अनेक लोगों का अनेक दशाब्दियों तक पार्टी बदलकर सत्ता में रह जाना और अंततः 1962 में भारत-चीन सीमा संघर्ष और उसमें भारत की शर्मनाक पराजय .... मोहभंग, विसंगति-बोध, नेहरू युग की समाप्ति तथा कम्युनिस्ट वामपंथी शक्तियों, गुटों में 1964 से बिखराव की लम्बी प्रक्रिया समकालीन कविता के प्रस्थान बिन्दु के महत्वपूर्ण तत्व तो हैं ही, साथ ही साथ सामाजिक आर्थिक क्षेत्र में समस्त भारतीय प्रदेशों में सूखा, बाढ़, अकाल की विभीषिका, जन असंतोष, सत्ता उदासीनता, आत्मपरायेपन, प्रशासन में भ्रष्टाचार एवं मुद्रा के वास्तविक मूल्य में

निरंतर कमी, विदेशी ऋण व करों में लगातार अधिकता की स्थिति रही है जो राजनैतिक ढाँचे की आदर्शहीनता का प्रमाण हैं ।''(20)

सातवें दशक के परवर्ती दौर में भारत के विभिन्न संस्थानों में हड़तालों का चक्र, श्रीकाकुलम, पार्वतीपुरम् का नक्सलवादी आंदोलन, विरोधी पार्टी की दल-बदल नीति से लाभ उठाकर इंदिरा गांधी द्वारा जून 1975 में आपात काल की घोषणा और 1977 में दक्षिणपंथी ताकतों का सत्ता में केन्द्रीयकरण तथा परवर्ती समय 1979 में जनता पार्टी का विघटन राजनैतिक संक्रमण का प्रमाण है । राजनैतिक स्तरपर भारतीय राष्ट्रीय प्रशासन में 1979 में इंदिरा गांधी की पुन: सत्ता में वापसी हुई । सन् 1984 में इंदिरा गांधी की हत्या के उपरान्त राजीव गांधी सत्ता में आये, राजीव गांधी के शासन काल में स्त्री के अधिकारों के प्रति उचित ध्यान दिया गया । राजीव गांधी की हत्या के उपरान्त यह युग राजनीतिक दृष्टि से उथल-पुथल का युग माना जाता है । बीसवीं सदी के अंतिम में दशक राजनीतिक परिवेश अस्थिरता एवं भ्रष्टाचार की दृष्टि से आगे रहा । इसी समय संपन्न संसदीय चुनाव में किसी भी एक पक्ष को निर्विवाद बहुमत प्राप्त नहीं हो सका । सन् 1991 के चुनाव में पारस्परिक वैमनस्य बढ़ता गया ।

बीसवीं सदी के अंतिम दशक की राजनीतिक शुरूआत पी. वी. नरसिंहराव के कार्यकाल से मानी जाती है। तब से लेकर आज तक अनेक नेताओं ने प्रधानमंत्री का पद संभाला । सन् 1992 में अयोध्या में बाबरी मस्जिद को गिराने के पश्चात कई संकट उभरे, उत्तर प्रदेश की भारतीय जनता पार्टी सरकार खारिज हुई, अनेक स्थानों पर भारत में सांप्रदायिक दंगे हुये जिससे संपूर्ण भारत वर्ष की राजनीति चरमरा उठी । सन 1993 में मुंबई और अहमदाबाद में सांप्रदायिक दंगे हुए, असम के कबीलाई क्षेत्रों के लिए स्वायतशासी परिषद की स्थापना के निर्णय द्वारा बोडो समस्या का समाधान हुआ । सन् 1994 में राष्ट्रपति शंकरदयाल शर्मा द्वारा निर्वाचन आयोग को बहुसंसदीय संस्था बनानेवाले विधायक को मंजूरी दी गई । कर्नाटक सरकार ने 73 प्रतिशत, तो तामिलनाडु सरकार ने 69 प्रतिशत पिछड़े वर्गों के लिए आरक्षण की व्यवस्था की । सन् 1996 में 'हवाला काण्ड' के तहत केन्द्रीय अन्वेषण ब्युरो ने जाँच पड़ताल की, इस दौरान कई मंत्रियों को गिरफ्तार किया गया, तो कइयों को त्यागपत्र देना पड़ा । इसी दौरान प्रधान मंत्री वी. पी. सिंह ने मंत्रिपरिषद से इस्तीफा दिया और दसवीं लोक सभा भंग हुई । प्रधानमंत्री अटल बिहारी वाजपेयी के प्रधानमंत्री पद के नेतृत्व में ग्यारहवीं लोकसभा का जन्म हुआ । 28 मार्च 1997 को भारतीय जनता पार्टी के सरकार ने त्याग पत्र दिया । इसके पश्चात देवेगौड़ा प्रधानमंत्री बने । इसी समय यूरिया घोटाला, चिकित्सा उपकरण घोटाला, झारखंड मुक्ति मोर्चा सांसद घूस काण्ड, दूरसंचार घोटाला इत्यादि कई घोटाले राजनीति के पटल पर दिखाई देने लगे । सन् 1997-98 के बीच इंद्रकुमार

गुजराल प्रधानमंत्री बने इनके शासन काल में लालू प्रसाद यादव का पशुचारा घोटाला प्रकाश में आया, वित्त विधेयक, सरकार द्वारा महिलाओं के लिए लोकसभा तथा विधान सभा में तैंतीस प्रतिशत आरक्षण की व्यवस्था करनेवाला विधेयक लोकसभा में पेश किये गये । इसी दौर में राजनीति क्षेत्र में अपराधीकरण का बोलबाला शुरू हुआ । राजनीति के प्रश्रय में गुण्डाराज बढ़ने लगा, जिससे हत्याकाण्ड, बम विस्फोट, माफियाओं का आतंक निरंतर बढ़ता गया ।

मार्च 1998 में अटल बिहारी वाजपेयी प्रधान मंत्री पद के लिए पुन: नियुक्त हो गये । उनके कार्यकाल में देश को प्राकृतिक आपदाओं का सामना करना पड़ा, कारगिल जैसे युद्ध को भोगना पड़ा, बम विस्फोट, आतंकवाद, हवाई जहाज अपहरण, हिन्दू मुस्लिम साम्प्रदायिक दंगे आदि घटनाएँ घटित हुईं। सन् 2004 से मन मोहन सिंह ने प्रधान मंत्री पद संभाला । सन् 2005 में मुंबई ट्रेन विस्फोट फिर सन् 2008 के 26 नवम्बर को मुंबई के ताज, ओबेराय होटलों व मुंबई सीएसटी स्टेशन पर आतंकवादियों ने हमले किए । सन् 2009 में डॉ. मनमोहन सिंह लगातार दूसरी बार प्रधानमंत्री बने ।

2.2 उपन्यास, कहानी एवं यात्रा लेखन

2.2.1 नासिरा शर्मा का उपन्यास सृजन

आज के दौर में नासिरा शर्मा ही एक ऐसी लेखिका प्रमाणित हुई है जिन्होंने विभिन्न परिवेश के समय और समाज, देश-देशांतर की सामाजिक सोच व ताने-बाने को ईमानदारी और सफलता से प्रस्तुत किया है । 'अक्षयवट', 'कुइयांजान' नासिरा के वे उपन्यास हैं जो समाज के विभिन्न तबकों के पात्रों को सजीवता से चित्रित करते हुए मूलभूत समस्याओं यथा, क्रमश: युवा वर्ग की समस्या एवं जल समस्या पर केन्द्रित हैं जबकि 'शाल्मली' और 'ठीकरे की मंगनी' उपन्यास क्रमश: पढ़ी-लिखी नगरीय महिला तथा रुढ़िग्रस्त समाज की कूपमंडूपता की काल-कोठरी में कैद स्त्री की मनोदशा और इस मनोदशा से बाहर निकलने की जद्दोजहद को रुपायित करते हैं । उनका कथा साहित्य सामाजिक एवं विशेषतया स्त्री विषयक संवेदनाओं के विविध आयामों से लबरेज है । अन्य समकालीन एवं पूर्ववर्ती लेखिकाओं से उनका लेखन इसलिए भी भिन्न साबित होता है क्योंकि उनकी रचनाओं का पहला ड्राफ्ट अंतिम नहीं होता । अनेक सोच-विचार, चिन्तन-अनुचिन्तन के बाद ही वह प्रकाशन योग्य बनता है और पाठकों के सामने आता है । इस विलक्षण शैली पर किसी पूर्ववर्ती और समकालीन लेखक की छाप या छाया की प्रतीती नहीं होती । उनका आत्मचिंतन ही उनके लेखन का आधार बना है । यह विशेषता उन्हें अपने समकालीनों से अलग करती है ।

अपना घर, परिवार, व्यक्ति, समाज और देश जटिल समस्याओं का पुंज है । इन समस्याओं पर नासिरा शर्मा ने बड़ी बारीकी से सोचा है, विचार किया है और इन्हीं समस्याओं को आधार बनाकर उपन्यासों और कहानियों की इमारत खड़ी की गई है । 'जीरो रोड' लेखिका का सद्य प्रकाशित उपन्यास है जिसमें लेखिका ने आतंकवाद जैसी गंभीर व ज्वलंत समस्या को गहराई से उकेरा है । समस्याओं से प्रभावित होने वाले व्यक्ति-समाज को लेखिका ने 'जीरो रोड' में स्वयं अनुभव किया हुआ सा आभास दिया है । इसलिए यह इमारत अपनी लगती है । लेखिका की कहानियों में भी समस्या पर गहरी नजर व उससे निजात पाने की कोशिश झलकती है । लघुकथाओं में भी यह प्रयास सुस्पष्ट प्रतीत होता है । 'इब्ने मरियम' और 'और गोमती देखती रही' ऐसी ही कयानियां हैं । ललित शुक्ल लिखते हैं - ''नासिरा शर्मा की कहानियों को पढ़कर पता चलता है कि सफर शुरु करने से पहले उन्हें पक्का पता होता है कि उन्हें जाना कहां है । यही कारण है कि उनके किरदार अपने ठीक गंतव्य की ओर हमेशा आगे बढ़ते दीखते हैं । पाठक विचारों के घालमेल झेलने से बच जाता है । यह बात 'संगसार', 'इब्ने मरियम', 'दूसरा ताजमहल', 'सिक्का', 'मरियम' और 'बुतखाना' सरीखी कहानियों में देखी जा सकती है । 'बुतखाना' नासिरा शर्मा की पहली कहानी है । मैं इन कहानियों के शिल्प-कौशल की बात नहीं कर रहा हूं इसलिए कि शिल्प कौशल तो रचना का साधन होता है, साध्य नहीं । जब और जहां कोई लेखक शिल्प-कौशल को साध्य मानने पर उतारु हो जाता है तो रचना का ताना-बाना ढीला पड़ने लगता है ।''(21) वस्तुत: लेखिका नासिरा शर्मा जीवन की मार्मिक अनुभूतियों की कथा लेखिका हैं । जहां आदमी और आदमीयत है वहां जिंदगी और उसका मर्म है । मर्म का आलेखन ही रचना को मार्मिक और जीवन्त बनाता है और लेखन में सजगता और सतर्कता ही उसे सर्वप्रिय बनाती है ।

नासिरा द्वारा रचित कथा-साहित्य इतना सशक्त और बेजोड़ है कि पाठक प्रभावित हुए बिना नहीं रह सकता । कभी मुस्लिम होते हुए हिंदू पुरुष से विवाह करने के रुप में चर्चा में रही, कभी स्वयं मुस्लिम देशों या फिर भारत के ही मुस्लिम परिवार की सोच को अपनी लेखनी के जरिए लोगों के बीच लाने के लिए विवादों में रही, कभी तथाकथित टिप्पणीकारों द्वारा अल्पसंख्यकवादी करार दिए जाने के कारण चर्चा में रहीं तो कभी पारम्परिक मान्यताओं को चुनौती देने के कारण । पर यह सही है कि उनके आगमन से साहित्य क्षेत्र में खलबली मच गई । बिना किसी वाद, गुट, समूह में खुद को शामिल किए अनवरत रूप से रचनात्मक कार्यों में लगे रहना प्रारंभ से ही लेखिका ने स्वीकार किया है । तन्मयता व अध्यवसायिता से विभिन्न सामाजिक पहलुओं पर कलम चलाने से लेकर स्त्री विमर्श के नए-नए आयामों को वह अपने कथा साहित्य के माध्यम से वाणी देती रही । वे कहती हैं - ''मेरी नजर में औरत को अपनी तरह जीने की आजादी मिले । उसको इंसान की तरह जीने का हक मिले

मगर सारे कर्तव्यों से मुक्ति नहीं । फिलहाल स्त्री विमर्श का अर्थ अक्सर 'हंटरवाली' से लगाया जाता है जो पूरे समाज में अकेली होती है जबकि स्त्री विमर्श या स्त्रीवाद का अर्थ व्यापक अर्थों में हो कि जो बदलाव आये या लाया जाय उससे सारी स्त्रियां फायदा उठा सकें ।''(22)

यह कहा जा सकता है कि नासिरा के कथा-साहित्य में सिर्फ स्त्री विमर्श है, ऐसा नहीं है । उन्होंने पुरुषों के भी विभिन्न रंगों की छटा दर्शाई है । वे कहती भी हैं कि पुरुष विमर्श भी तो अनुल्लेखनीय नहीं हो सकता । और कहें तो पुरुषों पर चर्चा किए बगैर, उनके समाज के अलग-अलग हिस्सों पर, प्रभावों पर नजर किए बगैर तो स्त्री विमर्श भी अधूरा है । 'ठीकरे की मंगनी' की पात्र महरूख कहती भी है - ''औरत की जिन्दगी के सारे करीबी व जज्बाती रिश्ते मर्द से ही होते हैं । बाप, भाई, शौहर, महबूब, बेटा जैसी अहमियत को नकार कर औरत कहां जाएगी रफत भाई ?''(23)

नारी केन्द्रित यह उपन्यास स्त्री-दृष्टि से पुरुष व पुरुष वर्चस्व समाज का विश्लेषण-विवेचन भी करता है । स्त्री-मुक्ति का सवाल समाज के भीतर से ही उठता है, उससे कटकर नहीं । अतएव, उपन्यास में आद्यन्त रफत की कहानी भी विकसित की गई है । उसके माध्यम से मर्द-औरत के 'स्वभावगत विभेद' को दर्शाया गया है । जिस तरह ऐतिहासिक, सामाजिक संरचना में उनके 'जैविक भेद' और 'लिंग भेद' का निर्धारण किया गया है, उससे उनके स्वभाव में व सोच में भी समानता नहीं रह गई ।वस्तुत: मैत्रेयी, प्रभा खेतान और इन दोनों से पूर्व कृष्णा सोबती के 'मित्रो मरजानी' में यह विमर्श मिलता है, परंतु स्त्री विमर्श का यह खालिस और पुरसुकून रुप नासिरा की रचनाओं में देखने को मिलता है ।

'शाल्मली' को उदाहरणस्वरुप प्रस्तुत करें तो स्त्री-मनोभाव का गहराई से किए गए अनुभव का प्रस्फुटन यहां प्रतीत होता है । रामधारी सिंह दिनकर की निम्न पंक्तियां 'शाल्मली' के कथासार में चित्रित होती हैं :-

गृहिणी जाती हर दांव,
सम्पूर्ण समर्पण करके ।
जयिनी रहती बनी अप्सरा,
ललक पुरुष में भरके ।

सम्पूर्ण समर्पण करके स्त्री प्रेम करती है । प्रेम में डूब जाती है । प्रेम में डूबती है पहले, वासना में रमती है बाद में । 'शाल्मली' की शीर्षक पात्र शुद्ध रुप से दिनकर जी की उक्त पंक्तियों को चरितार्थ करती है । शाल्मली नरेश को तन भी सौंपती है, मन भी । मन पहले सौंप चुकी होती है । इसलिए जब कभी नरेश ताने मारता है, शाल्मली कट कर रह जाती है

। पर संबंध को बनाए रखती है । ससुराल और मायके दोनों से समान रूप से स्वयं को जोड़कर रखती है, साथ ही, नरेश को भी जोड़े रखना चाहती है । एक की शहर मायका होने के कारण कई-कई बार किसी कारणवश उसे काम से लौटने के बाद मायके जाना पड़ता है, कभी दफ्तर से सीधे मायके चली जाती है । नरेश को बाद में बुलाने के लिए फोन करती है, मिन्नतें करती है, मान-मनुहार भी करती है । कभी-कभी नरेश भाव भी खाता है, दामाद होने के नाज में नखरे भी करता है, चिढ़ भी जाता है । दोस्त आने वाले हैं, कहकर पीछा छुड़ाने का प्रयास भी करता है । किसी पार्टी में जाना है, कहकर फोन काट देता है । परन्तु शाल्मली अटल यौवना की भांति उसे सबसे जोड़े रखती है । कहा जाना युक्तियुक्त होगा कि शाल्मली नामक एक पढ़ी-लिखी, आत्मनिर्भर व सर्वगुण संपन्न लड़की के आत्म संघर्ष का चित्रण है लेखिका के इस प्रथम व कथानक तथा स्त्री संवेदनाओं को उकरने में सफलतम उपन्यास में जिसकी शादी पढ़े-लिखे परंतु दिमागी रुप से बौने और दकियानूसी पुरुष (नरेश) से हो जाती है और वह जिंदगी भर उसके दिमागी बौनेपन को झेलती-सहती रहती है ।

लेखिका द्वारा रचित 'कुइंयाजान' उपन्यास है तो विश्वव्यापी जल-समस्या पर केन्द्रित परन्तु रत्ना, रमजानी, समीना, सफिया, खुरशीदआरा और शकरआरा के रुप में उपन्यास रुपी माले में पिरोई गई मनकाएं अपने मनोभावों की अदाकारी एवं संवाद-अदाएगी के जरिए विभिन्न सामाजिक परिवेश एवं मनोभाव को चित्रित करती हैं । लेखिका ने एक बड़ी ही सरस गाथा के साथ जीवंत चित्र उकेरे हैं इस उपन्यास में । इसके पात्रों की अनंत जिजीविषा की भांति समूची कथा-यात्रा में सरस्वती की अंतर्धारा की भांति जल-गाथा भी प्रवाहित होती रहती है । इस उपन्यास का आरम्भ ही होता है एक ऐसी क्लासिक संकल्पना के साथ -

''मस्जिदवाली गली के इमाम का इंतकाल हो गया है । उन्हें दफन करने के पहले शव को नहलाने के लिए पानी की तलाश हो रही है । नल सूखे पड़े हैं और .... ''(24)

ऐसी संकल्पनाएं जो सर्वोत्तम शब्द प्रयोगों से भाव बोध कराती हैं, पूरे उपन्यास में विपुलता से पढ़ने को मिलती हैं । कहीं-कहीं आवश्यकतानुसार आंचलिक शब्दों की चाशनी भी मिठास देती हुई प्रतीत होती है । यथा,

''कितना सुंदर ! कितनी मनमोहिनी सूरत है इसकी, जैसे स्वयं मुरली मनोहर साक्षात अंखियन के सामने आय गये हों ।''(25)

''बताशेवाली गली में सुबह फूट चुकी थी, मगर उसका उजाला तंग गली में अपना

दूधिया रंग अभी बिखेर नहीं पाया था । मंदिर की घंटी और दूधवाले की साइकिल की टनटनाहट से एक-दूसरे से सटे घर कुनमुना उठे ।''(26)

''खिली धूप में बहते पानी पर, पिछली चांदी को देखते वे दोनों कार से उतर, पैदल चलते हुए घाट पर जाकर बैठ गए ।''(27)

'सात नदियां एक समंदर' लेखिका द्वारा ईरान की क्रांति पर लिखा गया उपन्यास है । यह एक ऐसा उपन्यास है जहां पर समय का बहाव और घटनाओं का कालचक्र घूमता और बहता नजर आता है । नदियों का अंत समंदर में मिल जाना है, मगर पानी का भाग्य केवल बहते जाना है । स्वतंत्रता के लिए संघर्ष का जो बहाव निरंतर बहनेवाला पानी है उसकी कलकलाहट, इस उपन्यास की हर पंक्ति में प्रतिध्वनित होती है - ''कहां होगी परी इस समय ? जाने मलीहा का क्या हाल है ? तय्यबा तो जाने किस भूलभुलैया में फंसी होगी, खुदा करे जिंदा हो, हम सबसे महनाज निकली, कम-से-कम देश से दूर, विदेश में सुख से तो रह रही है । यूं चिंता-भय से अधमरी तो नहीं रहती है । क्यों न महनाज को पत्र लिखा जाए, शायद कल कोई शहर जाए तो वहीं से पोस्ट कर दे । यह सोचकर सूसन बिस्तर से उठकर कुरसी पर बैठ गई और पत्र लिखीं । गुजरे कल की मीठी यादों का जिक्र किया ।''(28)

2.2.2 नासिरा शर्मा का कहानी साहित्य

नासिरा शर्मा की कहानियां शहरी व ग्रामीण दोनों परिवेश की महिलाओं के अन्त:संघर्ष, समस्याओं और मनोदशा को वाणी दी है । 'बुतखाना' लेखिका की पहली कहानी है जिसके बारे में लेखिका निजी वार्ता में बताती है - ''स्कॉटलैंड में तीन वर्ष गुजार कर मैं दिल्ली लौटी थी । इलाहाबाद के जीवन-मूल्य पृष्ठभूमि में थे । लंदन-एडिनबरा के कायदे-कानून और तर्कपूर्ण जीवनशैली से वास्ता पड़ चुका था जो मशीनी होने के बावजूद गैरइंसानी नहीं थी । ऐसी हालत में दिल्ली की रेलपेल, खुदगर्जी और बनावट ने मुझे गहरी ठेस पहुंचाई थी । उसी ने यह कहानी लिखवाई । 'इब्ने मरियम' भोपाल गैस त्रासदी पर लिखी मेरी कहानी है । भोपाल मुजफ्फर अली की पूरी टीम के साथ जाने का मौका मिला । उस वक्त वे **'शीशों का मसीहा कोई नहीं'**, फैज अहमद फैज की इस नज्म को लेकर भोपाल के गैस पीड़ित इलाके में घूम-घूम कर एक डाक्यूमेंटरी तैयार कर रहे थे । ढेरों लोग, उनकी बातें, देख-सुन रहे थे । सब से ज्यादा मुझे तब परेशानी लगी जब किसी ने कहा कि इस गैस कांड के चलते दो लड़कियों का तलाक हो गया । इतनी गहरी मानवीय पीड़ा में भी लोग इतने खुदगर्ज़ और जाहिल हो सकते हैं, मुझे दुख से ज्यादा ताज्जुब हुआ था । कहने को वह बात केवल एक वाक्य में थी मगर मुझे महीनों तक परेशान करती रही थी कि वह समाज कितनी तरह के अनुभवों से गुजर रहा है और वहां का हर इंसान इस दुखद घटना में किस-किस रूप

से अपनी भूमिका अदा कर रहा है । मेरे अंदर आक्रोश कतई नहीं था । पूरी कहानी को मैं उस विश्वास पर कटाक्ष करते हुए लिखना चाहती थी जिसका उन्हें कयामत के बाद इंतज़ार था मगर वास्तविक जीवन में वे उससे भी ज्यादा भोग लेते हैं । हां, यह कह सकती हूं कि इन विश्वासों के प्रति अलबत्ता एक कसैलापन था कि ये दे कुछ नहीं पाते हैं मगर इंसानों के साथ लगातार चलते रहते हैं ।

'बुतखाना' कहानी संग्रह में अन्य 21 कहानियां हैं जिनमें 'नमकदान', 'गुमशुदा लड़की', 'अपनी कोख', 'घुटन', 'ठंडा बस्ता', 'इच्छा घर', 'खिड़की', 'मरियम', 'कैदघर', 'मटमैला पानी', 'शर्त', 'कल की तमन्ना' आदि शामिल हैं । इस संग्रह में सात लघुकथाएं भी शामिल हैं यथा, 'आज का आदम', 'निकास द्वार', 'पीछा', 'उलझन', 'अभ्यास', 'तन्हा' और 'पनाह' । सभी लघुकथाएं विचारोत्तेजक व सामाजिक समस्याओ व बुराइयों पर प्रहार करती हैं ।

वस्तुत: लेखिका का मानना है कि उनकी हर कहानी अपनी तरह से वजूद में आई । इन कहानियों की रचना की पृष्ठभूमि में पनप रही अपनी सोच व अन्त: बाह्य परिवेश के बारे में वे कुछ यूं बयां करती हैं - ''दूसरा ताजमहल भी मेरी इन कहानियों की तरह बहुत पंसद की गई है । इसकी पीड़ा उतनी ही गहरी है जितनी काम की निष्ठा को न पहचान सकने पर मैंने 'सिक्का' लिखी थी । उसी तरह जबानी अदा किए गए शब्दों का प्रयोग इतनी लापरवाही से लोग करने लगे हैं कि उन्होंने शब्दों का अर्थ, गरिमा, उनका वाइब्रेशन ही खत्म कर दिया है । कहने को 'सिक्का' की तरह यह भी एक 'प्रेम' कहानी है मगर वास्तव में आज का यह बेहद तकलीफदेह सच है, जो इंसान को जानवर से अलग करने वाली पहचान को अपनी ही आवाज से धूमिल बना रहा है ।''(29)

'शामी कागज' और 'संगमार' कहानी संग्रहों के संदर्भ में मधुरेश की टिप्पणी इस प्रकार हैं - ''नासिरा शर्मा की कहानियां महिला-लेखन में अन्तर्वस्तु के विस्तार का एक उल्लेखनीय उदाहरण हैं । उथल-पुथल भरे समूचे एशियाई समाज की साक्षी बनकर उन्होंने ईरान और अफगानिस्तान के गृहयुद्धों को बहुत निकट से देखा है । 'शामी कागज' से ही उन्होंने ईरान की पृष्ठभूमि में कहानियों का जो सिलसिला शुरु किया था, 'संगसार' की कहानियां उसी का विस्तार हैं । ईरान की पृष्ठभूमि पर लिखी लेखिका की पहली कहानी है 'खुशबू का रंग' और दूसरी 'मिस्त्र की ममी' । स्त्री विमर्श पर केन्द्रित उनकी शीर्ष कथा है 'पत्थर गली' जिसकी मुख्य पात्र फरीदा के अंदर बेहतर जिंदगी जीने की छटपटाहट मौजूद है, वहीं 'एक न समाप्त होने वाली प्रेम कहानी' की पात्र चंद्रा के लिए प्रेम की निष्ठा एक ऐसा वाहन भी जिसपर बैठकर वह एक लंबी यात्रा पर निकलकर पति से लेकर प्रेमी को एक

पड़ाव तक उसका भावुक मंचन कर आगे स्टेशन पर उसे जिन्दगी से खारिज कर दूसरी तरफ मुड़ जाती है क्योंकि उसका लक्ष्य बेहतर जीवन जीने की तड़प 'पत्थर गली' की फरीदा में भी है और 'एक न समाप्त होने वाली कहानी' की चंद्रा में भी है । अंतर यह है कि जहां चंद्रा को भौतिक सुख और सच्चे प्रेम की इच्छा है, वहीं फरीदा को एक सम्मानित इन्सान की तरह जीने, भारतीय नागरिक के सारे अधिकार पाने तथा मानसिक स्वतंत्रता के साथ परिवार में बराबरी से सांस लेने की है ।

इब्ने मरियम : 'इब्ने मरियम' नासिरा शर्मा का चौथा कहानी संग्रह है जो 1994 में प्रकाशित हुआ । इस कहानी संग्रह में कुल मिलाकर 13 कहानियां संग्रहीत हैं । शीर्ष कहानी 'इब्ने मरियम' का मुख्य किरदार आरिफ बटुएवाला है । कहानी का परिवेश भोपाल गैस त्रासदी है जिसने आरिफ जैसे वात्सल्य से ओतप्रोत पिता का मानसिक संतुलन बिगाड़ देता है क्योंकि उसकी पुत्री को उसके ससुरालवालों ने इसलिए त्याग दिया कि जहरीली गैस से उसकी कोख भी अछूती नहीं रह गई हेागी और उसके बच्चे अपंग पैदा होंगे ।

सबीना के चालीस चोर : लेखिका का यह पांचवां कहानी संग्रह है । शीर्ष कथा की मुख्य पात्र है छह-सात वर्षीय लड़की सबीना जो जनगणना वालों के द्वारा अपने दोस्तों के घरों पर पड़े कच्चे नामों को फ्राक से इस भय के कारण मिटाती है कि कहीं अलीबाबा चालीस चोर की कहानी वाला सरदार उसके दोस्तों को न मरवा दे । नासिरा शर्मा की इस संग्रह की कहानियां रोचक भी हैं और स्त्री पात्रों के विभिन्न कैनवासों में रंग भरती हुई प्रतीत होती है ।

खुदा की वापसी : 'खुदा की वापसी' लेखिका का छठा कहानी संग्रह है । शीर्ष कहानी लेखिका की सोच के विस्तार का नमूना है । लेखिका का कहना है कि आप अपनी शक्ति के अनुसार अपना संसार रच सकते हैं, अपनी पहचान बदल सकते हैं । अपने परिवेश को नकार सकते हैं । मगर एक चीज नहीं बदल सकते, वह है आपके जन्मदाता । जहां उन्होंने आपको जन्म दिया है वह परिवार आपका ऐसा ठोस यथार्थ होता है जो आपकी सारी उपलब्धियों के बावजूद आपके परिचय पत्र पर लिखा होता है । इस कहानी के जरिए लेखिका ने यही बताने की कोशिश की है कि अपने उद्‌गम को पहचानने की कोशिश की जानी जाहिए, समाज और औरत के घुटन की बुनियाद समझनी चाहिए ताकि उन्हें पीड़ा-प्रताड़ना से मुक्ति दिलाने में महत्वपूर्ण भूमिका अदा की जा सके । इस कथा संग्रह में कुल नौ कहानियां हैं जिनमें 'चार बहनें भी शीशमहल की', 'दहलीज', 'दिलआरा', 'पुराना कानून', 'दूसरा कबूतर', 'बचाव', 'मेरा घर कहां' और 'नई हुकूमत' शामिल है ।

किस्सा जाम का : इस कहानी संग्रह की सभी सैंतीस कहानियां ईरान की लोक

संस्कृति पर आधारित हैं । बल्कि यूं कहें कि हिन्दुस्तान और ईरान की साझा संस्कृति एवं समानता जो दोनों देशों की विरासत हैं, का आईना प्रस्तुत करती हैं ये कहानियां तो अतिशयोक्ति नहीं होगी । नासिरा कहती हैं कि जब इन दोनों देशों की लोक-संस्कृतियों की समानता ईरान में वहां की लोक कथाओं में नजर आईं तो मेरा कथाकार मन पुन:सृजन को लिए व्याकुल हो उठा । ईरान की खुरासानी बोली से हिंदी में अनुवाद करते वक्त नासिरा शर्मा ने रचना के मुहावरे को पकड़े रखा है । निष्कर्षत: कहा जा सकता है कि इस संग्रह की कहानियां जरा-भर भी एहसास नहीं करातीं कि वे उनके अपने 'लोक' की नहीं हैं । यह सीधापन ही इन कहानियों का वास्तविक सौंदर्य हैं । लेखिका के शब्दों में भारत और ईरान सभ्यता एवं संस्कृति की दृष्टि से एक चने की दो दालों हैं । संग्रह की कुछ कहानियों या यूं कहें कि किस्सों के शीर्षक हैं - 'परी राजकुमारी', 'चतुर दरवेश', 'पश्चिम की राजकुमारी दक्षिण का राजकुमार' 'आशिक देव', 'सात बहनें', 'बुद्धिमान लड़का', 'परिजाद', 'नारंगी की लड़की', 'शेरजाद' और 'घर्मात्मा चींटा' ।

2.3 अनुवाद, डायरी एवं रितोर्पाज

नासिरा शर्मा ने विविध देशों की यात्रा करने के उपरांत ना सिर्फ उपन्यास और कहानियों की रचना की है बल्कि कई रिपोर्ताज भी लिखी हैं । जिनमें 'मरजीना का देश इराक', नवीनतम एवं प्रमुख है । इस पुस्तक में उन्होंने इराक के विविध पहलुओं को एक पत्रकार की दृष्टि एवं लेखनी से उजागर किया है । 1986 में 'सारिका' पत्रिका के ईरान कथा विशेषांक में उन्होंने न सिर्फ संपादकत्व की भूमिका निभाई थी बल्कि उन्होंने सारिका के इस अंक सहित उस दौरान प्रकाशित देश की कई पत्रिकाओं मे डायरी के रुप में रचनाएं भी लिखी है । 'अफगानिस्तान : बुज़कशी का मैदान एक महादेश की अभिशप्त गाथा के रुप में उन्होंने रची जो उनके अथक परिश्रम की परिणति है । अपने ढंग की हिन्दी में लिखी यह पहली पुस्तक है जिसमें अफगान समाज की समाजशास्त्रीय विवेचना की गई है ।

नासिरा शर्मा संभवतया हिंदी की ऐसी पहली लेखिका है जिसने देश-विदेश की खूब यात्राएं की हैं । ईरान और अफगानिस्तान की यात्राएं ऐसे कठिन समय में की जब वहां युद्ध और संघर्ष के दिन थे । सामाजिक ताना-बाना, राजनीतिक-आर्थिक परिवेश पूरी तरह छिन्न-भिन्न थे । इन देशों में कहीं भी स्वच्छंद घूमना जाना जोखिम में डालने जैसा था । लेखिका ने ऐसे माहौल में निर्भीकता एवं दिलेरी से इन देशों की सड़कें, गलियां नापीं, बाजार, मुहल्लों और घरों में गईं, लोगों से मुलाकातें कीं, बातें कीं और अलग-अलग प्रकार के अनुभवों का भंडार इकट्ठा किया जो उनके विभिन्न यात्रा-वृत्तातों में उभर कर आया है । कहानियों के जरिए भी ये अनुभव उन्होंने पाठकों के साथ बांटे हैं । 'अफगानिस्तान:

बुजकशी का मैदान' उनका लिखा यात्रा वृत्तांत है जिसमें उन्होंने मुस्लिम कट्टर पंथियों को कटघरे में ला खड़ा किया है । लेखिका यात्राओं को किसी भी रचनाकार के लिए रचना कर्म का अनिवार्य हिस्सा मानती हैं । वे उदाहरण देते हुए बताती हैं कि लोकप्रिय फिलीस्तीनी कवयित्री फदवा तूफान ने अपनी जीवनी में लिखा था कि मुझे तीन चीजों की शदीद ख्वाहिश थी-एक किताब, चाहने वाला मर्द और यात्राएं । आज मैं सोचती हूं कि एक रचनाकार के लिए ये तीनों चीजें उसके फन की आत्मा हैं । फदवा जैसी रुमानी कवयित्री कैसे बाद में सामाजिक मुद्दों की प्रमुख कवयित्री बनी, शायद उसका सबसे बड़ा कारण अनुभव है जो उसने पुस्तक अध्ययन एवं यात्राओं से प्राप्त किया था । तभी इजरायली कमांडर ने कहा था कि फदवा की एक-एक पंक्ति हजार बुलेट के बराबर है । इसी तरह का दूसरा नाम ईरानी गुरिल्ला कवयित्री मर्जियेद अहमद उस्कुई का है जिसकी गोलियों से बिंधी लाश के पास सिपाहियों की जाने की हिम्मत नहीं पड़ी थी कि कहीं उठकर हमला न कर दे ।

इराक की पृष्ठभूमि राजनीतिक, सामाजिक और सांस्कृतिक पृष्ठभूमि को अपनी नजरों से देखकर, उनमें स्वयं को आत्मसात कर लिखी गई कृति है 'मरजीना.... ' । नासिरा इससे पूर्व ईरान की पृष्ठभूमि पर लिखे जाने को लेकर जानी जाती रही है । वह स्वयं कहती है कि मैं ईरान को लेकर कुछ लिखने के अंतिम दौर में थी, तथ्य और कागजात, नोट्स आदि संजोकर रखे हुए थे । मैं काफी कुछ लिख भी चुकी थी कि इराक जाने का न्यौता आया । विश्व भर के लेखक, पत्रकारों को इराक आने का निमंत्रण था । मैंने तो निमंत्रण पत्र दराज में डाल दिए कि उपन्यास लिखने की एकाग्रता भंग न हो वह भी तब जब रचनाकार लिखने के आखिरी चरण में हो । पर मेरे पति ने कहा कि 'यह अच्छा अवसर है । अब तक तुमने ईरान पर काम किया है । पर सिक्के के दूसरे हिस्से को भी देखना-चाहिए । तुम लेखक-पत्रकार हो । तुम्हें दोनों सिरों को देखना चाहिए, अन्यथा पूर्वाग्रह से ग्रसित होने का आरोप लग सकता है ।'(30) नासिरा ने इराक का दौरा किया । वहां की सरकारी बैठकों में नुमाइंदगी की, हिस्सा लिया, युद्धग्रस्त इलाकों में डरते हुए-सहमते हुए पर हिम्मत दिखाते हुए वह घूमी, विभिन्न वर्गों के लोगों से मिली, परिवारों में जाकर साथ बैठकर गप-शप किए, उन्हें-उनकी पृष्ठभूमि, उनकी सोच को जानने की कोशिश की । रिपोर्ताज शैली में लिखे गए इस लेख-संग्रह में संपन्न देश अमेरिका की धौंस को नहीं सहने वाले इराक, इराक वासियों और सद्दाम हुसैन की हिम्मत, हौसले और जिंदादिली की तस्वीर प्रस्तुत की गई है । उन्होंने तब अमेरिका की आलोचना की जब अमेरिकी दबाव शिखर पर था । 1980 से लेकर 2003 तक इराक ने क्या झेला, इसका मुख्तसर बयान लेखिका ने इस पुस्तक में ईमानदारी से बेबाक लहजे में दिया है । हाल के 25-26 वर्षों में इराक ने जो कुछ झेला है उसे दुनियाभर के लोगों ने देखा-पढ़ा-सुना है । वर्ष 2006 में ईद के मुबारक मौके पर सद्दाम हुसैन को फांसी दे दी गई ।

इससे भी इराक के बारे में, सद्दाम हुसैन के बारे में, उन्हें चाहने और न चाहने वालों के बारे में लोगों की उत्सुकता बढ़ी है । ऐसे में नासिरा की इस पुस्तक की अहमियत ऊंची हो जाती है । कारण कि इसमें यह जानने को मिलता है कि सद्दाम ने कैसे निरंतर प्रतिकूल परिस्थितियों में रहते हुए इराक को तरक्की करता हुआ, प्रगतिशील बनाया और इराक वासियों को फिक्रमंद बने रहने का हुनर सिखाया । इराक ने तीन बड़ी लड़ाइयां झेलीं 1980 से 2003 के मध्य । बावजूद इसके इराक के बगदाद, बसरा आदि शहरों को देखकर कहीं खंडहर, ध्वंस के निशान देखने को नहीं मिलते; क्योंकि लेखिका के अनुसार उधर युद्ध चल रह होते हैं, इधर इमारतों की मरम्मत हो रही होती है ।

''बगदाद कई बार उजड़ा और कई बार बसा, मगर हर तबाही के बाद वह उस संस्कृति एवं सभ्यता की बुनियाद पर दोबारा शादाब हो गया । लेखकों ने कलम दवात में डुबोये और कागज फिर अक्षरों से रंगे जाने लगे । मदरसों और खानकाहों की दीवारें उठने लगीं और संगीत में डूबी हवा दजला के पानी पर मचलती लहरों से अठखेलियां करने लगीं । इंसानों ने फिर बच्चों को जन्म देना शुरु कर दिया और कलाओं में डूबा बगदाद फिर बस गया ।'(31)

वस्तुतः बगदाद सिर्फ 1980 से 2003 के बीच ही नहीं उजड़ा, पहले भी कई बार लूटमार, आगजनी और कत्लेआम का कहर देख चुका है । कोई 750 वर्ष पहले चंगेज खां के पोते हलाकू के हुक्म से तातारी फौज ने, जिसमें तुर्क, खिरगीज, कौरलूक, अलयगूर और मुगल सिपाही मौजूद थे, वो नरसंहार किया था कि बगदाद की सड़कों पर बहते खून में उन सिपाहियों के घोड़ों की टांगें डूब गई थीं । मदरसों से लूटी किताबें दजला में डाल दी गई जो पानी में फूलकर एक-दूसरे से चिपक गई और एक पुल की शक्ल में ढल गई, जिसपर से पैदल और सवार बड़े आराम से गुजर जाते थे । बाकी नदी का पानी काफी दूर तक काला हो गया था ।

लेखिका ने यह वृत्तांत वर्ष 2003 में लिखा जब सद्दाम दुनिया की महाशक्ति अमेरिका से जूझ रहे थे । लेखिका ने तब सद्दाम की प्रशंसा की । हिम्मत से यह लिखा कि सद्दाम और इराक दोनों ने समाज की, महिलाओं की तरक्की को हमेशा तरज़ीह-तवज्ज़ोह दी । अरब देश भी मुस्लिम देश है लेकिन वे सिर्फ मक्का-मदीना में आने वाले हाजियों की फिक्र रखने तक सीमित रहना चाहते हैं ताकि आने वाले पिछड़े रहें और उनकी दुकान चलती रहे । पाकिस्तान, तुर्की भी मुस्लिम देश हैं, लेकिन वहां की महिलाओं की नारकीय स्थिति किसी से छुपी नहीं है । ऐसे में इराक में महिलाएं बुरका नहीं पहनतीं, घरों से बाहर निकलती हैं, ऊंचे पदों पर नौकरियां करती हैं, प्रेम विवाह करने की आजादी रखती हैं, इकलौती लड़की

को मां-बाप की मृत्यु के बाद पूरी जायदाद मिलती है, प्रसूति महिला को कुल 92 दिनों की दफ्तर से छुट्टी मिलती है, औरत यदि आर्मी में आती है तो उसकी पदवी सिर्फ अफसर की रहती है, श्रम कानून के अनुसार औरत और मर्द को बराबरी का दर्जा दिया गया है, आदी इराक भी इस्लाम का अनुयायी है लेकिन दूसरे मुस्लिम देशों जैसा पिछड़ापन, रुढ़िवादिता, कट्टरवाद एवं दकियानूसीपन यहां के लोगों में नहीं है । इसलिए लेखिका ने सीधे-सीधे स्वीकारा है कि इराकी औरत का वर्तमान सुनहरा है और यहां के लोग विशेष विचार के अधीन नहीं हैं । वे सम्मान के साथ जीना चाहते हैं और जीते हैं, बात-बात में हंसना उनकी आदत है जो मुझे प्रिय लगी । इसलिए वे सद्दाम हुसैन को पसंद करते हैं । दरअसल लेखिका ने आज से पांच साल पूर्व ही सद्दाम और इराक को पहचान लिया था और उसकी सही तस्वीर पाठकों के समक्ष रख दी । आज दुनिया के ज्यादातर देशों में लोग सद्दाम की सराहना कर रहे हैं उन्की मृत्यु के उपरांत । फांसी देने के समय और तरीके ने लोगों की हमदर्दी को बढ़ाया । पर 'मरजीना का देश - इराक' लिखते वक्त इराक की नब्ज पहचानना लेखिका की दूरदर्शिता और अनुभवी होने का सबूत देता है । 'बगदाद' का अर्थ होता है - 'शांति का शहर' । यह शहर मस्जिदों का शहर है । यहां चारों ओर गुलाब के फूल हैं - खूबसूरत-बड़े बड़े । युद्ध की विभीषिका में भी फूलों का खिलना यहां के लोगों की शांतिप्रियता का मजमून बताता है । इराकियों का संगीतप्रेमी होना और भारतीयों के प्रति प्रेम-भाव रखना शुरु से दोनों देशों को सांस्कृतिक दृष्टि से जोड़कर रखा है । लेखिका ने विख्यात इराकी संगीतकार मुनीर बशीर के बारे में लिखा है और उनसे बातचीत को प्रकाशित किया है । वे कहते हैं कि इराकी 'मकाम' और हिंदी 'राग' एक ही हैं । इराकी संगीत में 146 राग हैं जिनमें से 50-60 का प्रयोग होता है और इसके आधे राग हिंदी राग हैं । इराक में भी लोकगीत हैं । यानी, सांस्कृतिक देश है । परंपराओं और लोककलाओं को जीवित रखते हुए मुस्लिम कट्टरपंथियों के साथ-साथ इन्हें साथ देने वाले अमेरिका से लड़ने वाले इस देश और देशवासियों की सराहना करनी ही होगी । इराकी महसूस करते हैं कि अमेरिका ने ईरान - इराक को आपस में भिड़ाया ताकि उसके हथियार बिकें । इराकी यह भी महसूस करते हैं कि अमेरिका यही चाहता है कि इराकी पिछड़े और रुढ़िग्रस्त रहें । तरक्की नहीं करें । करें तो अमेरिकी शर्तों और नियमों पर ।

यह उपन्यास उल्लेखनीय है विशेषकर सद्दामोत्तर युग में क्योंकि लेखिका ने तब लिख दिया था कि इराक के बहाने अमेरिका का पतन शुरु हो गया है । इराक के सिलसिले से जो अमेरिका के नैतिक मूल्यों की हार हुई है वह अराजकता के इतिहास में भले ही सुनहरे अक्षरों में लिखी जाए मगर मानवीय एवं आधुनिक कहे जाने वाले इतिहास में सदा काले अक्षरों में याद की जाएगी । आज अमेरिका जिसको विजय कह रहा है दरअसल वह उसके पतन का

पहला कदम और पराजय की उद्घोषणा है । अमेरिकी डॉलर कमजोर हो रहा है और सूचना प्रौद्योगिकी के क्षेत्र में उसकी तूती समाप्त हो गयी है । उसने विश्व के लगभग सभी देशों की जनता के दिलों में नफरत का गहरा बीज बो दिया है । ये शब्द आज इतने प्रासंगिक हैं कि सामान्य व्यक्ति भी समझ सकता है । आम आदमी यह समझने लगा है कि अमेरिका अपनी सरपरस्ती में छोटे देशों, खास तौर से तेल के कुंओं वाले देशों यथा, कुवैत, ईरान और इराक को अपने अधीन रखना चाहता है ताकि उसका एकछत्र राज हो और दूसरे छोटे-बड़े सभी देश हर वक्त मदद के लिए उसके दरवाजे पर खड़े रहें ।

2.4 सीरियल लेखन : संस्करण और विमर्श

नासिरा शर्मा यूं तो कई टी.वी. धारावाहिकों से संबद्ध रही हैं तथापि उनके कुछ सीरियल काफी चर्चित रहे । इनमें पहला नाम 'शाल्मली' का लिया जा सकता है । 'शाल्मली' उनका लिखा पहला उपन्यास है जिसपर यह सीरियल तैयार हुआ । पति-पत्नी — पति पढ़ा लिखा पर दकियानूसी, पत्नी शिक्षित व कामकाजी होते हुए भी घर-दफ्तर के मध्य संतुलन कायम करने में निष्णात — के अन्तर्संबंधों पर आधारित इस सीरियल को लोगों ने काफी पसंद किया । आम मध्य-वर्गीय परिवार की गाथा बखूबी पर्दे पर प्रदर्शित की गई थी । नासिरा कहती हैं कि सीरियल प्रसारित होना शुरु हुआ तब से लेकर समाप्ति के काफी समय पश्चात तक दर्शकों के पत्र व प्रतिक्रियाएं आती रहीं और ऐसे विषय पर और लिखने व कार्यक्रम प्रस्तुत करने के अनुरोध किए जाते रहे । मुझे लोगों की जागरुकता एवं 'रिस्पाँसिव' होने को लेकर काफी खुशी थी । इसी प्रकार 'तमन्ना' और 'माँ' कार्यक्रम भी दर्शकों के बीच काफी सराहे गए । 'माँ' कार्यक्रम तो दुबारा प्रसारित हुआ । नासिरा के अन्य लोकप्रिय धारावाहिक / टी.वी. कार्यक्रम हैं 'वापसी', 'दो बहनें', 'चार बहनें शीशमहल की' आदि । स्पष्ट है कि अधिकांश टी.वी. कार्यक्रम स्त्री विमर्श को लेकर प्रसारित हुए । कहना असंगत न होगा कि लेखिका के सीरियल लेखन की चर्चा के बगैर स्त्री विमर्श पर किए गए उनके कार्यों का कोई भी विवेचन अपर्याप्त होगा ।

ललित शुक्ल की टिप्पणी है कि 'नासिरा शर्मा अपने समय की सर्वाधिक चर्चित रचनाकार हैं जिन्होंने देश-विदेश के जनमानस से विचारपूर्ण साक्षात्कार किया है । उसकी पीड़ा और दु:ख दर्द को केवल देखा और महसूस ही नहीं किया बल्कि उसपर अपनी कलम भी चलाई है । उनकी निष्ठा संवेदनाओं के साथ है । मानव द्वारा मानव को दी गई पीड़ा की बर्बरता के खिलाफ आवाज उठाई है । यह आवाज किसी वर्ग विशेष के लिए नहीं है । जहां अवसाद है, उत्पीड़न है, प्रताड़ना है वहां आप नासिरा शर्मा को खड़ी पाएंगे । 'औरत के लिए औरत', 'किताब के बहाने' तथा 'राष्ट्र और मुसलमान' लेखिका के तीन निबंध संग्रह

हैं जिनमें सामाजिक समस्याओं पर विचार प्रस्तुत किए गए हैं ।

लेखिका कहती हैं कि उर्दू की पहली उपन्यासकार राशिदा खातून हों या बंगाली, मराठी, हिन्दी की लेखिकाएं हों, सबने बिना जाने स्त्री-विमर्श समाज के बहाने अपनी रचनाओं में अंकित किया है । 'स्त्री-विमर्श' बिलकुल नयी अभिव्यक्ति है जो कुछ वर्षों से रायज हुई है और कभी-कभी तो स्त्री-विमर्श को सामने रख कर ही अक्सर कहानी-उपन्यास लिखे जाने लगे हैं, ताकि बहस हो सके । इस 'लाउड' टोन के सामने अनकही, तेज़ धार की मद्धिम मगर तीखी काट, अब कुछ लोगों को पुरानी लगने लगी है । वे हलचल, शोर-शराबा चाहते हैं । शायद यही वजह है कि कई लेखक जो आज हमारे बीच नहीं रहे, उनकी कहानियों तथा उपन्यासों के स्त्री-पात्र आज भी जिंदा हैं, जबकि कई अन्य जो अब भी हमारे बीच हैं उनके स्त्री-पात्र गोष्ठियों और समीक्षाओं के आगे जिंदा नहीं रह पाते । इसी कारण आज स्त्रियों के किरदार ज़िंदा हैं मगर लेखक मर चुके हैं । आज लेखक जिंदा हैं मगर उनके किरदार गोष्ठी और समीक्षाओं के बाद मर जाते हैं । उनका जीवन दहाइयां तो दूर, कुछ वर्ष भी नहीं जीवंत रह पाता है । यह तो रही एक बात, दूसरी बात है कि स्त्री-विमर्श एक विदेशी आयात है, मैं इसको कुछ व्यक्तियों को लेकर कुछ अर्थों में सही मान सकती हूं मगर दरअसल हिन्दुस्तानी औरत के तेवर ज़रा अलग-से रहे हैं, चाहे वह प्राचीन कथाओं और यथार्थ की हों या फिर मध्ययुग की, हर जगह हमको इस तरह की चेतना नज़र आती है । उसकी बुनियादी सोच अलबत्ता पश्चिम से अलग है । इसको यदि देखना है तो आंकड़े लें और देखें कि एक हिन्दुस्तानी औरत ने कब, कहां, कितना लिखा, महत्वपूर्ण योजना, पदवी और रणक्षेत्र में रही और एक पश्चिमी औरत का आंकड़ा देखें, आपको स्वयं बहुत कुछ पता चल जायेगा । समाज में स्त्रियों की स्वतंत्रता और देह की स्वतंत्रता में बहुत फर्क है । देह एक महत्वपूर्ण मुद्दा है मगर 'पेट' के बाद आता है, इसलिए औरत की सामाजिक जरूरतों का विमर्श आज से नहीं, शताब्दियों से भारत में चल रहा है । इसपर गहरे शोध की जरूरत है । टुकड़े-टुकड़े में काफी हुआ है मगर तुलनात्मक अध्ययन नहीं हो पाया है ।

''मैंने अपनी पुस्तक 'औरत के लिए औरत' में उसके वे सारे मुद्दे लिए हैं जो भारतीय यथार्थ हैं । उस यथार्थ की समस्या भी भारतीय कोशिशों से ही हल होगी क्योंकि भौगोलिक परिस्थितियां इंसान को दूसरे इंसान से अलग दर्शाती हैं, क्योंकि उसी के अनुसार उनका रहन-सहन और सोच-संवेदना बनती है । भारतीय नारी का पैर खुलना शर्म की बात है तो विदेश में कमर का दिखना ।''[32] कहा जा सकता है कि नासिरा शर्माने समाज के अलग-अलग परिवेशों की मन:स्थिति का विश्लेषण-विवेचन करते हुए बेजुबान को स्वर दिया है और उपेक्षितों को संबल व साहस प्रदान किया है ।

सन्दर्भ सूची

1.	नासिरा शर्मा	:	शोधकर्ता की निजी वार्ता	तिथि-20.12.2008
2.	नासिरा शर्मा	:	शोधकर्ता की निजी वार्ता	तिथि-20.12.2008
3.	नासिरा शर्मा	:	नासिरा शर्मा से साक्षात्कार - दोआबा, अंक जून, 2007	पृ. 176
4.	ललित शुक्ल	:	शोधकर्ता की निजी वार्ता के दौरान विवेच्य लेखिका द्वारा उपलब्ध कराई गई टिप्पणी	
5.	नासिरा शर्मा	:	शोधकर्ता की निजी वार्ता	तिथि-20.12.2008
6.	मीरा सीकरी	:	नया ज्ञानोदय - अंक, जून 2007	
7.	नासिरा शर्मा	:	शोधकर्ता की निजी वार्ता	तिथि-20.12.2008
8.	नासिरा शर्मा	:	शोधकर्ता की निजी वार्ता	तिथि-20.12.2008
9.	नासिरा शर्मा	:	नासिरा शर्मा से साक्षात्कार नया ज्ञानोदय, अंक, सितंबर 2007	
10.	नासिरा शर्मा	:	नासिरा शर्मा से साक्षात्कार नया ज्ञानोदय, अंक, सितंबर 2007	
11.	नासिरा शर्मा	:	नासिरा शर्मा से साक्षात्कार - दोआबा अंक, जून 2007	पृ. 177
12.	नासिरा शर्मा	:	नासिरा शर्मा से साक्षात्कार - दोआबा, अंक, जून 2007	पृ. 183
13.	कृष्णा माहेश्वरी	:	अमृतराय का कथा साहित्य	पृ. 44
14.	रमणिका गुप्ता	:	कलम और कुदाल के बहाने	पृ. 50
15.	नासिरा शर्मा	:	नासिरा शर्मा से साक्षात्कार - दोआबा, अंक जून, 2007	पृ. 178
16.	जी. पुष्पलता	:	समकालीन हिंदी कविता में काव्यांदोलन	पृ. 30
17.	ज्ञानवती अरोड़ा	:	समसामयिक हिंदी कहानी में बदलते पारिवारिक संबंध	पृ. 22
18.	ई. एम. एस. नम्बूदरीपाद	:	अंक 48-50	पृ. 50

19.	रोहिताश्व	:	समकालीन कविता का सौंदर्य बोध	पृ.	29
20.	वीरेन्द्र यादव	:	हंस, जुलाई, 2002	पृ.	91
21.	ललित शुक्ल	:	शोधकर्ता की निजी वार्ता के दौरान विवेच्य कथाकार द्वारा उपलब्ध कराई गई टिप्पणी		
22.	नासिरा शर्मा	:	नासिरा शर्मा से साक्षात्कार – दोआबा, अंक जून, 2007	पृ.	176
23.	नासिरा शर्मा	:	ठीकरे की मंगनी		
24.	नासिरा शर्मा	:	कुइयांजान	पृ.	11
25.	नासिरा शर्मा	:	कुइयांजान	पृ.	07
26.	नासिरा शर्मा	:	कुइयांजान	पृ.	01
27.	नासिरा शर्मा	:	कुइयांजान	पृ.	47
28.	नासिरा शर्मा	:	सात नदियां एक समंदर	पृ.	10
29.	नासिरा शर्मा	:	नासिरा शर्मा से साक्षात्कार – दोआबा, अंक, जून, 2007	पृ.	176
30.	नासिरा शर्मा	:	शोधकर्ता से निजी वार्ता	तिथि–20.12.2008	
31.	नासिरा शर्मा	:	मरजीना का देश इराक	पृ.	99
32.	नासिरा शर्मा	:	शोधकर्ता से निजी वार्ता	तिथि–20.12.2008	

3. नासिरा शर्मा का कहानी संसार और स्त्री विमर्श

नासिरा शर्मा वर्तमान युग की सबसे सशक्त तथा विवादास्पद लेखिका है । उन्हें भले ही उपन्यास विधा में अधिक सफलता मिली हो लेकिन उनके कहानी साहित्य के योगदान को नजरअंदाज नहीं किया जा सकता । उन्होंने हिन्दी साहित्य को जितने सशक्त उपन्यास दिए हैं उतनी ही सशक्त कहानियाँ भी दी हैं । इसलिए यह निर्णय करना थोड़ा कठिन है कि उनका कौन सा पक्ष अधिक सशक्त है, उपन्यासकार का या कहीनीकार का । चाहे वह उपन्यास हो या कहानी साहित्य, नासिरा ने 'स्त्री विमर्श' के कोष को समृद्ध बनाने में अद्वितीय योगदान दिया है । अपनी कहानियों के माध्यम से भी वह इस आधी दुनिया को उसके मनुष्य होने का दर्जा दिलाने की लड़ाई लड़ती हैं । अपनी कलम की धार से वह असंभव से असंभव स्थिति को भी अपनी विचारधारा के प्रति सचेत करती हैं तथा उन्हें लड़ने की प्रेरणा देती हैं, साथ ही, उनके मनोभावों एवं जद्दोजहद को शिद्दत से कागज पर उतारती हैं ।

स्त्री विमर्श की लड़ाई आधी दुनिया को मनुष्य का दर्जा दिलाने की लड़ाई है । उसके मनुष्यत्व को स्वीकारना आज मानवता का सबसे बड़ा सवाल है । आज भी मानव की अवधारणा में स्त्री और पुरुष दोनों को समान रुप से शामिल नहीं किया जाता । जान बूझकर स्त्री को इससे अलगाने की स्थिति खत्म नहीं हुई है । करीब सौ साल पहले 'नोरा' ने हेल्मर से पूछा 'तुम क्या मानते हो मेरा सबसे पवित्र कर्तव्य क्या है ?' और जब हेल्मरने उतर दिया, तुम्हारा अपने प्रति और बच्चों के प्रति कर्तव्य । तो 'नोरा' इस विचारधारा से असहमत हुई । अपनी असहमति प्रकट करती हुई वह बोली – ''मेरा एक और कर्तव्य है, उतना ही पवित्र

अपने प्रति मेरा कर्तव्य मैं मानती हूँ कि सबसे पहले मैं मनुष्य हूँ । उतनी ही जितने तुम हो .... या हर सूरत में मैं वह बनने की कोशिश तो करूंगी ही । मैं अच्छी तरह से जानती हूँ तोखालड के ज्यादातर लोग तुमसे सहमत होंगे, किताबों से तुम्हें इसका परवाना मिला है, लेकिन अब मैं, ज्यादातर लोग जो कहते है और जो किताबों में लिखा है उससे असंतुष्ट नहीं हो पाऊंगी, मुझे चीजों पर खुद सोच-विचार करना होगा और उन्हें समझने की कोशिश करनी होगी ।''(1) देश के सर्वोच्च न्यायालय ने 19 मई 2009 को एक मुकदमे के संबंध में फैसला सुनाते वक्त कहा कि परिवार को खुशहाल रखना है तो पत्नी को खुश रखें ।(2)

वस्तुत: जब तक स्त्री स्वयं विचार-विश्लेषण नहीं करेगी तब तक उसे पुरूष द्वारा प्रस्थापित व्यवस्था के अनुसार ही जीवन बिताना पड़ेगा । अगर उसे 'मनुष्य' की श्रेणी में दाखिल होना है तो स्वयं ही उसे परंपरागत खोखली रूढ़िवादिता के सम्मोहक जाल को तोड़ना होगा । जब से लेखिकाओं, कलाकर्मियों ने इस सत्य को जाना तभी से स्त्री विमर्श सामने आ सका है । स्त्री विमर्श ने पितृसत्तात्मक समाज के अंतर्विरोधों को सामने रखा है तथा उनका विखंडन भी किया है । स्त्रियों ने अपनी बरसों की खामोशी को तोड़ा तथा प्रश्नाकुलता के साथ अपनी चुप्पी को वाणी दी है । उसमें स्थितियों की व्यथा, दुख और संघर्ष की अभिव्यक्ति भी है । राकेश कुमार के अनुसार ''स्त्रीत्व की स्थति चेतना को परिभाषित करना आज बहुत जरूरी हो गया है । लिंग भेद ने स्त्री को अस्तित्वहीन, वाणीहीन करके उसकी अस्मिता को रौंदा है । पैतृक अनुशासन के नियमों द्वारा उसके बढ़ते कदमों को रोका गया है । दुनिया की हर बड़ी भयानक घटना हमारे स्मृति पटल को संवेदित कर सकती है तो स्त्रियों की अश्रुगाथा हमें संवेदित, उत्तेजित क्यों नहीं करती ? क्या यह आधी दुनिया की आबादी के उत्पीड़न एवं मुक्ति का प्रश्न नहीं हैं ?''(3)

स्त्री विमर्श ने हजारों वर्षों से चल रहे पितृसत्तात्मक विमर्श, सिद्धांतों, प्रतिमानों को चुनौती दे दी है, क्योंकि वे सिद्धांत पुरुष द्वारा निर्मित हैं । स्त्री विमर्श ने ही पितृसत्तात्मक सिद्धांतों में निहित उन प्रचंड अंतर्विरोधों, विरोधाभासों को सामने रखा है जो स्त्री विरोधी हैं । पुरुष कभी भी स्त्री विमर्श को खुले मन से स्वीकृति नहीं देता । सीमोन द बोऊवार, जैटी फ्राइडन, जुडिथ बप्लट, मिटफिट मिलेट, किस्तिविया, भारत में महाश्वेता देवी, सुनीता भट्टाचार्य, रमणिका गुप्त, मल्लिका सेनगुप्त आदि स्त्री लेखिकाओं ने उस पैतृक साहित्य शास्त्र, सिद्धांतों में एक अंतर्विरोधों को सामने रखा है तथा पैतृक सिद्धांतों में निहित विरोधाभासों को तोड़ते हुए स्त्री विमर्श को प्रासंगिक बनाया है । स्त्री विमर्श सीधे लेखिकाओं के ज्वलन्त अनुभवों के द्वारा ही सामने आ सका है । पश्चिम में फेमिनिज्म का आंदोलनों के माध्यम से विकास हुआ । वहाँ स्त्रियों ने समान मानवीय अधिकारों के लिए जबर्दस्त संघर्ष किया । लेकिन जो स्त्री विमर्श

सामने आ रहा है वह स्त्री आंदोलन की उपज होकर भिन्न वैचारिक तीखेपन परिवर्तन से सामने आ रहा है । इसलिए यह अनुमान लगाना भी उचित नहीं कि जहाँ फेमिनिस्ट आंदोलन नहीं चल रहे हैं, वहां स्त्री विमर्श नहीं होगा। दरअसल वह कितने ही युगों तक स्त्री की भीतरी दुनिया में चल रहा विमर्श था । आज उसने यह रूप धारण किया है । ''जो स्त्रियाँ बौद्धिक, रचनात्मक, सांस्कृतिक-सामाजिक, राजनीतिक, आर्थिक दृष्टि से जागरुक हैं, उनके भीतर पैतृक सत्ता के विरूद्ध जबर्दस्त आत्मसंघर्ष, आत्मालोचना चल रही है वहीं स्त्री विमर्श की संभावनाएँ उतनी ही प्रचण्ड होती जा रही है । स्त्री विमर्श में जो नए-नए प्रश्न, मुद्दे उठने लगे हैं, उन्होंने इस दिशा में नवीन संभावनाओं के क्षितिजों को फैलाना शुरु कर दिया है । स्त्रियों की दुनिया में यह जो नया बौद्धिक सांस्कृतिक जागरण है इसे कोई भी अस्वीकार नहीं कर सकता । दुनिया की आधी आबादी ने जो स्त्री विमर्श छेड़ा है उसकी ठोस आर्थिक-ऐतिहासिक स्थितियाँ हैं । अब वे हाशिए टूटने लगे हैं ।''(4)

स्त्री विमर्श से संबंधित कई लेखकों ने अपने कहानी साहित्य के माध्यम से विचार प्रस्तुत किए हैं । लेकिन यहाँ लेखिकाओं की कहानियों को मद्देनजर रखकर ही उसका मूल्यांकन किया गया है । उनमें कई लेखिकाएँ नासिरा शर्मा से पूर्ववर्ती तो कई समकालीन भी हैं । मन्नू भंडारी 'ऊँचाई' कहानी के माध्यम से स्त्री के विवाहेतर संबंध को सहज मानने का, विवाहित नारी का नया नैतिक बोध प्रस्तुत करती है । विवाहेतर संबंध रखकर अगर पुरुष अपवित्र और अनैतिक नहीं होता तो स्त्री कैसे होती है । पवित्रता का संबंध शरीर से नहीं मन से होता है । इसलिए शिवानी के अनुसार यह संबंध न अनुचित है और ना ही अनैतिक । जब पति को यह बात मालूम होती है तो उन दोनों में संघर्ष और तनाव की स्थिति उत्पन्न होती है । शिवानी पति के प्रति आत्मीयता को स्पष्ट करते हुए कहती है - ''किसी के कितने ही निकट चली चाऊँ चाहे शारीरिक संबंध कर लूँ, पर मन की जिस ऊँचाई पर तुम्हें बिठा रखा है वहाँ कोई नहीं आ सकता ।''(5) पति चाहता है या तो वह क्षमा माँगे या तलाक स्वीकार करे । लेकिन शिवानी को पति की बात मंजूर नहीं है । वह प्रायश्चित भी नहीं करती क्योंकि उसे अपराधबोध नहीं होता । यही स्थिति हमें उषा प्रियंवदा की 'प्रतिध्वनियाँ' कहानी में भी मिलती है । कहानी की नायिका वसु अत्याधुनिक स्त्री है । वह अपने व्यक्तित्व को पूर्णत: पति के व्यक्तित्व में विलीन नहीं करना चाहती है । वह अपनी पृथक सत्ता रखती हुई अपनी मर्जी की जिंदगी जीना चाहती है । वसु जब पढ़ाई के लिए विदेश जाती है वहाँ उसके संपर्क में कई पुरुष आते हैं । उसका प्रारंभिक जीवन दूसरों द्वारा चुना हुआ था, अब वह अपनी इच्छानुसार जी रही है । उसे यह अपने हिस्से की जिंदगी लगती है जहाँ उसे किसी दूसरे का हस्तक्षेप मंजूर नहीं ।

उषा महाजन ने 'एक और श्रवणकुमार' कहानी में एक ऐसी माँ का चित्रण किया है जिसे वृद्धावस्था में सहारा नहीं मिलता । तीन बेटों की माँ होते हुए भी उसे बेटी के यहाँ आश्रय लेना पड़ता है क्योंकि बेटों के परिवार में माँ की कोई जरूरत नहीं है । छोटा बेटा उसे अपने पास बहला फुसलाकर ले जाता है क्योंकि उसे अपने बेटे की देखभाल करने के लिए आया नहीं मिल रही थी । जब माँ को यह ज्ञात होता है कि बेटे ने केवल स्वार्थ हेतु उसे अपने पास रखा था और अब स्वार्थ की पूर्ति हो गयी तो बहू भी उसके व्यवहार से तंग हो रही है तो उसे अपनी ही जिंदगी निरर्थक लगने लगती है । आक्रोश और आवेग से चीखती हुई वह कहती है, ''जो आया ही बन के रहना पड़ेगा अब मैनूं तो तेरे नहीं पड़ोसियों के घर करूंगी आया का काम । इज्जत तो देंगे वे मुझे ।''(6) यहाँ माँ अपने बेटे के घर आया बनने की अपेक्षा दूसरों के घर में आया बनकर जीवन निर्वाह करना बेहतर समझती है । उसकी यह स्व-निर्णय की क्षमता उसके स्वाभिमानी व्यक्तित्व को ही उजागर करती है ।

ममता कालिया ने अपने कहानी-लेखन की शुरुआत 'छुटकारा' से की थी । इन कहानियों में एक ही लड़की बार-बार अनेक रूपों में सामने आती है । कभी वह प्रेमिका है कभी नव-परिणिता पत्नी दांपत्य जीवन की छोटी-छोटी चुहलों और प्रिय खिलवाड़ों में उलझी हुई । ये उनके अपने प्रेम और विवाह के दौर की कहानियां हैं जिन्हें एक लंबे हनीमून की कहानियां भी कहा जा सकता है जिसमें पत्नी प्यार में 'लड़ाको' बन जाती है और पति 'क्रुएल' । मधुरेश के अनुसार ममता कालिया यह समझने में अधिक समय नहीं लगाती कि अपने निजी जीवन के सुख-दुख और प्रेम की चुहलों से कहानी को बांधे रखकर उसे वयस्क नहीं बनाया जा सकता । उनकी कहानियों की दुनिया पूरे मध्यवर्ग की स्त्री को अपने केंद्र में रखकर जटिल सामाजिक संरचना में स्त्री की स्थिति और नियति को परिभाषित करती दिखाई देती है । 'काली-साड़ी' के पति-पत्नी अपने रोजमर्रा के छोटे-छोटे संघर्षों में लगे हैं । विनोद जैसे पति का प्यार पाकर यहां भी कल्पना निहाल है ।

राजी सेठ का रचना-संसार टिप्पणीकार मधुरेश की दृष्टि में व्यापक भले ही न हो, लेकिन मानवीय संबंधों की गझिन और बारीक बुनावट को एक नैतिक-दार्शनिक आयाम देने में वे अप्रतिम हैं । घर-परिवार और अपने निकट परिवेश के अतिक्रमण की दृष्टि से वे भले ही बहुत प्रभावी न हों, जैसे 'किस्सा वृजेश्वर बाबूजी का' में बनफूल की 'एक बांग्ला' और उषा प्रियवंदा की 'वापसी' जैसी कहानियों की छाप बहुत स्पष्ट है, लेकिन यहां भी 'गलियारे' में हताश-अपंग पड़े देवा की आत्मीयता की खोज को वे गहरा मानवीय कंसर्न दे पाने में सफल होती हैं ।

सूर्यबाला की कहानियां मध्यवर्गीय समाज के परिचित यथार्थ को सादगी और विश्वसनीयता

के साथ अंकित करती हैं । उनकी कहानियों में कहीं-कहीं व्यंग्य की अंतर्धारा भी दिखाई देती है, जिससे वे वर्ग-चेतना को रेखांकित और विकसित करने का काम लेती हैं । उनकी कहानी 'थाली भर चांद' वास्तविक श्रम और कथित सोशल-वर्ग के दृश्य को कलात्मक ढंग से अंकित करती है । सूर्यबाला की कहानियां हमारे सामाजिक अंतर्विरोधी की गहरी पहचान का आभास देती हैं । समाज में चारों और व्याप्त असुरक्षा के तनाव को वे गहराई से पकड़ती हैं ।

नमिता सिंह द्वारा लिखित 'दर्द' कहानी की नायिका सुन्नरी निम्न वर्ग की होते हुए भी अपने अस्तित्व के प्रति सजग है । इसलिए पति की उसके प्रति लापरवाही और भाभी के प्रति लगाव से वह आतंकित हो उठती है और पूछती है ''तेरी भाभी है या तेरी बीवी है ।''(7) वह ऐसे पति के साथ रहने से गुरेज करती है, सारे बंधन तोड़कर मायके आती है । वहाँ एक रिक्शेवाले के साथ प्रेमबद्ध होकर, घर से भाग जाती है । उसे अपनी इच्छा और आकांक्षा मर्यादा से अधिक महत्वपूर्ण लगती है । वह ऐसी दुनिया में जाने के लिए जहाँ प्रेम है, आदर है, सारी खोखली मान्यताओं का विरोध करती है । स्वयं चुने गये व्यक्ति के साथ जीवन निर्वाह करना उचित समझती है । मालती जोशी द्वारा लिखित 'स्वयंवर' कहानी की नायिका प्रभा जीवन भर अपने परिवार के लिए त्याग करती है । अपनी खुशियों का गला घोंट कर अपने भाई-बहनों की जिंदगी सँवारती है । लेकिन प्रभा ने शादी का विचार ही त्यागा था क्योंकि लोग उसकी छोटी बहन विभा को पसंद करते थे और उसकी शादी तय नहीं हो पा रही थी । प्रभा की शादी हुए बिना भाई शादी न करने की सौगंध खाता है और दूसरी ओर विभा प्रभा को अपने मार्ग का सबसे बड़ा रोड़ा समझकर अभद्र व्यवहार करने लगती है । आत्महत्या का विचार भी उसके मन में आता है लेकिन कुँवारी लड़की की मौत से परिवार की बदनामी होगी इस डर से यह विचार भी त्याग देती है । भाई-बहन की शादी का मार्ग खुला छोड़ने के लिए वह अपंग गोपालदास से रिश्ता जोड़ लेती है । प्रभा कहती है ''मुझे घर चाहिए-आपके चरणों में पड़ी रहूँगी उम्र भर ।''(8) उसका यह फैसला भले ही परिवार के त्याग करने की मानसिक विवशता हो लेकिन स्वयं अपने विवाह का निर्णय स्वयं ही लेना प्रभा का परंपरागत मान्यताओं को तोड़ना ही माना जायेगा ।

मंजुल भगत 'निशा' कहानी की नायिका निशा के माध्यम से शादी-ब्याह के लिए की गई लड़की की नुमाइश का विरोध करती है । वह कहती है 'यूं गुमसुम होकर ठस्स बनी बैठी अपनी नुमाइश तो कदापि न कर पाएगी ।''(9) निशा अपने व्यक्तित्व विकास के लिए आत्मनिर्भर होना अधिक पसंद करती है इसलिए शिक्षा को अधिक महत्व देती है । राजी सेठ द्वारा लिखित 'अंधे मोड़ से आगे' कहानी की 'वह' पति की उपेक्षा और प्रताड़ना से त्रस्त होकर अपने बॉस मिश्रा से विवाह करती है लेकिन उसके साथ भी सुखी नहीं रह पाती । वह सोचती है 'सुरजीत

में एक प्रकार की आदतें थी तो मिश्रा में दूसरे प्रकार की । वह एक प्रकार से देह तक पहुँचता था तो यह दूसरे प्रकार से ।''(10) सारी मानसिक तनाव से मुक्ति तथा अपनी स्वयं की मुक्ति के लिए बेझिझक गर्भपात का प्रस्ताव डॉक्टर के आगे रखती है और कहती है ''यह किसी की जिम्मेदारी नहीं है - यह रेप केस है ।''(11) गर्भपात का निर्णय लेकर वह एक प्रकार से जी रही छलावे के जीवन से मुक्ति पाती हैं जो जाने - अनजाने उसने सुख प्राप्ती के लिए अपनाया था ।

मृणाल पांडे द्वारा लिखित 'यानि कि एक बात थी' कहानी में लेखिका एक ऐसी स्त्री का चित्रण करती है जो 35 वर्ष की पौढ़ प्राध्यापिका है । पति के अहंकार के कारण वह उससे अलग हो जाती है, क्योंकि पुरुष केवल स्त्री के शरीर तक ही सीमित होता है उसके आंतरिक भाव जानने की कोशिश नहीं करता । पुरुष के इस रवैये के प्रति उसका मत है ''वह वाकई मेरे बारे में कुछ नहीं जानना चाहता, उसे कोई सरोकार नहीं । न तब था न अब है ।''(12) पुरुष अपनी अहंवादी प्रवृत्ति के कारण अपनी पत्नी को अपमानित करता है । आज की स्त्री को यह मंजूर नहीं । इसलिए जब वह उसे पुन: रिश्ता जोड़ने की बात करता है तो उसे वह स्वीकार नहीं होता ।

चित्रा मुदगल की 'इस हमाम में' कहानी में कचरा उठानेवाली अंजा और कहानी की नायिका दोनों ही अपने आपको समान जीवन स्तर पर जीता हुआ पाती है । दोनों के दर्द वही हैं अगर घटना एवम् परिवेश को छोड़ा जाए तो । नायिका कहती है ''क्या मैं सोमेश की उँगलियों का संकेत भर हूँ ? वही और बस इतनी सी पहचान है और मेरे होने की शर्त अंजा ने तीसरे आदमी के साथ घर बसाया है, मैं... मैं... इसी कंटीली केंसिग की सुरक्षा की चार दीवारी का भ्रम बनाए क्यों पेट में निवाले डालने की मजबूरी को जीवन का तालमेल और आपसी समझदारी जैसे अर्थहीन शब्दों में जी रही हूँ ।''(13) वह पुरुष द्वारा बनाये गये एवं जड़े गये फ्रेम से बाहर आने की कोशिश करती है ।

सुधा अरोड़ा की कहानी 'आधी आबादी' में लेखिका ने आधी आबादी अर्थात स्त्री के पांव में पड़ी अदृश्य बेड़ियों और उसकी अभ्यस्त अपने वजूद को भुलाते हुए अपने आधे हिस्से से अपरिचित अपने अस्तित्व को तलाशती पचास वर्षीय औरत की गाथा को वाणी दी है ।

''हम औरतों को भी भूख लगती है, हमारे अन्दर भी कुछ कर गुजरने के सपने जगते हैं, हमारे अन्दर क्षमता है, करूणा है तो वक्त बेवक्त नफरत और ईर्ष्या के भाव पैदा होते हैं । एक तानाशाह व्यवस्था और संस्कृति हमें भी उतना ही तानाशाह बना सकती है जितना किसी पुरूष को । सत्ता का नशा हमें भी उसी हद तक पागल बना सकता है, जिस हद तक पुरुषों को, जिस तरह मर्दों को यौन की भूख सताती है, उसी तरह समाज ने जो यौन अधिकार उन्हें दे रखे हैं हमें भी चाहिए । समाज जिन पाबन्दियों को न्यायजनक मानता है, उसे मानने को पुरुषों को भी

उतना ही बाध्य होना है, जितना हमें ।''[14] मैत्रेयी पुष्पा ने अपने कथा साहित्य में गांव की औरतों की अस्मिता के विकास में कई चरित्र खड़े कर दिए हैं जो याद किए जाएंगे - 'सीता' और 'मौसी' के साथ-साथ 'प्यारी', 'परवतिया', 'चंपा' और 'ललिता' जैसी जुझारू दलित आदिवासी मजदूर स्त्रियां भी हैं जो अस्मिता के लिए संघर्ष करती है । दरअसल मैत्रेयी पुष्पा का कथा सरोकार उस ग्रामीण समाज से उपजा है जो सामंती भावभूमि पर पुरुष वर्चस्व की मनुवादी अवधारणाओं के बीच आज भी जी रहा है ।

हरेक रचनाकार ने अपने ढंग से स्त्री विमर्श से संबंधित विषयों को अपनी कहानियों के माध्यम से चित्रित करने की कोशिश की है । लेकिन नासिरा शर्मा की कहानियाँ इन रचनाकारों की कहानियों से भिन्न है । नासिरा शर्मा के जीवन अनुभव तथा परिवेश भिन्न होने के कारण उनकी कहानियों का मिज़ाज भी भिन्न प्रतित होता है ।

नासिरा शर्मा ने स्त्री विमर्श पर अपने किरदारों के माध्यम से समय-समय पर काफी कुछ कहा है । वैसे हिन्दी कथा साहित्य में, पत्र-पत्रिकाओं में काफी कहा-सुनी होती रहती है । इस प्रकार की प्रस्तुतियों से यह पता नहीं चलता है कि जिस नारी की चर्चा हो रही है वह कौन है ? उसकी शिक्षा का स्तर क्या है ? समाज में वह नगण्य है या उसकी कोई इज़्जत है । वह अशिक्षित है या कवर्ग अथवा अलिफ बे से परिचित है । बस नारी-नारी की रट लगा कर विमर्श का ताना-बाना तैयार हो जाता है और लेखक को नारी वादी होने की सौगात मिल जाती है । और तो और कतिपय कलमों की साहित्यिक दूकानदारी नारी-विमर्श के ही बल पर चल रही है । उनके लिए यह घाटे का सौदा नहीं है ।

इस महादेश में स्त्री या नारी मात्र कह देने से बात स्पष्ट नहीं होती है । वस्तुत: इसमें कई पर्तें हैं । विमर्श के पहले इन बात का खुलासा होना चाहिए कि किस नारी पर बात हो रही है । कहीं ऐसा तो नहीं है कि हम उजाले में और उजाला फेंक रहे हैं । उन अंधी गलियों की और किसी कलम या विचार का ध्यान नहीं जा रहा है जो सदियों स गादी कालिमा से ओत-प्रोत हैं । वहां तरक्की की किरणें नहीं पहुंच पातीं । लेखक यदि जहालत और पिछड़ेपन के घुप्प अंधेरे को अपने विचारों की रोशनी से नहीं भेद सकता तो उसके सारा प्रयास बेमतलब और बेमानी हैं । कभी-कभी तो अंधेरे और उजाले का कण्ट्रास्ट भी आकर्षण का कारण बनता है । और लेखक तो समय का पारखी और द्रष्टा होता है । वह अंधेरा, उजाला, ज्ञान-अज्ञान को और इनके फर्क को भली भांति जानता है । नासिरा शर्मा का कलम इन तथ्यों से भली भांति परिचित है ।

एक नारी वह है जो वंश वल्लरी को आगे बढ़ा रही है । एक वह है जो भाई के हाथ में राखी बांध रही है । एक नारी वह भी है जो अपने परिजनों की समृद्धि और सुख के लिए दुआएं मांग रही है । कभी-कभी तो दुखियारी नारी की आंखों में गंगा-यमुना उमड़ती देख कर लगता

है प्रकृति ही अपने कीमती मोती लुटाने को विवश है । अशिक्षा के अंधेरे में डूबी हुई नारी, स्वजनों से प्रताड़ित और तिरस्कृत नारी भी इसी धरती पर समाज में है । फैशन और वैभव के नशे में चूर नारी, शिक्षा पायी अहंकार के आडम्बर में कृत्रिमता से ढकी नारी, सर्वगुण सम्पन्न नारी के रूप और स्वभाव अलग ही दीखते हैं । शाम को चूल्हा जलाने के लिए बाग और जंगल से लकड़ी तोड़ती और बीनती नारी, आवां दहकाने के लिए गोबर बीनती नारी, कंडे या उपले पाथने वाली नारी, दंवरी हांकने वाली नारी, नारिया खपरा तैयार करने वाली नारी, घर का रख रखाव करने और साज-सज्जा तैयार करने वाली नारी, डोंगी पर सवार होकर पेट-पूजा के लिए मछली मारने वाली नारी के अनेक और अनगिनत रूप है । यही नारी सड़क के किनारे हथौड़ा थामे पत्थर तोड़ती है । अंगौछे के पालने में मुलुर-मुलुर देखते बच्चे को पिलाने को दूध तो उतरता ही नहीं । आंसुओं से आंखें लबालब भरी हैं पर उसे मां और मेहनतकश दुखिया मां बच्चे को पिलाये कैसे ! नारी के अनेक रुपों की फेहरिस्त बड़ी लम्बी है । लेखनी भी थक जायेगी और चाहते हुए भी मैं कह नहीं पाऊंगा ।

ललित शुक्ल कहते हैं - '' वास्तविकता यह है कि लेखक चुनाव करता है । इस चुनाव में रुचि, अभिरुचि और परिवेश सभी काम करते हैं । नासिरा शर्मा के जीवन का अधिकांश हिस्सा शहरों में बीता है पर गांव से वह एकान्ततः अपरिचित नहीं है । उनकी अनुभूतियों की परिधि दूर-दूर तक फैली हुई है । असल बात यह है कि अपनी सारी रचनाओं में वे इंसान की तकलीफों की साक्षी बनती हैं । प्रतीत होता है, उनकी कहानियों में उभरी घटनाएं उनकी फर्स्ट हैण्ड नालेज पर आधारित हैं । वे अपनी रचनाओं की इमारत दोयम दर्जे की सहायक सामग्री से नहीं तैयार करती हैं । यही कारण है कि उनमें प्रतीति और विश्वास की भरपूर चमक है । पाठक जैसे-जैसे रचना की अन्तर्यात्रा करता है, यह चमक और चटख तेज होती जाती है । बीच में पाठक को कहानी के अंत का अहसास नहीं होता है । इसे मैं नासिरा शर्मा के शिल्प-विधान की खूबी मानता हूं । बम्बइया सिनेमा में कहानी के परिणाम का पता पर्दे के दृश्यों से काफी पहले है इसलिए नतीजे तक कहानी धीरे-धीरे पहुंचती हैं । एक झटके से सारा दृश्य-चाक्षुष नहीं होता है ।''(15)

नासिरा शर्मा की इस विशेषता को अगर देखना हो तो हमें सबसे पहले उनकी कहानियों का मूल्यांकन करना होगा । लेकिन स्त्री विमर्श से पूर्व अगर पुरुषसत्तात्मक परिवार व्यवस्था, पुरुष वर्चस्ववादी समाज, राजनीति, आर्थिक क्षेत्र में अगर उसकी स्थिति तथा दमन को देखा जाए तो अधिक बेहतर होग क्योंकि शोषण से ही आत्मचेतना और चेतना से ही विमर्श की उत्पत्ति होती है ।

3.1 नासिरा शर्मा की कहानियां : स्वरुप व क्षेत्र

नासिरा शर्मा ने ज्यादातर कहानियां मध्यवर्ग की महिलाओं और पुरुषों पर भी लिखी हैं । कहानी की विषयवस्तु अथवा घटनाओं का प्रस्तुतीकरण कैसे हो, शिल्प के स्तर पर कहानी का विकास कैसे हो ? सीमाएं क्या हों ? कहानी की आत्मा को, कला को, साहित्य विधा में क्या सत्र प्रदान किया जाय ? इसकी प्रतिध्वनि नासिरा की कहानियों में सुनाई देती है - ''मेरे वजूद की दीवारों पर बेशुमार ताक़ बने हुए थे उनमें विभिन्न कबूतरों ने बसेरा कर रखा था । ताक़ों पर बड़े-बड़े दरों में गर्मी में तपती दोपहर से थके परिन्दे मेरे ठंडे वजूद में आकर पनाह लेते थे ... कभी ख़याल ही नहीं आया कि मेरा अपना एकदम निजी भी कुछ हो सकता है । ... मैं उनमें प्यार के रिश्ते के नाम पर बंटती रही ।'' उनकी कहानियों को विस्तार पूर्वक समझने के लिए परिवेश एवं परिस्थिति के साथ-साथ अलग-अलग पहलुओं को लेकर लिखी गई कहानियों का विवेचन करना युक्तिसंगत होगा ।

वर्तमान भारतीय समाज : स्त्री की स्थिति

पितृसत्तात्मक समाज में नारी की दशा पर काफी कुछ लिखा-कहा जा चुका है । सामाजिक व्यवस्था इस प्रकार की रही है कि जन्म से लेकर मृत्यु तक स्त्रियां पुरुष के किसी - न - किसी रुप पर आश्रित रही हैं । जन्म से लेकर विवाह होने तक पिता एवं भाई पर, विवाहोपरांत पति पर, वृद्धावस्था में बेटों पर, सामाजिक रचना शैली ने कहीं भी उसेक स्वतंत्र रहने की सलाह नहीं दी है । इसलिए परंपरागत बंधनों को तोड़ बहुत कम स्त्रियां अपने दिल की सुनती देखी जाती हैं । स्त्रियों को काम नहीं करने देने के पीछे भी पुरुष मानसिकता है । वह सिर्फ घर के काम करे, बच्चे पैदा करे, उसका लालन-पालन करे, बस । इससे आगे या इतर कोई इच्छा रखना मनुवादी समाज को गवारा नहीं । जन्म के साथ कन्या शिशु को नहीं पता कि वह नर है या नारी । यह बोध तो उसके विकास - क्रम में उसे कदम - कदम पर कराया जाता है कि तुम औरत हो, औरत ! मर्दों की सत्ता से तुम्हारा अस्तित्त्व पृथक और भिन्न है । लम्बी चोटी बाँधो, ऐसे कपड़े पहनो, रसोईघर देखो । धीमे बोलो, धीमे हँसो, ये बाहर आँखें फाड़-फाड़कर क्या देखे जा रही हो, शर्म करो, औरत हो ! आचार संचिता की लम्बी फेहरिश्त ! लक्ष्मण-रेखा का कसता परिवृत्त ! मल्लिका सेन गुप्त लिखती हैं -

> *मैं मन में एक नयी नारी जाति के निर्माण का सपना सँजाये हुए हूँ । एक नयी वीनस का सपना आँखों में बसाये हुए हूँ, जो लाखों की संख्या में डूबती नारियों की एकजुट ताकत को समेटे अवतरित हो और इस दलदली जमीन पर अंगद के पाँव की तरह अडिग रहकर नारी जाति के खिलाफ समाज के षड्यन्त्र को जड़ से उखाड़ फेंके ।*(16)

पितृसत्तात्मक परिवार में स्त्री शोषण

भारतीय संस्कृति में परिवार का अनन्य असाधारण महत्व है, परिवार समाज की ऐसी संस्था है, जिसमें मानव के आत्मसंरक्षण, वंश संवर्धन और जातीय जीवन का विकास होता है । भारतीय संस्कृति में परिवार के इसी विशुद्ध दृष्टिकोण को चरितार्थ करते हुए, 'वसुधैव कुटुम्बकम' की भावना को प्रश्रय दिया गया है । 'परिवार' विश्व की परंपरागत सर्वकालिक, सार्वजनिक, आधारभूत सामाजिक संस्था है । परिवार का व्यक्ति के व्यक्तित्व से अनिवार्यत: सम्बन्ध है । स्त्री हित की दृष्टि से अगर परिवार की कल्पना की जाए तो परिवार में ही स्त्री का शोषण अधिक होता है । ''स्त्री विमर्श में पारिवारिक मूल्यों तथा उसके अनुशासन को लेकर बहस छेड़ी है, क्योंकि स्त्रीवादी लेखिकाओं का स्वीकारना है कि भारतीय परिवारों की संरचना उत्पीड़नकारी, दमनकारी एवं पितृक है । वह स्त्री को उपनिवेश बनाती है । यही कारण है कि परिवारों, पारिवारिक संरचनाओं में पितृसत्ता का वर्चस्व है । परिवार के नियम, कानून, मान्यताएँ स्त्री को अनुकूलित करती हैं । पितृक सत्ता का मात्र लक्ष्य है स्त्रियों को पारिवारिक मूल्यों के नाम पर उत्पीड़न के शिकंजों में जकड़ना ।''[17] निश्चित ही पितृसत्तात्मक परिवार की संरचना स्त्री के लिए उत्पीड़नकारी, निर्मम और बर्बर रही है । स्त्री विमर्श इसी मुद्दे का विचार विमर्श करता है कि स्त्री का दमन पितृसत्तात्मक परिवारों की मूल्य व्यवस्था ने ही किया है । सार्वजनिक क्षेत्र में स्त्री का स्तर कुछ भी क्यों न रहा हो लेकिन परिवार में आते ही वह दमन का शिकार होने लगती है । इसलिए परिवार स्त्री के लिए खुली दासतां है जो उसकी रचनात्मक बौद्धिक शक्ति को नष्ट करता है ।

देखा जाए तो पारिवारिक स्तर पर स्त्री का शोषण जन्म से ही शुरू हो जाता है । स्त्री को परिवार के संतुलन के लिए बेटी, बहन, माता, पत्नी, बहू आदि कई रूपों में अनेक दायित्व का निर्वाह व्यक्तिगत सुखों और सुविधाओं के बदले में करना पड़ता है । उसके सुख चिन्ता का कम ही खयाल रखा जाता है । दूसरों की सुख-सुविधाओं की चिन्ता करते-करते वह स्वयं शोषण की शिकार होती है । उसकी इच्छाओं और मान्यताओं को उसी की तरह दोयम दर्जा ही मिलता है । यहाँ पर नासिरा शर्मा की विभिन्न कहानियों के माध्यम से पितृसत्तात्मक परिवार में स्त्री के साथ होनेवाले शोषण का चित्रण किया गया है ।

स्त्री-सबलीकरण की बातें अपनी जगह, लेकिन कोई संवेदनशील मन उन बातों के अंबार के नीचे दबे स्त्री-जीवन के सिसकते यथार्थ की उपेक्षा नहीं कर सकता। मुश्किल यह कि पुरूष वर्चस्व के प्रभाव के कारण जाने-अनजाने बहुत सारी बातें एवं उन बातों से निकलने वाली अंतर्ध्वनियाँ कुछ ऐसी हो जाती हैं कि स्त्री जीवन के दुखद सच और कारण ओट में ही छिपे रह जाते हैं । सहज ही विश्वास नहीं होता है कि हिंसा का सबसे खतरनाक पहलू है-घरेलू हिंसा।

घर के अंदर होने वाली हिंसा हमारे समाज की ढंकी-छिपी सबसे बड़ी सच्चाई है। भारत सरकार के नेशनल क्राईम रिर्काड ब्यूरो के मुताबिक 1999 में दहेज - हत्या के दर्ज मामलों में 17.1 प्रतिशत मामलों का निबटारा हुआ, 82.9 प्रतिशत लंबित रहे। पति और परिजनों द्वारा क्रूरता के 1 लाख 92 हजार 5 सौ 75 मामलों में कुल 3416 मामलों में सजा हुई बाकी 14.556 अभियुक्त छूट गये। 1 लाख 20 हजार 9 सौ 22 मुकदमे लंबित ही रहे । सरकारी आँकड़े बताते हैं कि हमारे देश में (अप्राकृतिक) मौत का सबसे बड़ा कारण घरेलू हिंसा है। सबसे अधिक लोग (और ये औरतें ही होती हैं) इसी के कारण मरते हैं। आतंकवाद, रेल-दुर्घटना, सबको मात कर दिया है घरेलू हिंसा ने । उपभोक्तावाद का सबसे बड़ा हमला परिवार पर होता है। मनोवैज्ञानिक रूप से माना जा रहा है कि परिवार के सदस्यों का आपसी प्रेम वस्तुओं तक फैलकर, वस्तुओं को अधिक समय तक व्यवहार में टिकाये रखने की प्रवृत्ति को जन्म देता है। बाजारवाद इस परिवार के मनोविज्ञान में खलल पैदा करने की कुचेष्टा करता है। इसी कुचेष्टा के तहत घरेलू हिंसा को भी देखा जा सकता है। केन्द्र सरकार घरेलू हिंसा की रोकथाम व उसपर नजर रखने के लिए पृथक कानून भी बना रही है। पिछले कुछ ससय से समाचार-माध्यमों में बलात्कार और यौन-शोषण पर टिप्पणियों की संख्या में कुछ अधिक ही बढ़त देखी जा रही है । इस तरह की घटनाओं में होने वाली वृध्दि एवं चर क्रूरता की पैठ और नागरिक-समाज में मीडिया की प्रभावी भूमिका एवं भरोसे के लिहाज से यह स्वाभाविक भी है, लेकिन पूरी सदाशयता के बावजूद इसकी प्रस्तुति और विश्लेषण में कई कारणों से चूक हो जाती है। इस चूक के एक प्रमुख कारण के रूप में पुरुष वर्चस्व वाले समाज में निर्मित मानवीय अंतर्मन या अवचेतन को रेखांकित किया जा सकता हैं।

दरअसल वर्चस्ववादी तत्त्व का चरित्र ही समाज का चरित्र बन जाता है। पुरुष-वर्चस्व वाले समाज में हिंसा और क्रूरता की पैठ हो गई है। हिंसा और क्रूरता की त्रासद अभिव्यक्ति प्रेम के पुरुष-मनोभाव में हो रही है। जाहिर है, हिंसा और क्रूरता की पैठ की जड़ सामाजिक और नागरिक जीवन की आंतरिक संरचना में है। इन्हें खोजा जाना चाहिए। एक ओर समाज में स्त्री-देह का इतना खुला, कुछ मामलों में नग्न भी; प्रदर्शन और दूसरी ओर दैहिक नैतिकता में उसी पुराने नजरिये को बरकरार रखने का आग्रह हमारे चरित्र को अंतर्विरोधी बनाता है। इन अंतर्विरोधों के कारण तन और मन का सामंजस्य टूट जाता है।

आज स्त्री-विमर्श के प्रसंग में आर्थिक, शारीरिक और मानसिक आत्मनिर्भरता के बहुविध आयामों के लिए पर्याप्त मनोभाव बनाने एवं नैतिकता की पुरानी सरणियों की जगह नई सरणियों के विनिर्माण की छटपटाहट को पढ़ने का सांस्कृतिक धैर्य होना जरूरी हैं।

स्त्री-विमर्श में नया ओज

पूरी दुनिया में स्त्री-विमर्श नये ओज से जारी है। इस ओज में सांस्कृतिक धैर्य के लिए अभी भी बहुत जगह खाली है। स्त्री-विमर्श बहुआयामी है। दुनिया के विभिन्न इलाकों, समुदायों और वर्गों में इसके आशय एक ही नहीं है। यद्यपि इनकी अंतर्वस्तुओं में बहुत हद तक समानताएँ हैं और इनकी अपनी-अपनी इलाकाई, सामुदायिक और वर्गीय विशिष्टताओं को सामाजिक विशिष्टताओं के संदर्भ से जोड़कर समझा जा सकता है । हिन्दी समाज के बारे में नागार्जुन की एक टिप्पणी है, ''हमारा हिन्दी-भाषी क्षेत्र सामाजिक सहजीवन की दृष्टि से पड़ोसी प्रदेशों की अपेक्षा अधिक पिछड़ा हुआ है। हमारी यह लालसा तो रहती है कि फिल्मों में नए-नए चेहरे दिखाई पड़ें, किन्तु अपनी पुत्री या पुत्रवधु को हम 'मर्यादा'की तिहरी परिधियों के अंदर छेके रहेंगे।''

आजादी के बाद साक्षरता-दर एवं अन्य स्थितियों में सकारात्मक बदलाव भी हुए हैं, इनकी गति भले ही बहुत संतोषजनक न हो, मगर बदलाव से एकदम इनकार करना सच्चाई से मुँह मोड़ना है । महिलाओं की अर्थिक स्थिति भी पहले से अच्छी हुई है। फिर महिलाओं के साथ ऐसा क्या हुआ कि उनकी सामाजिक-राजनीतिक भागीदारी कम होती चली गई ।

प्राचीन भारतीय वाङ्मय में स्त्री-विमर्श सदैव लेखन के केन्द्र में रहा है। इसे वैदिक युग से लेकर आज तक के साहित्य में देखा जा सकता हैं । न केवल शिष्ट-साहित्य में अपितु लोक-साहित्य में भी इसका अपना महत्त्वपूर्ण स्थान रहा है। और इसके लेखक या रचयिता पुरुष ही हैं। स्त्री को अलग करके कोई भी रचना पूर्ण नहीं हो सकती । उसी प्रकार पुरुष को छोड़कर भी कोई रचना पूर्ण नहीं होगी। स्त्री और पुरुष दोनों एक ही सिक्के के दो पहलू हैं। इसलिए दोनों का महत्व बराबर है। नासिरा शर्मा ने इन दोनों पहलुओं का अध्ययन अपनी रचनाओं में विस्तारपूर्वक किया है। स्त्री विमर्श भी तभी पूर्ण हो सकता है जब उनकी रचनाओं में पुरुष विमर्श को टटोला जाए और उनकी बारीकियाँ महसूस की जाएं जो ''संगसार'' और ''और गोमती देखती रही'' में स्पष्ट रुप से देखी जा सकती हैं ।

नासिरा शर्मा की कहानियां अनुभव के सागर से निकलकर कथा जगत में अवतरित वे एहसास हैं जो स्त्रीवाद और स्त्री-विमर्श को समझने की दिशा में महत्वपूर्ण अध्याय हैं। इन्होंने एक सौ से अधिक कहानियाँ लिखी हैं, जो समाज के विभिन्न तबकों, मध्यम वर्ग, अभिजात्य वर्ग और न्यून-मध्यम वर्ग की सामाजिक सोच एवं अलग-अलग शैक्षणिक अर्थिक स्तर के समाज में स्त्रियों की दशा, दिशा, सोच तथा उनके बारे में पुरुष की सोच को खुलासा करती हैं। चाहे उनकी कहानियाँ, 'पत्थर गली', 'संगसार', शामी कागज, इब्ने मरियम को लें, या फिर 'दूसरा ताजमहल', 'तुम डाल-डाल हम पात-पात', और 'और गोमती देखती रही', 'प्रोफेशनल

वाइफ', 'पंच नगीना वाले', 'गली धूम गई', 'सन्दूकची' को लें, ये कहानियाँ वस्तुतः मछियारे का एक ऐसा जाल है जिसमें संवेदना के समन्दर से पकड़ी ऐसी अनुभूतियों का बयान है जो मौलिक भी हैं और यथार्थ की जमीन पर लहलहाती सृजनात्मक कल्पना का संसार भी हैं। यहां किरदार अपने असली चेहरे के साथ जिन्दगी के थपेड़ों से खेलते किनारे की खोज में संघर्षरत नजर आते हैं और पाठकों के मन में जिजीविषा की ऐसी लौ जलाते हैं जो थके हुए मुसाफिरों को मंजिल तक पहुंचने की प्रेरणा देते हैं। उसके उलझाव को सुलझाने की कोशिश में रची कहानियां संकेत हैं अगले पड़ाव की जहां जिन्दगी अपने अलग रंग और बीहड़ रास्तों के साथ आने वालों का इन्तजार कर रही है! जहां एक और जंग हर उस इन्सान की बाट जोह रही है जो कठिनाइयों से गुजरता निराशा का गला घोंटता पर भर सुस्ताकर आगे बढ़ने की चाह अपने अन्दर कभी मार नहीं पाता है और यही निरन्तरता इन कहानियों की जान है जिसमें समय की धड़कन साफ सुनाई पड़ती है !

कामकाजी महिलाएं

स्त्रियां घर में हों या बाहर काम करती हुई, शोषण का सर्प हर वक्त उसे डसने को तैयार रहता है । आज नौकरी करती महिलाएं कभी कैरियर के नाम पर तो कभी मजदूरी के नाम पर शोषित होती हैं । यद्यपि सर्वोच्च न्यायालय ने कार्यालयों में या काम करने के हर स्थल पर स्त्री के यौन शोषण पर स्पष्ट फैसला दिया हुआ है, तथापि तथ्य यह दर्शाता है कि कामकाजी महिलाएं भी आए दिन शोषण का शिकार बनती हैं और इनमें से बहुत कम शिकायत के लिए आगे आती हैं । सरकारी कार्यालयों में स्थिति उतनी चिंताजनक नहीं है जितनी निजी कंपनियों में । नासिरा शर्मा की 'प्रोफेशनल वाइफ' कहानी में कामकाजी महिला के शोषण को दर्शाया गया है तथा शोषित महिला के मनोभाव चित्रित किए गए हैं । इस कहानी में स्त्री, स्त्री से ही आत्मसंतापी होती है । स्त्री ही स्त्री को प्रताड़ना, मानसिक संताप देती है । कहानी में विशेष रुप से महानगरीय जीवन शैली के संदर्भ में स्त्री चरित्र का सफल अंकन किया गया है । कहानी की पात्र 'बनी' प्रेम के नाम पर यौन शोषण से टूट चुकी है । वह कहती है – ''नहीं, इस मामले में, जहां तक मेरा सवाल है में बिल्कुल क्लियर हूं, कई बार मैंने अपने को टटोला भी मगर ऐसा नहीं है। मेरे जिस्म में न सेक्स की चाहत बची है और न ही मुझे किसी से प्यार हो सकता है। मेरे साथ एक-दो बार नहीं, बल्कि कई बार मेरा बलात्कार हुआ है, मैं अन्दर से टूटी हुई हूं। सर बहुत चाहते हैं मुझसे शारीरिक सम्बन्ध स्थापित करना मगर मुझमें उमंग नहीं जगती है !''(18)

परन्तु ऐसी चंद शिक्षित और अपने अधिकारों अपनी आबरु के लिए सचेत लड़कियों की भी आज के समाज में कमी नहीं है । कहीं भी खूंटे से गाड़ देने की सदियों से चली आ रही

दकियानूस परम्परा को ठोकर मारती हैं ऐसी युवतियां । ऐसी युवतियों का प्रतिनिधित्व करते हुए नासिरा शर्मा ने कहानी लिखी – 'और गोमती देखती रही' जिसकी किरदार सरला के जरिए लेखिका स्त्रियों को सचेत, सतर्क, स्मार्ट बनने को कहती है ताकि वह परंपरागत तरीके से चले आ रहे पितृसत्तात्मक समाज में अपनी पसंद की जिंदगी जीने को स्वतंत्र रह सके ।

''सरला उन लड़कियों में से थी जिसको घर बसाना पसन्द था मगर मुनासिब तरीके से ताकि सम्बन्ध को संभाला जा सके, ठीक रेल की दो पटरियों की तरह, जो दूरी के बावजूद समानान्तर रहकर रेलगाड़ियों को मंजिल तक पहुंचाती हैं । उसका विश्वास था कि विवाहित जीवन में जहर घुलता ही इस कारण से है कि एक साथी लगातार नए अनुभव से गुजरता आगे बढ़ता रहता है। दूसरा वहीं अटका खड़ा उस जड़ अवस्था में पड़ा रह जाता है जहां से दोनों चले थे। इसलिए हर रोज बदलती इस दुनिया में जीवनसाथी भी अपनी रफ्तार वाला ही चुनना चाहिए।'' ...(19)

''हीज वेरी क्रुवेल...वेरी स्टेंज मैन...कितना भद्दा मजाक किया है मुझसे सुधीर ...आखिर क्यों...क्या सुधीर नार्मल है ? कहीं...'' ...(20)

सरला को एकाएक सुधीर से डर लगने लगा। उसको लगा जैसे किसी की मृत आत्मा अपने सपने की अधूरी प्यास लिए भटकती–सी सुधीर के बदन में समा गई हो। कहीं...कहीं सुधीर...पिशाच न हो... ? सरला का पूरा बदन थर्रा उठा। दिल जोरों से धड़कन लगा। चेहरा पसीने की बेशुमार बूंदों से भर गया। उसने अपना हाथ सुधीर की पकड़ से छुड़ाना चाहा मगर भय ने जैसे उसकी जान निकाल ली थी। उसको लग रहा था कि वह अब गिरी या तब गिरी। एक नशा भरा चक्कर उसको अपने सिर में घूमता लगा। यह कैसा अनुभव है ?(19)

'दूसरा ताजमहल' महानगरीय जिंदगी जी रहे समाज में स्त्री की मनोदशा, जीवन शैली का चित्रण है । लेखिका ने अच्छे बिम्ब प्रस्तुत कर कथा यात्रा को रोचक व प्रभावी बनाया है । ''नहाते हुए नयना ने अपने शरीर को निहारा। बदन का हर अंग जैसे उत्सव मनाने की चाहत से सरशार लगा, मन बार–बार भटक जाता था। अभी तक रविभूषण ने उसके गालों पर चुंबनों के फूल नहीं खिलाए थे, मगर इस बार रात को हवा में तैराए सारे लाल गुलाब उसके चेहरे पर खिलेंगे।'' ...(21)

नासिरा शर्मा के पास उर्दू–हिन्दी–फारसी की विशाल शब्द संपदा है, इसलिए वे अपनी भावनाओं को बड़ी बारीकी से अभिव्यक्त करने में कामयाब हैं। एक उदाहरण है–

''अल्लाह पाक झूठ न बुलवाए मियां। यह लड़के आपकी जवानी से जलते हैं। खुद तो

लंडूरे घूम रहे हैं। कोई दो पैसे भी दामादी में लेने को तैयार नहीं तो फिर आप जैसे जमाना देखे, औरतों से बाखूबी वाफिफ साठे-साठे से बैर तो ठानेंगे ही।''(22)

स्त्री-विमर्श को समझने की जरूरत सबसे ज्यादा इसलिए है कि स्त्री परिवार के केन्द्र में होती है । परिवार-सभ्यता के केन्द्र, परिवार में अलगाव का असर पूरी सभ्यता को खंडित कर देगा ।

स्त्री-विमर्श के ठोस समाजिक यथार्थ हैं। पूरी दुनिया में कई प्रकार की भिन्नताएँ हैं, तो कई प्रकार की समानताएँ भी हैं। इन भिन्नताओं और समानताओं को देखते हुए लगता है कि पूरी दुनिया में स्त्रियों की सामाजिक दुर्दशा में चारित्रिक समानताएँ हैं। यह समानता देह पर अत्याचार से जुड़ी है, लेकिन यह देह तक सीमित नहीं है। शिक्षा और उत्पादकता से प्रभावी ढंग से जुड़े होने के बाद भी उनके शोषण की महागाथा का कोई अंत नहीं है। समाज में उनकी हैसियत दोयम दर्जे पर है। समाज की नाभिकीयता परिवार है। और परिवार की धुरी स्त्री होती है। पुरुषों से पुरुषों की रंजिश के चरम प्रतिशोध का आसान शिकार भी स्त्री ही होती है ।

स्त्री जन्म की उपेक्षा :

पितृसत्तात्मक परिवार में स्त्री की उपेक्षा उसके जन्म से शुरु हो जाती है । वैदिक काल से ही लड़कियों की अपेक्षा लड़कों के जन्म को ज्यादा महत्व दिया जाता रहा है । ऐसी धारणा थी कि पुत्र परिवार एवं पीढ़ियों को गतिशीलता प्रदान करने में ज्यादा महत्वपूर्ण होते हैं । यही कारण था कि पुत्र के समय उत्सव एवं मनोरंजन ज्यादा होते थे । लड़की पैदा होना मातम के तुल्य होता था । कई गांवों में तो लड़की के पैदा होते ही उसे नमक चटाकर मार दिए जाने की घटनाएं प्रकाश में आती रही हैं । आधुनिक युग का वैज्ञानिक तथा तकनीकी विकास भी इस मान्यता को खण्डित नहीं कर पाया । पितृसत्तात्मक व्यवस्था के तहत स्त्री जन्म को हीन मानकर उसकी उपेक्षा की जाती है । उससे निजात पाने की इच्छा रखी जाती है और उपाय भी ढूंढ़े जाते हैं । यही स्थिति नासिरा शर्मा की 'घुटन' कहानी में मेहरु की है । कहानी के आरम्भ की दो पंक्तियां ही काफी कुछ बयां करने की शक्ति रखती हैं - ''सुबह ही सुबह खबर मिली कि मेहरु मर गई । रात को दर्द, जलन को झेलती हुई, सारी बेड़ियों को यकायक तोड़कर आजाद हो गई ।''(23) कहानी में एक पात्र स्वयं लेखिका है जो खबर मिलने के उपरांत मेहरु के यहां जाती है । वहां देखती है कि मेहरु ने खुद को जलाकर आत्महत्या कर ली । अप्रतिम सौंदर्य की स्वामिनी मेहरु उर्फ महरुख की लाश के पास औरतें इकट्ठा होकर 'क्या हुआ, कैसे हुआ' इस खबर के बारे में दिलचस्पी लेकर बातें करने में लगी थीं लेकिन अंतिम संस्कार के लिए पूरी की जाने वाली औपचारिकताएं निभाने के वक्त

उनमें से एक भी नहीं ठहरी सिवाय एक वृद्धा पडोसिन हज्जिन के । सभी किसी - न किसी काम का बहाना बनाकर चलती बनीं । लेखिका उसके साथ हो लेती है तब वह हज्जिन कांपती आवाज में कहती है - ''हां, बेटी चलो । दिल साफ होना चाहिए । सभी अल्लाह के बन्दे हैं ।''(24)

शामी कागज लेखिका की शुरुआती दौर की कहानी है । ईरान की जमीं पर प्रयुक्त होने वाले कई शब्दों ने कहानी को रवानगी प्रदान की है । यह कहानी सबसे पहले श्रीपत राय के संपादकत्व में प्रकाशित हो रही पत्रिका 'कहानी' में छपी थी । कहानी की किरदार पाशा एक ऐसी संवेदनशील स्त्री है जिसका पति अचानक मर जाता है और उसकी आशा अपने होने वाले बच्चे से बंधती है । वह भी लड़का होने की दुआ मांगती है - ''खुदाया ! मुझे लड़का देना । एकदम मोहसिन की तरह - वही आबरु, वही हंसी, वही आंखें ... मैं पूरी जिन्दगी बिना किसी शिकवे के काट दूंगी ।''(25) कहानी के जरिए लेखिका ने 'लड़का चाहिए' धारणा पर व्यंग्य भी किया है । नासिरा शर्मा कहती हैं - '' शामी कागज दरअसल रेशम की एक किस्म थी जिसपर शाही फरमान लिखा जाता था । धुलने के बाद वह टुकड़ा दोबारा काम में लाया जाता था । मैंने इसकी तुलना नारी मन से की थी कि वह शामी कागज नहीं कि जिसपर लिखे अक्षर धो दिए जाएं । इस विश्वास को मैंने पाशा के किरदार में ढालने का प्रयास किया है ।''(26)

भ्रूण हत्या : ''जब भी हम लड़कियों के दु:ख की बात करते हैं अक्सर कहते हैं, कि न जाने उन्हें ससुराल में क्या क्या सहना पड़े; लेकिन यहाँ यह बताना जरुरी है कि लड़कियां ससुराल में तो बाद में जाती है । पहला अन्याय तो उसके साथ उसी वक्त शुरू हो जाता है जब वे पैदा होती हैं और खुशी की जगह आँसू बहाए जाते हैं । जिस घर में वे जनमती हैं, जहाँ का रक्त, मांस, मज्जा, कौशल वे अपने अन्दर समेटे होती हैं, वही घर उनसे सबसे अधिक घृणा करता है । कहता कोई बेशक यह रहे कि जी, हम तो लड़कियों को देवियाँ मानते हैं और शास्त्रों में लिखा है - यत्र नार्यस्तु पूज्यन्ते रमन्ते तत्र देवता: । जिस हिसाब से पिछले दिनों में गर्भ में लड़कियों को मारा गया है उस हिसाब से तो उन घरों से देवताओं को कूच कर जाना चाहिए ।''(27) लेकिन विडम्बना यह है कि देवता अभी तक वहीं है और लड़की को भ्रूण में ही मार देने की परंपरा बरकरार है । इस समस्या की और ध्यान खिंचती नासिरा शर्मा की एक बिल्कुल अलग तरह की परन्तु सशक्त और विचारोत्तेजक कहानी 'अपनी कोख' है जो हर उस स्त्री के मन के अंदर मथ रहे उन सवालों के हल ढूंढ़ने का प्रयास करती है जिनके घेरे में स्वयं स्त्रियां पिस रही होती हैं और पुरुष प्रधान समाज है कि उनके शोषण से बाज नहीं आ रहा होता है । कहानी की नायिका साधना की दो लड़कियां

जन्म लेती हैं । संदीप की तीसरे बच्चे की इच्छा नहीं होती और गर्भ में पल रहा तीसरा बच्चा डॉक्टर के मुताबिक लड़का है, सुनकर भी साधना रोमांचित नहीं होती, गर्भपात कराना चाहती है गरज कि उसकी सास का कहना है - 'एबॉर्शन ? वह भी लड़के का ? घोर पाप है । लड़के को जन्म देने से सात जन्म सुधर जाते हैं । तू बौरा गई है क्या जो उसको गिरवाएगी ? बुढ़ापे में दामाद नहीं आएंगे तुम्हारी नैया पार लगवाने, बुढ़ापे की लाठी लड़का होता है ।'(28) लेकिन तनावग्रस्त साधना ने यह सोचकर गर्भपात कराया कि लड़का पैदा होने पर घर के सभी सदस्यों का लाड़ उसे ही मिलेगी । दोनों लड़कियां उपेक्षित रहेंगी और ताउम्र शोषित, प्रताड़ित महसूस करेंगी ।

यद्यपि इस कहानी में भ्रूण परीक्षण का जिक्र है जो कानून जूर्म है पर कहानी इस कानून के बनने से पूर्व की लिखी हुई प्रतीत होती है । दूसरी, अहम बात कि लेखिका ने इस कहानी के जरिए न तो भ्रूण में पल रहे बच्चे के लिंग परीक्षण को जायज ठहराया है, न ही भ्रूण हत्या की वकालत की है । लेखिका का उद्देश्य है स्त्री के शोषण के प्रति समाज को, पाठक को जागृत करना । तभी तो शादी के कारण साधना ने एम. ए. करने और आई. पी. एस. परीक्षा पास करने की तमन्ना के अधूरे रह जाने से, जिस मानसिक संत्रास को झेला, उसका पूरी संवेनशीलता से चित्रण कर पाने में लेखिका सफल हुई है । पहली बार मायके आने पर उसका बुझा हुआ सा चेहरा देखकर मां उसे समझने की कोशिश करती है । परन्तु साधना तड़प उठती है । इस तड़प में उसकी जिजीविषा, दृढ़ संकल्प भी झलकता है - 'मैं पिघलने वाली नहीं हूं । यह सब कहकर मेरे डंक मत तोड़िए ।'(29) साधना रुठे स्वर में बोली ।

समालोचक मधुरेश ने नासिरा शर्मा की कहानियों पर समीक्षा करते हुए लिखा है - ''नासिरा शर्मा की कहानियां अंतर्वस्तु के विस्तार का एक उल्लेखनीय उदाहरण हैं । उथल-पुथल भरे समूचे एशियाई समाज की साक्षी बनकर उन्होंने ईरान और अफ़गानिस्तान के गृहयुद्धों को बहुत निकट से देखा है । 'शामी कागज' से ही उन्होंने ईरान की पृष्ठभूमि में कहानियों का जो सिलसिला शुरू किया था, 'संगसार' की कहानियां उसी का विस्तार हैं । लेकिन इस विदेशी पृष्ठभूमि में भी उनका मूल रचनात्मक सरोकार किसी देश विदेश की भौगोलिक सीमा में आबद्ध नहीं है । इन कहानियों में विनाश और परिवर्तन की देहरी पर खड़ा ईरान अपनी संपूर्णता में उपस्थित है अवश्य, लेकिन स्थानों के भौगोलिक ब्यौरों में लेखिका को अधिक दिलचस्पी नहीं है । बेबस पात्रों, घटनाओं और प्रसंगों के घटित होने का एक माध्यम भर हैं । नासिरा शर्मा उस समाज में भी स्त्री के प्रति प्रचलित व्यवहार और धार्मिक कट्टरता को अपना मुख्य लक्ष्य मानकर चलती हैं । 'दरबाज़-ए-कज़बिन' में रूमाल की रस्म के समय माजिद की चुप्पी का सारा खामियाजा मरियम को ही चुकाना होता है क्योंकि हर समाज में आदमी के

गुनाह की कीमत औरत ही चुकाती रही है । सामाजिक परिवर्तन में सक्रिय युवक भी मरियम को एक बेजान किताब से अधिक कुछ समझने को तैयार नहीं है । व्यभिचार के जुर्म में मरियम की हत्या के बाद, अखबार में छपा उसका फोटो देखकर - ताकि समाज को नसीहत हो सके, वह यही सोचता है कि यह औरत अभी भी पेशा करती थी ! 'संगसार' की आसिया का अपराध यह है कि अपने मन का आदेश मानकर पति के होते हुए वह किसी और से प्यार करती है । उसके स्वभाव के कारण ही मां उसे 'आतशपारा' कहती है । बेटी के लिए चिंतित मां अपनी बड़ी बेटी आसमा से कहती है ... 'मर्द सीगा भी करेगा, ब्याहता के रहते दूसरी शादी भी करेगा और बाहर भी जाएगा, उसे कौन रोक सकता है भला ? लोग थू-थू भी करेंगे तो फ़र्क नहीं पड़ता; मगर औरत यह सब करेगी तो न घर की रहेगी न घाट की । दूसरा शौहर करना तो दूर, किसी से आशनाई भी हुई तो दुनिया उसे हरामकारी और मज़हब उसे ज़नाकारी कहेगा, मगर उसके सिर पर तो इनकलाब सवार है ... ''खासतौर से उसे समझाने को बुलाई गई खाला से आसिया कहती है ... 'आपका पुराना कानून नई परेशानियों का हल नहीं जानता, मरते-घुटते इंसान की मदद को नहीं पहुंचता, इसलिए आप जिंदगी को खौफ की दीवारों में चुन देना चाहती हैं ताकि इंसान एक बार मिली जिंदगी भी खुलकर न जी सके ... जब खुद अपने को, और दूसरों को भी, गुनाह का अहसास ही नहीं है तो सज़ा किस कदर बेमानी हो जाती है । ऐसी सजा ही वस्तुतः शहादत का दर्जा पाती है । आसिया स्त्री की ओर से एक बुनियादी सवाल उठाती है - देह की जरूरत और सुख की पहचान क्या गुनाह है ? जिस दिन आसिया को संगसार करके हलाक किया जाता है, उस रात औरतों ने चूल्हे नहीं जलाए और मर्दों ने खाना नहीं खाया । कहानी एक सवाल के साथ ही खत्म होती है -' 'यदि आसिया गुनाहगार थी तो फिर उसके संगसार होने पर यह दर्द, यह कसक उनके दिलों को क्यों मथ रही थी ?..''(30)

'पहली रात' का ईरान बहिश्ते-जेहरा में बदल गया है । सत्रह से बीस वर्ष के युवक-युवतियों की लाशें देखकर गुस्सालों को भी तरस आता है और हैरत होती है । हंसते-जीते परिवारों में पीढ़ियां युद्ध के खेमों में बदल जाती हैं । 'दीवार-दर-दीवार' का हादी, पिता द्वारा अपने ऊपर गद्दार, नीच और बागी होने की तोहमत लगाए जाने पर आवेश में पलट कर जवाब देता है ... 'मुबारक हो आपको आपका धर्म । जो खिताब आपने मुझे दिया है वह वास्तव में आप हैं ... आपको कसम है आपके धर्म की जिसका रूप कोड़े, गोली, यातनाएं, जुल्म हैं ... एक ओर युवा पीढ़ी है जो धार्मिक कट्टरता के विरोध में सब कुछ झोंक देने का हौसला रखती है, दूसरी ओर प्रौढ़ या बूढ़े होते मां-बाप हैं जो इस सामाजिक सुगबुगाहट को समझ पाने में असमर्थ हैं । धार्मिक कट्टरता और यथास्थितिवाद के समर्थक 'विरोध' का आरोप लगाकर

मासूम लोगों पर कैसे जुल्म करते हैं, 'गुंचादहन' इसका एक अच्छा उदाहरण है । मेहरमाह तेरह साल की पूरी नहीं हुई है । एक दिन अचानक स्कूल की कमेटी का बुलावा आता है और फिर उसका कोई पता नहीं चलता । कभी-कभी टेलीफोन पर उसके मां-बाप को उसकी आवाज़ जरूर सुनाई पड़ती है । लेकिन कभी कायदे से कोई बात हो पाए, इसके पहले ही लाइन कट जाती है । इसी यातना और संत्रास में, बेटी के लिए बेचैन मां-बाप पूरे तीन साल इसी आशा में गुजार देते हैं कि शायद कभी वह लौट आएगी । जीनत खानम के यहां आई औरत सारी स्थिति का खुलासा करती हुई बताती है ... 'मारपीट से तो बागी लड़कियां डरती नहीं हैं । यही एक खौफ़ कारगर होता है जिससे अधिकतर लड़कियां भयभीत होकर घुटने टेक देती हैं । ... जिस रात यह सब हुआ उसी रात रक्त स्त्राव आरंभ हुआ । रुकने का नाम ही नहीं लिया । गुंचादहन तो थी ही, जोर-जबरदस्ती में दहन के दोनों पाट चिर गए ...' वही औरत आगे कहती है ... ''पुख्ता लड़कियां भेजो तो जवाब आता है 'चूज़ों' का गोश्त ज्यादा लजीज़ होता है ....'' उस कथित धार्मिक-क्रांति की वास्तविकता यह है । जब मेहरमाह के मां-बाप बेटी के साथ घटे हादसे को सुनकर, आवेश में आकर विक्षिप्तों जैसा व्यवहार करते हैं तो उन्हें पुलिस द्वारा उठाकर वैसे ही जबरन जीप में डाल दिया जाता है जैसे कोई मछुआरा मछलियों को जाल डालकर पकड़ता है । इसी क्रांति ने 'नमक का घर' की शहरबानो का ईरान उस से छुड़वा दिया है और सात सालों से वह दर-ब-दर भटकती हुई 'उस पुराने नमक के घर को ढूंढ़ती है जो आग की बारिश में बह गया .... 'ख़लिश' में नासिरा शर्मा तस्लीमा नसरीन की तरह धार्मिक कट्टरता और उन्माद के विरोध में आवाज़ उठाती हैं । उन्माद चाहे सियासी हो या धार्मिक, दूसरे की श्रद्धा और निष्ठा को तोड़ना क्या अपने में ही एक अपराध नहीं है ? प्रगतिशीलता के नाम पर आंदोलन के समर्थकों पर ढाए गए जुल्म एक ख़लिश की तरह लोगों के दिलों पर नक्श हैं । अचानक सड़क पर लड़कियों के कहकहे सुन कर सोहराब हैरत से देखने लगता है - क्योंकि अब यह वाकई हैरत की चीज़ है, लेकिन कभी यह ईरान की सड़कों के लिए बहुत आम बात थी । उन्माद आदमियों के ही नहीं, शहरों के चेहरे भी बदल देता है । 'झूठा पर्वत' का अलीरेज़ा बाहर बच्चों का बाप होकर भी मौत की आगोश में आज तनहा है । छह बेटे एक-एक करके मारे जा चुके हैं । बेटियां पता नहीं कहां जा बसी हैं जो कभी देखने या खैर-खबर लेने नहीं आतीं । पड़ोसी युवक हामिद से वह पूछता है कि आखिर वह या उसकी पीढ़ी के लोग चाहते क्या हैं ? ... क्या हर हाकिम में ही कीड़े हैं ? ... इसके उत्तर में हामिद भी एक सवाल ही पूछता है ... 'हर मुल्क की जनता अपने हाकिम से क्या मांगती है ? अमन, इनसाफए हिफ़ाजत, रोटी और रोज़गार ... जब यह सब न मिले तो क्या करेंगे ?...

नासिरा शर्मा रचित 'इब्ने मरियम' की कहानियां अंतर्वस्तु के इसी विस्तार को नये

आयाम देती हैं । ये किसी एक देश की कहानियां न होकर अनेक देशों की पृष्ठभूमि में लिखी गई हैं - युगांडा, फिलीस्तीन, इथोपिया, अफ़गानिस्तान, सीरिया, स्कॉटलैंड, बंग्लादेश, इराक, तुर्की और भारत में परिवेशगत और भौगोलिक ब्यौरों का अधिक महत्त्व नहीं है । 'जहांनुमा' को पढ़कर भूमिका से ही यह पता चलता है कि यह तर्कों की पृष्ठभूमि पर है । कहानी प्यार और राजनीति से सैद्धांतिक मोहभंग को केंद्र में रखकर लिखी गई है । अपने सिद्धांतों का भौतिक मूल्य न पाकर कमाल नबीला की जिंदगी से निकल जाता है - उसके बहुत समझाने के बावजूद । वह एक उद्योगपति की बेटी उज्मां से विवाह कर नया जीवन शुरू करता है । लेकिन दस बारह वर्ष बीत जाने पर भी उसे इससे भी पूरी तरह संतोष नहीं होता वह फिर नबीला की जिंदगी में वापस आना चाहता है । नबीला के कमरे में आने पर, अपने इस्तेमाल में आने वाली ऐशट्रे को अभी भी वहीं देखकर उसे आशा भी बंधती है । लेकिन कहवे के दो अलग तरह के प्याले देखकर वह पूछता है - क्या एक टूट गया है ? कमाल के प्रस्ताव पर नबीला का उत्तर है ... 'सुनो कमाल, जब मोहब्बत जिंदगी में दाखिल होती है, तो उस पर इनसान का कोई बस नहीं होता, मगर जब मोहब्बत जिंदगी से विदा लेने लगती है तो उसे थामकर रखना भी गैरमुमकिन होता है । यही मेरी मजबूरी है । ऐसा ही कुछ मेरे साथ हुआ । ऐशट्रे वहीं होने की सफाई में वह कहती है - तुम्हारी याद आ सकती है, लेकिन तुम नहीं ।'(31) कमाल जो कभी उसका आईना हुआ करता था, जिसमें वह बरसों खुद को देखती आई थी, आज उसका रुख बदल गया है । अब जो जहांनुमा आईना उसके सामने है, उसमें वह पूरी दुनिया देख रही हैं । 'इब्ने मरियम' की कहानियां इसी विशाल आईने में अपने को ढूंढ़ने और देखने की इच्छा का परिणाम हैं । इंसान की सारी पीड़ा और उथल-पुथल के बावजूद उसमें जिंदा रहने और अपने को नये सिरे से स्थापित करने की अद्‌भुत जिजीविषा होती है । इब्ने मरियम, गोदो की तरह, भले ही कभी न आए लेकिन उसके आने की आशा ही आदमी को जिंदगी के छूट गए सूत्रों से जोड़ती है । नासिरा शर्मा संवेदनशीलता के धरातल पर इन सूत्रों को बटोरकर मनुष्य की इसी जिजीविषा को अपना रचनात्मक सरोकार घोषित करती हैं ।

बलात्कार की समस्या : बलात्कार की परंपरा तभी से चल रही है जबसे पुरुष प्रधान समाज शक्तिशाली बना-यानी पितृसत्ताक सत्ता चलन में आई । इस संदर्भ में रमणिका गुप्ता के विचार हैं- ''औरत को पुरुष की संपत्ति होने की अवधारणा के चलते ही उससे बलात्कार कर पुरुष दूसरे पुरुष से बदला लेता है । यानी औरत की इज्जत जो यौन-शुचिता में सीमित है, पुरुष सम्पत्ति मानी जाती है अर्थात औरत की अपनी इज्जत की कोई अवधारणा ही नहीं है ।''(32) अर्चना वर्मा के अनुसार, ''पितृसत्तात्मक समाज के नैतिकता बोध का यह मर्मस्थल है - स्त्री की देह और उस पर दखल । किसी भी कोटि का पुरुष यही मानना चाहता है कि बलात्कार के

द्वारा स्त्री को तोड़ा जा सकता है । बड़े पैमाने पर सामान्यत: स्त्री समुदाय के बारे में जो अभी पुरुष के चंगुल के बाहर नहीं है ।''(33) ऐसी स्त्री स्वयं आत्मग्लानि की अग्नि में झुलसती है और आत्महत्या का कदम उठाकर मुक्ति पाना चाहती है क्योंकि बलंत्कृत स्त्री के साथ समाज का रवैया कुछ अधिक ही भयावह होता है । वह उसे ही जिम्मेदार ठहराता है । नासिरा शर्मा ने भी अपनी कहानियों में बलात्कार की शिकार स्त्री की जटिल त्रासदी को व्यक्त किया है । लेकिन नासिरा की कहानियों में ब्लैकमेल करके, धोखे में रखकर शारीरिक संबंध स्थापित करने का जिक्र अधिक आया है । 'प्रोफेशनल वाइफ' में फिल्म निर्माण क्षेत्र से जुड़ी महिला बनी को भावनात्मक रुप से शोषित कर विजय उसके साथ यौन संबंध स्थापित करता है । विजय-बनी के मध्य चल रहे थे संवाद इस मानसिक त्रासदी को दर्शाते हैं :- ''तुमको ऐसा ख़्याल क्यों गुज़रा कि मैं किसी प्रकार का तुम्हारा शोषण करना चाहता हूं ?''

ख़ामोशी !

''दूसरों से कहने से अच्छा था मुझसे कहना ताकि मैं उस समस्या को सुलझा देता । अब बताओ मेरी किस बात से तुम्हें लगा कि मैं .... ''

''सर ! जो मुझे महसूस हुआ वह मैंने कह दिया । मैं झूठ नहीं बोल रही हूं ।'' वह आहत-सी बोली ।

''जैसे'' विजय के स्वर में जिज्ञासा के साथ क्रोध भी था ।

''आपका किस करना, कभी-कभी गुदगुदाना आई मीन मज़ाक में, मुझे अच्छा नहीं लगता, मैंने कई बार मना भी किया आपको मगर ... ''

एक जगह 'बनी' पूर्णतया आहत है और वह कह उठती है - ''''नहीं, इस मामले में, जहां तक मेरा सवाल है में बिल्कुल क्लियर हूं, कई बार मैंने अपने को टटोला भी मगर ऐसा नहीं है। मेरे जिस्म में न सेक्स की चाहत बची है और न ही मुझे किसी से प्यार हो सकता है। मेरे साथ एक-दो बार नहीं बल्कि कई बार मेरा बलात्कार हुआ है, मैं अन्दर से टूटी हुई हूं। सर बहुत चाहते हैं मुझसे शारीरिक सम्बन्ध स्थापित करना मगर मुझमें उमंग नहीं जगती है!''(34)

दरअसल यह कहानी प्रोफेशन के नाम पर अस्थाई रुप से स्त्री - पुरुष के मध्य शारीरिक संबंधों पर केन्द्रित है जिसे उच्च वर्गीय समाज का कुछ हिस्सा जायज ठहराता है । विजय कहानी की एक किरदार सुधा से कहता है - ''सुनो ! यह सम्बन्ध प्रोफेशनल है । बहुत गहरी हैं इनकी जड़ें तुम काट नहीं पाओगी, इसका रिश्ता शताब्दियों का है .... सुनो एक बात गौर से

विजय ठीक कहता था कि अपने पैरों पर खड़ा होना सीखो अमर बेल बनकर तनावर दरख्त पर लटकना छोड़ दो । मैं यहां पूरे हो माह के लिए आई हूं मुनासिब है कि तुम अपने को समेट लो । अच्छा, नमस्ते ! मैंने दोनों हाथ जोड़ दिये ।''(35)

कहानी के अंत में स्पष्टत: उल्लिखित है - ''हम दोनों कार में बैठ गये । कार मुड़ी तो मैंने नज़र ऊपर उठाई । खिड़की से 'बनी' हमको जाता देख रही थी । उसके चेहरे पर हार की पीलाहट पुती हुई थी । जो अक्सर प्रोफेशन के नाम पर वाइफ बनने वाली लड़कियों के मुंह पर कुछ अरसे बाद आ जाती है । मैंने हाथ उठाकर हंसते हुए उसको बाय-बाय किया ।''(36)

लेकिन उन स्त्रियों का क्या जिनकी इच्छा के बगैर उनका शारीरिक शोषण होता है । यह सही है कि प्रोफेशनल क्षेत्रों में कुछ स्त्रियां आगे बढ़ने के लिए तन का सहारा लेती हैं लेकिन 'बनी' जैसी महिलाएं भी तो हैं जो यौन शुचिता को अपनी आत्मा का हिस्सा मानती हैं और कोई उसे दमित करने की कोशिश करता है तो वह पूरे भीतर तक तार-तार हो जाती है । लेखिका ने 'बनी' के जरिए इस मानसिक त्रासदी को बयां करने का सफलतम प्रयास किया है ।

स्वतंत्र अस्मिता

अस्मिता का संघर्ष स्वातंत्रयोत्तर भारत में तीव्र हुआ है और उसके स्वर की प्रखरता भी देखने को मिली है । हालांकि स्त्री की स्वतंत्र अस्मिता के प्रति आवाज पहले से उठती रही है । ''बीसवीं सदी के आरम्भ से ही जहां एक ओर राष्ट्रीय मुक्ति संग्राम में स्त्रियों की सहभागिता में वृद्धि होने लगी, वहीं दूसरी तरफ साहित्य संसार में भी एक से एक जुझारु, संघर्षशील, बलिदानी स्त्री-छवियों की रचना होने लगी । मैथिलीशरण गुप्त, प्रेमचंद, प्रसाद, पन्त, निराला, सुभद्रा कुमारी चौहान आदि ने अपने अपने ढंग से स्त्री - दर्प एवं शक्ति के चरित्रों को गढ़ा । - - - - स्त्री की स्वतंत्र अस्मिता की एक प्रभावशाली छवि सुभद्रा कुमारी चौहान ने अपनी 'गौरी' कहानी में गढ़ी है । इसी कहानी की नायिका गौरी एक अत्यंत विद्रोही चरित्र है । वह माता-पिता की पसन्द-नापसंद की परवाह न करते हुए उस सीतारामजी का पति के रुप में वरण कर लेती हैं जो हैं विधुर, और दो बच्चों के पिता भी, लेकिन वे देश सेवा के लिए समर्पित हैं और बहुधा सुराज के लिए जल-यात्रा करते रहते हैं ।''(37)

नासिरा शर्मा ने अपनी कहानियों 'संदूकची' एवं 'गली घूम गई' में स्त्री की स्वतंत्र अस्मिता को मुखर किया है । 'संदूकची' कहानी का शीर्षक लेखिका ने इस बिना पर दिया है कि नायिका सुमन की मां अपनी संदूकची में रखी यादों और भावनाओं की दृष्टि से अमूल्य वस्तुएं एक-एक करके सदाय की परवरिश, लड़कियों की शादियां एवं घर-गृहस्थी को

चलाने में खर्च कर त्याग का परिचय दिया । सब चुक जाने के बाद भी मां ने आराम करने की बजाय स्कूल की नौकरी शुरु की थी । सभी जेवर बिक जाने से मां से सुमन कहती है – 'भूल जाओ मां, असली जेवर तो औरत की शक्ति होती है ।'(38)

संदूकची के सारे दराज एक-एक कर खाली होते चले गए पर सुमन की मां उस खाली संदूकची में ताला लगाकर निगरानी करती थी मानो संजोये हुए यादों के कोष कोई चुरा न ले । हालांकि उनके आखिरी समय में घर में आई सुमन की मामी को संदूकची में कुछ छुपा होने का संदेह हुआ । सुमन मां की मौत के बाद-गुस्से में फट पड़ती है – ''लीजिए देखिए... अच्छी तरह से देखिए ।'' पांच दिनों से बंद मेरी आवाज चीख में बदल गई थी।

''क्या हुआ सुमन'' रमेश बदहवास से दौड़े आए ।

''क्या हुआ मामी ।'' दोनों लड़कियां अगल-बगल खड़ी होकर चाची को खूनी आंखों से घूरने लगीं ।

देखिए ... अच्छी तरह से इत्मीनान कर लीजिए ! ... कुछ छुपा तो नहीं है ।'' मैंने दराज को चाची के सामने कर दिया । फिर आवेश में आकर दराज फर्श पर पटकना शुरु कर दिया ।

मैं तो नन्नू ... चाची ने सफाई देना चाहा ।

''नन्नू से नहीं आज मुझसे बात करिए । क्या निकला इसमें ? क्या मां कुछ छुपाकर अपने साथ ले गई हैं ? कहिए अब यही कहना बाकी है ।''

चाची को घूरते हुए रमेश चन्द्र पल भर खड़े जैसे अपने को रोक रहे हों फिर सहज चाल से मेरे पास आये और खाली दराज को मेरे हाथ से लेकर दोबारा आलमारी में लगी चाबी घुमाई और मेरी कांपती काया को कंधे से पकड़ कमरे से बाहर ले गये । लड़कियां परेशान थीं । मामी सिर पर हाथ रख वहीं कमरे में बैठ गई और मैं किसी को नहीं बता पाई कि मां उस खाली दराज में क्या रखकर ताला लगाती थीं ?''(39)

इस कहानी में सामान्य मध्य वर्गीय भारतीय परिवार में स्त्री वर्ग के व्यवहार, सोच एवं चरित्र का सफल निरुपण है। पर साथ ही, इस कहानी में लेखिका ने नायिका सुमन के जरिए स्त्री के स्वतंत्र अस्तित्व को रुपायित करने का प्रयास किया है । घर-गृहस्थी का झार ढोते-ढोते मां जब कभी विचलित होती है, सुमन उसे संबल देती है और हर कठिन मोड़ पर उसे मानसिक सहारा प्रदान करती है बगैर इस बात की परवाह किए कि परिवार के अन्य सदस्य क्या सोचेंगे, कहेंगे । खास तौर से मामी के प्रति वह पहले तो बेपरवाह रहती है, बाद में कड़े शब्दों में प्रहार करके उन महिलाओं को स्वर देती है जो 'चुप' और 'निरीहता' का पर्याय बन चुकी हैं ।

दूसरी ओर 'गली घूम गई' कहानी में स्त्री पात्र मिनी के पहले तो विद्रोही स्वर होते हैं । आजाद ख्यालों वाली मिनी अपनी पसंद से विवाह करने की इच्छा व्यक्त करती है । बाद में

वह स्वर धीमा पड़ जाता है । उसकी शादी की बात घर में चलती है तो मिनी से उसकी बड़ी बहन कहती है -

''शादी हर लड़की की होती है इसलिए तेरी भी होगी, इसमें बिगड़ने वाली क्या बात है ?'' तो आज़ाद सोच की पक्षधर मिनी यूं जवाब देती है - ''देखो दीदी ! मैं हर लड़की नहीं हूं । इसलिए मेरी शादी नहीं होगी । रही बिगड़ने वाली बात तो सुन लो, शादी मुझे करनी है सारी दुनिया को नहीं जो सब टांग अड़ाते रहते हैं ।''(40)

मिनी जब यह कहती है कि ''चुप क्यों रहूं ? राजेश भैया को छूट थी अपनी पसंद की पत्नी लाने के लिए मगर वह छूट मिनी को क्यों नहीं ?''(41) तो परिवार के सारे सदस्य चुप हो जाते हैं । यह कथन कहीं से अतिशयोक्ति पूर्ण नहीं है न ही, बदजबानी या बदसलूकी का उदाहरण । यही संवाद कोई पुरुष बोले तो वही इतनी आम बात होती कि उल्लेखनीय भी नहीं रहती । पर चूंकि स्त्री स्वर उभरा है तो खलबली मचेगी ही । लेखिका ने मिनी किरदार के जरिए स्त्री अस्मिता के स्वर को उभारा है । यद्यपि इस कहानी के अंत में मिनी की शादी मां-बाप के तय लड़के से ही होती है क्योंकि उसकी पसंद के लड़के रोहित से उसकी बहन ऋतु का विवाह हो चुका होता है । कहानी में सामाजिक ताना-बाना है । भारतीय परिवेश के रोचक घटनाक्रमों से युक्त है यह कहानी पर स्त्री अस्मिता की पक्षधर है। रोहित से इतर लड़के के बारे में मिनी अपनी भाभी सुनंदा से कहती भी है - ''भाभी, यह मेरे साथ ज्यादा जचेंगे - क्यों ?'(42) कहानी के आखिरी वाक्य 'उसने (मिनी) आंखें खोलीं और मन ही मन कहा, यथार्थ को स्वीकार करने में ही जीवन बोध छुपा है' के द्वारा नासिरा शर्मा यह व्यक्त करना चाहती है कि स्त्री का स्वर उसे नकलची न बनाए, स्वावलंबी बनाए पर इसका यह अर्थ भी नहीं कि विरोध सिर्फ विरोध करने के लिए हो, विवेकशीलता आवश्यक है । जहां विरोध कर अपना पक्ष स्वतंत्र रुप से रखने की आवश्यकता थी, वहां मिनी ने बखूबी यह जता दिया । लेकिन बाद में उसे परिवार की रजामंदी से मिले लड़के से विवाह करने में उसकी भी सह-इच्छा बनी तो यह उसका घुटने टेकने जैसा व्यवहार सोच कतई नहीं है, यह विवेक रुपी नजर में यथार्थ रुपी तस्वीर कैद करने के तुल्य है । महादेवी वर्मा की पंक्तियां यहां चरितार्थ होती है - '' आज आजादी मांगने से मिलती कहां है । आजादी तो हम औरतों को छीनकर लेनी होगी, परन्तु समता के नाम पर पश्चिम से उधार ली हुई समता की बात से सहमत नहीं हूं । समता की बात करके औरत मर्द बन जाना चाहती है, जबकि उसे मर्द नहीं, विवेकशील, विचारवान औरत बनना है और यह नए और पुराने के संतुलित समन्वय से संभव होगा ।''(43)

नए-पुराने मूल्यों का यह समन्वय 'गली घूम गई' एवं 'संदूकची' दोनों कहानियों में

देखने को मिलता है । अंतर सिर्फ इतना है कि जहां 'गली घूम गई' में समन्वय के जरिए लेखिका समाज को यह बताना चाहती है कि लड़ने के लिए जोश चाहिए जरुर पर सुव्यवस्थित एवं शांत चित्र युक्त जीवन हेतु होश का साथ रहना जरुरी है, वहीं दूसरी और विवेक और स्वतंत्रता के माध्यम से उन भारतीय मूल्यों की स्थापना की बात लेखिका करती है जो दकियानूसी व दब्बू सोच के दायरे से बाहर भी है और सफल पारिवारिक जीवन की वाहक भी । आजादी और विवेकशीलता का यह समन्वय स्त्री अस्मिता का सही मायने में परिचायक है जो नासिरा की उक्त दोनों कहानियों में देखने को मिलता है । कहना असंगत न होगा कि 'संदूकची' एवं 'और गली घूम गई' कहानियां स्त्री अस्तित्व की सशक्त पहचान है ।

त्याग और समर्पण स्त्री के प्राकृतिक गुण हैं । स्त्री को बचपन से ही कर्तव्यपरायण, त्यागपरायण बनने की शिक्षा दी जाती है । लेकिन अधिकार के ज्ञान से उसे हमेशा ही वंचित रखा जाता है । स्त्री की हीन भावना ही उसे कुंठाग्रस्त बना डालती है क्योंकि भारतीय समाज उसे 'स्त्री' के रुप में कम मादा के रुप में ही अधिक देखता है । उसके चलते वह अस्तित्वहीन तथा व्यक्तित्वहीन बन जाती है और यही कुंठा बार-बार त्याग करने के लिए उसे मजबूर कर देती है क्योंकि स्त्री से यह समाज हमेशा ही त्याग की अपेक्षा करता आया है । यहां 'सन्दूकची' कहानी की सुमन की मां त्यागमयी स्त्री की प्रतिमूर्ति बनकर सामने आती है । बेटे की पढ़ाई हो या बेटियों के विवाह या फिर घर की बढ़ोत्तरी, व निर्माण या साज-सज्जा पर व्यय सब कुछ इस त्यागमयी किरदार अपनी संदूकची के विविध खानों में सहेजकर रखे बुन्दे, टॉप्स, हार कील, कड़े, चूड़ियों या अंगूठियों को एक-एक करके बेचकर पूरा करती है और सब कुछ बिक-चुक जाने के उपरांत स्कूल में शिक्षिका की नौकरी करने लग जाती है । पूरे सौ तोले सोने के जेवर थे । सब खत्म हो जाने के पश्चात भी वह संदूकची को कभी - कभार खोलकर उसके दराजों को देखा करती है । सन्दूकची के प्रति लगाव, संजोई हुई यादें लेखिका ने यहां दर्शाए हैं । इस प्रकार एक त्यागमयी स्त्री के साथ एक भावुक स्त्री का दर्शन कराने में नासिरा शर्मा सफल हुई हैं ।

3.2 स्त्री जीवन की अन्तर्जटिलता एवं वर्गान्तरण

प्राचीन काल की स्त्रियां अपने पति को परमेश्वर मानती थीं और स्वयं को उसकी अनुगामिनी । इसलिए वे पति के अस्तित्व में ही अपने अस्तित्व को विलीन कर देती थी । 'मनुस्मृति' में इसी भाव को बल प्रदान किया गया है । परन्तु वर्तमान युग की स्त्रियां अपने व्यक्तित्व के प्रति सचेत हैं, अपना जीवन स्वयं जीने के प्रति जागरुक हैं, अपना अलग अस्तित्व तलाश व निर्मित कर रही हैं । आज की स्त्रियां राजनैतिक एवं प्रशासनिक व्यवस्था में बड़ी संख्या में भाग लेने लगी हैं । भारतीय संविधान के सर्वोच्च पद यानी राष्ट्रपति के

गरिमामय पद को एक महिला सुशोभित कर रही है । संसद के प्रत्यक्ष जन प्रतिनिधित्व वाले सदन यानी लोकसभा की अध्यक्ष भी एक महिला श्रीमती मीरा कुमार चुनी गई हैं । इतना ही नहीं, नई केन्द्र सरकार ने महिला आरक्षण विधेयक को भी मूर्त रुप प्रदान की घोषणा की है । कुछेक राजनीतिक दलों को छोड़कर अधिकांश दल इसके पक्ष में खड़े दीखते हैं । वस्तुतः आज की स्त्रियां किसी की पत्नी, पुत्री, मां, बहन के रुप में अपनी पहचान लेकर आगे बढ़ना नहीं चाहती, बल्कि वह स्वयं अपनी क्षमता और प्रयासों के बल पर अपनी अलग पहचान बनाना चाहती है । एक स्त्री होने के नाते समाज सुधार के हितों की बात को भी वह समझ सकती है । इसलिए वह समाज के विभिन्न क्षेत्रों में आगे बढ़ते हुए स्त्री-स्वर को मुखर कर रही है, चाहे वह विज्ञान के क्षेत्र में कल्पना चावला के रुप में हो या अर्थ के क्षेत्र में चंदा कोचर या दीना मेहता के रुप में हो या लोक कला के क्षेत्र में तीजन बाई के रुप में हो । ग्रामीण क्षेत्रों में पंचायत, ब्लॉक आदि से जुड़ी सरकारी या गैर-सरकारी संस्थाओं में प्रमुख पदों पर भी महिलाएं कार्यरत देखी जा सकती हैं ।

इन संदर्भों को नासिरा शर्मा की कई कहानियों में देखा जा सकता है । विभिन्न परिवेशों में पली-बढ़ी स्त्रियों की अन्तर्जटिलता नासिरा शर्मा की कहानियों में परिलक्षित होती है । चाहे वह 'दूसरा ताजमहल', और 'गोमती देखती रही' तथा 'प्रोफेशनल वाईफ' हो या फिर 'संगसार', 'बुतखाना' एवं 'अपनी कोख' हो, नासिरा शर्मा ने अलग-अलग वर्ग और परिवेश से सम्बद्ध स्त्रियों के मानसिक संताप, उद्वेलन को अपनी कहानियों में मुखरता प्रदान की है । डॉ. रोहिताश्व के शब्दों में - ''नासिरा शर्मा वर्ण, वर्ग, जाति, सम्प्रदाय, प्रांत, धर्म, आस्था विशेष से परे जाकर मानवीय संघर्ष और उदात्तता के चित्रण की 'समग्रता बोध' वाली रचनाकार हैं जिनकी रचनाओं में यथार्थ का प्रतिबिम्बन ही नहीं पाया जाता, बल्कि मानवीय जीवन के अन्तर्विरोध, अवसाद के क्षणों से मुक्ति, एकाकीपन के दंश से बिलगाव, बोध के क्षणों का अभूतपूर्व चित्रण उपलब्ध होता है ।'' ... ... ''मानवीय जीवन में रोमांटिक भाव बोध, उत्थान और पतन, अवसाद और प्रमाद के अनबूझे और विफल क्षण कई-कई मायनों में अभी भी अलक्षित हैं । नासिरा शर्मा न तो असफल प्रेम की सफल लेखिका अमृता प्रीतम की अनुकृति रचती है और न ही, शोभा डे की कलम से अभिव्यक्त रति-प्रसंगों के बेबाक प्रसंगों की अनुश्रुति रचती है, बल्कि वह एकाकीपन की चाह, तड़पन और अपनेपन की बुभुक्षित आत्मा की संवाहक चरित्र गाथा रचती है ।''(44)

नासिरा की कहानियाँ मध्यवर्ग की उस नारी की कहानियाँ है, जो नारी त्रासदीपूर्ण मनोवृत्तियों व मानसिकताओं के बीच से उभरी हैं - ''मेरी कहानियाँ मुहाजरत के दुख और मुजरों के सुख का मोहभंग करती हुई एक ऐसी गली की सैर कराती है जो 'पत्थर गली' है -

इस पत्थर गली के रहने वाले अपने विकास के लिए जद्दोजहद के लिए छटपटाते नज़र आते हैं । अपनी पहचान के लिए जद्दोजहद के समुन्दर में गोते लगाते हैं । रुढ़िवादिता की बेड़ियों को तोड़कर खुले आसमान में उड़ना चाहते हैं .... पंखों को पसार कर उसमें सूरज की गर्मी और रोशनी भरने के लिए तड़पते हैं ... कश्मकश में टकराकर लहूलुहान हो उठते हैं ... ।''(45)

'पत्थरगली' के माध्यम से उनकी जो भी कहानियां उपलब्ध हो सकी हैं उनमें नारी अस्मिता, उसके जीवन बिम्ब, रिश्तों की बेबसी, संबंधों का स्थायित्व, स्वार्थपरकता, आत्मीयता का अभाव, बाज़ार के से उतार-चढ़ाव की ज़िन्दगी, उदासियों का अंधेरापन, और कहीं कोई रोशनी की लकीर-सी निर्बाध बहती हंसी ... जो नारी जीवन की लंबी-लंबी गलियों से गुज़रती, आंसू, दर्द, उत्पीड़न और शोषण की चिलमनों से सरकती हुई कागज़ के बदन को स्पर्श करती है ।

रिश्तों के इन्हीं यथार्थ को उकेरती नासिरा शर्मा अपनी रचना-धर्मिता के बल पर पाठकों तक पहुंची हैं - ''मैं अपने को हमेशा दूसरों में बांटती आई हूँ । ठीक 'बावली' के पानी की तरह । जिस किसी को प्यास लगी, मेरे वजूद की सीढ़ियां उतरता सीधे नीचे चला आया और अपना खाली बर्तन भरकर ले गया । मैं कुआं तो थी नहीं जो किसी को रस्सी और डोल डालने की ज़हमत उठानी पड़ती, मैं तो एक बावली थी, ... पानी से भरी बावली, जिसके पानी को कोई भी अपने चुल्लुओं में भरकर अपने सूखे गले को तर कर सकता है ।''(46)

कहानी की विषय वस्तु अथवा घटनाओं का प्रस्तुतीकरण कैसे हो, शिल्प के स्तर पर कहानी का विकास कैसे हो ? सीमाएं क्या हों ? कहानी की आत्मा को, कला को, साहित्य विधा में क्या स्तर प्रदान किया जाय इसकी प्रतिध्वनि नासिरा की कहानियों में सुनाई देती है - ''मेरे वजूद की दीवारों पर बेशुमार ताक बने हुए थे उनमें विभिन्न कबूतरों ने बसेरा कर रखा था । ताकों पर बड़े-बड़े दर्रों में गर्मी में तपती दोपहर से थके परिन्दे मेरे ठंडे वजूद में आकर पनाह लेते थे ... कभी ख़्याल ही नहीं आया कि मेरा अपना एकदम निजी भी कुछ हो सकता है ... मैं उनमें प्यार के रिश्ते के नाम पर बंटती रही ।''(47)

घर की चारदीवारी में सपने बुनती मुस्लिम महिलाओं के दिल में हाहाकार मचाती जीवन शैली से जूझती कमसिनी की दस्तक को जैसे नासिरा ने स्वयं अपनी कहानियों में सुना ''तकिया भीग चुका है ... सिसकियां रुकने का नाम नहीं ले रही हैं, आख़िर अपने ही घर में इतना क्यों घुटती है ? क्यों उलझती है - ? यहीं पली, बढ़ी, ... फिर क्यों ? उसे कुछ पता नहीं है, बस, ... उसे महसूस होता है कि उसे बचपन से ऐसा लगता रहा है कि वह इस

वातावरण में जीने के लिए पैदा नहीं हुई है ।''

मुस्लिम (शिक्षित) समाज में जन्म लेकर परवरिश पाई आधुनिक मुस्लिम नारी अपनी मान्यताओं, मर्यादाओं और रस्मो-रिवाज़ की बलि वेदी पर चढ़ी, भावनाओं के वेग में जकड़ी, खानदान की चारदीवारी में 'नोहाख़्वानी' करती अपना सीना पीटती और अपनी सोच को जिब्ह होती बेजुबान गाय की तरह सीधी लड़कियों की सिसकियों की आवाज़ को भी नासिरा ने न केवल सुना बल्कि मुस्लिम समाज की रुढ़िवादिता पर सशक्त टिप्पणी की ''मुस्लिम समाज सिर्फ ग़ज़ल नहीं है, बल्कि एक ऐसा मर्सिया है, जो अपनी रुढ़िवादिता की कब्र के सिरहाने पढ़ता है, पर उसके साज़ और आवाज़ को कितने लोग सुन पाते हैं ? और उसका सही दर्द समझ पाते हैं ।''

ज़िंदगी की इन्हीं उधेड़बुन और ख़्वाहिशों का गला घोंटती चीख़ें का गुमान होता है नासिरा की कहानियों में - ''शबाना के दिल में एक ख़्वाहिश बार-बार दस्तक दे रही थी कि शहर जाने से पहले वह एक नज़र उन्हें देख ले ... अब ज़िंदगी का कोई भरोसा नहीं रह गया है, कि कब उसकी डोली इस घर से रुखसत हो जाय । किसको भेजे वह उनके पास ? अम्मा भी जाने कैसे अंजान बन बई हैं ।''

घर-परिवार के उदास और बोझिल वातावरण ने जैसे मुस्लिम महिलाओं के नाचते गाते जीवन से सारे रिश्ते तोड़ लिए हैं, एक सन्नाटा जो दिलों में शंकाओं को जन्म देता हुआ फैलता जाता है ... एक भरोसा जो उनके भीतर दम तोड़ता महसूस होता है ... उनके अंदर पनप रहे प्रेम और स्नेह का सुखद एहसास बार-बार आंखों से झलक पड़ने को बेताब नज़र आता है, ... कुछ ऐसे ही किरदारों को जिया है नासिरा ने अपनी कहानियों में - ''गुज़रे कल की वे औरतें क्या थीं ? बलिदान की मूर्तियां या फिर बली की वेदी पर चढ़ाई गईं बकरियां ? ऐसे हालात में उसे भी जलते-जलते पिघलना है । मर्यादा की लौ को सिर पर उठाये दम तोड़ना है, ... घूंट-घूंट उस दर्द के समुन्दर को पीना है । बड़े घरों की कहानियां जिनके आंगन में दम तोड़ती हैं ... !''

तमाम कहानियों में नासिरा एक साफ और दो टूक जुबान में बिना किसी हेर-फेर तथा घुमावदार सीढ़ियों के चढ़ने अथवा पहेलियों की तरह उलझे शब्दों में कहीं भी किसी घने जंगल की तरह नज़र नहीं आतीं । व्यक्तित्व के दृष्टिकोण से वह संतुलित और मानसिक रुप से जाग्रत रहने वाली विनम्रता और शालीनता की शैली में व्यक्त करने के फन में निपुण नज़र आती हैं ।

कहानी की धीमी-धीमी आहटों और कहन की प्रतिध्वनि को सुनती हुई नासिरा ने अपने अध्ययन, सोच-विचार, अनुभव एवं रचनात्मक प्रतिभा के बल पर साहित्य को नये आयाम दिये हैं, आधुनिक और मुआशरे के प्रति जागरुक एवं विचारशील साहित्य सृजन को

स्वच्छ समाज के सामने रखकर सामंत व्यवस्था की जकड़ को कम करने की आवाज़ दी । उनकी क़हानियों के किरदार को उनकी लेखनी के पटल पर धरा महसूस करें तो मालूम होगा कि नारी-जीवन में एक क्षण कभी ऐसा भी आता है ... जब वह सोचने पर मजबूर होती है ... ''जहाँ स्नेह का साया न हो, लबों से प्यार के पलों को चुनने का सुख न हो तो ऐसे क्षणों में जीते रहने से क्या ?''

कुछ ऐसा ही आभास कराती है उनकी कहानी 'पत्थरगली' का प्रस्तुत अंश - ''... झुटपुट होते ही दिल पर घुटन भरे बादल जमा होने लगते थे । ... बचपन से उसके दिल में छिपी वह अनाथ परी रोने बैठ जाती और इसी शोर की प्रतिध्वनि उसके मस्तिष्क से टकराती, हाहाकार मचाती प्रश्न करती है । ... आख़िर मैं क्या करूँ ? मैं कहां जाऊँ ? यूं पड़े-पड़े जीना भी कोई जीना है ।''(49)

सगीर अशरफ के शब्दों में ''नासिरा की कहानियों में खुशबू है, यादें हैं, सहमी हुई ख़ामोशी है, सिमटे हुए सपने हैं, ... चांदनी बिखेरती आंखों में अफ़सुरदा नींदें हैं ... और कई पड़ावों में ठहरी हुई ध्रुवहीनता में घूम रही सोच के दायरों में परिवर्तनशीलता की मंज़िल का रास्ता तलाश करती हुई मान्यताएं हैं और प्रेम की बगिया में खिले-खिले पुष्पों की सुगंध और कांटों की चुभन है, ... उनके एहसास के गले में सुरों का कम्पन और लय का वास है, ... उनके कलम में शब्दों की धुन से निकलने की छुपी हुई हरकत है जो उनकी सोच के फूलों को खिलाती है । अहसास के दरिया में ग़म और खुशी की लहरों में सच्चाई की तलाश की ललक है । ... इसी वादी में नासिरा की कहानियों में विभिन्न प्रकार के स्वस्थ फूल खिलते हैं ।''(49)

''जब ग़म अपनी हदें तोड़ बैठता है, तो उसकी अभिव्यक्ति आंसू नहीं, हंसी बन जाती है ।... हंसी के इन्हीं मद्धिम चिराग़ों की लौ में मुझे 'जश्ने ग़म' मनाने का सलीका आ गया है ।... मैं इश्क की नाव पर तन्हा बैठी नफे नुकसान के हिसाबी दरिया को कब का पार कर चुकी हूँ । उसके घावों को सहलाती हुई खुद से पूछती थी कि क्या इंसानों के बीच इंसानियत खुद में एक अटूट बंधन नहीं ?''(50)

आशिक के प्यार पर यदि माशूक का एतमाद न रहे हो तो वह धरती से उखड़े उस दरख़्त की मानिन्द रह जाता है जो लाख उर्वर होने के बावजूद दोबारा नहीं जम पाता, बकौल नासिरा ...

''जब जवानी की नदी पहाड़ों के गुरुर को चूर करती मैदान में उतरती है तो ज़िन्दगी को ठहराव मिलता है और इश्क का सूरज हुस्न की ज़िन्दगी में नमूदार होता है । ... हुस्न के बदन के उभार को चूमती हुई उसे गर्मी अता करती है ।''(52)

इस गर्मी और इस लज़्ज़त की भीनी-भीनी आंच में ही हुस्न, इश्क को सूरज की किरणों के सुपुर्द करता है ।

... पहली बार मैंने इतने करीब, इतने ध्यान से तुम्हें देखा था, तुम्हारे वजूद की खुशबू से मैं आशना थी मगर तुम इतने हसीन होगे इसका एहसास पहली बार मन में जागा । आंखें और होंठ जो इश्क की लताफ़त का ख़ज़ाना होते हैं, वह तुम्हारे पास थे, तुम्हारी आवाज़ मुझे ज़िंदगी के उस बाग़ में ले गई जिसका ख़्वाब मेरे कंवारे एहसास ने देखा था । ... कितनी खुशबू थी उस रात ... रौशनी, साये दरख़्त इमारत, इंसान सब मुझ से पीछे छूट गये और मैं तुम्हारे वजूद की गहराई में डूबती चली गई ... कि मैं अपन सारे दम-ख़म को भूल चुकी हूँ ।''(52)

सगीर आगे कहते हैं - ''दिल की ताक़ में जब मन की आवाज़ के छीप की लौ तेज़ होती है तो धड़कनों की जड़ों से एहसासात की लताओं पर जज़्बात के फूलों की सुगंध अनायास ही आदम और हव्वा के गंदुम को चखने का सच उभरकर सामने आता है, और ख़्यालात के क्षितिज पर एक नया रोशन सूरज उगता हुआ महसूस होने लगता है, इस संदर्भ में कहानी 'सिक्का' का एक अंश कुछ यूं आभास कराता प्रतीत होता है ।(53)

''मैं हव्वा की बेटी बनी अपनी शादी में खोई हुई थी तुम आदम की औलाद बनकर उस वादी में दाख़िल हुए। तुम्हें देखकर में ताज्जुब में पड़ गई थी कि अब तक थी कहां ?... तुम्हें देख बिना इतनी लंबी उम्र गुज़ार दी ? ... अभी मैं अपने आप से सवाल कर ही रही थी । मैं नूर के इस दरिया को अपने वजूद के होठों से गटागट पीने लगी ...''

नासिरा के कहानी संसार में स्त्री की भावनाओं और संवेदनाओं का इस प्रकार हुआ मार्मिक चित्रण है कि पाठक उनकी कहानियों में स्वयं की झलक देखता है, घटनाएं उसके इर्द-गिर्द घट रही हैं, उसे ऐसा प्रतीत होता है । सच है, नारी की भावनाओं की प्रभावपूर्ण अभिव्यक्ति से नासिरा ने मुस्लिम समाज में उत्पन्न नारी के अस्तित्व को अस्मिता प्रदान की और जीवन की तमाम जटिलताओं के चर्चित वर्ण ने उनकी लेखनी को भाषा का संस्कार दिया । उनकी कुछ कहानियों की पृष्ठभूमि में स्त्री की न केवल छाया रही बल्कि मुख्यत: मुस्लिम नारी एक प्रतिबिंब के रुप में नज़र आती है । कहानियों में घटनाओं को साथ लेकर, किरदारों के भीतरी और बाहरी जीवन को दर्शाती हुई जीवन के निहित पहलुओं को उजागर करती नासिरा की कहानियों का दायरा इतना विस्तृत, असीम और इतना अधिक आयाम वाला है कि साहित्य की कोई विधा इससे अछूती नहीं रह सकती ।

3.2.1 भ्रूण हत्या व स्त्री के प्रति पक्षपातपूर्ण रवैया

इस समस्या की ओर प्रत्यक्षत: तो नहीं, अप्रत्यक्ष रुप से नासिरा शर्मा ध्यान खींचती है अपनी सशक्त कहानी 'अपनी कोख' से । पति - पत्नी संदीप और साधना के रुप में लेखिका ने दरअसल भ्रूण हत्या की समस्या को ही नहीं उठाया है, वरन लड़की के पैदा होने पर परिवार-समाज में नाक-भौं सिकोड़ने की वृत्ति पर भी कुठाराघात किया है । साधना विवाह को टालकर आगे की पढ़ाई पूरी करना तथा पुलिस की चुनौतीपूर्ण नौकरी करने की इच्छा रखती है । पर परिवार के पल-पल बढ़ते दबाव के तले उसने जींस उतार फेंकी और सलवार जम्पर पहन, सर पर चुन्नी का पल्लू डाल घर का हर काम चुपचाप सर झुकाकर कर रही थी मानो अपने आप से समझौता कर लिया हो । '' ... लड़की पैदा हुई है, तो ब्याही तो जाएगी । चाहे उसके अरमान आगे पढ़ने के हों, नौकरी करने के हों या फिर अकेले जीने के हों ।''(54) पर विवाह के उपरांत उसके सारे अरमान जर्जर भवन के भूकंप के एक झटके में ताश के पत्ते की भांति भरभराकर गिरने के समान धराशायी हो गए । वह एक मीठी साजिश में घिरती चली गई । ''घर गृहस्थी, व्यवहार, सदाचार, सत्कार सभी कुछ निभाने में चौबीस घंटे सुबह से रात तक इस तरह चुक जाते कि वह किताब तो दूर, अखबार भी खोलकर नहीं देख पाती थी ।''(55) और जब परीक्षा की तैयारी का वक्त आया तो जहां ससुराल खुशियों से फूले नहीं समा रहा था, वहीं साधना के घुटे अरमानों की आवाज स्वयं साधना नहीं सुन पा रही थी, क्योंकि डॉक्टर ने यह सूचना दी कि वह गर्भवती है । वह गर्भपात कराना चाहती है क्योंकि एम. ए. की फाइनल परीक्षा है । संदीप कोई बात नहीं सुनना चाहता । वह कहता है कि 'यह बच्चा तुम्हारा अकेले का नहीं है । ... और एक जीव की जान चली जाएगी ... ।'(56) आखिर संदीप उसे यह कहकर मना लेता है कि बच्चे के साथ उसकी पढ़ाई जारी रखने में वह उसकी मदद करेगा । पर ऐसा संभव कहां हो पाता है कि यहां हो पाता ! पुत्री ने साधना की कोख से जन्म लिया । पहली बेटी छह माह की थी कि वह पुन: गर्भवती हो गई । सास के दबाव में उसने भ्रूण परीक्षण कराया और फिर लड़की होने की जानकारी मिली । ससुराल वालों के लाख दबाव के बावजूद उसने भ्रूण हत्या नहीं होने दी और एक और बेटी की मां बनी । संदीप-साधना के पूरे एहतियात बरतने के बावजूद साधना तीसरी बार गर्भवती होती है परन्तु बेटे के पैदा होने की इच्छा रखने वाले ससुराल वाले गर्भपात नहीं करने पर जोर डालते हैं पर साधना एबार्शन करवा लेती है गरज कि उसे भ्रूण परीक्षण से गर्भ में लड़का होने का पता चल चुका था । कथा के अंत में साधना के ससुराल वालों को साधना के समर्थन में उतरते हुए लेखिका ने दिखाया । संदीप नसबंदी कराकर एक कदम आगे बढ़कर पत्नी का सहयोग करने का जज़्बा दिखाता है ।

यद्यपि 'अपनी कोख' में लेखिका ने स्त्री के अधिकार के रुप में गर्भपात को उचित ठहराया है तथापि उसने साथ-ही-साथ भ्रूण हत्या नहीं भी होने दिया है । दोनों कृत्य अलग-

अलग परिप्रेक्ष्य में होते हुए एक निष्पत्ति दर्शाते हैं कि अपनी कोख पर स्त्री का हक़ है, उसे कोई और संचालित नहीं कर सकता एवं भ्रूण हत्या लड़की की ही क्यों जायज है समाज में जबकि स्त्री-पुरुष सिर्फ जैविक दृष्टि से भिन्न हैं, अन्यथा उनमें कोई भेद नहीं । दोनों की सिर्फ इस बिना पर तुलना भी नहीं की जा सकती कि वह स्त्री है । कहानी में लेखिका ने स्पष्ट तौर पर यह संदेश दिया है कि बेटियों की सुरक्षा और सम्मान में समाज का सही विकास निहित है । इस कहानी में नासिरा ने साधना के दीर्घ अवधि तक परेशानी, उघेड़बुन व संताप में चल रहे मनोभाव को रुपायित किया है । एक भोली चपल-चंचल और बुद्धिमान युवती जब पारिवारिक दबावों में घिरती है तो कैसे पल-पल उसकी खुशियां रिसती चली जाती हैं, कैरियर का महल नींव के वक्त ही कैसे नेस्तनाबूद हो जाता है और अपने पैरों पर खड़ा होने की जिद का स्वप्न साकार करने का संकल्प संजोये हुए एक उच्च शिक्षित युवती पितृसत्तात्मक समाज द्वारा पैदा किए गए हालातों की घेराबंदी में कैसे दोराहे पर खड़ा हो मानसिक संताप और संत्रास से जूझ रही होती है, इन भावों को कागज पर बखूबी उतारने में सक्षम लेखिकाने कुशलतापूर्वक 'अपनी कोख' में कार्य किया है ।

वस्तुतः नासिरा शर्मा समाज में स्त्रियों के प्रति पक्षपातपूर्ण रवैये के प्रति काफी क्षुब्ध व परेशान हैं जो पूरी शिद्दत व ईमानदारी से उनकी उक्त कहानी व अन्य कहानियों में देखने को मिलती है, चाहे वह 'अग्नि परीक्षा', 'बड़े पर्दे का खेल', 'गुमशुदा लड़की' हो या फिर 'इच्छा घर', 'प्रोफेशनल वाइफ' और 'दूसरा ताजमहल' हो ।

सगीर अशरफ के शब्दों में ''कहना न होगा कि नासिरा का कहानी संसार मुख्यतः नारी के प्रति असमानताओं, उसके अस्तित्व की रक्षा के लिए अपने ढंग से नारी को सच करने के लिए लड़ा जा रहा एक अनवख्त युद्ध है । यही वजह है कि उनकी कहानियों में ख्वाब, हकीकत, परछाइयां व धुंध के सन्नाटे हैं जो भारतीय नारी के इतिहास और संस्कृति में मानवीय अस्मिता की तलाश करते नजर आते है ।''(58) लेखिका की अन्य कहानी 'सिक्का' भी नारी मन की अन्तर्जटिलताओं को रुपायित करने में कामयाब है । ''... मेरे व्यक्तित्व की कुंजी मेरे पास थी जिसके दरवाजे पर मजबूत ताला डाल रखा था । हर दस्तक पर मैं चौंकती जरुर थी मगर उठकर दरवाजा खोलने की ख्वाहिश कभी नहीं हुई ... । रास्ते में पड़े कंकड़ या खाली डिब्बे से दूर तक बेमकसद खेलते जाना उनकी आदत होती है और मैं किसी की आदत के लपेट में आना नहीं चाहती थी, ... अपने को संभाल कर रखने की कला मुझे उस एहसान ने दी थी ... मैं शीशे की दीवार हूं, जरा से झटके से दरक 'जाऊंगी' ।''(58)

3.2.2 आधुनिक परिवेश और अन्तर्जटिलता

सामाजिक और आर्थिक विकास ने इंसान को उन्नति के रास्ते भी दिए हैं और उसके

जीवन को सुविधा सम्पन्न भी बनाया है । पर साथ ही, कई बीमारियां भी दी हैं । विशेषकर उच्च वर्ग विलासी हो गया है तथा विलासितापूर्ण जिंदगी में मानवीय मूल्य बौने हो गये हैं, इंसानी जीवन दो कौड़ी का न रह गया है । मृत्यु से कुछ समय पूर्व विख्यात वैज्ञानिक अल्बर्ट आइंस्टीन से किसी ने पूछा था कि तीसरे महायुद्ध में किन अस्त्र-शस्त्रों का प्रयोग होगा ? आइंस्टीन ने कहा कि तीसरे के बाबत तो मैं कुछ भी नहीं कह सकता लेकिन चौथे के बारे में निश्चित कह सकता हूं । पूछने वाला व्यक्ति हैरान हुआ । उसने आश्चर्य से कहा कि जब तीसरे के बाबत कहने में असमर्थ हैं तो चौथे विश्वयुद्ध के बारे में कैसे कह सकेंगे । आइंस्टीन ने कहा - 'दो बातें तय हैं । पहली बात तो यह है कि चौथा विश्वयुद्ध जहां तक होगा ही नहीं, क्योंकि मनुष्य के बचने की तीसरे युद्ध के बाद कोई संभावना नहीं है । और अगर हुआ भी कभी चौथा महायुद्ध - तो तीसरे और चौथे महायुद्ध में हजारों वर्षों का फासला होगा तथा जो चौथे महायुद्ध में अस्त्र-शस्त्र प्रयुक्त होंगे वे वही होंगे जो पहले महायुद्ध में प्रयोग हुए होंगे - पत्थर के, लकड़ी के औजार ।''(59) सच कह गया है कि विकास में ही विनाश का दंश छुपा है । मौजूदा विकास की गति का आखिरी परिणाम जो हो परन्तु विकासशील समाज में नारी की दशा निरंतर शोचनीय होती जा रही है । यह देखकर कभी-कभी मानवता शर्मसार हो जाती है कि अर्थ की दृष्टि से स्वालम्बी ही नहीं, अति-सुरक्षित समाज में स्त्री को किस प्रकार उपभोग की वस्तु मात्र मान लिया गया है । उन चंद स्त्रियों को अपवादस्वरुप समझा जाए जो स्वयं इस रुप को स्वेच्छा से अंगीकृत किए हुए हैं तो यही कहना उपयुक्त होगा कि अभिजात्य वर्ग में महिलाएं मानसिक उद्वेलनों की शिकार हैं, भावनाएं कोई मायने नहीं रखतीं तथा एकांत के उपलब्ध क्षणों में चुपचाप सिसकती नारी अपने उत्पीड़न को जज़्ब कर लेने को मजबूर है । नारी की मानसिक अन्तर्जटिलता की बेमिसाल कहानी है नासिरा शर्मा की 'दूसरा ताजमहल' जो इसी शीर्षक से छपे कहानी संग्रह की प्रतिनिधि कहानी है । इस कहानी में नायिका नयना के जरिए लेखिका ने स्त्री जीवन की अन्तर्जटिलता को परिभाषित किया है । नयना एक परिपक्व सोच वाली इंटीरियर डेकोरेटर है जिसका पति डॉ. नरेन्द्र शहर का सफल सर्जन है और प्राइवेट अस्पताल का डायरेक्टर भी । दोनों संतानें विदेश में अपने काम में व्यस्त हैं । ई-मेल और फोन पर बातें हो जाती हैं ।

नयना के जीवन में व्याप्त एकाकीपन और अलगाव बोध को नासिरा शर्मा बेबाक तरीके से बयान करती है । पर उसके पास निर्मल वर्मा के मार्मिक शब्दों वाली सांकेतिकता और आन्तरिक भावों की नक्काशी कम है । लगता है वह अपने आस-पास की किसी सखी-सहेली या पात्र विशेष की ज़िन्दगी के आंतरिक क्षणों को विश्वसनीय ढंग से कतिपय किस्सा कहने की जल्दबाजी में बयान करना चाहती है ।

''डॉ. रोहिताश्व के शब्दों में ''कहना न होगा कि शिल्प की पच्चीकारी को बेहतर ढंग से नासिरा शर्मा निबाह लेती हैं, कम से कम कृष्णा अग्निहोत्री, चित्रा मुद्गल, सूर्यबाला और कमल कुमार जैसे स्त्रीवादी विमर्श की दावेदार लेखिकाओं की बनिस्बत बेहतर अन्दाज़ में । 'दूसरा ताजमहल' कहानी की शुरुआत ही फ्लैश बैक शैली में आरम्भ होती है । नयना किसी परिन्दे की तरह सहमी और निराश थी जिसको उड़ान भरते हुए बीच में ही बहेलिए ने झपट लिया था । नियति का यह खेल उसकी समझ में नहीं आया । एयर होस्टेस ही उसकी अटैची हवाई जहाज से निकालने में मदद करती है । टैक्सी वाले को वह अपनी खोयी हुयी मन: स्थिति व बहदवासी में अपने घर का पता नहीं बता पाती है । लगता है शिवानी की कथा शैली और फिल्मों का मेलोड्रामा यहाँ हावी है । ... बमुश्किल - बैग में से अपना विज़िटिंग कार्ड टैक्सी ड्राइवर को देकर घर पहुँच पाती है । सन्दर्भ रात में टेलीफोन की घनघनाती घण्टी के बीच रोजी के शब्दों का भी पाठकों को आकर्षित करने के लिए है पर अपने दु:खों को नशे की हालत में तरतीब दे देते हैं । अनजाने में ही उनका यह अंदाज बड़ा निर्मम लगा । आपको देखकर मैं समझ सकती हूं कि आपका विश्वास कहाँ पर टूटा है । प्लीज़ मेम हो सके तो सर को भूल जाइए ।''(60)

रोमांटिक नायक रविभूषण को केसोनोवा बनाने की पूरी लिबर्टी नासिरा शर्मा ने ली है । भावविह्वल शब्दों में वास्तुविद रविभूषण के लगातार सिगरेट पीने, बड़ी-बड़ी आँखों वाले नायक के खोये रहने के अन्दाज़ को वह किसी किशोरी नायिका की रुह के खुशनुमा अन्दाज़ में पेश करती है । कहानी में वर्णित परिवेश दिल्ली, बम्बई, अहमदाबाद, जापान आदि देशी-विदेशी शहरों का है । नयना और रविभूषण के इज़हार भाव और प्रेम सम्बन्ध टेलीफ़ोन वार्ता से आगे बढ़ते हैं । व्यक्तिगत ज़िन्दगी की बढ़ती नीरसता और टूटे हुए एकाकी भाव की क्षति-पूर्ति और पर्सोना तथा शेडो की मनोविश्लेषणात्मक गुत्थियाँ ही उनके करीब आने का सबब बनती हैं । रवि उसे सखाभाव से पाना चाहता है । दोस्ती का अनुराग धीरे-धीरे मर्द-औरत की चाहत में बदल जाता है दिल नशीन कैफ़ियत की तरह ।

नयना अपने अलक्षित आंतरिक भावों की पूर्ति हेतु रोमांटिक स्वप्नों की फसील पर बम्बई चली जाती है पति से प्रोफेशनल टूर के बहाने से, किशोर मानसिकता की लय में डूबी-सी ... प्यार किसी भी उम्र हो उसका अपना तर्क होता है, जो उम्र, जात-पात, धर्म, भाषा की सारी दीवारों को गिरा देने की शक्ति रखता है । रविभूषण उसे लेने के लिए एयरपोर्ट आता है पर औपचारिकतापूर्ण मुस्कान लेकर, ... व्यावहारिक क्लाईन्ट की तरह ... तब वहाँ रातों में फोन पर हुई वार्ता का ऐन्द्रजालिक बोध नहीं है ... रविभूषण तब अपने अहमदाबाद जाने के प्रोग्राम की तजवीज रखता है और शाम में दिल्ली जाने की एक उड़ान भी है, बतलाता है ।

नयना वक़्त की नज़ाकत और प्रोफेशनल तकाज़े की बात सोचकर बेबस रह जाती है ।

नासिरा शर्मा ने रविभूषण को एक साईकिक मानसिक रोगी बतलाया है कहानी की संरचना में अंतश्चेतन के स्तर पर जो अवचेतन में, शराबनोशी की मदहोश हालत में प्रोजेक्ट का प्लान करता है, रात के दस बजे नीम बेहोशी में सिलसिलेवार प्यार-मोहब्बत की कसमें खाता है, इसरार करता है, मुग्ध नायिका की वय: प्राप्त युवती नहीं बल्कि दो युवा पुत्रों की माँ नयना ... जिसका यूटिरस बदला जा चुका है, जो यौनाकांक्षा वाली स्त्री नहीं है, पर फिर भी प्रेम-वासना, चाहत-प्रतीक्षा, अपनत्व और प्रशंसा सम्बन्धी कई-कई तहों तक तृष्णाएँ पाली रहती है । वह अपना नार्सिज्म वाला मोनोलॉग खुद रचती है ... ज़िन्दगी से भरपूर शरबत का गिलास, ... तुम्हारे हाथ में है, उसको आहिस्ता-आहिस्ता करके पिओ, एक-एक घूँट कर ताकि तरावट तुम्हारे वज़ूद में इस तरह फैले जैसे सूखी धरती पर पानी धीरे-धीरे उसकी खुश्की को ज़ब्त कर लेता है । सपने में भी नयना इसरार पाती है ... तुम मुझे कभी छोड़ना मत ... चलना, क्षितिज के अंतिम छोर तक चलना, मेरे साथ चलना ?

रात के लम्बे प्रहर तक रविभूषण अपने नशे में, नीम बेहोशी में प्रेम-वासना की मृग तृष्णा वाले रूप में उससे बतियाता है । एक बार रात्रि में कानपुर से किसी मरीज के रिश्तेदर फोन मिलाते-मिलाते थक जाते हैं । मरीज को दवा डॉ. नगेन्द्र फोन व्यस्त रहने के कारण बता नहीं पाते हैं ।... टेलीफोन पर चलती हुयी घण्टों वाली बतकही मनकही की गुंजलक में। मरीज की मृत्यु होती है । थोड़ी-बहुत बदनामी नगेन्द्र की होती है ... पर बाद में किसी सेमिनार में उनका पेपर और प्रेजेन्टेशन खोयी हुयी शोहरत लौटा ले आता है ।

नयना व्यस्क होते हुए भी प्रौढ़ावस्था की दहलीज़ पर प्रेम भरी पीगों पर झूलते हुए वास्तुविद रविभूषण के जीवन की रिक्तता को अपने आगोश में समेटने के लिए दिल्ली रवाना होती है । ... रिक्तता यहाँ तक नयना के जीवन में है कि उसने पिछले कई वर्षों से किसी का चुम्बन नहीं लिया है न पति का, ... ना बेटों का ... स्पर्श की चाहत उम्र के हर मोड़ पर किसे नहीं होती है ?

रोहिताश्व के शब्दों में ''नासिरा शर्मा ने किस्सागो शैली की अजीब शह पायी है । उसकी नायिका नयना केवल रोमाण्टिक वासना के व्यामोह में डूबी हुयी नहीं है । उम्र के परिपक्व दौर में वह यथार्थ और कल्पना के ताने-बाने पर सोचती है ... क्या बच्चे इस रिश्ते को स्वीकार कर पायेंगे ... शायद वे मुझसे घृणा करने लगें । नयना अपने नैतिक प्रतिपक्ष के बारे में यह भी जतलाती है कि कभी उसके पति डॉ. नरेन्द्र का अपनी जूनियर डॉक्टर से अफेयर रहा है तब घर में तनाव ही तनाव था ।''

नयना अपने वांछित प्रेम सम्बन्ध के मायाजाल का पक्ष-विपक्ष भी विचार लेती है कि

अगर यह सब छलावा साबित हुआ और रविभूषण भी नगेन्द्र की तरह निकला तो वह क्या करेगी ? क्या तब वह अकेलापन सह पायेगी ? इस उम्र में सम्मोहन का क्या तर्क है ? वह अपने तई यह भी सोच लेती है ... प्रेम कहीं ... नहीं ... नहीं ... फिर बम्बई में जवान औरतों की कमी थी, जो वह मेरी तरफ आकर्षित हुए ? नयना जानती रही है कि रविभूषण विवाहित है, तीन बच्चों का बाप । उसके माता-पिता का देहान्त हो चुका है, इकलौती बहन ससुराल में खुश है । बड़ी बेटी का विवाह हो चुका है, बेटा केम्ब्रिज में अपनी विदेशी पत्नी के संग है केवल छोटी बेटी इण्टर कर रही है ... । समाज का मुकाबला हर कदम पर हर तरह से नयना ने किया है । ... अब वह हर अंजाम के लिए तैयार है ।

नयना जेवर, क्रीम-सेण्ट, नये वस्त्र आदि सहेज कर रविभूषण के रात वाले सम्भाषण, आकर्षण-व्यामोह में डूबी जब दिल्ली से फ्लाइट द्वारा बम्बई पहुँचती है, जब तजुर्बा बालों में सफेद बनकर उभर रहा है । एयरपोर्ट पर ड्राइवर रिसीव करने आता है तब उसके विचारों का झटका लगता है । पर प्यार प्रतिदान नहीं त्याग माँगता है । वह विश्वास की ज़मीन रवि के पास तलाशना चाहती है । ड्राइवर उसका गन्तव्य पूछता है तब वह रवि के ऑफिस पहुँचने के लिए कहती है ।

रोहिताश्व आगे कहते हैं कि ''रविभूषण के ऑफिस में ही रिसेप्शनिस्ट रोजी से रविभूषण के अजीबोगरीब व्यवहार, पुराने अफेयर्स, रात में की गयी बातों का, आसक्ति के वायदों का दिन में भूल जाना ... आदि का पता नयना को लगता है । वैसे हिन्दी के पाठकों को केसोनोवा का यह नया छद्म रुप सम्मोहक ही प्रतीत होगा । नयना के प्यार का ताजमहल ... जिस भावनात्मक लगाव की प्यास रवि रात के अन्तिम प्रहर तक फोनवार्ता में दर्शाता रहा है महीनों से ... वह शीशे का महल यथार्थ के थपेड़ों से दिग्भ्रमित व्यामोह से चकनाचूर हो जाता है । रवि को खुद फैण्टेसी में विचारना अच्छा लगता है । सोच की विपन्नताओं और दिल की दरिद्रता की ओर इशारा करते हुए हालात-ए-मन्जर उसे टूटन की कगार पर ले जाते हैं ।''(62)

प्यार की हक़ीकत जानकर नयना के पैरों के नीचे की ज़मीन खिसक जाती है । क्योंकर रोमान्स की वे सारी बातें, सारे वायदे रवि के नशे की कैफियत रही है । उसको बुलाने और सपनों के, सहवास के ताजमहल बनाने की बाबत भी ... रवि विस्मृति में करता रहा है । वयस्क नयना विगत ग्यारह महीनों के वार्तालाप को झूठ मानना नहीं चाहती । सोचती है ... क्या मौखिक शब्दों की कोई ज़िम्मेदारी नहीं होती ? कैसे विश्वास कर लूँ कि उन शब्दों में रस नहीं था । भाव नहीं थे । निष्ठा नहीं थी । माना कि वे लिखित नहीं थे, मगर उन्होंने मुझे एक पूरा संसार दिया था । नयना के बेसाखता बहते आँसू देखकर रोजी दिलासा देती है,

''सर को रात की बातें याद नहीं रहतीं, आप विश्वास करें, ... यूँ न रोएँ मैम ।''(62)

रोजी नामक रिसेप्शनिस्ट किरदार जब नयना को सान्त्वना देती है तो नासिरा शर्मा का हस्बे-मामूल (रविभूषण का) चित्रण उसे मानसिक रोगी अभिज्ञापित करवा देता है । रविभूषण का बाहरी रुप 'पर्सोना' और आन्तरिक रुप शेडो विभाजित व्यक्तित्व का किरदार है । पर नयना अपने जीवनानुभव और मोहब्बत की खंडित स्थिति से जान लेती है कि रोजी वीराने की खण्डहर होती हुयी इमारतों को समझ नहीं सकती है । मेरी टूटन का वह हिसाब नहीं लगा सकती । अब चलना चाहिए ।

फ्लैश बैक शैली में, वैचारिक अन्तर्यात्रा और दिग्भ्रमित मानसिक व्यामोह की अन्तर्बयानी जाहिर करते हुए नयना कहानी के अंत में दूसरे दिन जागती है तो अपने आपको वह लम्बी बीमारी से उठी हुयी महसूस करती है । पति और बच्चों की तस्वीर उसे अजनबी-सी लगती हैं । टेलीफोन को पटक देने का ख़्याल जगता है । मानसिक उन्माद से कनपटी के पास की तपकन अब टीसों में बदल जाती है और अन्दर का उबाल भी बढ़ने लगता है । ... नरेन्द्र हफ़्तेभर के लिए बाहर गया हुआ है । नौकर-चाकर हतप्रभ हैं नयना की खामोशी भरे सदमे से ।

रात पुनः दस बजे टेलीफोन की घण्टी घन-घनाती है ... रवि की रोमांटिक लफ़्फाजी जारी है । ''मुझे अगले हफ़्ते इटली जाना है । इस बार तुम्हें साथ लेकर चलूँगा । ... तुम बहुत सुन्दर हो, मेरी तन्हा ज़िन्दगी में एक दीप की तरह । मेरे विश्वास की ज़मीन बहुत पुख्ता है, मेरा यकीन करो ।''(63) नयना की कनपटी के पास पीड़ा का खिंचाव बढ़ता है । रविभूषण की फैण्टेसी से व्यथित, आत्म भोगी संत्रस्त नयना के नथुनों से तेज़ बहता खून उसके गले को तर करता हुआ कपड़े भिगोने लगता है । साँसों के सरगम के ढीले होते न होते ... नयना मुमताज की कब्र में दाखिल हो जाती है ।

वस्तुतः 'दूसरा ताजमहल' की व्यथा-कथा रोमाण्टिक हसरतों की टूटन और मोहब्बत की अनकही अनबुझी मृगतृष्णा है । नयना अपनत्व का, प्यार का, बेतहाशा समर्पण का ताजमहल चाहती है, वह अगर डॉ. नगेन्द्र से न मिला तो रविभूषण से पाना चाहती है । सम्भवतः पुरुष के लिए प्यार एक छलावा है, पर नारी के लिए मन-मरीचिका का तिलिस्मी आखेट है । नासिरा ने यथार्थ और कल्पना के ताने-बाने को, रोमाण्टिक त्रासदी को भाषा की शतरंज पर कुछ इस तरह बिछाया है कि कहानी का सत्य, अपनी निष्ठुर नैतिकता और अनैतिकता की नयी पर आधुनिकतम चौहद्दी में विश्वसनीय लगता है । अंत सिम्बोलिक ही है ... प्रेम की असफलता विश्वासहीनता से मुमताज की कब्र में दाखिल होना ... । मृगतृष्णा के खण्डहरों में एक के बनिस्बत अन्य के संग की प्रतीति में आजीवन होना ... अतृप्त भटकाव ।

'तुम डाल-डाल हम पात-पात' कहानी युवा मानसिकता वाले अल्हड़, बेरोज़गार दोस्तों की अपने कमाऊ दोस्त के बल पर गुलछर्रे उड़ाने वाले इलाहाबादी नवयुवकों की दास्तान है । अच्छा लगता है कि नासिरा शर्मा अपनी कहानियों की थीम को, विषयवस्तु को रीपिट नहीं करती हैं और अपने विभिन्न किरदारों को समग्रता में पेश करती है । मानो वे हमारे आस-पास के परिवेश के जीते-जागते, टूटते-बिखरते, सँवरते-सहजते हाड़ माँस का ज़िन्दा पात्र हैं । शाहगंज के थानेदार त्रिपाठी की रिश्वतखोरी व भ्रष्टाचार के तंत्र को वह रेखांकित ही नहीं करती है बल्कि किरायेदारों से मकान खाली कराने, बुढ़ापे में शादी कराने की दलाली वसूलने, पुलिसिया तंत्र की बखिया उखेड़ती है । युवा-बेरोज़गर लड़कों की छीना-झपटी, यार-मुसाहिबी, पुलिस से छेड़छाड़ की घटना के साथ-साथ वह मुस्लिम समाज की औरतों की दुर्दशा का बयान करती है । अपनी सास की सारी जहालत, गालियाँ और अपनत्व की बातें सुनती हुयी बुढ़ाती माँ सिपतुन की हमदर्दी अपने जवान बेटे ज़हीर की बदहवासी व परेशानी भरी कारगुज़ारी से है । लगता है कि यह कहानी हिन्दुस्तान के कई-कई शहरों के बिखरे युवा पात्रों की विश्वसनीय ज़िन्दगानी से है ।

नासिरा शर्मा ने ज़हीर के माध्यम से युवा पीढ़ी की तल्खियत और बेचारगी को पेश किया है जिसके पास पूर्वजों की कहानियाँ हैं और जायदाद के नाम पर मुफ़लिसी । उसका मित्र मुरली जब उसके पिता, दादा और परदादा की रौबदार शक्ल बड़ी-बड़ी मूँछों वाली तस्वीरों की बाबत पूछता है तो ज़हीर बड़े दर्द भरे अन्दाज़ में कहता है ''... इनसे हमारा क्या लेना-देना ? कुछ करके तो हमारे लिये गये नहीं सिवाय बड़ी-बड़ी कहानियाँ पीछे छोड़ गये कि यह कितने भले थे, बहादुर और ईमानदार थे, रोज़ा-नमाज़ के पाबन्द थे । मेरा बस चले तो इनकी कोई तस्वीर न लटकाऊँ ... । मेरे लिए इन सबकी कोई कीमत नहीं है सब बकवास है ।'' मुरली के घर की हालत भी खस्ता रही है । माँ-बाप हैजे में मर चुके हैं । मामा ने उसे छठी क्लास पास कराके अपने बर्फ की चिरैय्या वाले ठेले पर साथ लगा लिया था जहाँ वह बचपन में अपने स्कूल के पास पढ़ाई के लिए जाने वाले बच्चों को हसरतों से देखकर आवाज़ लगाते रहता है । बर्फ की चिरैय्या है, पचास पैसे की पररय्या है, लाल हरी गौरेय्या है । ऊपर से मीठी मलय्या है । गरीबी और बेरोजगारी कमसिन उम्र के लड़कों को वक़्त से पहले बूढ़ा बना देती है ।

नासिरा शर्मा ने घर की बड़ी-बूढ़ी और सास बनने की उम्र वाली औरतों की वयस्क मानसिकता को नारीवादी दावों से नहीं बल्कि शाइस्तगी के नारी-विमर्श को जहीर की माँ सिपतुन के माध्यम से पेश किया है जब वह ज़हीर की आवारगी और उसकी शादी की बाबत सोचती है । जमीला कह रही थी कि उठाकर लगाम लगा दो, घोड़ा खुद ब खुद थान

पर बंध जाएगा । जो हालत है जहीर की, उसको कौन लड़की देगा ? पर ज़हीर एक और पुलिस वालों से दाँव-पेंच लड़ा रहा है और दूसरी ओर आवारा, अन्यस्य और रोजगार चलाने की ज़िन्दगी जी रहा है ।

''रोहिताश्व कहते हैं - अमृतलाल नगर के लेखन की राह पर चलती हुयी नासिरा शर्मा बूढ़ी दादी और सिपतुन बहू मुरली और दादी में देहाती और उर्दू बोली तथा नाजो जमादारिन के संवादों में विभिन्न बोली-बानी की मिठास रेखांकित कर देती हैं । कहीं पुरानी जमींदारी के किस्से और बतकही है, कहीं बाज़ार की नोक-झोंक, कहीं पिता और पुत्र के बीच साजिश, कहीं ज़िन्दगी की हैरानी और परेशानी है, कहीं जिजीविषा भरी कसक है, नासिरा शर्मा ने विवेच्य कहानी में बड़े ही विषम और खूबसूरत मंजरों को विभिन्न बोली-बानी, मुहावरों और लोकोक्तियों से पेश किया है । भाषा-शैली और शिल्प पैटर्नों की प्रस्तुति के लिए ... नासिरा शर्मा का कथा-लेखन वाकई एक समृद्धिपूर्ण और स्मरणीय शब्द संसार है ।''(66)

वस्तुत: ''और गोमती देखती रही'' कहानी की थीम सामान्य कहानियों से हटकर अलग लीक की कहानी है । जिसमें युवामन की धड़कनें हैं, जीवन साथी के चयन के बारे में सरला की निजी पसन्द का आग्रह है । सुधीर वर्किंग वूमन सरला को जीवन साथी बनाने से पहले संगीत, शराब और जीवन के स्वप्न को शेयर करने वाली नारी के रुप में परखना चाहता है । विवेच्य कहानी में मनोविश्लेषण सम्बन्धी ढेर सारी गुत्थियाँ हैं जो पाठकों को उदारमना होकर सोचने के लिए बाध्य करती है, जहाँ युवा मन की धड़कनें एक-दूसरे को अपनाने से पहले आपस में अपनी शर्तों पर जाँचना और परखना चाहती हैं ।

सरला अपने प्रत्याशित जीवन साथी सुधीर के माँ-बाप से मिलकर अपना भावी जीवन विचारना चाहती है । गोमती नदी के किनारे अपने युवा साथी के साथ टहलते हुए आंतरिक भावों की तृप्ति चाहती है । कहानी वर्तमान के रोमांटिक, रहस्यपूर्ण, आकर्षण भरे परिवेश के बीच किंचित फ्लैश बैक वाली शैली में सक्रिय रहती है । कहानी का परिवेश इलाहाबाद और लखनऊ का है । युवा नारी सरला नौकरी के सिलसिले में मामा के घर लखनऊ में ठहरी हुयी है । सरला पूर्व-दौर में लगभग एक दर्जन लड़कों को नकार चुकी है शादी के लिए देखने के सिलसिले में । उसका विचार मन्तव्य रुप में अपनी माँ से वार्तालाप के बीच रहा है कि ''मेरी पसन्द का मर्द पैदा हुआ होगा इस दुनिया में; घूमते-फिरते टकरा जायेगा । जब दिखेगा तब बता दूँगी ।'' माँ को भी दुनियादारी का पता था । बेमेल विवाह करके भी लड़कियों को आजकल क्या मिल रहा है, जो वह भी जोर-जबरदस्ती से अपना कर्तव्य निभा दें तो साल दो साल बाद तलाक के काग़ज के साथ एक अदद बच्चा पालने में जीवन बिता दें, जो अक्सर जानने वालों के घर में देख रही है ।''(66)

बकौल रोहिताश्व, नासिरा शर्मा के पास अभिव्यक्ति-कौशल का एक विशेष मैनरिज्म है । उनके पास चित्रकला, फिल्म, संगीत, साहित्य, डेकोरेशन, मेडीसिन, शिक्षण क्षेत्र या व्यवसायी-कैरियरिस्ट वर्ग के पात्र सक्रिय रहते हैं । सरला और सुधीर की मुलाकात किसी पार्टी में हुयी, बाद में कहीं चित्रकला को लेकर लम्बी चर्चा हुयी । सरला नये दौर की नयी सोच वाली युवती है । वह समान रफ़्तार वाला जीवन साथी चाहती है । वह रुकना बेमानी मानती है । उसका विश्वास था ''विवाहित जीवन में ज़हर ठहराव के कारण घुलता है । अत: सहेलियों से कहती है - उठो, नौकरी करो - इस अय्याशी भरी टकराहट में भौतिक सुख-सुविधाएँ तुमसे तुम्हारा पति छीन लेगीं । सरला ने इलाहाबाद में गंगा नदी की इतराहट भरी अठखेलियाँ देखी हैं तो सुधीर को गोमती नदी के बहाव पर अभिमान है । सरला अक्सर सुधीर द्वारा प्रयुक्त शब्दों के मनोविज्ञान के बारे में सोचती है ... भाषा जड़ नहीं होती, न शब्द मुर्दा बल्कि उसके अन्दर समय अपनी सारी थरथराहट के कारण धड़कता है कि कब और कहाँ, कैसे और किससे, उसका प्रयोग किया है । गोमती के किनारे टहलने जाने से पहले सुधीर के ऑफिस में दोनों शराब का जाम बराबरी से शेयर करते हैं और सिगरेटनोशी भी बराबरी के स्तर पर । (काश सूर्यबाला के स्त्री-पुरुष पात्र भी इतने व्यावहारिक, प्रगतिशील और एडवान्स धर्मी होते, हाँ कमल कुमार के पात्रों ने लेस्बियन सम्बन्धों को बेबाकी तक तरक्की ज़रूर की है पर बैडोल और भदेस अन्दाज़ में) बल खाते हुए धुंए और ग़ज़ल के स्तर के बीच सरला को सुधीर मैनली लगा और सुधीर को सरला लावण्यमयी प्रतीत हुई । ... उधर मामा अपनी बहन को फोन पर बतला देते हैं कि अपनी अड़ियल घोड़ी (सरला) को सुधीर पसन्द आ गया है ।''(67)

इस कहानी का मुख्य पात्र सुधीर शब्दों का जौहरी है और अर्थ से खिलवाड़ करने वाला शख्स । वह सरला को गोमती के श्मशान घाट पर अंधेरी राह व रात में प्रतीकात्मक वर्णन रचता है । यह वह जगह है जहाँ बिना शब्द के ज़िन्दगी धड़कती है । जहाँ बिना चेहरे वाली कायाएँ हाथ में हाथ डाले रात भर डोलती हैं । आपको आपसे मिलवाने का और अपने बारे में सब कुछ बताने का इससे बेहतर मौका और कब मिलता ? मैं वही हूँ ... मेरा नाम सुधीर है ... सुधीर ... बाबूजी ने यह नाम बहुत प्यार से रखा है । ... तेज़ कहकहा वातावरण में गूँज जाता है । ... सरला चौंक जाती है । आसपास नज़रें डालने पर बायें वाले चबूतरे पर राख का ढेर था । उसके दूसरी तरफ एक-दो अधजली लकड़ियाँ, फीके अंगारों में बदली हुयी थीं । पूछती है वह सुधीर से कि आप मुझे कहाँ ले आये ! प्रत्युत्तर मिलता है - ''यह श्मशान घाट है । इन्सानों की यात्रा का अन्तिम पड़ाव । सरला सोचती है 'ही इज वेरी क्रुएल... क्या सुधीर नार्मल नहीं हैं ?''(68) साथ में लाये हुए खाने का पैकेट मौका पाकर एक कुत्ता झपटकर ले जाता है । ... थोड़ी देर बाद कुछ आदमियों का झुण्ड दुखी भाव

से एक सफेद कपड़े में लिपटी बच्चे की लाश ले आता है ।

सरला श्मशान घाट के भुतहा परिवेश, जली हुयी लाशों की राख के करीब, बच्चे की लाश ले जाते हुए गमगीन झुण्ड के करीब थरथराती हुयी सुधीर की अब्नार्मलिटी के बारे में सोचती है ... किसी की मृत आत्मा अपने सपने की अधूरी प्यास लिए भटकती-सी सुधीर के बदन में समा गयी हो । कहीं सुधीर पिशाच न हो । नासिरा शर्मा ने शमशान के परिवेश का सटीक चित्रण ही नहीं रचा है बल्कि वह सुधीर और सरला की मानसिक उथल-पुथल, सन्देह और भय-उत्सुकता और अवसाद आतंक और सम्मोहन को पारदर्शी अन्दाज़ में पेश करने में निसन्देह सफल व सम्प्रेषणीय हस्ताक्षर प्रतीत होती है ।

सुधीर कहीं इम्तहान तो नहीं ले रहा है ? सरला के संशयग्रस्त चेहरे, बिखरे हुए मनोभावों को पढ़कर सुधीर कह देता है - ''आपकी आँखों में अपने लिए अविश्वास और चेहरे पर भय देख रहा हूँ ? उसकी भयातुर अवस्था देखकर सुधीर पछतावे को अनुभव करता है । सुधीर के बढ़े हुए हाथ की उष्मा अनुभव कर सरला अपना सिर उसके कन्धे में रख अलाव की तरह सुलग उठती है । वर्णन पोएटिक है और पैथोस भरा । सुधीर अपनी विवशताभरी क्रुएल स्थिति और अंतश्चेतना की मनोविश्लेषणात्मक गुत्थी बनाये रखता है ... माँ-बापू जी से मिलवाने और कहाँ ले जाता फिर तुम्हारा कहना भी कैसे टालता ? उन्हें तुम बहुत पसन्द आई हो ।''

एक गर्म स्पर्श सरला को अपने पूरे वजूद में सहलाता महसूस हुआ । सामान्य पाठक सुधीर को साईकिक केस या सडिस्ट पात्र मान सकती है । पर विज्ञ पाठक महसूस कर सकता है कि कोई-कोई व्यक्ति अपने प्रिय की मृत्यु के बाद भी उसे सशरीर उपस्थिती-सा कहीं आसपास महसूस कर लेता है । गम,दर्द, अवसाद और खुशी हर्ष की मन:स्थिति में अपनी ही अन्तरआत्मा का स्मृणीय पर्याय मान बतिया लेता है । महसूस किया जाता है - भावनात्मक स्तर पर जहाँ कोई तर्क नहीं, अविश्वास नहीं, ज्ञान नहीं बल्कि एक प्रतीति अदृश्य वेवलेन्थ सी अपने सरोकारों में डूबी रहती है । नासिरा शर्मा ने भावनाओं की इस अनबूझ पहेली को और गोमती देखती रही' कहानी के माध्यम से सरला और सुधीर के रोमांस, भय, प्रेम और अपनत्व के सहज पलों में गूँथा है जिससे उसका कद अमृता प्रीतम, शिवानी, कृष्णा अग्निहोत्री और मृणाल पाण्डे से कहीं ऊँचा प्रतीत होता है जो असफल प्रेम की खण्डित आस्थाओं की सफल लेखिकाएँ मान ली गयी हैं । 'प्रोफेशनल वाइफ' वस्तुत: नासिरा शर्मा की आधुनिक जीवन के संघर्ष से परिपूर्ण और मनोविश्लेषण की उलझनों से ग्रस्त जटिल संवेनाओं व शिल्प की कहानी है । परिवेश और वर्णन सीरियल लेखन, फिल्म निर्माण, स्क्रिप्ट राइटिंग और कार्यालय में कण्ट्रेक्ट पर कार्य करने वाले पात्रों के अन्त:संघर्षपूर्ण

ज़िन्दगी का है । सुधा और बनी अय्यर जैसे पात्र जीवन-संघर्ष में थपेड़े खाते हुए अपनी व्यावसायिक मंजिल की ओर अग्रसर होते नज़र आते हैं । टूटे हुए, बिखरे हुए, रिक्तता बोध वाले दो विपरीत चरित्रों के नाम हैं सुधा और बनी अय्यर ।

सुधा संघर्षशील और संवेदना से परिपूर्ण पात्र है । परित्यक्ता, संवाद लेखिका, अपने आपमें क्रिएटिव जीनियस, जो ज़िन्दगी अपनी शर्तों पर गरिमामय ढंग से जीना चाहती है । विजय एक निर्देशक, सीरियल फिल्म निर्माता और प्रोड्यूसर है जिसकी ज़िन्दगी में लड़की या औरतों से फ्लर्ट करना और उन्हें मनोविश्लेषणात्मक पात्र अभिज्ञापित करना एक शगल है । अभिनय और कैरियर की इच्छुक लड़कियाँ उसकी वासना का शिकार बन जाये यह उसके लिए एक मामूली बात है । उसके मनोविश्लेषण की परतें से ईर्ष्या करना, अपने आपको बलात्कार की शिकार बतलाकर सहानुभूति अर्जित करना, अवसरवादी प्रवृत्ति से सैक्स की कहानियाँ रचना आम बात है ।

सुधा, विजय और बनी अय्यर का प्रोफेशनल त्रिकोण दरअसल अपनी-अपनी दिग्भ्रमित राहों की यथार्थपरक फैण्टैसी है । सामान्य पाठक यह सोचने के लिए विवश हो जायेगा कि प्रोफेशनल वाइफ क्या वह औरत है जो कहीं कैरियरिस्ट है, संवाद लेखिका का मुखौटा अपनाये हुए है या वह जो कार्यालय में ऑफिस टेबल से बेडरुम तक का साथ निभाने वाली नारी देह का छद्म है । प्रौफेशनल वाइफ कोई छलावा है, मृगतृष्णा है या अपना ही स्वरचित फैण्टेसी नारी रुप ?

संवाद लेखिका सुधा कहानी के प्रारम्भ में ही बनी अय्यर के ईर्ष्यालु स्वभाव और दोहरे चरित्र के मनोविज्ञान के बारे में सोचती है । ... जब वह पहली बार के मिलन अवसर पर दोनों हाथ जोड़कर कसके कह रही हो ... जाइये । ... जैसे कि पत्नी हो, जो घर आये मेहमान के साथ बदसलूकी से पेश आाना अपना अधिकार समझती हो, खासकर पति की महिला परिचित से । ... वही बनी बाद में अवसरवादी प्रवृत्ति से खुशनुमा अन्दाज़ में उसकी मिजाज़पुर्सी करते हुए विजय की सेक्सुअल हरकतों को जाहिर करती है ।

नासिरा शर्मा ने बनी अय्यर की देहयष्टि को इन शब्द-रुपों में रचा है ... मोटे चश्मे झाँकते आँखों में चमक । रंग गोरा मगर पीलाहट लिए हुए फीका । होंठ मामूली बदन का पूरा ढाँचा छोटे बाल भूरे घुँघराले । युवा उम्र और व्यावहारिक खुशमिजाजी के अलावा कोई अन्य आकर्षण नहीं । ... युवा उम्र में गधी भी सुन्दर लगने लगती है । लगता है नासिरा शर्मा किसी नारी के दोहरे चरित्र को चित्रित करते हुए जल्दबाजी में सड़क छाप मुहावरों का प्रयोग कर लेती है । क्या हो जाता है उनकी कलात्मकता को ? परिपक्व सोच वाली

संवेदनशील नारी के पास अन्य युवा नारी की कैरियरिस्ट प्रवृत्ति के लिए वर्णन के लिए ऐसी लचर भाषा । फूहड़ बिम्ब, उनकी सांकेतिक शैली का यह हश्र न होना था ।

बनी अय्यर जब सुधा के साथ अपनत्व के, अकेलेपन के क्षणों को शेयर करना चाहती है तो सुधा अपने प्रोफेशनल मित्र और बनी के बॉस विजय की टिप्स से पूर्वग्रह पाल लेती है । कारण विजय उसे पहले बता चुका है कि बनी बचपन में ही अपने घर के अधेड़ काने नौकर द्वारा रेप की जा चुकी है कई-कई दिनों तक । बनी की मानसिक स्थिति को जानकर वह उसके फिट आने की बेहोशी की स्थिति में प्यार से उसे थपथपाता है, सहलाता है, कभी-कभी किस करके सहारा देता है । बनी अपनी मानसिक, शारीरिक उद्रेक की उलझन सुधा को बतलाती है कि वह पिछले आठ महीनों से सोयी नहीं है । कारण उसके प्रति विजय का अवांछित यौन संबंध है । फिल्म-सीरियल और संचार माध्यम के क्षेत्र में महिलाओं का फ्लर्ट होना, स्वयं महिलाओं का कैरियर के लिए फ्लर्ट करना, प्रोजेक्ट की प्राप्ति हेतु लड़कियाँ सप्लाई होना एक आम बात मान ली गयी है इस गरिमामय भारत देश में । वाह ! क्या राष्ट्रीय पैमाना है । चरित्र व कैरियर निर्माण का ? अगर कोई औरत और मर्द आपस में जिस्मानी रिश्ते के लिए रजामन्द हो अपनी ख्वाहिशों की पूर्ति के लिए तो काजी भी क्या करेगा ?

बनी अय्यर अपनी ही रकीबनुमा सुधा से यह राज जाहिर करती है - सर की एक प्रेमिका है ! वह शादी-शुदा है । पहले इसी शहर में थी । उससे सम्बन्ध होने पर समय-समय पर इनके रिश्ते जगह-जगह बनते रहे । मेरी पूर्व मित्र मंजू ने (जो मुझसे पूर्व यहाँ कार्य करती थी) उनसे बताया था कि आप अपने प्रोजेक्ट पास करवाने के चक्कर में मुझे सप्लाई कर देंगे ।... पिछले अगस्त की छब्बीस तारीख को उन्होंने मुझे पहली बार किस किया और मैं डरकर कुछ कह न सकी फिर ... ।

बनी अय्यर दोहरे चरित्र की विभाजित व्यक्तित्व की प्रोफेशनल नारी है । एक ओर वह घर से दो आदमी का खाना लाकर अपने बॉस विजय के साथ ऑफिस में लंच शेयर करती है और दूसरी ओर स्क्रिप्ट राइटर सुधा से विजय के अवसरवादी लम्पट चरित्र की शिकायत कर यह भी जड़ देती है कि विजय उनके बारे में हल्की बातें करता है । विजय कई बार अपनी आशनाई और ऐय्याशी के लिए सड़क की औरतों को ऑफिस में ले आता है रात भर के लिए ... और सुबह उन्हें भगा देता है ।

कहानी के भीतर एक कहानी, किरदार के भीतर एक आन्तरिक किरदार, अंतश्चेतना की प्रवाहमयी भाषा किस्सागो शैली की विशेषता होती है । सुधा के जेहन के कई दरवाजे बनी के अजीबोगरीब व्यवहार से खुल जाते हैं । बनी अय्यर भी एक ज़िन्दा किरदार है । आख़िर मेरा

काम सेलोलाइट पर्दे पर किरदार गढ़ना है । इन्सान की पेचीदगी को हम खोलते हैं फिर बनी उन इन्सानों से ग़लत तो नहीं हैं न ? बेशक हमारा काम साफ्टवेयर का है । मगर विजय तकनीकी विशेषज्ञ है, निर्देशक है । सुधा पटकथा लेखन के मध्य में विजय और बनी के अनसुलझे देह सम्बन्धों से व्यथित होकर विजय से बात किये बिना अनमने भाव से जयपुर लौट आती है ।

दो दिन बाद स्क्रिप्ट के मंजूर होने की ख़बर मिलती है । सुधा अपने सहयोगी दादा बनर्जी के साथ संवाद लेखन के लिए दिल्ली लौट आती है । आत्मविश्वास से भरा विजय उससे पेश आता है बातचीत के मध्य, तो सुधा सृजनात्मक चिन्ता से उसकी नैतिकता को झंकृत करना चाहती है ... आप मेरे द्वारा लिखे संवादों में हरदम अहसास भरे भावों की मांग करते हैं जो नैचुरल लगे । दर्शन के मन को छू सके । वह आदमी एक बीमार लड़की (बनी अय्यर) से गैर जिम्मेदाराना व्यवहार कर सकता है ? वार्तालाप में सुधा यह भी विजय से जान लेती है कि बनी अपनी ज़िन्दगी के बदतरीन अनुभव को अपनी माँ से बताना नहीं चाहती है ।

डॉ. रोहिताश्व के अनुसार ''नासिरा शर्मा ने कलात्मक ढंग से सुधा के माध्यम से नारी-विमर्श के अनछुए दंश और स्केण्डलनुमा हकीकत को बतलाया है कि कोई लड़की वह भी कमसिन ... बलात्कार का शिकार हो और उसकी माँ उसकी चाल ढाल से कुछ न समझे यह कैसे हो सकता है । लगता है नारी - विमर्श और नारीवादी मनोविश्लेषण की पकड़ नासिरा शर्मा में चित्रा मुद्गल और मृदुला गर्ग से ज्यादा है । नैरेशन है । सुधा के अन्तर्मन एक मोनोलॉग के शिल्प पैटर्न में 'बनी' एक पर्त नहीं बल्कि पर्तदार किरदार है । ... उसकी बाडी लाँग्वेज और मुँह बनाने के ढंग से जैसे स्टेज का पर्दा उठ गया हो और किरदार मेरे सामने अभिनय शुरु करने वाला हो । ... मैंने उसको गौर से देखा । गिरगिट की तरह रंग बदलने का लक्ष्य क्या है ? क्या चाहती है यह मुझसे । हकीकत यह है कि पुराने घिसे-पिटे आलोचकों के नैतिकतावादी रोने-धोने के समान, मर्द-औरत का ऐच्छिक देह सम्बन्ध वर्णन घिस-पिट चुका है । वर्तमान दौर में हर हुस्न अपना जलवा दिखाने के लिए बेताब है । कतिपय औरतें इमोशनल जीवन जीना चाहती हैं, मस्ती व खुदगर्जी का और कतिपय महिलाएँ प्रोफेशनल भी रहना चाहती हैं कैरियर में ... पर दिखाती है अपने आपको सद्गृहस्थ और संवेदनशील भी । कहना न होगा बनी अय्यर अपने दोहरे चरित्र में आंतरिक व बाहरी जीवन में अलग-अलग मुखौटे लगाये जीना चाहती है ।''(69)

बनी अय्यर बेबाकी के साथ आत्मपीड़न और सैक्सुएल फ्रस्ट्रेशन के बारे में सुधा से कहती है ... मेरे जिस्म में न सेक्स की चाहत है और न ही मुझे किसी से प्यार हो सकता है । मेरे साथ एक - दो बार नहीं बल्कि कई बार मेरा बलात्कार हुआ है, मैं अन्दर से टूटी हुई हूं ।

सर मुझे बहुत चाहते हैं मुझसे शारीरिक सम्बन्ध स्थापित करना, मगर मुझमें उमंग नहीं जगती है ।[71] ... सुधा परामर्श करती है विजय से और बनी को मनोवैज्ञानिक चिकित्सक डॉ. कौशल्या के पास ले जाती है जो उसे जबर्दस्त डिप्रेशन का शिकार बतलाती है और उसके सदमे का कारण उसके पास विजय का अवांछित व्यवहार बतलाती है ।

स्क्रिप्ट राईटर सुधा एक व्यावहारिक महिला है, जो किन्हीं कारणों से परित्यक्त है तथा संतान हीन भी । पर उसका प्रोफेशनल एटीट्यूड और कैरियर किसी अन्य व्यक्ति की वासना का शिकार बनने से आगाह करते रहता है । वह अपने अनुभव और संवेदनात्मक बोध से कालान्तर में बनी अय्यर के व्यवहार से जान लेती है कि बनी की दमित इच्छाएँ कुछ और हैं जो उसको जाल बुनने को प्रेरित करता है । वह मूड होने पर विजय से दो-टूक सवाल-जवाब भी कर देती है और उसे किस करने, गुदगुदाने से मना भी कर देती है । किस्सागो शैली के अनुरूप प्रोफेशनल वाइफ में कई समानान्तर उप-कथाएँ भी चलती रहती हैं ।... विदेशी पृष्ठभूमि का नावेल उठाकर सीरियल बनाने एवं फिल्म निर्माण की तजवीजें होती रहती हैं ।

विवेच्य कहानी में एक बार पुन: बनी अय्यर और सुधा में कही-अनकही बातों का खुलासा होता है । बनी जाहिर करती है कि ''हर दिन विजय को अगर कोई महिला मित्र खुलासा करने को नहीं मिलती है तो वह उसे या उसके अनुपलब्ध रहने पर किसी और को रात में फोन करते हैं ... अपनी अंतरंग निजी और व्यावसायिक बातों के लिए ... । बातों-बातों में शातिराना भाव से बनी अय्यर यह भी जाहिर कर देती है कि विजय ने सुधा के अंतरंग जीवन की कई बातें भी उसे बतलायी हैं मसलन कि सुधा तलाकशुदा है, कोई औलाद नहीं, उनके पति ने दूसरा विवाह कर लिया है वगैरह-वगैरह । विजय ने क्षति-पूर्ति भाव से, प्रायश्चित रुप में उससे यह भी कहा था कि वह तो बनी को सीख देने के लिए उसका उदाहरण दिया करता है । ''आज की औरत को ऐसा ही बनना चाहिए । अपने पैरों पर खड़ा होना चाहिए । प्रोफेशन को ईश्वर का दूसरा रुप देना चाहिए । पर पर्सनल रिश्तों को लाईन अप करने की क्या जरुरत है ।''[72] इस कहानी में स्त्री, स्त्री से ही आत्मसंतापी होती है । स्त्री, स्त्री को प्रताड़ना, मानसिक संताप देती है ।

सुधा अपनी खुद्दारी और अस्मिता के बचाव के लिए एक अन्य डायरेक्टर रामजी के साथ स्क्रिप्ट राइटर का कार्य करती है जिससे उसे नेशनल एवार्ड मिलता है । विजय यह जानकर उसके बारे में अनाप-शनाप बकता है, तेल डालने का काम बनी करती है । विजय कह देता है - होगी बड़ी संवाद लेखिका । आप जैसे लोगों को मैं घास भी नहीं डालता हूँ । इसी पूरी प्रक्रिया में बनी अय्यर की कारगुज़ारी और भी जाहिर हो जाती है । बनी एक बार झुँझला कर सुधा से फोन पर कह देती है कि ''आप इल्जाम लगाना चाहती हैं कि मेरे सर से

ताल्लुकात हैं ? ... पर सुधा कह देती है कि विजय की पसन्द के इन्सानों में तुम्हारा शुमार नहीं कर सकती हूँ ।

असलियत का पता लगाने के लिए सुधा एक दिन दिल्ली में बनी के घर चली जाती है । वहाँ बनी की माँ से पता चलता है कि बनी ने विजय से उसका सम्बन्ध प्राफेशनल का न बतलाकर अफेयर्स वाला बतलाया है अपनी माँ से । ... नासिरा शर्मा ने बड़ी खूबी से सुधा के अन्तर्ज्ञान मनोभावों और सहज पर्यवेक्षण के माध्यम से यह बतलाया है कि ''वाणी की माँ के हुलिए, बात करने के अन्दाज़ से यह समझ में आ जाता है कि वह घराना है जो पुरानी रूढ़ियों को दिखाता है और नवीनतम गिरावट को जीता है ।''

बनी अय्यर दरअसल मक्कार औरतों के चरित्र का प्रतिनिधित्व ही नहीं करती है बल्कि विचार, संवेदना और व्यवहार के स्तर पर उसे जीती भी है । पर उसमें अपनी नैतिक इच्छाओं को पूरी करने का बल नहीं था । आखिरकार सुधा बनी अय्यर के चरित्र पर स्टोरी लाईन बनाती है । दादा बनर्जी को लेकर वह विजय के ऑफिस में पहुँचती है । तब बनी अवाक् रह जाती है । विजय के चेहरे पर शर्मीली मुस्कान और आँखों में विश्वास झलकता है । वह बनी से सारे अपाईन्टमेन्ट कैन्सिल करके घर जाने को कह देता है । सुधा और दादा बनर्जी के साथ चाईनीज खाना खाने के लिए बाहर निकलता है । ... बनी की आँखों में ईर्ष्या की चिंगारी झलकती देखकर तब सुधा कह देती है ... ''सुनो यह सम्बन्ध प्रोफेशनल है । बहुत गहरी हैं इनकी जड़ें तुम काट नहीं पाओगी ... इसका रिश्ता शताब्दियों का है । तुम अपने को समेट लो ।''(72)

बनी के चेहरे पर घर की पीलाहट पुती हुई थी । जो अक्सर प्रोफेशन के नाम पर वाइफ बनने वाली लड़कियों के मुँह पर कुछ अरसे बाद आ जाती है । ... कहानी दो औरतों आर एक पुरुष के पारस्परिक सैक्स स्केण्डल या ईर्ष्या, अवसाद भरे त्रिकोण पर आधारित न होकर वर्तमान दौर की पत्रकारिता, मास मीडिया या सीरियल फिल्म लेखन के बीच मानवीय सम्बन्धों की अन्तर्जटिलता पर आधारित है। नई-शैली, नये अन्दाज, नयी तल्ख मिजाजी और जिजीविषा से परिपूर्ण, साथ ही शिल्प, कथन, भाषा-शैली के नये स्ट्रक्चर में मनोविश्लेषण की अन्तर्राह से सम्प्रेषित होती है ।

'पंच नगीना वाले' कहानी एक विवादग्रस्त मुद्दे की कहानी है । हिन्दू परिवारों मर्यादाओं और ज्योतिष कर्मकाण्ड की खूबियों में विश्वास का वर्णन 'पंच नगीना वाले' जौहरी ज्योतिषराम के परिवार विवेचन से रचा है जिनकी सुनारी जौहरी वाली दुकान से बनारस के हिन्दू-मुस्लिम परिवार पीढ़ियों से खरीददारी करते आ रहे हैं ।

तरू और तुषार आपस में सगे ताऊ चाचा की संतानें हैं जो युवा होने पर यवनों वाले

तौर-तरीके अपनाकर अपने परिवार के रक्त सम्बन्धों के होकर आपस में शादी करना चाहते हैं । हिन्दू मान्यताओं वाला खत्री परिवार सदमे में है । बालिग़ लोगों पर ज़ोर जबरदस्ती नहीं चल पाती है । दोनों ही अपवाद रुप में शादी न होने की स्थिति में आजीवन अविवाहित रहने की मर्यादापूर्ण घोषणा कर देते हैं । खानदानी टंडन परिवार की हालत साँप-छछूंदर जैसी है । जिसे न उगलते बनता है और न निगलते ।

मुहावरों और लोकोक्तियों का सटीक प्रयोग विवेच्य कहानी की जान है ... ''कड़े से कड़े, कठिन से कठिन समय में दादाजी ने समाधान ढूंढ़े हैं और काली घटाओं से घिरे आसमान के नीचे बिना भीगे बाहर निकल आये हैं ।''(73) नासिरा ने प्रेम विवाह और चाहत का नया चुनौतीपूर्ण कौशल तरू और तुषार के माध्यम से रचा है ।... एक लड़की वह भी बिन ब्याही औलाद को अपने घर में रहने का पूरा अधिकार है । दूसरी तरफ तुषार भी इस पौरुषात से काँप उठे थे कि उसने शादी तरु से न होने की स्थिति में आजीवन ब्रह्मचर्य का जीवन अपनाने का इरादा कर लिया है । ऐसे प्रेमियों का क्या किया जा सकता है ।

समस्या को सुलझाने के लिये दादाजी तरु और तुषार की जन्मकुण्डली को लेकर बनारस के बड़े पंडित आचार्य ब्रह्मदेव के पास पहुंचते हैं । लगन और भविष्य का योग पूछने । भेंट-पूजा हेतु हीरा, मोती, पन्ना, मूँगा और पुखराज से बनी सोने की एक अगूंठी ले जाते हैं । जौहरियों, ज्योतिषियों एवं पुजारियों के विश्वास की अनोखी बानगी नासिरा शर्मा ने विवेच्य कहानी में रखी है और साथ ही किस्सागो शैली में विभिन्न ज्योतिषियों की लालची और अस्पृहणीय वृति को भी दर्शाया है । पक्ष और विपक्ष रूप में । ... रात्रि में ब्रह्मदेव उन्हें तरू और तुषार के विवाह के अलावा धन के प्रबल योग और अन्तर्राष्ट्रीय स्तर पर ख़्याति प्राप्त होने की संभावना बताते हैं । साथ ही विदा होने के समय अपनी दो पुत्रियाँ होने की चर्चा करके एक अन्य नगीनों वाली अँगूठी की प्राप्त होने की आकांक्षा... अपनी स्वार्थपूर्ण वृति से जाहिर कर देते हैं ।

रोहिताश्व के अनुसार ''ज्योतिषराम टंडन अपनी वृद्धावस्था में भी सही दुविधा ब्रह्मदेव को बतला नहीं पाते हैं । आश्चर्य यह भी है कि नासिरा शर्मा यह क्यों कर सोच नहीं पायी हैं कि ज्योतिषराम टंडन का खानदानी ज्योतिषी तरु और तुषार के नाम गण, नक्षत्र और पारिवारिक खत मिलान यानि नाड़ी दोष को क्यों नहीं लक्षित कर पाया .... या वह यवन तौर-तरीकों को हिन्दू परिवारों पर लागू करवाना चाहती है । प्रसंगानुसार ज्योतिषराम टंडन अन्यंत्र एक पंडित सरजू पाण्डेय से पुनः जन्म कुण्डलियों के मिलान हेतु पहुंचते हैं जो विचार विमर्श के पश्चात् उन्हें इसी वर्ण के अंतिम सप्ताह की पच्चीस तारीख तक विवाह सम्पन्न कर लेने की सलाह देते हैं । .... साथ ही होने वाले तीन पुत्र रत्न और एक कन्या

राशि होने की सम्भावना दर्शा देते हैं ।''(74)

सरजू पाण्डेय की निस्पृहवृत्ति से आश्वस्त होकर ज्योतिषराम टंडन अपनी मानसिक दशा उजागर कर देते हैं । ... पंडितजी यदि ऐसा हो कि यह दोनों सगे भाइयों के पुत्र-पुत्री हों तो क्या यह विवाह अवैध माना जाएगा ? जवाब मिलता है .. धर्म की दृष्टि से नहीं, परन्तु परम्परा की दृष्टि से हाँ, ''यह तो अपके मानने या न मानने पर है । उनका धर्म में कहीं उल्लेख नहीं है परन्तु लोग उस रिवाज को मानते हैं । विवेच्य कहानी की थीम और विवेचन कम कण्ट्रोवर्सियल या साम्प्रदायिक विवाद का नहीं है । नासिरा शर्मा ने एक अन्तर्जटिल ज़हमत मोल ली है । कारण कहानी वाला समाधान न तो कट्टर सनातनी हिन्दू या वैष्णवी परिवारों को मान्य होगा और न ही सह-पारम्परिक हिन्दू विवाह ढांचों में ग्राह्य होगा । पर इंसानियत और मानवीयता की दृष्टि से तरू और तुषार के प्रणय सम्बन्ध मान्य हो सकते हैं । ज़माने वाले तो यही कहेंगे कि ''कलयुग तो देखो ... दो भाइयों की औलादें आपस में ब्याह रचा रही हैं । परिवार की अन्य चार शदियों के समारोह में तरू और तुषार भी परिणयबद्ध को जाते हैं गहमा-गहमी वाले संयुक्त परिवार के वातावरण में । पुखराज बहू का पैर इतना मुबारक साबित हुआ कि तरु और तुषार को कैम्ब्रिज में दाखिला मिल गया और वे विवाह के पन्द्रह दिन बाद बनारस से दिल्ली और दिल्ली से कैम्ब्रिज चले जाते हैं ।

दादा ज्योतिषराम और दादी के संवाद कहानी के अन्त में एक पोएटिक जस्टिस के रुप में, पात्रों के अन्त:करण वाले संवाद प्रतीत होते हैं ... हम बहुत बड़े पाप से बच गये । आज यह घर शमशान होता अगर मैं समझदारी से काम न लेता । दादी का प्रत्युत्तर है ... । ''हाँ तुम बादल न छाँटते तो काली घटा ने इस घर को निगल लिया होता ।'' विवेच्य कहानी में पात्रों का वैचारिक खुलापन, परम्परा और आधुनिकता की टकराहट तथा व्यवहार की स्वतंत्रता का चित्रण अनुपम ढंग से रचा गया है ।

'गली घूम गई' कहानी वर्तमान जीवन की विसंगतियों, नारी मन की अनेक पर्तों, अन्तर्विरोधों, टूटती ख़्वाहिशों और एकाकी जीवन में स्वीकार तथा अस्वीकार की मनोदशाओं की व्यथा-कथा है । कहानी की मुख्य पात्र 'मिनी' है जिसका अफेयर कभी रोहित से रहा है । प्रसंगानुसार मिनी के पिता ने विवाहिता पत्नी, दो युवा पुत्रियों एवं युवा किशोर पुत्र को त्याग कर अधेड़ावस्था में अन्यत्र दूसरा विवाह रचा लिया है जो कभीकभार परिवार में बिन बुलाये हुए मेहमान की तरह दो वर्ष बाद अपने नवजात पुत्र को लेकर चले आते हैं । मिनी की माँ सिलाई करके घर चलाती है । (लगता है किसी पुरानी फिल्म का घिसा-पिटा हिस्सा अभी भी नासिरा शर्मा के अवचेतन पर हावी है कथा सूत्र गूँथते समय) । विवेचन अनुसार मिनी और मंजू सगी बहनें हैं और रूमा सबसे छोटी बहन है । मिनी रिसर्च कर रही है पी-एच.डी. की । ऋतु की शादी में कुमार साहब ने (जो अपनी अधेड़ उम्र में दूसरा विवाह रचा

चुके हैं) कन्यादान के लिए जो सोने का सेट व कपड़ा लत्ता लाये थे वे मिनी की माँ ने वापस लौटा दिये ।

मिनी एक जागरूक और जिन्दा दिल करेक्टर है । घर में आये हुए ऋतु के विवाह के लोगों ने बड़ी बहन की जगह उसे पसन्द कर लिया था । पर बाद में अन्यत्र शादी ठहरा ली। जिससे वह औरतों की तयशुदा जिंदगी और अपनी हसरतों की लायक थी तब मुझे अकस्मात् रोक क्यों लिया गया । जब चारों खाने चित गिरी तो मेरे घाव पर किसी ने नज़र न डाली कि मुझ पर क्या गुजर रही है । बस उपदेश पुरसा, दुख और न समाप्त होने वाली बात कही ।''

दोपहर में अकस्मात् ऋतु के पति विजय को आँतों का कैंसर होने की सूचना वाला पत्र मिलता है सारा परिवार गमगीन मुद्रा में सोचने लगता है । उसी रात ऋतु सफेद साड़ी पहने विधवा के वेश में मिनी के सपने में आती है । मन मस्तिष्क और अवचेतन के खिलवाड़ से पहले ही संत्रस्त रही है । कारण दो वर्ष पहले रोहित की दोस्ती कहीं प्यार में बदल गयी थी । पर पापा के घर छोड़कर चले जाने के बाद .. विवाह हेतु ऋतु की जगह लड़के वालों के द्वारा उसे पसन्द किया जाना .. पुनः इंकार फिर ऋतु की अन्यत्र शादी .. वह अनचाही अवस्था में टूट जाती है । रोहित भी शहर बदलकर कहीं और खो जाता है ।

प्रेम की अतृप्त चाह और अपनत्व की खोयी हुई लालसा से वह सोचती है ... समय के समन्दर में रोहित भी कहीं गुम हो गया है । वह निराशा, हताशा में न डूबकर जिजीविषा के साथ अपनी अधूरी थीसिस पूरी करने व जीन निर्माण का नया संकल्प तलाशने लगती है । ... ऋतु और मिनी की गलतफहमी भी एक बार अकेले में अपनत्व की बातों से दूर होती है। विवेच्य कहानी 'गली घूम गई' में छोटा भाई राजेश नौकरी पाकर विवाह कर लेता है । ऋतु के प्रयत्नों से ही रोहित फोन-पत्र द्वारा मिनी की जिन्दगी के थपेड़ों को सहेजने और नयी राह अपनाने की प्रेरणा देता है । संयुक्त परिवार की परम्परा के अनुकूल जब विवाह हेतु रिश्ता आता है तो ऋतु ही समझाती है ...., प्रेम का अर्थ केवल एक साथ जीना नहीं बल्कि दूर रहकर भी साथ-साथ जीना होता है । तू तो भावना का फलक पहचानती है । सरोकारों के विस्तार की भी पारखी है फिर झिझक क्यों रही है । जीवन में जो मिला है, उस हिस्से को निडर होकर पी चाहे वह ज़हर ही क्यों न हो ।

नारी मन की अनेक परतें होती हैं, चाहत की, अपनत्व की, स्वीकार की और अस्वीकार की । नारी-विमर्श कोई प्रतियोगिता का दंगल या स्टेज नहीं है पुरुष जगत् में । वह तो यथार्थ को स्वीकार करने वाला जीवन बोध है आत्मनिर्भरता का, आर्थिक रचना में अपने स्वत्व बोध का । 'गली घूम गई' की होनी-अनहोनी की परिस्थिति के अनुसार शिल्प शैली वर्तमान

और फ्लैश बैक के क्षणों में वैचारिक अन्तर्द्वन्दों की भाषा-शैली मुहावरों की चुस्ती के साथ ।

'संदूकची' कहानी में संयुक्त परिवार की ईर्ष्या, कलह, बतकही... औरतों की षड्यंत्रकारी प्रवृत्ति और अपनत्व के बोध का निरूपण है । यहाँ भी नासिरा शर्मा प्रथम पुरुष की नैरेटर शैली इस्तेमाल करती हैं । ... नया मकान बना है ... बढ़ई के लगातार काम से बुरादे की पर्त घर भर में छायी हुई है । अमेरिका जाने वाले भाई को विदा कर माँ रामनगर से आई है । पति रमेश ने अपना पैतृक गृह बेचकर शहर में नया मकान लोन और सेविंग आदि से बनवाया । ... ससुराल की हवेली में तंग कमरों में लगता था ... जैसे मैं पिंजरे की बंद मैना हूँ जो तीलियों पर सर रखकर किसी पल दम तोड़ देगी ।

कहानी की नैरेटर सुमन अपनी विधवा माँ के आत्मसंघर्ष, गृहस्थी की चीज़ें बेचने और भूखी मतलब परस्त आँखों के ज़लज़ले का वर्णन करने में कोताही नहीं बरतती है । गगरे, थालियाँ, लोटे, कटोरे, देंगे और लुटिया आदि बेचने में ... भैय्या की फीस अदा करने, गृह खर्च चलाने के लिए माँ का दिल नहीं दुखा था । पर जिस ज़ेवर को बेचना होता उसे हाथ में लेकर बड़ी देर तक हसरतों से देखती रहती । ... जैसे उसके बहाने से अतीत की स्मृतियों में डूब जाती थी कि कब, कहाँ इसको पहना होगा ।

नासिरा शर्मा के पास नारी मन की कई अनछुई दास्तानें विस्मृति के गर्भ से निकल कर आती हैं जो नारी-विमर्श की होनी-अनहोनी लोककथा जैसी हैं । शादी के बाद कहानी की नैरेटर जब रामगढ़ अपने मायके जाती है, रात में आवाज़ें सुनकर माँ के कमरे में जलती हुई बत्ती देखकर जाती है तो माँ जेवर की खुली संदूकची खोले बैठी है, टटोलती है, खाली खानों के हिस्से में, जेवरों की सूची और रसीदें देखे रखे है । .. पहले जब सुमन गर्दिश के दौर में सतलड़ा हार बेचने गयी थी तब धीरे से उन्होंने कहा था कि यह मेरी परनानी की निशानी है जो घर की लड़की को देने की परम्परा थी । माँ ने मुझे देते हुए कहा था कि दे तुम्हें बेचने के लिए रही हूँ मगर यह तुम्हारी बेटी की अमानत है । ... माँ का करुणा से भरा इतना कमज़ोर और बेचारा चेहरा मैंने इससे पहले कभी नहीं देखा था ।'(75)

संयुक्त परिवार के ज़िम्मेदार शख़्स को कभी-कभी अपने दायित्व बोध में अपनी ही इच्छाओं का पोस्टमार्टम देखना पड़ता है ।

सुमन की माँ गहरी समझ नुमाया होती है कि असली ज़ेवर तो औरत की शक्ति है । सुमन की बात में भी दम है कि असली ज़ेवर और सजावट इंसान की विद्या होती है । सुमन की लड़कियाँ ऋचा और प्राची जो कलकत्ता में पढ़ रही हैं । अवकाश के दिनों में नानी को घर आया देखकर प्रमुदित हो जाती हैं । रमेश भी जल्दी घर आ जाते हैं । फिल्में देखना, बाज़ार

घूमना और उमंग भरा वातावरण घर में सहज बात होती है । घर में फर्नीचर बनाने वाला कारीगर माँ की इच्छा के अनुरूप अलमारी में एक गुप्त खाने वाली सन्दूकची बना देता है जिससे माँ बड़ी खुश रहती है ।

कहानी में परिवर्तन कर्कशा चाची के आने से होता है । वह कलहप्रिय भी है, वक्त-बेवक्त वह माँ पर भी तानाकशी कर लेती है । चाची को अपने भतीजे रमेश के नये घर की सजावट और शान-शौकत से कम ईर्ष्या नहीं है । माँ वापस रामनगर लौटना चाहती है । पर यात्रा के दिन बाथरूम में पैर फिसल जाने से पैर की हड्डी टूट जाती है । रिज़र्वेशन का टिकट लौटा दिया जाता है । माँ की सेवा सुरक्षा के लिए मामी दूसरे सप्ताह कलकत्ता पहुंच जाती है ।

सुमन की माँ पट्टी बंधे पैर के बावजूद अपनी पुरानी हसरतों के चलते अलमारी के एक गुप्त खाने में अक्सर कुछ रखती और टटोलती रहती है । चाची उस पर कटाक्ष करती रहती है ... ऋचा तुम्हारी नानी अलमारी में हरदम क्या रखती उठाती हैं ? वह भी आधी रात को ? वह उन पर चोरी का इल्ज़ाम लगाने से भी बाज़ नहीं आती है । सुमन भी आतंकित होती है चाचा के खटराग से, क्योंकि रोने-धोने कलह करने और ज़बान खोलने से घर में महाभारत मच जाता और गली-मुहल्ले के लोगों के लिए नया कांड होता ।

माँ की हालत मनोव्यथा, अपमान और घुटन से दिन ब दिन खराब होती रहती है । वह अपना दुख दूसरों से ज़ाहिर न करके भीतरी मन में अन्तर्यात्राएं करती रहती है । दो दिन बाद ऋचा और प्राची के हॉस्टल से लौट आने के बाद उनके स्पर्श से सुमन की माँ का बदन सिहर उठता था । कहानी के अंत में माँ की सोती हुयी अवस्था में गुजर जाने का ज़िक्र है । ... माँ के गुज़रने पर सुमन की आँख से एक भी कतरा आँसू नहीं गुजरौ ।

लेखक रोहिताश्व कहते हैं 'सन्दूकची' कहानी सुमन की माँ की संघर्ष भरी दास्तान ही नहीं है बल्कि वह खानदान की बची-खुची वस्तुएं गर्दिश के दिनों में बेचने वाली स्त्री के मान-मर्दन की भी है । उससे भी ज्यादा किसी के अकारण लांछन और अपमान का बोध है । आत्मघाती स्तर पर एकान्त में वह खाली सन्दूकची और गुप्त तिजौरीनुमा बंद खाने खोलने में आत्मविस्मृति पाती है । माँ की मृत्यु के बाद सुमन एक बारगी रात के अंतिम पहर में उसके कमरे में जाती है जहाँ मामी दिया जलाये कमरे में लेटी है पर चाची अलमारी की दराज़ में उस वक्त हाथ डाले कुछ टटोल रही है । संयुक्त परिवार में अक्सर होने वाली षड्यंत्रपूर्ण नीति, ईर्ष्या और कलह को मूर्तिमन्त करने वाली 'संदूकची' कहानी में स्वाभिमान, संवेदनशील सुमन की आवाज़ें माँ के प्रति चाची के अविश्वास और घात भरी चालों के कारण चीख में उभरती हैं । चाची का चेहरा कोरे लट्ठे की तरह सफेद हो जाता है । ... दराज़

के खाने खाली रहते हैं । सुमन चीख़ती है देखिये ... अच्छी तरह से इतमिनान कर लीजिए ।... कुछ छुपा तो नहीं है । दराज़ फर्श पर पटक दिया जाता है । ... क्या माँ कुछ छुपाकर अपने साथ ले गयी है ।''(78)

कहानी का अन्त मर्मस्पर्शी कथन से होता है । ... 'मैं किसी को नहीं बता पाई कि माँ उस खाली दराज़ में क्या रखकर ताला लगाती थी ? कहानी अवसाद, क्षोभ, वितृष्णा के छोर पर खत्म होती है और संयुक्त परिवार के बचे हुए अवशेषों में कलहप्रिय और शांतप्रिय स्त्रियों की चारित्रिक विषमता की अंतरिक पातों को उघेड़ते हुए । ... प्रश्न मन में उभरता है कि नारी-विमर्श के अनछुए प्रसंगों को क्या हमारे समय के राहगीर, पक्षधर आलोचक देख रहे हैं ।

दीप्ति खंडेलवाल ने 'हव्वा' कहानी का परिवेश युवा वर्ग को चुना है जहां कॉलेज में एक लड़के की रैगिंग के दौरान सारे वस्त्र उतार दिए जाते हैं । इस घटना से वह लड़का इतना शर्मसार हो जाता है और डिप्रेशन में चला जाता है कि अपनी गर्लफ्रेंड को अपना चेहरा भी नहीं दिखा पाता । यह कहानी आज से करीब 30 साल पहले लिखी गई थी और 'धर्मयुग' पत्रिका में छपी थी जब रैगिंग की समस्या शैशवावस्था में थी, वह भी कहीं-कहीं । आज इसे कानूनन गुनाह करार दिया गया है । ऐसा परिवेश और किरदारों की ऐसी अन्तर्जटिलता नासिरा की कहानियों में नहीं मिलती है । इसी प्रकार स्व. विष्णु प्रभाकर की बरसों पहले लिखी गई कहानी 'ठोकर' भी काफी बोल्ड कहानी मानी जाती है जिसमें ठेकेदार पति ठेका पाने के लिए अपनी पत्नी को कंपनी के बॉस के साथ सोने के लिए मजबूर करता है । अन्तर्संबंधों की जटिलता को लेकर इसी पैटर्न पर सुधा अरोड़ा, ममता कालिया, जया जादवानी और कमल कुमार ने बहुत बोल्ड कहानियां लिखीं जो समाज के नंगे सच को बेपर्दा करती हैं । नासिरा की कहानियों में ऐसे पैटर्न देखने को नहीं मिलते हैं, न ही उनकी कहानियों में अन्तर्संबंधों की जटिलता में ऐसी कलात्मकता देखने को मिलती है ।

3.2.3 दोहरे मापदंडों का पर्दाफाश

सीमोन द बोउवार के अनुसार ''पुरुष ने सभ्यता के आदिकाल से ही अपने शारीरिक शक्ति के कारण अपनी श्रेष्ठता स्थापित की । उसने धर्म बनाए, जिन मूल्यों को गढ़ा, जिन आचरणों को मान्यता दी वे सब उसकी सुविधा के लिए थे । उसके इस एकछत्र राज्य को औरत ने पहले कभी चुनौती नहीं दी । कहीं - कहीं कुछ महिलाओं ने व्यक्तिगत रुप में आवाज उठाई, कुछ आंदोलन भी हुए, किंतु पुरुष ने औरत का सब कुछ अपने हाथ में रखा । उसने स्त्री के स्वार्थ में उसकी निर्यात नहीं, गढ़ी, बल्कि अपनी परियोजनाओं और जरुरतों से वह नियोजित हुआ ।(78) इस तरह पुरुष ने स्त्री पर अपनी प्रभुता कायम कर ली है । वह पुरुष के

अधीन बन गई है । स्त्री को गुलाम बनाने के लिए पुरुष ने ऐसे नियम, कानून, सिद्धांत बनाए जिसका अतिक्रमण वह आज तक नहीं कर पा रही है । सीमोन तथा अन्य स्त्रीवादी लेखिकाओं ने इस अन्तर्विरोध को सामने लाया कि पुरुषों ने अपनी योजनाओं के अनुसार स्त्री को अपना उपनिवेश बनाया है । इसके साथ ही यह तथ्य भी सामने आया कि साहित्य, कला और संस्कृति की दुनिया में पितृसत्तात्मक संस्कृति की प्रभुता है । स्त्रियां हाशिए पर हैं बल्कि षड़यंत्र के तहत् हाशिये पर कर दी गई हैं । स्त्री पर हमेशा दुधारी तलवार लटकती रहती है । आज स्त्री वर्ग में यद्यपि जागरुकता आई है, तथापि उसकी स्थितियों में अपेक्षित या यूं कहें कि न्यायोचित, बदलाव नहीं आ पाया है । स्त्री संगठन 'नारी समता मंच' से जुड़ी साधना दधीच कहती हैं कि ग्लोबलाइजेशन ने स्त्री जीवन को विपरीत रुप में प्रभावित किया है । वे कहती है – ''इसके परिणामस्वरुप ही महिलाएं इनफॉर्मल सेक्टर में काम करने के लिए बाध्य हैं जहां नौकरी की स्थिरता, काम की नियमितता और स्त्री विशिष्ट सुविधाओं (मातृत्व अवकाश आदि) का अभाव हैं ।[79]

लेखिका स्व. प्रभा खेतान का भी मानना था कि भूमंडलीकरण ने स्त्री को जितना लाभ पहुंचाया है, उससे अधिक हानि पहुंचाई है । उसने स्त्री को सब कहीं एक आकर्षक उत्पाद में बदला है । भारत जैसे समाज में स्त्री की आर्थिक स्वतंत्रता ही काफी नहीं है, आर्थिक परिवर्तन के संदर्भ में उसे राजनीतिक और सामाजिक आंदोलन की जरुरत है । अमानवीय विकास के प्रतिमानों को खारिज करना और जनोन्मुख नजरिए को विकसित करना नारीवाद का पहला उद्देश्य होना चाहिए ।[81]

मुस्लिम स्त्री संगठन से जुड़ी बेहद प्रखर एवं मानवीय मूल्यों में आस्था रखने वाली डॉ. रजिया पटेल का स्त्रियों की दशा में अपेक्षित बदलाव नहीं आने के मूल कारणों के बारे में कहना है कि ''साहित्यकारों और बुद्धिजीवियों का राजनैतिक हस्तक्षेप शून्य के बराबर है । शोषण से मुक्ति की लड़ाई अंततः राजनीतिक लड़ाई ही है । शिक्षा से वंचित रखना भी बहुत बड़ा कारण है । मुस्लिम समुदाय में सर सैयद अहमद खां को आधुनिक शिक्षा का जनक माना गया लेकिन उनकी भी अपनी मर्यादाएं थीं । उन्होंने स्त्री शिक्षा पर बल नहीं दिया । बल्कि 'हंटर कमीशन' के सामने उन्होंने कहा कि मुसलमान स्त्रियों और शूद्रों की शिक्षा पर बल ज्योतिबा फुले ने ही दिया । उनका मानना था कि ज्ञान से सशक्तिकरण संभव है । यह बात और है कि शिक्षित होने के बावजूद वह शक्ति हममें नहीं आयी, क्योंकि हमें फुले की शिक्षा नहीं दी गई बल्कि मैकाले की शिक्षा दी गई । यह शिक्षा व्यक्ति को समाज से तोड़ती है, जोड़ती नहीं है । इसका सरोकार वैयक्तिक उपलब्धियों तक ही है । इसमें सामाजिक भूमिका का समावेश नहीं है ।''[81]

वस्तुत: समाज निरंतर बदल रहा है । अत: यथार्थ की जटिलताएं भी बढ़ी हैं और उसी तरह स्त्री जीवन की चुनौतियां भी । एक ओर समाज स्त्री को रुढ़िगत, परम्परागत धारणा के अन्तर्गत जकड़ लेना चाहता है, उसके साथ यह दोहरा व्यवहार जन्म से मृत्यु तक होता है परंतु दूसरी और स्त्री अधीनता के जटिल मुद्दों को समझने की जागरुकता बढ़ी है । आधुनिक स्त्रियां इस रुढ़िगत धारणा को तोड़कर समाज के समक्ष वह सत्य लाने की कोशिश करती हैं जो महज एक स्त्री होने के नाते कई शोषणों की शिकार बनी हैं । सुधीजन इस बात से परिचित हैं कि स्त्रियों के पास वर चयन का भी अधिकार नहीं होता और अगर वह अधिकार का उल्लंघन कर स्वयं अपने विवाह का निर्णय लेती हैं तो यह समाज उन्हें जीने नहीं देता । हालांकि अभिनेत्री राखी सावंत ने 29 जून 2009 से स्वयंवर आयोजित किया था और स्वयंवर हेतु चुनकर आए हुए सोलह शादी को इच्छुक युवकों में से एक को चुनने की प्रक्रिया शुरु की थी । यद्यपि उसने स्वयंवर में अंतत: किसी को नहीं चुना मगर यह घटना अपवादस्वरुप प्रतीत होते हुए भी भविष्यमें विवाहोत्सुक युवतियों के लिए वर चयन के अधिकार का उपयोग करने की हिम्मत अवश्य प्रदान करेगी । वैसे भी दहेज या किसी अन्य कारण की बदौलत कुछ लड़कियों द्वारा मंडप से बारात लौटाने की घटनाएं भी हाल के वर्षो में प्रकाश में आई हैं । कुल मिलाकर रजनी गुप्त के शब्दों में कहा जा सकता है कि बदलते समय के साथ बहुतेरी दिशाएं खुल रही हैं और बहुआयामी यथार्थ पर बहस के दरवाजों पर दस्तक भी सुनाई पड़ रही है । स्त्री घर-परिवार और दफ्तरों में काम पर जाती है तो वहां महज स्त्री भर होने से उसे दोयम दर्जे पर न रखा जाए । उसके आजाद व्यवहार की अन्यथा व्याख्या न हो बल्कि वह भीतरी आजादी को एक मनुष्य की तरह महसूसे जिसमें उसका आत्मविश्वास और आत्मसम्मान भी उद्‌भासित हो सके । उसे न केवल आर्थिक आधार पर मजबूत स्त्री के रुप में उभरता देखना है बल्कि सामाजिक और राजनीतिक परिप्रेक्ष्य में उसकी ठोस भागीदारी और वाजिब हक को सुनिश्चित करना होगा । स्त्री का संघर्ष मानवीयता के आधार पर मानवीय मूल्यों पर टिका हो मगर क्या है स्त्री की दुनिया सच ? उसकी छटपटाहट की एक बानगी भर- ''अकेले घर में बच्चों को छोड़कर काम पर आना ही पड़ता है । मन लगा रहता है उन्हीं के पास जबकि तन लगा है यहां दफ्तर में, कितनी - कितनी जगहों पर बंटकर रह गई हूं मैं ? कोई भी खुश नहीं रहता मुझसे । अब बताओ, सबकी अपेक्षाएं कहां तक पूरी करती फिरूं ? मैं भी तो एक इंसान हूं, मशीन तो नहीं ।' वाकई यह प्रश्न ज्वलंत है और हर पल समाज के नियंताओं से उत्तर पूछता है कि अपने बूते अपनी जगह हासिल करती प्रगति पथ पर बढ़ती स्त्री की सत्ता को समाज में स्वीकार्यता क्यों नहीं मिल रही है ? स्त्री की बेहतर दुनिया की बेहतरी के लिए लेखिका कात्यायनी लिखती हैं -

'इसके पहले कि

इस सदी की किताब बंद हो
ऐसा कुछ करें कि
हमारे हिस्से के सफे कोरे न छूट जाएं ।' (82)

नासिरा शर्मा खोखली रुढ़िगत परम्परा तथा समाज के दोहरे मापदंडों का पर्दाफाश करती है । 'दहलीज' कहानी में बहन-भाई सकीना-जावेद में नोंक-झोंक बढ़ जाती है तो दादी सकीना को जिस तरह के शब्दों का प्रयोग डांटते हुए करती है वह पितृसत्तात्मक समाज का स्त्रियों के प्रति पक्षपातपूर्ण रवैये का छोटा सा उदाहरण है - ''भाई से जबान लड़ाती हो ? माफी मांगो - और दुल्हन तुमने भी बेटियों को सर चढ़ा रखा है । याद रखो, नस्ल बेटों से चलती है, यह लड़कियां तो मुंडेर पर बैठी गौरेया हैं, अपने बसेरे को उड़ जाएंगी, पलटकर नहीं आएंगी । बुरे वक्त का साथ लड़का होता है चाहे काना ही क्यों न हो ।''

सकीना की मां व्यथित होकर कहती हैं - ''इन्हें भी तो नहीं भूल सकती अम्मी, आखिर यह भी मेरे ही गोश्त-पोस्त से बनी हैं । उधर सकीना टूट-सी जाती है । मजबूरी और बेबसी उसके इस वाक्य में झलकती है - ''हरदम रोक-टोक लगी रहती है - न पढ़ सकते हैं न कुछ सीख सकते हैं । यह भी क्या जिंदगी है ।''

सकीना का विवाह हो जाता है । पर ससुराल में भी स्त्री को खुलकर सांस लेने की स्वतंत्रता नहीं है । ससुराल मायके से भी तंग दिल । ससुराल से आई सकीना की चिट्ठी में उसकी बदहाल जिंदगी का हाल पढ़कर खास तौर से सकीना की दोनों बहनों शाहीन और हुमैरा अधिक परेशान हो उठती हैं । शाहीन की शादी होने वाली होती है पर उसकी पसंद ना पसंद को पूरी तह दरकिनार कर दिया जाता है । नतीजतन अपनी शादी से एक दिन पूर्व ही वह आत्महत्या कर लेती है क्योंकि वह इस बात से डर रही होती है कि उसके ससुराल वाले भी उसकी तरह वही बर्ताव करेंगे जो सकीना के साथ हो रहा है ।

कहानी में एक ओर दादी के रुप में एक स्त्री और भाई के रुप में एक पुरुष सकीना, शाहीन और हुमैरा तीन पढ़ी-लिखी नवयुवतियों को तथाकथित सामाजिक पाखंड के शिकंजे में कैद रखना चाहते हैं, वहीं दूसरी ओर मां के रुप में इजहार और पिता के रुप में सामिन इन्हें सामाजिक रुढ़िवादिता के चंगुल से मुक्त करने के पक्षघर हैं । इन दो ध्रुवों के मध्य तीन जिंदगियां पिस रही होती हैं जो शाहीन की मौत के उपरांत दो रह जाती हैं । आखिरकार इजहार ने अपनी छोटी बेटी हुमैरा को उसकी आजादी के मध्य न आने का फैसला कर उसे सुकून देती है जो उसके हुमैरा को संबोधित इस वाक्य में परिलक्षित होता है - ''घर की दहलीज पार करना और बाहर की दुनिया में कदम रखना आसान काम नहीं है । घर के अंदर की घुटन जानी-पहचानी होती है मगर बाहर का परायापन एकदम अजनबी ।

मुझे यकीन है तुम पराई दुनिया को भी अपना बना लोगी । अब इस घर में तुम्हें कोई नहीं रोकेगा ।''

कहानी का आखिरी वाक्य कई मायनों में महत्वपूर्ण है - ''कैद और आजादी के बीच अक्लमंद आजादी को चुनेगा दादीजान ! आपकी फेंकी कमन्द से दूर मुझे वहां तक जाना है जहां आसमान और जमीन मिलते हैं ।'' पहला तो यह नारी स्वतंत्रता के प्रति स्वयं नारी का उद्घोष है दूसरा, सामाजिक पाखंडों और दोमुंही मानसिकता को दुलत्ती मार अपनी राह स्वयं चुनने की हिम्मत और आत्मविश्वास का प्रदर्शन है और साथ ही तमाम मानसिक संतापों एवं अन्तर्जंटिलताओं से बाहर आने के खुशनुमा एहसास की प्राप्ति ।''(83) डॉ. रोहिताश्व कहते हैं - ''नासिरा शर्मा संभवत: एक ऐसी रचनाकार है, जो मुस्लिम समाज की नारियों के अन्तर्मन को भी सूक्ष्मता से रेखांकित करती है । उनकी बोली - बाली ने अभिव्यक्ति में और हिन्दू समाज की जददोजहद झेलती संवेदशनशील और कैरियरिस्ट नारियों के जीवन देश की अनेक परतों को भी प्रतिबिम्बित ही नहीं बल्कि युगीन परिवेश के बदलते माहौल को रेखांकित करने में समर्थ है । प्रसंगानुसार वृतान्तशैली विवेचन शैली संवादशैली, आत्मालोचन, फ्लैशबैक शैली को मनोविश्लेषण की गहराईयों से पैदा करनेवाली वह हमारे दौर भी एक समर्थ - हस्ताक्षर हैं । नारी-विमर्श के अनछुए प्रसंगों को प्रस्तुत करने में वह एक कामयाब कायाकार हैं ।(84)

3.3 परम्परा और आधुनिकता

भारत की परम्परा रही है कि स्त्री को समाज में विशेष सम्मान का दर्जा प्राप्त है । 'यत्र नार्यस्तु पूज्यते, तत्र देवता: रमन्ति'इसलिए भारतीय नारी के सन्दर्भ में प्राचीनकाल में ही उल्लिखित उद्गार हैं जिनका आज भी निर्वहन हो रहा है । यद्यपि साथ-साथ यह भी गले के नीचे मन मसोसकर स्वीकार करने वाला कड़वा सत्य है कि मध्यकालीन भारत में भी स्त्रियों को भोग-विलास की वस्तु कई स्थितियों में माना जाता था । वैसे प्राचीन काल में भी द्रौपदी जुए के दांव पर लगा दी गई थी । तब भी स्त्री को भोग्या मात्र ही समझा गया था।

भारतीय नारी, हिमालय पुत्री के समान पवित्र और पावन है, स्वतंत्रता की लड़ाई के दौरान, ऊबड़-खाबड़ रास्तों पर चलकर भी, उसने उज्ज्वल भारत को पूजनीय बनाते हुए हर आयाम पर संपूर्णता से योगदान दिया । समाज के हर पहलू पर अपनी दमदार आमद के साथ हजारों बाधाएँ पार करके समाज की महत्वपूर्ण कड़ी के रुप में उभरी । भारतीय संस्कृति को अक्षुण्ण रखने में उसने अपने प्राणों की भी परवाह नहीं की । महारानी लक्ष्मीबाई, दुर्गा भाभी, झलकारी बाई, केप्टेन लक्ष्मी सहगल जैसी अनेकों वीरांगनाओं ने अपने देश की

अस्मत सुरक्षित रखने के लिए अपना सर्वस्व कुर्बान करने में संकोच नहीं किया ।

महीयसी **महादेवी वर्मा** ने लिखा है, 'नारी केवल माँस-पिण्ड की संज्ञा नहीं, आदिम काल से आज तक विकास पथ पर, पुरुष का साथ देकर उसकी यात्रा को सफल बनाकर, उसके अभिशापों को स्वयं झेलकर और अपने वरदानों से जीवन में अक्षरा शक्ति भरकर मानवी ने, जिस व्यक्ति व हृदय का विकास किया है, उसी का पर्याय नारी है ।'

नारी चेतना के रास्ते में अनेक बाधाएँ और अवरोध आए जैसे,

1. पुरुष प्रधान समाज और नारी का दोयम दर्जा,
2. लड़कियों का गलत समाजीकरण,
3. कुछ विशेष धार्मिक प्रथाएँ (नारी का देवी रुप में पूजन),
4. स्थानीय सामाजिक परम्पराएँ (बाल-विवाह, परदा, दहेज),
5. सामुदायिक रीति-रिवाज़ (सतीप्रथा, विधवा विवाह), जाति,
6. अशिक्षा व अन्ध-विश्वास,
7. गरीबी; रहन-सहन का निम्न स्तर,
8. पारिवारिक तनाव, संयुक्त परिवार में प्रचलित कुप्रथाएं.

इन सभी को पार करते हुए नारी को जाग्रति का अलख स्वयं ही प्रदीप्त करना पड़ा । समाज में व्याप्त अनेक कुरीतियों के विरुद्ध नारी स्वयं जाग्रत हुई और समाज में अपनी स्थिति मजबूत करने के लिए उसने अनवरत संघर्ष भी किया । नारी ने दबाकर रखने वाली शक्तियों के विरुद्ध एकजुट होकर अपने आपको विराट शक्ति के रुप में ढालने का प्रयत्न भी किया ।

स्वामी विवेकानंद का कथन है, 'देश की उन्नति के लिए स्त्रियों की शिक्षा का प्रसार अत्यन्त आवश्यक है, विद्या, बुद्धि, बल और विक्रम से, (इस मानवीय बल से), जो कि प्रकृति प्रदत्त उपहार है, राष्ट्र को सर्वोच्च स्थान पर एक माँ, बहन, और पत्नी ही पहुँचा सकती है ।'

आज नारी घर की चहारदीवारी छोड़कर सभी क्षेत्रों में पुरुषों के साथ कन्धे से कन्धा मिलाकर चल रही है । उसने शिक्षा, चिकित्सा, राजनीति, सेना, अन्तरिक्ष, पत्रकारिता, फिल्म आदि हर क्षेत्र में अपनी उल्लेखनीय उपस्थिति दर्ज कराई है । हर स्थान पर नारी पूर्णत: कर्तव्यनिष्ठ होकर कार्यरत है । समाज को सही मार्ग दिखाने का श्रेय ममतामयी माँ के रूप से नारी को ही जाता है । इतिहास गवाह है कि वैदिक ऋचाओं के सृजन से लेकर आधुनिक भारत के साहित्य में भी महिलाओं का महत्वपूर्ण योगदान रहा है । इतिहास की दशा और दिशा

निर्धारित करने का श्रेय भी नारी के खाते में है । उदारता, स्नेह व कल्याण की पर्याय भारतीय नारी ने सन् 1857 की क्रान्ति के बाद भारत की सुन्दर तस्वीर के हजारों आयाम अन्तर्राष्ट्रीय पटल पर रखे ।

जननी 'माँ' की सहनशीलता के गुणों से सुसज्जित भारतीय नारी ने सृजन के कई कीर्तिमान स्थापित किए । देवी पूजन के नाम पर नारी का शोषण बहुत आसान था । दक्षिण में उसे बाकायदा देवी के स्थान पर बिठाया गया और तथा कथित पुजारियों ने शोषण करते हुए उसे दासी बनाकर छोड़ा । दासी प्रथा के खिलाफ कानूनों ने ही इन मासूमों का बचाया और यह सिद्ध हुआ कि नारी पूजनीय है, केवल भोग्या नहीं ।

आज, भारतीय नारी ना तो दुर्गा है, न सावित्री सत्यवान की है, न वह सीता है, न राधा । आधुनिक नारी अपने समय के साथ चलती हुई अपनी अस्मिता की उत्कृष्टता की लड़ाई को जारी रखे हुए है । अब वे शिक्षित हैं और इससे नारी जागृति की तेज लहर गाँव-गाँव तक दौड़ रही है । महिला पंचायत बनने से ग्रामीण महिलाएँ, खेत-खलिहान में काम करने के साथ ही, पंच और सरपंच भी नियुक्त हुई हैं । यह महिला समाज की प्रगति का महत्वपूर्ण पड़ाव है । भारत जैसे विशाल राष्ट्र में महिला मुख्यमंत्री, प्रधानमंत्री और राष्ट्रपति के अति महत्वपूर्ण पदों पर विराजी है, जो उसकी योग्यता, प्रतिष्ठा और महानता की कथा स्वयं कहने में सक्षम है ।

नारी चेतना के संचार में **सुभद्राकुमारी चौहान** की कविता 'खूब लड़ी मर्दानी' में स्वतंत्रता संग्राम की महानायिका लक्ष्मीबाई की भूमिका बेमिसाल है ।

नारी ईश्वर की अनुपम कृति है । **गुरुदेव रवीन्द्रनाथ टैगोर** ने सच ही कहा है, नारी देश की निर्माता व उसे बदलने का साँचा है । हालांकि वह फूल के समान कोमल, नाजुक है, मगर उसका हृदय पुरुष से अधिक मजबूत व कठोर बन सकता है, राष्ट्र को उन्नति के पथ पर अग्रसर करने हेतु वह सर्वोच्च शक्ति है ।' ग्वालियर की डॉ. सीमा शर्मा के शब्दों में भारतीय नारी की जागृती और चेतना आज सर्वोच्च स्थान पर है । बस जरूरत है अधिकारों को पहचानकर उनकी रक्षा करने की, मेरी नज़र में चेतना की यह यात्रा कुछ इस प्रकार से है :

दूर जलता रोशनी के पार,
एक जहाँ मेरा भी हैं;
आसमां में चमकते सितारों में
एक निशाँ मेरा भी हैं ।
दूर तक फैले आसमान पर,
नज़र भर के देखो,
जहाँ भी शिक्षा का उजाला दिखे,

वो मुकाम मेरा भी है ।
अब न डगर में रुकावटें और मुश्किलें हैं,
समाज, राज्य और देश के,
हर कोने में फैला गुलिस्ताँ मेरा भी है ।
मैं रोशनी हूँ अँधेरों के बीच,
हर सहर पर खिंचा उजाला मेरा भी है । (85)

वस्तुत: परम्परा और आधुनिकता में रस्साकशी चलती रही है । परम्परागत दृष्टि से स्त्री पूजनीय, सम्माननीय तो रही है पर तभी तक जब तक कि वह प्रगति के पथ पर अपने कदम नहीं बढ़ाती । उसके चारदीवारी में रहने को ही पुरुष सत्ता की स्वीकार्यता है । वह अंदर रहे, पुरुष बाहर । अंदर को और अंदर धकेला, कुचला जा सकता है पर बाहर की दुनिया की खुली हवा के झोंके से स्त्री कहीं बौरा न जाए, इस ओर पुरुष वर्ग सदा सचेष्ट रहा है । चाहे वह महाभारत का युग हो, या फिर आज का इंटरनेट का युग जहाँ हर जानकारी, वस्तु, पहुंच कम्प्यूटर के कुंजी-पटल पर एक क्लिक में उपलब्ध है । स्त्री जब भी खुलकर हंसी है, उसे कहीं-न-कहीं, किसी-न-किसी रुप में अथवा स्थिति में बागी बनना पड़ा है, अपने मन की करने की हिम्मत जुटानी पड़ी है और परम्परा की बेड़ियां तोड़ने का साहस करना पड़ा है । छायावादी कवयित्री महादेवी वर्मा ने स्त्री की सामाजिक हैसियत-द्वितीय कोटि की नागरिकता की ओर इंगित करते हुए खुद के बारे में संस्मरण में लिखा है कि वे काशी हिन्दू विश्वविद्यालय से वेदों का गंभीर अध्ययन करना चाहती थीं लेकिन 'ब्राह्मण' और 'स्त्री' होने के कारण उन्हें यह अवसर नहीं दिया गया ।(86)

सच है कि सामाजिक पारिवारिक मूल्य ही आभ्यन्तरीकृत रूप में 'संस्कार' होते हैं । उनसे मुक्त हो पाना अधिक दुष्कर है । संस्कारवश स्त्रियों को अपने दु:खों का ज्ञान ही नहीं होता । वे उत्पीड़न और हिंसा को अपनी नियति मानती रही हैं । उत्पीड़न, हिंसा, उदासी, सिसकियां - ये सब पर्याय बन गई हैं स्त्रियों के । तभी तो सीमोन द बोउवार ने लिखा है - 'स्त्री पैदा नहीं होती, बनाई जाती है । उसे घुट्टियों में हर स्त्री-संस्कार दे दिए जाते हैं ।' इस दु:ख, परेशानी को नियति नहीं मानना, उन्हें पहचान कर उनका विरोध करना और अपने लिए मार्ग ढूंढ़ना बेहद कठिन रहा है पर असंभव नहीं । इसलिए कई स्त्रियों ने विभिन्न क्षेत्रों में कीर्तिमान स्थापित कर दुनिया भर के स्त्री समाज को रोशनी दिखाई, उनका आत्म-बल बढ़ाया । हिंदी साहित्य में जहां आचार्य महावीर प्रसाद द्विवेदी युग में स्त्री 'अबला' का पर्याय थी वहीं पन्त, निराला, प्रसाद के युग में गरिमामयी बन गई । उत्पीड़िता और दासी नहीं, श्रद्धा और मानवी बनी ।

नारीवाद का प्रथम चरण 'गृहिणी' की भूमिका का विरोध है । द्वितीय विश्वयुद्ध के पश्चात शुरु हुए नारी आन्दोलनों से जुड़ी हुई स्त्रियां हों या सातवें दशक की नारी - चिंतक, वे घर में कैद रहने की हिमायती नहीं हैं । वे सभी जिम्मेदारियां 'साझेपन' में उठाना चाहती हैं । उनका विचार है कि गृहस्थी, बच्चे और वृद्ध उन्हीं की एकल जिम्मेदारी नहीं हैं । अमेरिकी नारीवादी बेट्टी फ्रिडन ने तो 'घरेलू औरत' को 'परजीवी' कहा । विडम्बना यह है कि सिर्फ गृहिणी की भूमिका निभाने वाली औरतें रात-दिन खट कर भी 'भार्या' कहलाई और अपनी इच्छाओं, कामनाओं का निषेध करती हुई पति की 'छाया' बनी रहीं, 'संगिनी' नहीं ।

परम्परा और आधुनिकता के मध्य जंग या कहें रस्साकशी के बारे में लेखिका क्षमा शर्मा प्राचीन ग्रंथ रचना 'पंचतंत्र' (लेखक पं. विष्णु शर्मा) के उदाहरण प्रस्तुत करते हुए सटीक टिप्पणी करती हैं - विष्णु शर्मा अपने समकालीनों की तरह स्त्रियों से इतने परेशान हैं कि उनके लिए एक अच्छा शब्द भी नहीं कहते - 'स्त्रियों की दुष्टता का अन्य उदाहरण देने से कोई लाभ नहीं है । उनके विषय में केवल यही उदाहरण पर्याप्त होगा कि अपने पेट में दस मास तक निरंतर धारण करने के पश्चात भी जब वे क्रोध से अपने पुत्र को ही मार डालती हैं तो अन्य पुरुषों को मारना उनके लिए कोई असम्भव बात नहीं कही जा सकती ।'(87)

'प्रकृत्या रुक्ष स्वभाव वाली स्त्रियों में स्नेह कल्पना करना, उनके कठोर हृदय में मृदुता को ढूंढना और उनके नीरस हृदय में सरसता का संचार देखना बालकों अथवा मूर्ख व्यक्तियों के लिए ही संभव हो सकता है ।'(88)

स्त्री किसी भी सूरत में चरित्रवान नहीं हो सकती, इसे विष्णु शर्मा बार-बार जोर देकर कहते हैं 'अग्नि यदि अपनी स्वभाविक उष्णता को छोड़कर शीतल हो जाए, चंद्रमा शीतलता को छोड़कर उष्ण हो जाए और समुद्र सुपेय हो जाए तो कदाचित स्त्री अपने सतीत्व का पालन कर सकती है ।'(89)

आधुनिक काल में भी, चाहे वह भारतीय नारीवादी चिंतन हो या पश्चिमी नारीवादी चिंतन दुनिया के किसी भी देश में स्त्रियाँ पुरुषों के समकक्ष नहीं रहीं । पुरुषोचित नज़रिया बराबर उन्हें कमतर करके ही देखने का अभ्यस्त रहा । स्त्रियों के हिस्से में हमेशा दोयम दर्जा ही आता रहा । लेकिन दुनिया का इतिहास जहाँ पुरुष सत्तात्मक वर्चस्व और स्त्री-पराधीनता से भरा पड़ा है, वहीं वह स्त्री-मुक्ति की संघर्ष गाथाओं का आभारी है । बराबर वे अपने स्वत्व बोध-अस्मिता स्थापन के प्रति संघर्षरत हैं भारत हो, या अन्य देश ।

3.4 स्त्री चेतना का विकास

स्त्री चेतना अर्थात्-स्त्री के लिए नई उमंग की पहर, उन्मुक्त आकाश में खुलकर जीने

की चाह और स्वतंत्रता । कथाकार स्व. प्रभा खेतान ने स्त्री चेतना के बारे में कहा था कि 'मेरे लिए एक ओर मुक्ति की नई उड़ानें थीं, दूसरी ओर पुनः लौटकर उसी दायरे में बंधे रहने की विवशता भी ।'(90) वस्तुतः निजी धरातल पर सशक्त होने के बावजूद मनचाही मुक्ति न मिलने के पीछे भारतीय और पश्चिमी इयत्ता के अंतर की समस्या है । यह समस्या स्त्री चेतना के विकास में अवरोध करती रही है, गरज कि भारत में प्राचीन काल की स्त्रियां अधिकांश मायनों में स्वावलंबी एवं परिवार को सहारा देती हुई पाई गई हैं । नासिरा शर्मा का पुरजोर तरीके से मानना है कि नारी जागृति नारी की मानसिकता में निहित है ।(91) आधुनिक काल में स्त्री चेतना का विकास विभिन्न प्रचार-माध्यमों एवं भूमंडलीकरण के कारण प्रभावित हो रहा है और स्त्रियां जागृत हो रही हैं । कथाकार विजय मोहन सिंह कहते हैं - ''जहाँ तक भूमंडलीकरण का प्रश्न है तो यह एक नये प्रकार के उपनिवेश की प्रक्रिया है । पहले यह प्रक्रिया राजनीतिक स्तर पर होती थी, व्यापार के रूप में होती थी या फिर आक्रमण के रुप में, पर अब यह सांस्कृतिक रुप में हो रही है । जो भीतर से सभी प्रकार की स्वतंत्रताओं का अपहरण कर रही है पर ऊपर से स्वतंत्र होने का भ्रम फैलाके रख रही है । भूमंडलीकरण में जो महिलाएं सबसे ज्यादा अपने को स्वतंत्र मानती हैं वो ही सबसे ज्यादा आत्महत्याएं करती है । दरअसल कहना यह चाहिए कि स्त्री अपने आपको आत्मप्रवंचना में उलझाए हुए हैं ।''(92) 'हंस' के सम्पादक राजेन्द्र यादव कहते हैं कि ''स्त्रियों का इतिहास अब शुरु हुआ है । पहले हजारों सालों का इतिहास पुरुषों यानी मालिकों का इतिहास था जो कि स्वामीभक्ति के गौरव का बढ़ा-चढ़ाकर पेश करता था । इतिहास उनके होते हैं जो अपने फैसले खुद ले सकते हैं । पुराने शास्त्रों में नख शिख से लेकर स्त्रियों के सारे वर्गीकरण स्त्री की देह तक केन्द्रित हैं । वह या तो गुणगान कथाएं हैं या धिक्कार कथाएं हैं ।''(93)

प्रचलित सोच में नारीवाद को अक्सर ऐसे देखा जाता है मानो सब जगहों पर सब महिलाओं के लिए नारीवाद के एक ही अर्थ हों । लेकिन सच्चाई यह है कि वर्ग, रंग, जात, मज़हब और जगह के फ़र्क़ों तथा उनसे जुड़ी हुई ऐतिहासिक और राजनैतिक प्रक्रियाओं ने नारीवादी विमर्श को बहुत ही जटिल बना दिया है । ये जटिलताएँ उपनिवेशवाद के दौर से लेकर आज तक के भूमंडलीकरण के परिपेक्ष्य में मानव समाज में व्याप्त खाइयों को पहचानने और पाटने के लिए हमें नये विश्लेषणात्मक औजार देती हैं ।

लेखिका ऋचा नागर कहती हैं कि स्त्री विमर्श के इतिहास की चर्चाओं में नारीवादी सोच व आन्दोलन की शुरुआत को अक्सर यूरोपीय देशों और संयुक्त राज्य अमेरिका में हुई श्वेत, मध्य वर्ग की महिलाओं की ज़िन्दगियों से जोड़ दिया जाता है । स्त्री विमर्श और उससे क़रीबी नाता रखने वाले उत्तर-उपनिवेशवादी (पोस्ट कॉलोनियल) विमर्श में पिछले दो दशकों में

हुई बहसों और बौद्धिक संघर्षों के प्रति ईमानदारी बरतें तो मानना पड़ेगा कि यूरोपीय-अमेरिकी श्वेत, मध्यवर्ग को आगे रखने की यह प्रवृत्ति उतनी ही ख़तरनाक है जितनी इंसानी सभ्यता की जड़ों को हमेशा ग्रीस या रोम में खोजना । हाँ, अगर हम सभ्यता या नारीवाद की यूरोपीय परिभाषाओं को वैश्विक स्तर पर उसी तरह लागू करने की कोशिश करें जैसे कॉरपोरेट मीडिया करता है, तो बात दूसरी है । लेकिन ऐसी सूरत में नारीवादी सोच से नाता जोड़ने की हमारी कोशिश उपनिवेशवाद नव-उपनिवेशवाद की बू में लिपटी रहेगी ।(94)

उत्तर उपनिवेशवादी विमर्श की नामी हस्ती और फिलिस्तीनी मुक्ति संघर्ष के जुझारू चिन्तक व विचारक एडवर्ड सईद की पुस्तक 'ओरिएंटलिज़्म' जब 1978 में अँग्रेज़ी में छप कर आयी तो यूरोपीय और अमेरिकी अकादमी के साहित्य, संस्कृति और आपस में बाँधने वाले जिन धागों के सहारे दुनिया की पूरी आर्थिक, सामाजिक और राजनैतिक व्यवस्था कई सदियों से लटकी हुई है, अचानक उन धागों की बनावट समझने के लिए व दिमाग़ी रूप से उस बिनाई को उधेड़ कर दोबारा बुनने के लिए एक नयी ज़ुबान, एक नयी शैली मिल गयी ।

सईद के अनुसार ओरिएंटलिज़म औपनिवेशिक व्यववस्था को विस्तार और नस्लवाद को आकार देने का वह औज़ार था जो पूरब और पश्चिम के बीच की डायकॉटॉमी (DICHOTOMY द्विभाजन)पर आधारित था और जो औपचारिक उपनिवेशवाद के समाप्त होने के बाद भी अपना काम मानसिकताओं और मन: स्थितियों से लेकर नीतियों और युद्धों तक बख़ूबी कर रहा है । जब दो शब्दों का जोड़ा ऐसे बनता है कि पहले के मायने दूसरे से बिल्कुल उलटे हों, तो शब्दों के उस जोड़े को डायकॉटॉमी कहते हैं । पूरब/पश्चिम भी डायकॉटॉमी पर आधारित ऐसे ही लफ़्ज़ों का जोड़ा है । पश्चिम वह सब कुछ है जो ओरिएंट नहीं है । और पूरब यानी ओरिएंट विपरीत मायनों से भरी वह दुनिया, वह सन्दर्भ, वह विचार है, जिसके सहारे पश्चिम ख़ुदको परिभाषित करके अपनी पहचान बनाता है । पूरब-पश्चिम भी डायकॉटॉमी पर आधारित ऐसे ही लफ़्ज़ों का जोड़ा है । पश्चिमी वह सब कुछ है जो ओरिएंट नहीं है । और पूरब यानी ओरिएंट विपरीत मायनों से भरी वह दुनिया, वह सन्दर्भ, वह विचार है, जिसके सहारे पश्चिम ख़ुद को परिभाषित करके अपनी पहचान बनाता है ।

पश्चिम ओरिएंट को उन सारी चीज़ों से जोड़ता है जो उससे दूर हैं, पिछड़ी हैं, हीन हैं । लेकिन इसके साथ ही पश्चिम के लिए ओरिएंट अनोखा निष्क्रिय तथा इन्द्रियों के सुख से भरा हुआ भी है । और पश्चिम के लिए पूरा का पूरा ओरिएंट एक सा ही है । उसकी निष्क्रियता, अनोखापन तथा पिछड़ेपन में ऐसी सादगी और स्थायित्व है जो हर जगह और हर काल में उसके कभी न बदलने वाले रूप को बरकरार रखता है । इसलिए ओरिएंट के लोगों के रूप-रंग को उनके रहन-सहन, रस्मो-रिवाज और अन्तरंग सम्बन्धों को, यहाँ तक कि उनके

सोचने-विचारने के ढंग को श्रेणियों में विभाजित करके उनको आसानी से सामाजिक विज्ञानों का विषय बनाया जा सकता है । वहाँ हर चीज़ गतिशील है, जटिल है, उसे श्रेणियों में बाँटकर समझना या उसमें पूरे तौर से विशेषज्ञता हासिल करना लगभग नामुमकिन है ।(95)

कुल मिलाकर पश्चिम का ओरिएंट के साथ विरोधाभासों से भरा एक मिला-जुला रिश्ता है । पश्चिम ओरिएंट की तरफ़ आकर्षित होकर उसे हमेशा पाना चाहता है, लेकिन साथ ही उसकी तमाम चीज़ों से नफ़रत भी करता है । दूसरे शब्दों में, पश्चिम पूरब को स्त्री-स्वरुप देकर एक ऐसी सहनशील, निष्क्रिय, कमज़ोर और असुरक्षित उपस्थिति के रूप में देखता है जो बैठी इन्तज़ार कर रही है अपने भोग और उपभोग के होने का प्रतीकात्मक रूप में भी और यौनिक रूप में भी । इस पूरब को ज़रूरत है पश्चिम द्वारा दिये गये ज्ञान, सुरक्षा, तरक़्क़ी, तर्क और रोशनी की । और चूँकि पश्चिम की नज़र में ओरिएंट हमेशा पारदर्शी है, इसलिए पश्चिम मुतमइन है कि उसके पास पूरब की भीतरी तहों में घुस जाने की विलक्षण क्षमता और समझ है । पश्चिम पूरब को पूरा का पूरा जान सकता है । उसके दिलो-दिमाग़ की पेचीदगियों से लेकर उसके हरम में चलने वाली लीलाओं तक ।

लैला अहमद ने 1992 में छपी अपनी प्रसिद्ध 'विमेन एंड जेंडर इन इस्लाम' में ओरिएन्टलिज़म के ताने-बाने में नारी विमर्श को पिरोकर औपनिवेशिक काल के मिसर (मिस्त्र) में लैंगिक-भेदों की राजनीति का सशक्त विश्लेषण किया है । इसमें इन्होंने यह मत सामने रखा है कि उपनिवेशवाद के दौरान तीसरी दुनिया पर हुकूमत करनेवाले एक तरफ़ तो यूरोप में औरतों के आन्दोलनों की उठती हुई आवाज़ को कुचलने में मशगूल थे और दूसरी और नारी-मुक्ति की भाषा का प्रयोग करते हुए हिन्दुस्तान व मिसर जैसे मुल्कों की औरतों को सती और हिजाब जैसी 'हैरतअंगेज़' प्रथाओं से बचाने में लगे थे । इस औपनिवेशिक प्रवृत्ति का वर्णन करने के लिए गायत्री चक्रवर्ती स्पीवैक और अन्य विचारकों ने कई बार एक तीखा व सटीक मुहावरा इस्तेमाल किया है श्वेत पुरुषों द्वारा भूरी औरतों और भूरी सभ्यताओं को भूरे पुरुषों से बचाने का ज़िम्मा ले लेना । नारीवाद के इस रूप को लैला अहमद औपनिवेशिक नारीवाद कहती हैं । इस औपनिवेशिक नारीवाद में स्त्रियों के हक़ों और मुक्ति की भाषा का कुछ इस तरह प्रयोग होता है कि वह औपनिवेशिक कब्जे को उचित एवं न्यायसंगत व्यवस्था के रूप में स्थापित करने का ताक़तवर माध्यम बन जाता है ।

अहमद के अनुसार, एक तरफ़ तो विक्टोरियन पुरुष-व्यवस्था ऐसी थ्योरियाँ ईजाद करने में मसरूफ़ थी जिनमें वह ख़ुद अपने ऊपर लागू की जाने वाली हर नारीवादी आलोचना का खंडन कर सके, और इस विचार का मज़ाक बनाकर उसे ख़ारिज कर सके कि मर्द औरतों

का दमन करते हैं । दूसरी और, उसने नारीवाद की भाषा को अपनी गिरफ़्त में लेकर उसका रुख औपनिवेशिक व्यवस्था की सेवा में कुछ इस तरह लगा दिया कि अश्वेत पुरुष और उनकी अश्वेत सभ्याएँ व संस्कृतियाँ दुनिया की सारी समस्याओं की जड़ बन गये । गुलाम मुल्कों के मर्द औरतों को अपनी जागीर समझकर उन्हें अपनी जूतियों तले रौंदते हैं, यह विचार औपनिवेशिक व्यवस्था को न्यायसंगत और नैतिक रूप में स्थापित करने के लिए पूरे दम के साथ इस्तेमाल हुआ, और जल्द ही गुलाम अवाम की सभ्यताओं और तौर-तरीक़ों पर हमला करने, यहाँ तक कि उन्हें जड़ से उखाड़ देने का तर्क बन गया ।(96)

'ओरिएंटलिज़म' के अँग्रेजी में प्रकाशन होने के तक़रीबन दस बरस बाद चन्द्रा तलपडे मोहन्ती की क़लम से एक ऐसा लेख निकला जिसने अन्तर्राष्ट्रीय स्तर पर नारीवादी संवाद के तेवर बदल दिये । लेख का शीर्षक था, 'अंडर वेस्टर्न आइज़' । इसमें पश्चिमी नारीवादी विमर्श की मुख्य धारा में पैठ नस्लवाद को आड़े हाथों लेते हुए मोहन्ती ऐसी कई प्रवृत्तियों को रेखांकित करती हैं जिनके ज़रिये पश्चिमी नारीवाद तीसरी दुनिया की सारी औरतों को एक ही माटी की बनी हुई, एक-सी ही शक्तिहीनताओं के रूप में देखता और प्रस्तुत करता है ।

सबसे पहले तो सारी ग़ैर-पश्चिमी औरतों को मर्द की हैवानियत का शिकार क़रार कर दिया जाता है, जिसके अन्तर्गत वे हमेशा लैंगिक रूप से उत्पीड़ित और मर्द की क़ैद में छटपटाती हुई देखी जाती हैं । पितृ-सत्तात्मक पारिवारिक व्यवस्था इन सब औरतों के दमन का मूल स्त्रोत मानी जाती है, भले ही उन औरतों के बीच कितने ही भेद या खाइयाँ क्यों न हो । यह विमर्श इतिहास और समाज की सारी जटिलताओं को अनदेखा करके ग़ैर-पश्चिमी स्त्री को पुरुष के ऊपर हर तरह से निर्भर पाता है । इस सोच में सामाजिक रिश्ते किसी निरन्तर चलने वाली प्रक्रिया के तहत बनते-उभरते नहीं हैं । उनका स्वरूप सदा से एक-सा चलता रहने वाला माना जाता है । बर्फ़ की चट्टानों की तरह हमेशा से जमे हुए संस्कारों में ढले इन रिश्तों को न तो उनके पहले चल रही किन्हीं प्रक्रियाओं से जोड़ा जाता है, और न ही उनके आसपास की । इन्हीं संस्कारों व रिश्तों से जुड़ी हुई है विवाह की संस्था, जिसे पश्चिमी विमर्श की मुख्यधारा हमेशा तीसरी दुनिया की औरत के ऊपर लादा हुआ बोझ मानती आयी है । औरत स्वयं इस संस्था और इससे जुड़े रिश्ते-नातों के बीच अपनी जगह व ताक़त कहाँ बनाती है और कहाँ नहीं, इन संघर्षों और प्रक्रियाओं को आदरपूर्वक समझने की कोशिश करने के लिए इस दृष्टिकोण में कोई स्थान नहीं है । इन नज़रिये में धर्म भी एक-सा ही ढला भारी पत्थर बन जाता है जो तीसरी दुनिया की सारी महिलाओं को अपने वज़न तले एक ही तरह से पीसता दिखलाई देता है । फिर चाहे वो हिन्दू धर्म हो या इस्लाम, सारे मज़हब बेज़ुबान मान ली जाने वाली स्त्रियों पर सदियों से थोपे हुए शास्त्र बन जाते है ।(97)

आख़िर में मोहन्ती विकास की राजनीति की तरफ़ मुख़ातिब होती हैं । विकास के तन्त्र में अमूमन यह मान लिया जाता है कि तीसरी दुनिया की सारी महिलाएँ एक-सी तकलीफ़ें सह रही हैं, उन सबके एक से मुद्दे हैं, और एक-सी ही ज़रूरतें । यही नहीं, विकास तन्त्र के निर्माता व संचालक अक्सर इस झूठे आत्मविश्वास से ग्रस्त होते हैं कि वे स्वयं तीसरी दुनिया की महिलाओं के सारे मुद्दे और ज़रूरतों को समझकर तथा उन्हें सशक्तिकरण की राह दिखला कर उन्हें आधुनिक दुनिया में जीने लायक बना सकते हैं ।

मोहन्ती द्वारा की गयी पश्चिमी स्त्री-विमर्श की इस आलोचना की तह में जाएँ तो इसके मुख्य अर्थ कुछ इस प्रकार निकलते हैं - पश्चिमी नारीवाद जिस तरह ख़ुद को पेश करता है और जिस तरह तीसरी दुनिया की औरत को पेश कता है, उसमें एक भयानक टकराव है । तीसरी दुनिया की महिलाएँ सदियों से जमे हुए कुछ ऐसे बिम्बों और आकृतियों में समा जाती हैं जो न तो समय के साथ बदलती हैं, न स्थान के साथ । एक तरफ़ जहाँ पश्चिम की श्वेत मध्य-वर्गीय औरत महिला-विमर्श के ज़रिए लिखे जाने वाले वैकल्पिक इतिहास का विषय बनकर उभरती है, वहीं दूसरी तरफ़ तीसरी दुनिया की दबी-कुचली नारी इस विमर्श में एक वस्तु-मात्र बनकर रह जाती है इस ऐसी वस्तु जिसका मक़सद केवल पश्चिमी नारी और उसके स्वतन्त्र अस्तित्व को उभारना है ।

लेकिन पूरब व पश्चिमी, पहली दुनिया तथा तीसरी दुनिया की खाइयाँ केवल महाद्वीपों या राष्ट्रों के बीच ही मौजूद नहीं है, ये तो हर समाज में विद्यमान हैं । अपार्थइड (रंग भेद)के अन्तिम वर्षों में दक्षिण अफ्रीका तरह के सामाजिक और राजनैतिक उथलपुथल से गुज़रा, उसने वहाँ के नारीवादी विमर्श को एक अद्‌भुत ऊर्जा दी । हालाँकि 1980 के दशक में इस विमर्श में अधिकतर अश्वेत दक्षिण अफ्रीकी महिलाओं के नाम ही उभरकर आए, किन्तु जिस गहरे आत्ममन्थन से गुज़रकर इन बुद्धिजीवियों ने अपने समाज में मौजूद लिंग, नस्ल, वर्ग व जगह की खाइयों की असलियतों और मायनों का ईमानदार विश्लेषण दुनिया के सामने रखा, उसने अन्तर्राष्ट्रीय स्तर पर नारीवादी चिन्तन को आगे ले जाने में एक महत्त्वपूर्ण भूमिका निभाई ।(98)

जिस देश की आर्थिक व सामाजिक व्यवस्था कुछ इस तरह से रचित हो कि वहाँ के अधिकांश अफ्रीकी लोगों को शहरों के बाहर रिज़र्व में रहना पड़े, लेकिन साथ ही अश्वेत परिवारों की कुल व्यवस्था-घर और शौचालय की साफ़-सफ़ाई से लेकर रसोई व बच्चों की पूरी देखभाल तक उन अफ्रीकी महिलाओं के हाड़-मांसों पर टिकी हो जिन्हें अपने घरों से शहर तक आने के लिए सरकारी पास की ज़रूरत पड़े, जिन्हें अपने बच्चों को रिज़र्व में छोड़कर श्वेतों के बच्चों को पालने के लिए अपनी मालकिनों के ऐसे घरों व मोहल्लों में रहना

पड़े जहाँ उनके पतियों, प्रेमियों, बच्चों या परिवारजनों की मौजूदगी ही नाजायज़ और दंडनीय हो । वहाँ यह तो बड़ा ही कि स्त्रियों के बहनापे की बात करें भी, तो किस मुँह से ? इन मुद्दों को लेखन और फ़िल्म के ज़रिये प्रकाश में लाकर जैकलिन कॉक व मीरा हामरमेश जैसी चिन्तकों ने यह स्थापित कर दिया कि विश्व स्तर की तो क्या, किसी एक मोहल्ले की सारी महिलाओं को भी कोई एक नारीवाद बहनों के रूप में कभी नहीं जोड़ सकता ।

पिछले दो दशकों में गाँवों में, कस्बों में जहाँ-जहाँ ग़रीब महिलाओं के हक़-हुकूक़ को लेकर बैठकें तथा कार्यक्रम हुए हैं, वहाँ-वहाँ शहरी व ग्रामीण, शिक्षित व अशिक्षित, आधुनिक व परम्परागत की प्रचलित परिभाषाएँ दरारें बनकर बार-बार उभरी हैं । तथाकथित पिछड़ी औरतों का सशक्तिकरण करने वाली बहुतेरी नारीवादी-प्रशिक्षकों का देह नज़रिया कि ये दबी-कुचली महिलाएँठ अगर अपनी यौनिकता की बात खुलकर करने लगें, तथा अपने हाथों की चूड़ियाँ और माँग का सिन्दूर त्याग कर पितृ-सत्ता की बेड़ियों से ख़ुद को मुक्त कर लें, तो ये सशक्त हो जायेंगी । अक्सर उनके व उनके लक्ष्य समूहों के बीच टकराव पैदा करता रहा है । एक बार गढ़वाल के एक एनजीओ में कार्यरत एक ग्रामीण महिला ने अपनी कार्यशालाओं में चलनेवाली गतिविधियों की वर्गीय राजनीति के बारे में कुछ इस प्रकार कटाक्ष किया :

''बड़े शहरों की जेंडर ट्रेनिंग वालियों के साथ साथ मेरा बनाव कम हो पाता है । बैठकों में ये हमारी यौनिकता के बारे में खोद-खोद कर पूछती हैं, फिर कई अपने कमरों में जाकर सिगरेट फूँकती हैं । मेरी यौनिकता में जब ये रुचि लेती हैं, तो मैं भी साफ़ कह देती हूँ, पहले तू मुझे अपना सब कुछ बता, फिर मुझसे मेरा पूछा ।'' गाँव की औरतों का सब कुछ पूछती हैं, हमें अपना कुछ बताती नहीं । यह किसका सशक्तिकरण ?

''स्त्री-विमर्श को लेकर कभी-कभी यह मत सामने रखा जाता है कि 1970 के आसपास उभरे अमेरिकी और यूरोपीय नारीवाद का अतिवादी स्वरूप इस सोच व आन्दोलन के अटकाव का संकेत देता है । 'नया ज्ञानोदय' के नवम्बर 2006 अंक में अमरनाथ ने अपने लेख में सुशान बेसनेट के तर्क का इस्तेमाल करते हुए कहा कि जब अमेरिकी नारीवाद पूरे तौर से लैंगिकता की बातों में डूब गया तो यौन स्वतन्त्रता को ही स्त्री मुक्ति मान लिया गया ।''(99)

आँकड़े दिखलाते हैं कि 25 की उम्र से ऊपर की 75 प्रतिशत अफ्रीकी महिलाएँ अशिक्षित हैं । सन् 2050 के आते-आते अफ्रीकी महिलाओं की औसत आयु दुनिया में सबसे कम होगी और हर एक लाख ज़िन्दा बच्चों को जन्म देते समय मरने वाली माँओं की संख्या अफ्रीका में 675 होगी, जबकि यूरोप में यही आँकड़ा लगभग 75 होगा । हमें यह भी

याद रखना होगा कि ख़तना दुनिया भर में औरतों के ख़िलाफ़ हो रही उन तमाम हिंसाओं से कभी अलग नहीं किया जा सकता जिनके अन्तर्गत नन्ही-नन्ही बच्चियाँ मार डाली जाती हैं, लड़कियों के लिए न तो स्वास्थ्य-सेवाएँ उपलब्ध करायी जाती हैं और न ही उनको पोषक भोजन व शिक्षा मिलती है । इनके साथ ही हैं बेइन्तिहा काम, कम उम्र में शादी, अल्पायु में माँ बनना, सर्जरी के माध्यम से स्तनों को बढ़ाना और घटाना, एनोरेक्सिया नर्वोसा यानी डाइटिंग में उपजी वह बीमारी जो नौजवान स्त्रियों की मौत का कारण भी बन जाती है । और फिर, कैसे भूलें उन करोड़ों डॉलर्स को जो औरतों के जिस्मों पर कॉस्मेटिक्स बनकर चिपक जाते हैं या उनके लिए बने खाने-पीने के ख़तरनाक प्रोग्रामों पर खर्च किये जाते हैं ?(101) समाज सेविका उमा नारायण भारत में हुई दहेज हत्याओं की तुलना अमेरिका में घरेलू हिंसा से हुई मौतों से करती हैं और पाती हैं कि दोनों ही जगहों पर हिंसा के कारण मृत महिलाओं के आँकड़ें लगभग एक से ही हैं । लेकिन जहाँ दहेज हत्या का दोष अन्तर्राष्ट्रीय मीडिया और प्रचलित सोच भारतीय परम्पराओं और संस्कारों के मत्थे मढ़ती है, वहीं अमेरिका में हुई हत्याएँ परम्पराओं और संस्कारों के स्थान पर व्यक्ति-विशेष के हालातों के साथ जोड़ी जाती हैं । भारत में घरेलू हिंसा महिला संरक्षण अधिनियम 2005 कानून पारित हो गया है, जिसमें घरेलू हिंसा के सबूत पुष्ट किए जाएं, यह जरूरी नहीं है । महिला का अपना साक्ष्य विश्वसनीय है तो न्यायालय विश्वास कर सकता है । दहेज को संगीन अपराध माना गया है । इसमें एफ.आई.आर. दर्ज हो जाने पर बिना वारंट के भी अभियुक्त को पकड़ा जा सकता है । इस अधिनियम में हरेक अपराध गैर जमानती है । केवल मजिस्ट्रेट ही जमानत पर छोड़ सकता है । सुलह हो जाने पर भी मामला वापस नहीं हो सकता । शादी के सात वर्ष के अंदर की मृत्यु को इसके अंदर रखा गया । दहेज मांगने की कम से कम 6 महीने और अधिकतम 2 वर्ष की सजा और 10,000 रु. तक जुर्माना हो सकता है । बलात्कार की जहां तक बात है वह तो और भी गंभीर मामला है । बलात्कार हो जाने पर पेशेवर निकटतम डॉक्टर के यहां परीक्षण कराना चाहिए । परीक्षण के पहले न कपड़े बदलें, न स्नान करें, बलात्कार का स्थल पुलिस जांच तक पूर्ववत बनाए रखें । निकट के थाना में एफ.आई.आर. दर्ज कराएं तथा धारा 152 (2) के तहत एफ.आई.आर. की कॉपी नि:शुल्क ले लें । बलात्कारी की भी डॉक्टरी जांच तुरंत हो, इसकी मांग हम कर सकते हैं ।(101)

वस्तुत: नासिरा शर्मा की कहानियों में एक तत्व समान रुप से मौजूद है कि वे जीवन की प्रतिकूलताओं के बीच उसके प्रति आस्था बनाए रखने का प्रयास करती हैं तथा उनकी कहानियों में स्त्री-विमर्शवादियों की तरह कोरा स्त्री-विमर्श नहीं है, बल्कि इंसानियत के पक्ष में खड़ी इबारत है और शिद्धत से की गई वह कोशिश है जो बेआवाज़ को भी आवाज़ दे रही है ।

सन्दर्भ सूची

1.	जर्मेन गीयर	:	द फिमेल युनक का हिन्दी अनुवाद विद्रोही स्त्री	पृ.	20
2.	दि टाइम्स ऑफ इंडिया	:	मुंबई संस्करण (20.05.2009)	पृ.	01
3.	राकेश कुमार	:	नारीवाद विमर्श	पृ.	67
4.	राकेश कुमार	:	नारीवाद विमर्श	पृ.	76
5.	मन्नू भंडारी	:	एक प्लेट सैलाब (ऊँचाई)	पृ.	142
6.	उषा महाजन	:	शोषित और अन्य कहानियाँ	पृ.	58
7.	नमिता सिंह	:	नील गाय की आँखें (दर्द)	पृ.	123
8.	मालती जोशी	:	मालती जोशी की कहानियाँ (स्वयंवर)	पृ.	75
9.	मंजुल भगत	:	गुलमोहर के गुच्छे (निशा)	पृ.	77
10.	राजी सेठ	:	अंधे मोड़ से आगे (प्रतिनिधि कहानी)	पृ.	110
11.	राजी सेठ	:	अंधे मोड़ से आगे	पृ.	112
12.	मृणाल पांडे	:	एक नीच ट्रेजेडी	पृ.	40
13.	चित्रा मुदगल	:	भूख (इस हमाम में)	पृ.	77-78
14.	उषा झा	:	हिन्दी कहानी और स्त्री-विमर्श	पृ.	162-163
15.	ललित शुक्ल	:	नासिरा शर्मा से शोधकर्ता से हुई वार्ता के दौरान नासिरा ने टिप्पणी उपलब्ध कराई	तिथि	20.12.2008
16.	मल्लिका सेनगुप्त	:	स्त्रीलिंग निर्माण	पृ.	01
17.	राकेश कुमार	:	नारीवाद विमर्श	पृ.	11
18.	नासिरा शर्मा	:	दूसरा ताजमहल (क. सं.) की कहानी	पृ.	91
19.	नासिरा शर्मा	:	दूसरा ताजमहल (क. सं.) की कहानी	पृ.	66
20.	नासिरा शर्मा	:	दूसरा ताजमहल (क. सं.) की कहानी	पृ.	74
21.	नासिरा शर्मा	:	दूसरा ताजमहल (क. सं.) की कहानी	पृ.	23
22.	नासिरा शर्मा	:	दूसरा ताजमहल (क. सं.) की कहानी	पृ.	49
23.	नासिरा शर्मा	:	बुतखाना (क. सं.) की कहानी	पृ.	84
24.	नासिरा शर्मा	:	बुतखाना (क. सं.) की कहानी	पृ.	89
25.	नासिरा शर्मा	:	शामी कागज (क. सं.) की कहानी	पृ.	88

26.	नासिरा शर्मा	:	शोधकर्ता से निजीवार्ता		
27.	क्षमा शर्मा	:	स्त्रीत्ववादी विमर्श : समाज और साहित्य	पृ.	46
28.	नासिरा शर्मा	:	बुतखाना (क. सं.) की कहानी	पृ.	26
29.	नासिरा शर्मा	:	बुतखाना (क. सं.) की कहानी	पृ.	18
30.	मधुरेश	:	हिंदी कहानी : अस्मिता की तलाश	पृ.	106
31.	नासिरा शर्मा	:	इब्ने मरियम (क. सं.) कहानी	पृ.	134
32.	रमणिका गुप्ता	:	स्त्री विमर्श : कलम और कुदाल के बहाने	पृ.	44
33.	अर्चना वर्मा	:	हंस, अगस्त 2005	पृ.	63
34.	नासिरा शर्मा	:	दूसरा ताजमहल (क. सं.) की कहानी	पृ.	93
35.	नासिरा शर्मा	:	दूसरा ताजमहल (क. सं.) की कहानी	पृ.	99
36.	नासिरा शर्मा	:	दूसरा ताजमहल (क. सं.) की कहानी	पृ.	99
37.	नासिरा शर्मा	:	नया ज्ञानोदय : अंक 2007	पृ.	93
38.	नासिरा शर्मा	:	दूसरा ताजमहल (क. सं.) की कहानी	पृ.	157
39.	नासिरा शर्मा	:	दूसरा ताजमहल (क. सं.) की कहानी	पृ.	168
40.	नासिरा शर्मा	:	दूसरा ताजमहल (क. सं.) की कहानी	पृ.	139
41.	नासिरा शर्मा	:	दूसरा ताजमहल (क. सं.) की कहानी	पृ.	140
42.	नासिरा शर्मा	:	दूसरा ताजमहल (क. सं.) की कहानी	पृ.	150
43.	महादेवी वर्मा	:	महादेवी वर्मा से साक्षात्कार - 'आजकल' अंक मार्च 2007	पृ.	31
44.	डॉ. रोहिताश्व	:	वाङ्मय - अंक जुलाई 2009 'रोमांटिक अवसाद और शिल्प की जटिलता'	पृ.	203
45.	नासिरा शर्मा	:	शोधकर्ता की निजीवार्ता		
46.	नासिरा शर्मा	:	प्रतिनिधि कहानियां (क. सं.) की कहानी 'बावली'	पृ.	19
47.	नासिरा शर्मा	:	प्रतिनिधि कहानियां (क. सं.) की कहानी 'बावली'	पृ.	19
48.	नासिरा शर्मा	:	पत्थर गली (क. सं.) की प्रतिनिधि कहानी	पृ.	44
49.	सगीर अशरफ	:	वाङ्मय-अंक जुलाई 2009	पृ.	138
50.	नासिरा शर्मा	:	'सिक्का' (क.सं.)	पृ.	164
51.	नासिरा शर्मा	:	'सिक्का' (क.सं.)	पृ.	164
52.	नासिरा शर्मा	:	'सिक्का' (क.सं.)	पृ.	167
53.	सगीर अशरफ	:	वाङ्मय-अंक जुलाई 2009	पृ.	142

54.	नासिरा शर्मा	:	बुतखाना (क.सं.) की कहानी	पृ.	17
55.	नासिरा शर्मा	:	बुतखाना (क.सं.) की कहानी	पृ.	18–19
56.	नासिरा शर्मा	:	बुतखाना (क.सं.) की कहानी	पृ.	19
57.	सगीर अशरफ	:	वाङ्मय–अंक जुलाई 2009	पृ.	144
58.	नासिरा शर्मा	:	सिक्का (क.सं.)	पृ.	165
59.	ओशो टाइम्स	:	अंक जुलाई 2009	पृ.	58–59
60.	डॉ. रोहिताश्व	:	वाङ्मय–अंक जुलाई 2009	पृ.	194
61.	डॉ. रोहिताश्व	:	शोधकर्ता की निजी वार्ता		
62.	नासिरा शर्मा	:	दूसरा ताजमहल	पृ.	32
63.	नासिरा शर्मा	:	दूसरा ताजमहल	पृ.	35
64.	नासिरा शर्मा	:	दूसरा ताजमहल (क.सं.) की कहानी	पृ.	57
65.	डॉ. रोहिताश्व	:	शोधकर्ता की निजी वार्ता		
66.	नासिरा शर्मा	:	दूसरा ताजमहल (क.सं.) की कहानी	पृ.	66
67.	डॉ. रोहिताश्व	:	शोधकर्ता की निजी वार्ता		
68.	नासिरा शर्मा	:	दूसरा ताजमहल (क.सं.) की कहानी	पृ.	74
69.	डॉ. रोहिताश्व	:	शोधकर्ता की निजी वार्ता		
70.	नासिरा शर्मा	:	दूसरा ताजमहल (क.सं.) की कहानी	पृ.	91
71.	नासिरा शर्मा	:	दूसरा ताजमहल (क.सं.) की कहानी	पृ.	96
72.	नासिरा शर्मा	:	दूसरा ताजमहल (क.सं.) की कहानी	पृ.	99
73.	नासिरा शर्मा	:	दूसरा ताजमहल (क.सं.) की कहानी	पृ.	104
74.	डॉ. रोहिताश्व	:	शोधकर्ता की निजी वार्ता		
75.	नासिरा शर्मा	:	दूसरा ताजमहल (क.सं.) की कहानी	पृ.	104
76.	डॉ. रोहिताश्व	:	शोधकर्ता की निजी वार्ता		
77.	डॉ. रोहिताश्व	:	शोधकर्ता की निजी वार्ता		
78.	कथाक्रम	:	अंक जुलाई–सितम्बर 2007	पृ.	65
79.	कथाक्रम	:	अंक जुलाई–सितम्बर 2007	पृ.	76
80.	प्रभा खेतान	:	उपनिवेश में स्त्री	पृ.	35
81.	कथाक्रम	:	अंक जुलाई–सितम्बर 2007	पृ.	77
82.	कथाक्रम	:	अंक जुलाई–सितम्बर 2007	पृ.	04
83.	नासिरा शर्मा	:	खुदा की वापसी (क.सं.) की कहानी	पृ.	67
84.	डॉ. रोहिताश्व	:	शोधकर्ता से निजी वार्ता		
85.	साहित्य सागर	:	अंक मई 2009	पृ.	10

86.	कथाक्रम	:	अंक जुलाई-सितंबर 2007	पृ.	78
87.	कथाक्रम	:	अंक जुलाई-सितंबर 2007	पृ.	55
88.	पं. विष्णु शर्मा	:	पंत्रतंत्र	पृ.	509
89.	कथाक्रम	:	अंक जुलाई-सितंबर 2007	पृ.	56
90.	प्रभा खेतान	:	आजकल - अंक मार्च 2009	पृ.	14
91.	नासिरा शर्मा	:	'गंगा' पत्रिका वर्ष 1986		
92.	कथाक्रम	:	अंक जुलाई-सितम्बर, 2007	पृ.	16
93.	कथाक्रम	:	अंक जुलाई-सितम्बर, 2007	पृ.	17
94.	नया ज्ञानोदय	:	अंक जुलाई 2008	पृ.	17
95.	नया ज्ञानोदय	:	अंक जुलाई 2008	पृ.	17
96.	नया ज्ञानोदय	:	अंक जुलाई 2008	पृ.	17
97.	नया ज्ञानोदय	:	अंक जुलाई 2008	पृ.	18
98.	नया ज्ञानोदय	:	अंक जुलाई 2008	पृ.	18
99.	नया ज्ञानोदय	:	अंक जुलाई 2008	पृ.	18
100.	नया ज्ञानोदय	:	अंक जुलाई 2008	पृ.	18
101.	नेशनल बुक ट्रस्ट	:	अंक जून 2009		
	साक्षरता संवाद (हिंदी बुलेटिन)				मुख पृष्ठ

4. नासिरा शर्मा के उपन्यास : अन्तः संघर्ष और वर्गीय चित्रण

4.1 उपन्यास विधा : परिभाषा, स्वरुप क्षेत्र एवं प्रकार

नासिरा शर्मा के कथा साहित्य का गहराई से अध्ययन करने के लिए यह आवश्यक है कि हिंदी भाषा के कथा साहित्य की उत्पत्ति और विकास का विमर्श किया जाए । कथा साहित्य में यूं तो कई विधाएं आती हैं, लेकिन उपन्यास ऐसी विधा है जो लिखित विषय-पृष्ठभूमि की सांगोपांग प्रस्तुति करती है, उसमें सहजता के साथ समग्रता होती है । हिंदी भाषा में उपन्यासों की उत्पत्ति कब हुई, इसका विचार करने के पूर्व संस्कृत के उपन्यासों का निरीक्षण करना समीचीन होगा क्योंकि संस्कृत के साथ हिंदी का घनिष्ठ संबंध है । अधिकांश विद्वानों के अनुसार हिंदी की उत्पत्ति प्राकृत से हुई, अर्थात हिंदी प्राकृत का वर्तमान रुप है । यद्यपि इसकी संस्कृत एवं अन्य भाषाओं से अंग-पुष्टि अवश्य हुई है । डॉ. वी. के. अब्दुल जलील के अनुसार ''उपन्यास जीवन की अभिव्यक्ति का सबसे बड़ा चित्रण है । इसके विशाल वितान में समाज, राजनीति, मानव-व्यवहार, न्याय-अन्याय, धर्म, संस्कृति, विज्ञान और कला जैसे उपादान एक साथ समाहित हो जाते हैं । उपन्यास जीवन के क्षितिज पर जो विशाल अनुगूंजें और टंकारें पैदा करता है, उनका प्रभाव समाज और उसके इतिहास में रेखांकित किया जाता रहा है । इस प्रक्रिया में उपन्यास में सृजित संवेदन सुरक्षित ही नहीं होते, पल्लवित और पुष्पित होने का वातावरण भी उन्हें मिलता है ।''(1)

''आधुनिक समय के संदर्भ में उपन्यास की आलोचना, उपन्यास के संवेदनों को प्रखरता

और स्थायित्व देती है । लेखक जिन संवेदनाओं और विचारों के आधार पर उपन्यास का सृजन करता है, आलोचना उनको समय के लिए महत्त्वपूर्ण बनाने के साथ सामाजिक स्थायित्व भी देती है । लेखक जीवन को जिस केन्द्र से देखता है - आलोचना उसी केन्द्र से दिखाई देने वाली संवेदनाओं के दूसरे कई आयामों को अभिव्यक्त करती है । उपन्यासों के ऐसे अध्ययन, आलोचनाएँ और विमर्श उपन्यास के साधारण पाठ में छूट गए मानवीय चेतना और व्यवहार के कई अनजाने पक्षों को भी पाठकों के सामने लाने का प्रयास करते हैं ।''(2)

यह भी सच है कि संस्कृत सहित्य पद्य-प्रधान है । फिर भी विक्रम संवत की आठवीं सदी में सुबन्धु कवि ने ''वासवदत्ता'' नामक एक गद्य-काव्य लिखा । इसमें पद, पद पर श्लेष और यमक है । पर स्वाभावोक्ति का अभाव है । पं. अंबिका दत्त व्यास का यही कथन है । गद्य-काव्य के नाते से ''वृहत्कथा'' और भट्टार हरिश्चंद्र का भी नाम लिया जाता है । इसके बाद बाणभट्ट रचित ''हर्ष-चरित्र'' का जिक्र आता है जो हर्षवर्धन के दरबार में थे । बाणभट्ट ने ही ''कादम्बरी'' भी लिखा है जो उत्तम रचनाओं की श्रेणी में आता है । हालांकि विद्वानों का मानना है कि उसमें भी कहीं-कहीं कल्पना की त्रुटि है और स्वाभाविकता का अभाव मिलता है । दण्डी के ''दशकुमार'' में यह अभाव नहीं है । लेकिन उनके ग्रंथ में अर्थ और कथा-कल्पना की अति है । इसलिए हिंदी की जननी संस्कृत भाषा के गद्य-काव्य की स्थिति विकसित नही है । लेकिन हिंदी के गद्य-काव्य में निरंतर विकास का दौर चल रहा है । उपन्यासों की बात करें तो पिछले 30-32 वर्षों में उपन्यासों का प्रवाह उत्तरोत्तर बढ़ता जा रहा है । यह प्रवाह काफी सकारात्मक है । इसलिए नि:संदेह यह कहा जा सकतां है कि हिंदी उपन्यासों का भविष्य असीम संभावनाओं से विपुल है ।

हिंदी गद्य का इतिहास बहुत पुराना नहीं है । पांच सौ वर्षों से अधिक पुराना तो नहीं ही है । पहली गद्य लेखन का श्रेय जाता है महात्मा गोरखनाथ को । इनका रचना काल विक्रम संवत 1407 के लगभग माना गया है । महात्मा गोरखनाथ के बाद लगभग 200 वर्षों तक किसी गद्य लेखक के बारे में कोई जानकारी नहीं है । संवत 1600 के आसपास महात्मा विट्ठलनाथजी के लिखे कुछ गद्य मिलते हैं लेकिन ये गद्य शुद्ध ब्रजभाषा में हैं और संस्कृत के शब्दों से भरे हुए । सं. 1680 में जटमल कवि ने ''गोरा बादल की कथा'' नामक ग्रंथ लिखा । इस ग्रंथ में खड़ी बोली का प्राधान्य है । इसकी भाषा भी वर्तमान भाषा से काफी मिलती जुलती है । जटमल के बाद तुलसीदास, चिंतामणि, देव, सूरति मिश्र, श्रीपति दास आदि ने गद्य का प्रयोग किया है । 1810 के लगभग किसी कवि ने ''चकता की पात स्याही की परम्परा'' नामक 100 पृष्ठों का गद्य-ग्रंथ खड़ी बोली में रचा । इसमें मुगल बादशाहों और उनकी राज परिपाटी का कुछ वर्णन है । इसके लगभग 50 वर्ष पश्चात लल्लूलाल और सदल मिश्र ही

प्रसिद्ध गद्य लेखक मिलते हैं । इसे हिंदी गद्य का प्रारंभिक काल कहा जाता है । सूरति मिश्रा की ''बैताल पचीसी'' ही ऐसा ग्रंथ है जिसे गद्य-काव्य कह सकते हैं ।

संवत 1860 से 1924 तक गद्य का माध्यमिक काल है । इस काल में लल्लूलाल, सदल मिश्र, राजा लक्ष्मण सिंह, राजा शिव प्रसाद आदि गद्य लेखक मिलते हैं । इन्होंने गद्य लेखन की विधा को काफी उन्नति प्रदान की और उसे वर्तमान रुप देने की कोशिश की । सदल मिश्रा का ''नचिकेतोपाख्यान'' गद्य काव्य का अच्छा नमूना है । राजा शिव प्रसाद का ''राजा भोज का सपना'' आदि ग्रंथ भी प्रौढ गद्या काव्य के अच्छे नमूने हैं ।

अब आता है हिंदी उपन्यासों का आधुनिक या वर्तमान काल । वर्तमान हिंदी हम संवत 1925 से मानते हैं जब भारतेंदु हरिश्चंद्र ने गद्य में अनेक श्रेष्ठ ग्रंथ रचकर वर्तमान गद्य की नींव डाली । इन्हीं के समय से हिंदी गद्य की उत्तरोत्तर उन्नति होती जा रही है । आज का युग मूलत: गद्य का युग है । ऐसा नहीं है कि पद्य लिखे और पढ़े नहीं जाते । पद्य विधा भी अपने आप में श्रेष्ठता और संभावनाओं से युक्त है, परंतु गद्य विधा आम-ओ-खास सभी तबके में समान रुप से लोकप्रिय रही है । इसलिए गद्य-लेखकों की संख्या निरंतर बढ़ रही है । पर उपन्यास का जिक्र करें तो कहानियों की तुलना में उपन्यास अपेक्षाकृत कम लिखे जाते रहे हैं । उपन्यास लेखन के लिए पात्रों का पूरा जीवन-चरित्र तथा उनसें जुड़ घटनाक्रमों को उनके पूरे काल तक जीते हुए कागज के कैनवस पर शब्दों के माध्यम से उकेरना सरल और सहज नहीं है । उसके लिए समय, साहस और दृढ़ आवश्यकता नहीं है । यही कारण है, अन्य भाषाओं की भांति हिंदी में भी उपन्यास कम लिखे जाते रहे हैं । पर यह प्रसन्नता की बात है कि वर्तमान युग में उपन्यास - श्रेष्ठ व अच्छे उपन्यास काफी संख्या में लिखे गए हैं । भारतेन्दु के समय में ऐसा कोई ग्रंथ नहीं लिखा गया जिसे उपन्यास की श्रेणी में रखा जा सके । इस युग में उपन्यास विधा का विकास नहीं हुआ । हिंदी गद्य का प्रचार होने पर कथा-साहित्य के नाम पर हमें ''रानी केतकी की कहानी'', ''सिंहासन बत्तीसी'', ''वैताल पच्चीसी'', ''माधवानल कामकन्दला'', ''शकुन्तला'', ''प्रेमसागर'', ''नचिकेतोपाख्यान'', ''गोरा बादल की कथा'', ''राजा भोज का सपना'' आदि कथापरक पुस्तकों का उल्लेख मिलता है, किन्तु इन्हें उपन्यास विधा में समाविष्ट नहीं किया जा सकता । मिश्र बंधुओं ने ही उपन्यास लिखने का उत्साह दिखाया और दो उपन्यास लिखने आरंभ भी किए पर वे अपूर्ण रहे । इनके नाम हैं ''एक कहानी, कुछ आप बीती और कुछ जग बीती'' और ''हम्मीर हठ'' ।

इससे विदित होता है कि हिंदी में भारतेन्दु के समय से ही अर्थात् लगभग 40 वर्षों से ही उपन्यासों की रचना हो रही है । पं. अम्बिका दत्त व्यास कृत ''गद्य-काव्य-मीमांसा'' के अंत में 76 उपन्यासों के नाम तथा प्रकाशन तिथि दी गई है । इस सूची में ही यह विदित है कि हिंदी

का पहला उपन्यास लाला श्री निवास कृत ''परीक्षा गुरु'' है जो सन 1882 में प्रकाशित हुआ था । भारतेन्दु युग में, बंगला, मराठी, संस्कृत, अंग्रेजी कथानकों की ओर लेखकों का ध्यान अवश्य गया और उन्होंने 'दुर्गेशनन्दिनी', 'बंग विजेता मधु मालती', 'कपाल कुण्डला' आदि उपन्यासों का हिंदी में अनुवाद किया । बंगला उपन्यासों का प्रभाव परोक्ष रुप से तत्कालीन उपन्यासों पर लक्षित किया जा सकता है । शेक्सपीयर के कुछ नाटकों का भी हिंदी में अनुवाद हुआ । बाबू रामकृष्ण वर्मा ने अंग्रेजी और उर्दू के कुछ उपन्यासों का हिंदी में अनुवाद किया ।

इस प्रकार कहा जा सकता है कि भारतेन्दु काल में कलात्मक सौष्ठव की दृष्टि से उपन्यासों को हम आधुनिक कला समीक्षा की कसौटी पर खरा नहीं रख पाते । फिर भी यह मानना पड़ेगा कि भारतेन्दु हरिश्चंद्र ने गद्य विधाओं के विविध रुपों को विकसित करते हुए उपन्यास जैसी प्रमुख विधा को विस्मृत भी नहीं किया था तथा भाषा की सम्प्रेषण शक्ति को ध्यान में रखते हुए उपन्यास विधा को यथासंभव अपने युग में समेटने का प्रयास भी किया था । उपन्यास की कसौटी पर उस युग में ''परीक्षा गुरु'' को ही परखा जा सकता है ।

भारतेन्दु काल के बाद आता है द्विवेदी युग (1901-1925) । दरअसल पंडित महावीर प्रसाद द्विवेदी के नाम से हिंदी साहित्य के इस काल-खण्ड को ''द्विवेदी युग'' से अभिहित किया जाता है । कविता की दृष्टि से तो आचार्य रामचंद्र शुक्ल ने इस युग को ''हिंदी काव्य की नई धारा'' की संज्ञा दी है । किन्तु, गद्य साहित्य की मीमांसा करने के क्रम में हम पाते हैं कि इस काल में निबंध साहित्य, जीवनी-संस्मरण, यात्रा संस्मरण, शोधपूर्ण लेख और आलोचना आदि विधाओं में उल्लेखनीय कार्य हुआ । बाल मुकुंद गुप्त, सरदार पूर्ण सिंह, चंद्रधर शर्मा गुलेरी, पद्मसिंह शर्मा, रामचंद्र शुक्ल और माधव मिश्र के नाम निबंध लेखन में भाव, विचार व शिल्प की दृष्टि से महत्वपूर्ण हैं । सरदार पूर्ण सिंह लिखित निबंध ''मजदूरी और प्रेम'' निबंध साहित्य में मील का पत्थर है । गुलेरी जी संस्कृत, प्राकृत, अपभ्रंश और हिंदी के नामचीन विद्वान थे । उनकी एकमात्र रचित कहानी ''उसने कहा था'' अति लोकप्रिय हुई । उन्होंने इस युग में पुरातात्विक एवं सांस्कृतिक संबंधों से परिपूर्ण विषयों पर आम व्यक्ति की सामान्य भाषा में निबंध लिखे हैं । ''कछुआ धर्म'' और मारेसि कोहि कुठाऊं'' इनके बहुचर्चित निबंध हैं । इन निबंधों की भाषा प्रौढ़, परिमार्जित और विषयानुकूल है । संभवतया ऐसा उनकी विद्वता व व्यापक अध्ययन के परिणामस्वरुप है । पंडित पद्मसिंह शर्मा की तुलनात्मक समीक्षा पुस्तक ''बिहारी सतई'' और माधवप्रसाद मिश्र का निबंध संग्रह ''माधव मिश्र निबंध माला'' एवं ''पुष्पांजलि'' प्रामाणिक कृतियां हैं । आचार्य रामचंद्र शुक्ल ने भी द्विवेदी युग में निबंध लिखना शुरु किया था ।

परवर्ती द्विवेदी युग छायावाद युग कहलाता है जो मुख्य रुप से आधुनिक हिंदी काव्य की

एक प्रमुख प्रवृत्ति का जनक है । जय शंकर प्रसाद, सूर्यकांत त्रिपाठी ''निराला'', बालकृष्ण शर्मा 'नवीन', सुमित्रानंदन पंत, सुभद्रा कुमारी चौहान, दिनकर व महादेवी वर्मा ने इसी युग में अपनी कालजयी कविताएं रचीं । हालांकि इन सभी रचनाकारों ने समान रुप से गद्य विधा में भी साधना की । इस युग में डायरी तथा पत्र, साक्षात्कार तथा रिपोर्ताज विधाएं भी विकसित हुईं । कुछ लेखकों ने अपने उपन्यास भी डायरी एवं पत्र शैली में लिखे हैं । डायरी लेखन में गजानन माधव मुक्तिबोध, मलयज, श्रीकांत वर्मा, शिवदान सिंह चौहान, मोहन राकेश और नरेश मेहता के नाम विशेष रुप से उल्लेखनीय हैं । पत्र नितांत व्यक्तिगत होते हैं, किन्तु जब पत्रों के माध्यम से किसी घटना, तथ्य या विवरण को प्रस्तुत किया जाता है तब वह ललित कोटि में आ जाते हैं और साहित्य में पत्र विधा के अंतर्गत रखे जाते हैं । जैसे जवाहरलाल नेहरु का लिखा ''पिता का पत्र पुत्री के नाम'' वैयक्तिक होने पर भी सार्वजनिक बन गए हैं । इनका हिंदी अनुवाद प्रेमचंद ने किया था । इसी तरह डॉ. धीरेन्द्र वर्मा के पेरिस से लिखे हुए पत्र डॉ. विजयेन्द्र स्नातक के ''अनुभूति के क्षण'', रामनारायण उपाध्याय की ''चिठ्ठी पत्री'' एवं किशोरीदास वाजपेयी के महावीर प्रसाद द्विवेदी को लिखे पत्र ललित कोटि के अंतर्गत लिखा गया साहित्य है । जहां तक रिपोर्ताज लिखने का प्रश्न है तो ऐसे लेखक भी बहुत कम हैं । इनमें धर्मवीर भारती, प्रभाकर माचवे, भारत भूषण अग्रवाल, रांगेय राघव और प्रकाशचंद्र गुप्त आदि का नाम उल्लेखनीय है । छायावाद के बाद प्रगतिवाद और फिर वर्तमान युग आता है और इसी वर्तमान युग में विविध स्थापित, चर्चित, नवोदित रचनाकारों का नाम आता है जिन्होंने उक्त शैली में रचनाएं लिखी हैं । नासिरा शर्मा ने कहानियों व उपन्यास के अलावा डायरी एवं रिपोर्ताज में उल्लेखनीय काम किया है । संभवतया नासिरा शर्मा एकमात्र महिला कथाकार हैं जिन्होंने रिपोर्ताज विधा में काफी श्रम किया है । इनकी कुछ पुस्तकें यथा, ''जहां फव्वारे लहू रोते हैं'', 'अफगानिस्तान : बुजकशी का मैदान' तथा ''मरजीना का देश इराक'' ऐसी ही तीन महत्वपूर्ण पुस्तकें हैं जिनमें ईरान व अफगानिस्तान की पृष्ठभूमि और परिवेश, विचार एवं रहन-सहन, शिक्षा एवं समझ तथा भाषा एवं व्यवहार का चित्रण किया गया है । यद्यपि इनकी रचित एक पुस्तक ''सात नदियां एक समंदर'' भी ईरान की कथा पर केंद्रित है और इसमें भी कहीं-कहीं रिपोर्ताज की शैली का सहारा लिया गया है पर यह आदि से अंत तक उपन्यास की श्रेणी का बोध कराता है । इरान की जनता ने रजा शाह पहलवी के खिलाफ बगावत करके उनकी तानाशाही से मुक्ति प्राप्त करनी चाही थी । बगावत तो हुई पर लक्ष्य की प्राप्ति नहीं हुई । शाह के जाने के बाद इस्लामी गणतंत्र के नाम पर अयातुल्ला खुमैनी ने जनता पर एक दूसरे प्रकार की तानाशाही लाद दी । लेखिका ने इस धार्मिक तानाशाही के दबाव में पिसती हुई जनता का बड़ा ही सजीव चित्र खींचा है । उसने लोगों के दुख-दर्द को मानवीय दृष्टि से देखा है और उसे पूरी

सहानुभूति दी है ।

वस्तुत: हिंदी कथा साहित्य की शुरुआत से लेकर अब तक हुई प्रगति, प्रयोग के संदर्भ में एवं क्रम में वर्तमान कथाकारों विशेषकर महिला कथाकारों की कृतियों में नासिरा शर्मा की कहानियां उल्लेखनीय हैं और उनकी साहित्य की अलग-अलग विधाओं जैसे, कहानी, उपन्यास, यात्रा संस्मरण, डायरी एवं रिपोर्ताज के बारे में विश्लेषण किया जा सकता है जो शोध का आवश्यक अंग है ।

4.2 विवेच्य उपन्यास : नारी जीवन की अन्तर्जटिलता

भारत-पाक विभाजन के बाद पाकिस्तान ने चार बार भारत पर हमला किया । सन् 1948-49, 1965, 1971 और 2004 में युद्ध की आग भभक उठी थी । 2004 में हुआ हमला कारगिल पर हमला था । युद्ध तो नहीं था पर युद्ध जैसी स्थिति पाकिस्तान ने पैदा कर दी थी । भारत-पाक बंटवारा तो राजनैतिक था । सीमाबंदी हुई, सीमा विभाजन हुआ, धरती के हिस्से पर बंटवारे की लकीरें खींची गईं लेकिन इस राजनीतिक दांव पेंच के दंश को झेलने वाले एक ही मुल्क के भाई-बहनें आपस में अलग कैसे हो सकते हैं । बंटवारे के वक्त और उसके बाद उनपर क्या बीतती रही, इस दर्द को झेला है नासिरा शर्मा ने 'जिंदा मुहावरे' उपन्यास में । लेखिका ने पाकिस्तानी जीवन के प्रवास को कथ्य बनाया है और पाकिस्तान में रहनेवाले का भारत के प्रति लगाव चित्रित किया है । एक परिवार के माध्यम से इस कद्दावर सच को सामने ला खड़ा किया है कि इतने बड़े ऐतिहासिक हादसे से उपजी पीड़ा किसी एक कौम की नहीं बल्कि समूची इंसानियत की है ।

हिन्दुस्थान के बंटवारे से करोड़ों दिलों को तकलीफ हुई । उन्हीं में एक फैजाबाद के रहमतुल्लाह भी थे । अपना गांव, घर जमीन, जायदाद अपना वतन छोड़कर वह नहीं जा सकते थे । लेकिन निजाम व उसका छोटा बेटा पाकिस्तान चले गये । निजाम बहुत कुछ भोगकर पाकिस्तान में बड़ा आदमी बन गया । लेकिन वह हिंदुस्थान की अपनी धरती, अपने लोगों को भूल नहीं सकता । अब्बा रहमतुल्लाह, अपनी अम्मी फात्मा, बहन, भाई-भतीजा, सुंदर काकी, मंगरू काका, बचपन का गंवार साथी ब्रजलाल आदि के प्यार ने उसको वापस भारत आने को खींच लिया और जब वह फिर से भारत से पाकिस्तान वापस गया तो बिल्कुल टूट गया ।

इस उपन्यास में लेखिका ने बंटवारे के दर्द के साथ-साथ नारी विमर्श के परतों को भी उकेरने का प्रयास किया है । रहमतुल्लाह को अपनी पुत्री रजिया की शादी के बाद उसे पाकिस्तान ले जाने के लिए राजी कराना मुश्किल काम था । इसलिए ऐसे रिश्ते ठुकराए गए ।

आजकल केरल में भी विवाह के दौरान इस बात पर गौर किया जाता है कि खाड़ी में काम करने वाले को पढ़ी-लिखी, उच्च घराने की लड़की नहीं मिलती । इधर बाप रजिया की शादी की तैयारी कर रहा है उधर लखनऊ से लड़के का पैगाम आता है कि शादी के बाद लड़का पाकिस्तान जाएगा । यह सुनते ही रहीमुद्दीन उसे यह कहकर ठुकरा देता है कि लड़की को पराये देश नहीं भेजना है । रहीमुद्दीन अपने बेटे को भी पाक नहीं भेजना चाहता है । पाक जाने के नाम पर उसने उसे बाद में गाली भी दी थी ।

निजाम की भाभी शमीमा यह चाहती थी कि उसका देवर जिस दिन लौटेगा उसी दिन वह सुगरा से उसका निकाह पढ़वा देगी । तब तक निजाम की चिट्ठी आयी मगर सुगरा के बारे में कुछ भी नहीं लिखा । सुगरा के बाप ने इधर खुसरु से उसकी शादी की तैयारी की । सुगरा ने इनकार करके देखा लेकिन उसका विद्रोह अपनी जगह कायम रहा । डॉ. वी. के. अब्दुल जलील लिखते हैं - ''नासिरा जैसी लेखिका का, नारी विमर्श का, स्वर महिला लेखन पर केन्द्रित अपनी संपादित, 'इस सदी की औरत की आवाज़' (तीन खण्ड) में सबल है । क्योंकि नारी विमर्श नारी का सुरक्षित क्षेत्र है, जहाँ पुरुषों का हस्तक्षेप नहीं हो । हिन्दी साहित्य में महादेवी वर्मा ने 'श्रृंखला की कड़ियों में' कुछ यूं शब्दबद्ध किया था ''पुरुष के लिए नारीत्व अनुमान है, नारी के लिए अनुभव, अत: अपने जीवन का सजीव चित्र वह हमें दे सके, सकेगी, वैसा पुरुष बहुत साधना के उपरांत भी शायद ही दे सके ।''(3) नारी मुक्ति का संघर्ष सामाजिक, आर्थिक एवं राजनीतिक बराबरी का संघर्ष है । नारी लेखन में इसे ही मुख्य स्वर बनाया गया । कर्तृत्व में स्त्री पुरुष को नकारती है । विश्व में सन् साठ में जो नारीवादी आंदोलन चला उसे 'नारीवाद' या फेमिनिज्म की शुरुआत मानें या न मानें, पीटर बारी ने इस परयूं टिप्पणी की है - ''It was a renewal of an old tradition of thought and action already possessing its classic books which had diagnosed the problem of womens' inequality in society and (in some cases) proposed solutions.''(4)

आलोच्य उपन्यास में सुगरा जैसी मुस्लिम नारी की आवाज 'मुल्ला की दौड़' जैसा मुहावरा बनी - ''हम अब शादी न करिबे । ... हम कहत हैं, अम्मा, हमार बेइज्जती ना करो ।'' विद्रोह कहीं का नहीं बन पाया । खानदानी रिवाज यही रहा कि शरीफों का दस्तूर रहा है कि जिससे लड़के-लड़की का नाम बँध गया, बस जिंदगी अच्छी-बुरी उसी के साथ कट गई । लेखिका सुगरा को बचाने के लिए यह मुहावरा गढ़ रही है - ''बिल्ली के बच्चे की तरह सात घर झाँकने तो कोई नहीं जाते, मगर इस नई विपदा से भी तो निपटना होगा, वरना जवान लड़की कब तक निजाम के नाम पर बैठी रहेगी ?''(5) वे यह भी लिखती हैं, ''लड़की की बात तो दस जगह से छंटती और लगती है । दुनिया का दस्तूर है ।''(6) कुछ

नारीवादी स्वरों में इस तरह का बचना भी होता है । निजाम की माँ फातमा बी के साथ भी ऐसा ही हुआ । नासिरा लिखती हैं, ''फातमा बी सुगरा के घर से जो लौटी, तो जैसे हँसना-बोलना ही भूल गई थी । उनके दिल में पड़े नासूर में घुन-सा लग गया था ।''(7) यह स्वाभिमानी का लक्षण है कि जो वचन और आशा साहिबा को दिये गये, उनका भंग होते वह देख नहीं सकती थी । डॉ. अब्दुल जलील कहते हैं कि ''स्त्रियों का दिल इतना तरल होता है कि वह चुपके से सब सहन तो कर लेगा, मगर जब रहा न जाये तो उसी घुन में कंकाल होते आखिर आत्मत्याग कर लेती है । ऐसी अवस्था से वह औरत मुक्त नहीं हो पाती कि लेखिका ने शेक्सपियर के मैकबेथ की एक पंक्ति का, उस संदर्भ के लिए आशयानुवाद कर रखा है - ''बदन का रोग हो तो डॉक्टर-वैद्य ठीक भी करें, मगर रुह की बीमारी का इलाज तो उनके पास नहीं है ।''(8) इकरार अहमद ने अपने आलेख 'मुस्लिम नारी-मुक्ति का सच' में सभी भारतीय मुस्लिम स्त्रियों की ऐसी दुर्दशा बतायी । विवाहोपरांत निजाम ने अपनी पत्नी सबीहा को भी पर्दे के अंदर ही रखा । मुक्तिगाथा वहाँ भी विचलित होती है - ''इस बड़ी कोठी में आकर सबीहा बन्द-सी होकर रह गयी ।''(9) कभी-कभी स्त्री से पुरुष को बचाना भी होता है । घर की तलाशी लेती पुलिसवालों से पढ़े-लिखे इमाम का कहना था- ''ठहरिए, अन्दर जनाना है ।'' तब भी उपाय यही रहा - ''पर्दा कराएँ फिर ... ।''(10)

नगमा जावेद के अनुसार लेखिका ने मानव मनोविज्ञान की बड़ी सूक्ष्म पड़ताल की है । डर, अनदेशे एक तरफ थे और जिजीविषा का चिराग भी रौशन था । 'वक़्त की फितरत में है खुद ज़ौके ब़खिया गरी' निज़ाम भी घर की यादों को किनारे रख ज़िन्दगी के समंदर में सच्चे मोतियों की तलाश में डुबकी लगाता है, पूरी लगन के साथ ! 'जिन, खोजा, तिन पाया को चरितार्थ करता हुआ, निज़ाम भी पांच सालों की दौड़-धूप के बाद एक अदद दुकान और एक छोटे से मकान का मालिक बन जाता है । हिन्दुस्तान जाना चाहता है तो वीज़ा नहीं मिलता । उसे भाभी के शब्द याद आते हैं । बिलाई तो लौट आती है, पर निज़ाम तो बिलाइ से भी गया-बीता हो गया है । लौटने की चाहत के बावजूद, लौटना मुमकिन नहीं । सियासी तनाव ने जाने के सारे दरवाज़े बंद कर दिये हैं । अपनों से मिलने की तड़प लिए वह अकेलेपन के रेगिस्तान से गुज़रता है । मां के इन्तकाल की ख़बर उसे तोड़ जाती है । कोई नहीं है यहां, इस शहर में उसका, जिसके कांधे पर सिर रखकर रो सके । उसे एहसास होता है कि वह अपना शहर कहे जाने वाले इस कराची में कितना अकेला, कितना तन्हा है ? पर कटे परिंदे की तरह फड़फड़ाकर रह जाना, यही उसकी नियति है ।

बँटवारे ने घर, आंगन के लोगों को बांट दिया था । माँ-बेटी से, बेटी मां से जुदा हो गयी थी । बहन-बहन से बिछुड़ गयी थी, कहीं बहन भाई की याद में तड़प रही थी, कहीं

भाई-भाई से जुदा हो गया था, कहीं बेटा बाप से छिटक गया था, कहीं प्यार भरे दिल एक-दूसरे से दूर होकर सिसक रहे थे । कितने दिलों में दर्द था ? कितने आँसुओं की बरखा बरस रही थी ? इस पीड़ा के तो वही साक्षी थे जो इसमें से गुज़र रहे थे । एक कयामत गुज़र रही थी उन पर । नगमा ज़ावेद के अनुसार नासिरा जी ने रहीमुद्दीन, शमीमा, इमाम, अम्मा, सुगरा, रज्जो की बिलखती-बिलखती टूटती आहों में करोड़ों परिवारों की दिल ख़राश वेदना को सुना है । अम्मा की ममता उबलती रहतीं, कैसे भुला देतीं, अपने लख़्ते जिगर को... हर पकवान से थोड़ा हिस्सा निकालकर नन्हें के नाम से छीके पर ढक्कर रखवा देतीं । जाने कब भड़ से दरवाज़ा खोल निज़ाम आ जाये । सुग़रा के मां-बाप की परेशानी क्या मामूली थी ? बच्ची को कैसे समझाएं ? हर शख़्स अपनी सलीब ढो रह था । लड़की को लेकर पाकिस्तान जायें और ब्याह दें, निज़ाम से । लेकिन ग़ैरत उनका खून गर्म कर देती और वह गुस्से में सोचते कि लड़की लूली-लंगड़ी तो नहीं, कि इतना गिर जायें ? यह भी अन्देशा था कि कहीं निज़ाम ने शादी न कर ली हो ? इस्मत आपा ने 'गर्म हवा' में बँटवारे की पीड़ा को लिपिबद्ध किया है । राही मासूम रज़ा के तो पांच उपन्यासों में किसी न किसी तौर पर विभाजन की त्रासद स्थितियों का उल्लेख है । बदीउज्जमां ने 'छाको की वापसी', मंजूर एहतेशाम ने 'सूखा बरगद', शानी ने 'काला जल', कमलेश्वर ने 'कितने पाकिस्तान' में मुस्लिम परिवारों की त्रासदी, मानसिकता और चारों ओर तेज़ी से फल फूल रही सामप्रदायिकता का बड़ा ही यथार्थपरक अंकन किया है । भीष्म साहनी का 'तमस' तो इस संदर्भ में अत्यंत महत्त्वपूर्ण है । 'झूठा सच', 'आग का दरिया', 'उदास नस्लें' के बाद इस उपन्यास का लिखा जाना वक़्त की गुहार है । लेखिका के शब्द त्रासद सच के गवाह हैं -

'बँटवारा उनके गलों में पड़ा फांसी का फंदा बन चुका था, जो न पूरी तरह कसता था, न ढीला होकर छूटता था ।'(11)

नासिरा शर्मा का नाम एक और वजह से बड़ी शिद्दत से लिया जाता है, वह है ईरान की क्रांति पर लिखा गया उनके रचना संसार का पहला उपन्यास ''सात नदियां एक समंदर'' (1984) । उन्होंने ईरानी समाज, राजनीति, साहित्य, कला और संस्कृति आदि विषयों का काफी अध्ययन किया है तथा इन पर उनकी खूब पकड़ है । उन्होंने स्वयं लिखा है कि ''ईरान की क्रांति पर लिखा मेरा यह उपन्यास उन अनुभवों का लेखा-जोखा है जो पिछले नौ वर्षों में मुझे ईरान की धरती पर हुए । इन नौ वर्षों के पीछे लगभग नब्बे वर्षों का अतीत सांसें ले रहा था, जिसमें पांच हजार वर्ष पुराने ईरान की सभ्यता, संस्कृति का वैभव अपनी ऐतिहासिक गाथा गुनगुना रहा था । ... इस उपन्यास में इन्सान की आरजू तमन्ना और इच्छा से भरे - अधूरे सपनों का बयान है जो किसी भी देश किसी भी व्यक्ति की निजी धरोहर हो

सकता है''[12]

''सात नदियां एक समंदर'' एक ऐसा उपन्यास है जहां पर समय का बहाव और घटनाओं का काल चक्र घूमता और बहता नजर आता है । नदियों का अंत समंदर में मिल जाना है; मगर पानी का भाग्य केवल बहते जाना है । स्वतंत्रता के लिए संघर्ष का जो बहाव निरंतर बहने वाला पानी है उसकी कलकलाहट, इस उपन्यास की हर पंक्ति में प्रतिध्वनित होती है – ''कहां होगी परी इस समय ? जाने मलीहा का क्या हाल है ? तय्यबा तो जाने किस भूलभुलैया में फंसी होगी, खुदा करे जिंदा हो, हम सबसे अच्छी महनाज़ निकली कम-से-कम देश से दूर, विदेश में सुख से तो रह रही है । यूं चिंता-भय से अधमरी तो नहीं रहती है । क्यों न महनाज़ को पत्र लिखा जाए, शायद कल कोई शहर जाए ते वहीं से पोस्ट कर दे।'' यह सोचकर सूसन बिस्तर से उठकर कुरसी पर बैठ गई और पत्र लिखने लगी । मन की बहुत सारी बातें लिखीं । गुज़रे कल की मीठी यादों का ज़िक्र किया ।[13]

नासिरा शर्मा के ''शाल्मली'' (1987) और ''ठीकरे की मंगनी'' (1989) उपन्यासों को पढ़ने पर हम पाते हैं कि अलग-अलग परिवेशों में पली-बढ़ी लड़कियां अपने बंद घेरे से बाहर आने को बेचैन और संघर्षरत हैं । उनकी छटपटाहट हर पन्ने पर उकेरती हुई मिलती है । ''शाल्मली'' में शाल्मली नामक एक सर्वगुण संपन्न लड़की का आत्मसंघर्ष चित्रित किया गया है जिसकी शादी पढ़े-लिखे परंतु दिमागी रुप से बौने और दकियानूसी पुरुष (नरेश) से हो जाती है और वह जिंदगी भर उसके बौनेपन को झेलती-सहती रहती है ।

शाल्मली की जिंदगी में आने वाला पहला पुरुष उसका पति ही होता है इसलिए वह किशोरावस्था के काल्पनिक प्रेमी का रुप भी अपने पति में ही ढूंढ़ती है लेकिन सफल नहीं हो पाती । उसे नरेश में अपना काल्पनिक प्रेमी कहीं नहीं मिलता है । उधर पति के रुप में नरेश एक पारम्परिक पति अवश्य है जिसे ऐसी पढ़ी-लिखी पत्नी चाहिए जो पत्नी की आंखों से दुनिया को देखे-जाने-समझे । शाल्मली एक सम्पूर्ण स्त्री है – बुद्धि से प्रखर, देह से सुंदर, मन से संवेदनशील, नैतिक मूल्यों के प्रति सचेत, कर्तव्य परायण आदि । शाल्मली के सामने नरेश कहीं टिक नहीं पाता है । वह शाल्मली के गुणों से अभिभूत तो दिखता है लेकिन अंदर ही अंदर आतंकित भी दिखता है कि कहीं वह उसे छोड़ न दे । फिर उसकी इज्जत दो-कौड़ी की नहीं रह जाएगी । पारंपरिक पति के रुप में उसे अपनी निजता और स्वतंत्रता स्त्री के सामने दम-तोड़ती नजर आती है । और यही सच है आज के अधिकांश भारतीय परिवारों का – कई मध्यम वर्गीय और पढ़े – लिखे परिवारों का भी । आम परिवारों के पुरुषों की भांति नरेश भी हर मामले में अपनी पत्नी से कमतर है । हमेशा वह एक 'कॉम्प्लेक्स' में जीता है । इसलिए पुरुष होने की वजह से हर मामले में वह पत्नी से श्रेष्ठ

दिखना चाहता है । इस श्रेष्ठता की ग्रंथि के कारण ही शाल्मली को लेकर वह भयभीत भी है । ''कितना बचपना और भोलापन है शालू में ! इतनी समझदार, इतनी गंभीर, इतनी सुंदर, इतनी जीवन से भरपूर औरत को कौन पत्नी के रुप में पाकर अपने को धन्य नहीं मानेगा ! कैसा विचित्र आकर्षण है इसके संपूर्ण व्यक्तित्व में । बात भी कितने मीठे सुर में करती है ! एक पुरुष वास्तव में स्त्री में क्या देखता है और उससे क्या पाना चाहता है ? किस गुण में उसकी इच्छा की तृप्ति निहित है, मोह में, धन में, रुप में, सेवा में, समर्पण में, आदर में, बलिदान में, बुद्धि की प्रखरता से या .... आखिर किस गुण में !''(14) फिर आगे नरेश ही ईर्ष्या में कह उठता है – ''मैं तो, मरती ही हूं इस पर और जाने कितने मरते होंगे ।''(15)

नासिरा शर्मा ने स्वयं लिखा है कि ''एकाएक शंका का काला नाग बारिश में भीगता हुआ जाने कहां से आकर नरेश के मस्तिष्क में कुलबुला उठा ''।(16) फूल सी कोमल, नाजों से पली, लाड़-दुलार में बढ़ी शाल्मली अपनी सम्पूर्ण शालीनता और कमनीयता के बावजूद बात-बापर प्रताड़ित, अपमानित और ज़लील होती है । असीम धैर्य की स्वामिनी शाल्मली अपने दाम्पत्य को बचाने के लिए टूटने के हद तक गुजरती है । प्यार, मनुहार, तर्क, मान-सम्मान सभी कुछ देकर नरेश को अपने से जोड़कर दांपत्य की गाड़ी को प्रेम और माधुर्य के साथ चलाने की पूरी कोशिश करती जाती है शाल्मली लेकिन नरेश की दिमागी जड़ता अड़ियलपन और बेवकूफाना हरकतों से भरी हठधर्मिता के कारण उसकी आंखों पर बंधी पट्टी हटती ही नहीं है । कई बार शाल्मली आज़िज हो जाती है । उसकी मानसिक आज़िजी को उपन्यास में कई जगह महसूस किया जा सकता है ।

''शाल्मली'' की शाल्मली शुरु से अंत तक दो स्तरों पर नरेश के साथ जीती है । एक नरेश को अपने मन के धरातल पर आंकने का और दूसरा उसके साथ संबंध धरातल पर सहज बने रहने का और ऐसे जीने के लिए वह मन से तैयार नहीं है । मजबूरन उसे यह सब ढोते रहना पड़ता है । वह चाहती है कि नरेश खुश रहे और संबंध मधुर बना रहे । संबंध को बनाए रखना चाहती है शाल्मली और इसलिए अपने से हर स्तर पर नीचे के पायदान पर रहने वाले नरेश की धौंस सुनकर भी वह कई बार चुप और अवाक सी रह जाती है ।

''देखो, शालू, एक बात कहना चाहता हूं, तुम जिस मन से घरवालों से जुड़ रही है, उसमें निराशा हाथ लगे, तो मुझे दोष मत देना । उस वक्त मैं तुम्हारा अपराधी नहीं हूंगा, क्योंकि मैं अपने परिवार वालों को भली प्रकार जानता हूं और बहुत अधिक घुलने का अन्त भी मैं जानता हूं । मां को छोड़ दो । बाकी लोग आकर मेरे इस घर में रह गए, तो फिर जाने का नाम नहीं लेंगे, फिर उस समय तुम जाने क्या सोचो ? मगर मैं दूसरों के लिए बिना किसी कारण के व्यर्थ में बलि का बकरा नहीं बनना चाहता हूं । नरेश ने बहुत खुले शब्दों में दो टूक बातें

शाल्मली के सामने रख दीं ।''(17)

टिप्पणीकार सुरेश पंडित कहते हैं - स्त्री - पुरुष को परस्पर एक सूत्र में बांधे रखने के लिये ही कद्‌चित विवाह नाम की संस्था बनी होगी । यह संस्था अनेक बुराइयों, दोषों, कमजोरियों के बावजूद आज तक इसलिये चली आ रही है क्योंकि इसका कोई बेहतर, सर्व सन्तुष्टिदायक विकल्प ख़ारिज करने की चेष्टाएँ नहीं हुई। हैं लेकिन इसके बरस्क जो कुछ भी रखने की कोशिश हुई वह इससे बदतर नहीं तो इस जैसी भी साबित नहीं हुई । 'कांट्रेक्ट मैरिज' और 'लिविंग टुगैदर' जैसे प्रयोग इसलिये आम लोगों को स्वीकार नहीं हुए क्योंकि उनमें भी स्त्री-पुरुष के संबंधों की संवेदनशीलता को बनाये रखना, तन और मन की लालसाओं को पूरा करना संभव नहीं हुआ है । आज दोनों के सामने विडंबना यह है कि वे विवाह को नकारना भी चाहते हैं लेकिन ऐसा कर नहीं सकते क्योंकि इसके अलावा और कोई रास्ता नहीं है । जो लोग विवाह कर लेते हैं वे भी दुखी हैं और जो नहीं करते या कर पाते वे भी । आख़िर ऐसा क्या है जो दोनों को किसी हाथ में चैन ही नहीं रहने देता ।''(18)

सुरेश पंडित के कथनानुसार नासिरा शर्मा का 1987 में पहली बार प्रकाशित उपन्यास 'शाल्मली' आज बीस-इक्कीस साल बाद भी पहले जैसी ही ताज़गी लिये हुए पठनीय बना हुआ है तो इसका कारण उनका कहानी कहने का चमत्कारिक कौशल उतना नहीं है जितना एक ऐसी चिरन्तन समस्या को नये परिप्रेक्ष्य में इस तरह रखना है कि अधिकतर पाठक इसे पढ़ते हुए स्वयं को कहीं न कहीं, किसी न किसी रुप में इससे जुड़ा हुआ महसूस करें । उन्हें लगे कि इसमें विरूपित शाल्मली या नरेश कई बार कैसी ही प्रतिक्रिया करते हैं जैसी वे स्वयं भी उन परिस्थितियों में करते हैं । लेखिका की घोषणा है कि यह आज की समर्थ नारी को नये आयाम देने वाली शाल्मली की मर्म कथा है । पर ऐसा कुछ इसमें नहीं है । नारी तो हमेशा से ही समर्थ रही है । यह बात अलग है कि उसके सामर्थ्य का रूप समयानुसार बदलता रहा है और उसने अक्सर अपने सामर्थ्य को पहचानते हुए भी उसे 'अलर्ट' करने में विशेष रुचि नहीं दिखाई है । समर्थ नारी को नयेनये आयाम देने वाली भी कोई ख़ास बात इसमें दिखाई नहीं देती । कहानी की शुरुआत उसी शीत युद्ध से होती है जो प्राय: हर एकल परिवार वाले घर में चलता रहता है पर बाहर से दिखाई नहीं देता । वैसे भी लोगों को दूसरों के घरों में झाँकने की आदत नहीं रह गई है और न इतना समय ही उन्हें मिल पाता है । साथ ही वे यह भी समझने लगे हैं कि हर घर में चूल्हे प्राय: एक ही तरह से जलते हैं ।

विवाह के कुछ दिनों बाद ही शाल्मली को तरह-तरह से यह बोध कराया जाता है कि नरेश पति है और वह पत्नी । उसे पहला झटका तब लगता है जब इन दोनों शब्दों के निहितार्थ 'स्वामी' और 'दासी', 'रक्षक' और 'रक्षिता' के रूप में उसे बताये जाते हैं । वह

चाहती है कि विवाहजन्य इन आत्मीय संबन्धों को पति पत्नी के पारम्परिक रिश्तों से अलग रखे । पारस्परिक समझ और बराबरी के स्तर पर इस नये जीवन को जीने की एक सुगम राह बनाये । लेकिन अकेले उसके सोचने से क्या होता है । जब तक नरेश स्वयं इस तरह सोचना नहीं शुरू कता तब तक कुछ भी होता है । जब तक नरेश स्वयं इस तरह सोचना नहीं शुरू करता तब तक कुछ भी बदला नहीं जा सकता । वह भला ऐसा क्यों सोचे । उसे न ऐसा सोचने के संस्कार मिले हैं और न ऐसे साहित्य से उसका वास्ता पड़ा है जो उसे बताता कि वास्तव में इन दोनों शब्दों के समयानुरूप क्या अर्थ हैं या होने चाहिये । इसीलिये उसका संवाद ही इन शब्दों से शुरू होता है – 'तुम ठहरी एक आधुनिक विचार की महिला ... विचारों में स्वतंत्र, व्यवहार में उन्मुक्त, तुम्हारे संस्कार ... ।'[19] जो विचारों की आधुनिकता एक उल्लेखनीय गुण होनी चाहिये नरेश में वह कुंठा पैदा करने का सबब बन जाती है ।

नरेश यह तो चाहता है कि उसकी पत्नी पढ़ी लिखी हो क्योंकि उसके वर्ग के प्राय: अधिकतर लोगों की पत्नियाँ वैसी ही हैं । वह नौकरी करे इससे भी उसे कोई ख़ास गुरेज़ नहीं । क्योंकि इससे उसकी सामाजिक आर्थिक हैसियत ऊँची उठती है लेकिन शिक्षा और नौकरी के बाद यदि वह एक आज्ञाकारी पत्नी की तरह आचरण नहीं करती है, उसकी सुख-सुविधाओं का ध्यान नहीं रखती है तो उसके उन गुणों का कोई मतलब नहीं है । इसलिए शाल्मली जब-जब अपनी बातों का औचित्य प्रदर्शित करने के लिये कोई ऐसा तर्क देती है जिसका उत्तर नरेश के नहीं सूझता तो वह झुंझला कर कह देता है – 'मैं तुमसे बहस नहीं कर सकता । तुम्हारे तर्क मुझे अपने बॉस की याद दिला देते हैं ।... पत्नी हो, पत्नी की तरह रहो, समझी ।''[20] पत्नी की तरह रहने से नरेश का आशय है, बिन सवाल किये जो कुछ वह कर रहा है उसे स्वीकार करना और तद्नुसार आचरण करना ।

परन्तु शाल्मली को लगता है कि नरेश की इच्छानुसार चलने से घर में शान्ति तो रह सकती है लेकिन इसके लिये उसे अपने व्यक्तित्व की बलि देनी होगी । उसे यह बड़ा महंगा सौदा लगता है । घर में पति को सम्हालना और दफ़्तर में ऊपर वालों और मातहतों के साथ पटरी बैठाना कोई आसान काम तो नहीं है । लेकिन नौकरीपेशा औरत को ये दोनों काम न केवल पूरे करने होते हैं बल्कि इस तरह करने होते हैं कि दोनों पक्ष सन्तुष्ट रहें । इस समायोजन में उसकी कितनी ऊर्जा खर्च होती है, इसका अन्दाजा लगाना हर एक के बस की बात नहीं हो सकती । नरेश को अपना काम जितना महत्त्वपूर्ण लगता है उतना पत्नी का नहीं । वह मानता है कि पत्नी अफ़सर है । दफ़्तर में उसे विशेष कुछ करना नहीं होता क्योंकि काम तो सारे मातहत करते हैं । जब वहाँ आराम करती है तो उसे घर पर अधिक ध्यान देना चाहिये । उसे कब क्या चाहिये उसकी पूर्ति होती रहनी चाहिये । एक टिपिकल भारतीय

पुरुष सोच है यह ।

शादी से पहले लड़की पढ़े या नहीं पढ़े, पढ़े तो कितना व क्या पढ़े और पढ़कर नौकरी करे या नहीं करे इन सब बातों का निर्णय उसके माता-पिता के पास रहता है और शादी के बाद इस तरह की निर्णयकारी भूमिका पति या ससुराल वालों के पास स्वत: चली जाती है । उसे स्वयं अपने भविष्य को चुनने का अधिकार प्राय: कभी नहीं मिलता । यहाँ तक कि शादी से पहले नौकरी में लगी लड़की भी शादी के बाद उसे जारी रखे या नहीं, इसके लिये भी उसे पति की अनुमति लेनी पड़ती है । शाल्मली के प्रतियोगी परीक्षा में सफल हो जाने के बाद इन्टरव्यू में जाने के लिये अनुमति मांगने पर नरेश पहले तो कहता है - 'क्या करोगी नौकरी करके ?' लेकिन बाद में अनमने ढंग से कहता है - 'ठीक है, इन्टरव्यू में बैठो । बाद में सोचूंगा इस पर ।'(21) अर्थात् अन्तिम चयन हो जाने के बाद भी उसे नरेश से नो आब्जेक्शन सर्टिफिकेट आगे बढ़ने के लिये लेना ही होगा ।

खाली समय में जब शाल्मली कुछ पढ़ रही होती है तो नरेश को अच्छा नहीं लगता । उसने अपने घर में मां या अन्य रिश्ते की औरतों को अक्सर घर के कामों में ही उलझे देखा इसलिये उसे पत्नी का फुरसत में होना और उसका उपयोग पढ़ने में करना बड़ा अटपटा-सा लगता है । वह कह भी देता है, जीवन भर इस मगजपच्ची में क्या मिलना है । विवाह हो गया, बस । उसका मानना है कि विवाह से पहले लड़कियों को इसलिये पढ़ने दिया जाता है ताकि वे खाली न रहें और उन्हें अच्छा वर मिल जाय । विवाह के बाद और पढ़ने का कोई मतलब ही नहीं रहता । पर जब शाल्मली पढ़ाई के पक्ष में अपने तर्क देने लगती है तो वह उखड़ जाता है और दो टूक शब्दों में अपना मन्तव्य प्रकट कर देता है - 'बाल की खाल मत निकाला करो । मुझे बहस करने वाली औरतें बड़ी बुरी लगती हैं ।'(22)

खाना, प्यार करना, सोना-जागना, इससे अधिक नरेश को घर में कुछ नहीं चाहिए । शाल्मली से भी और कोई सरोकार नहीं होता । शाल्मली की अपने जीवन साथी के प्रति जो भी परिकल्पना थी उसके न्यूनतम प्रतिमान भी इन तीन-चार क्रियाओं से कुछ अधिक की अपेक्षा रखते हैं । यही वजह है कि वह भी नरेश को केवल भौतिक रूप से समर्पण कर पाती है । उसकी आत्मा और भावना प्राय: इस समर्पण से अनछुई, खामोश पड़ी रहती हैं । उसे महसूस होता है कि वह भी नरेश को केवल भौतिक रुप से समर्पण कर पाती है । उसकी आत्मा और भावना प्राय: इस समर्पण से अनछुई, खामोश पड़ी रहती है । उसे महसूस होता है कि वह एक बेजान लिबास है जिसे ज़रूरत पड़ने पर पहन लिया जाता है और ज़रूरत ख़त्म होने पर उतार कर रख दिया जाता है । वह किससे कहे कि देह से हटकर भी तो मनुष्य की कोई आवश्यकता होती है । जब नरेश ही उसकी इस ज़रूरत को नहीं समझता तो दूसरा

कोई क्या व क्यों इसे समझेगा ।

टिप्पणीकार सुरेश पंडित के अनुसार ''शाल्मली लम्बे अन्तर्मन्थन के बावजूद यह समझ नहीं पाती कि आख़िर उसका दोष क्या है । उसने अपने आपको इस विवाहित जीवन के अनुसार ढालने की बहुत कोशिश की है । नरेश की हर इच्छा को मन-बेमन से पूरा किया है । लेकिन उसका मन मस्तिष्क भी आख़िर उस रेत की तरह तो नहीं है जिस पर लिखे अक्षरों को पानी की एक लहर आती है और मिटा जाती है । कैसे बताये वह नरेश को उसके मन की धरती पर फैले नरेश के वाक्यों, भावनाओं में पगे उसके शब्दों के जंगल को वह काट नहीं सकती और न अपनी मिट्टी बदल सकती है । दिन गुज़रते जाते हैं। हर दिन दोनों के बीच के फासले को इंच दर इंच बढ़ाता जाता है । शाल्मली के अन्दर बैठी औरत और बागी होती जाती है। लेकिन असली शाल्मली शालीनता का कवच पहने रहती है । बाहर और भीतर का द्वन्द्व एक दूसरे को परास्त करने का प्रयास करता रहता है । स्वयं को संतुलित रखने की कोशिश में शाल्मली टूटती रहती है । किसी से अपने मन की व्यथा कह नहीं पाती । जिन लोगों को पता लगता है उनकी प्रतिक्रिया या तो उसे 'कन्विंस' नहीं कर पाती या अप्रासंगिक लगती है । उसकी सहेली सरोज की सलाह है कि उसे अपनी शर्तों पर जीना चाहिए और नरेश के सम्मुख समर्पण की बात तो दूर किसी प्रकार बढ़ा समझौता भी नहीं करना चाहिये । आख़िर उसकी भी कोई हैसियत है । वह किसी पर आश्रित नहीं है । दोनों को एक-दूसरे की ज़रूरत है । यदि नरेश उसे बराबरी का हक देने के लिये तैयार नहीं है तो वह उसे छोड़ सकती है - स्वतंत्र जीवन जी सकती है । नरेश से बेहतर और पुरुष पा सकती है ।''(23)

यह सब कुछ सुनकर शाल्मली अवाक-सी नरेश को ताकती रह गई । कुछ देर बाद वह नरेश से पूछ बैठी, ''ऐसा क्यों सोचते हो, नरेश ? इसका कारण ?''

''मैं कारण-वारण नहीं जानता, जो कहना था, सो कह दिया ।'' नरेश ने कहा और उठकर कपड़े बदलने स्नानघर की तरफ बढ़ा ।''(24) पुरुष ग्रंथि से पीड़ित आम भारतीय परिवार का परिचायक है नरेश जो शाल्मली के साथ कभी समानता का व्यवहार नहीं कर पाता, बल्कि अपनी कमजोरी को छिपाने के लिए उग्रता और उच्छृंखलता का सहारा लेता है । घर के अंदर और बाहर दोनों जगह वही शाल्मली की सीमाएं तय करने लगता है । शाल्मली कहती भी है - ''जब औरतें अनपढ़, अनगढ़ मिलती हैं, तो पुरुष अनसे कुढ़े-ऊबे बाहर की तरफ भागते हैं और जब शिक्षित, चुस्त औरतें पत्नी के रुप में मिल जाती हैं, तो उन्हें उनसे घबराहट का अहसास होता है और भयभीत होकर तीसरी किस्म की औरतों की तरफ भागते हैं । क्या वे स्वयं जानते हैं कि इन्हें कैसी औरतें, कैसी पत्नियां चाहिए ?''(25)

''शाल्मली'' उपन्यास का एक दारुण पक्ष यह भी है कि नरेश अपनी मां के प्रति भी

अनासक्त और विरक्त रहता है । वह मां के पास बैठकर भी कभी आत्मीयता से बातचीत नहीं करता है । कभी-कभी मां का उपहास भी कर बैठता है । नरेश के व्यवहार से खिन्न होकर मां कहती है - ''मैं इन वर्षों में तेरे साथ रहकर जान पाई बहू री । औरत जन्म जली कहीं स्वतंत्र नहीं । कहीं खूंटे से तंग बंधी तो कहीं उसके गले में बंधी रस्सी थोड़ी लंबी या अधिक लंबी ।''(26)

आम पुरुष की भांति नरेश का सामंती सोच चाहता है कि उसकी पत्नी भले ही बाहर सुशिक्षित, चतुर, चुस्त-दुरुस्त और व्यवहार कुशल बनी रहे, लेकिन घर में वह केवल एक गूंगी पत्नी बनकर रहे । लेकिन नरेश की जड़-बुद्धि और प्यार के मामले में बनावटीपन और मामूलीपन के सामने शाल्मली का धैर्य चुकने लगता है । मानसिक उद्विग्नता की स्थिति में वह तलाक के बारे में भी सोचने लगती है । हालांकि तलाक लेने में समर्थ होते हुए भी तलाक नहीं लेती है । एक सुघड़, समझदार और सुसंस्कृत स्त्री का परिचय देते हुए उसे लगता है कि तलाक से समस्याएं समाप्त होने वाली नहीं हैं, उल्टे दूसरी कई समस्याओं का जन्म हो जाएगा । यूं भी तलाक के बाद मौजूदा समाज स्त्रियों के प्रति सहिष्णु और हमदर्द नहीं हो पाता है । हर वक्त उसे सवालों से जूझना पड़ता है - घर में अथवा बाहर । कभी-कभी तो साक्षात सवाल पूछे जाते हैं, पर अक्सर लोगों के चेहरों पर सवाल तैर रह होते हैं, आंखें प्रश्न सूचक होकर निहारती हैं और जब ऐसा घटित होता है तब अंदर तक कहीं छीलता हुआ सा महसूस होता है । पूरा-का-पूरा करीने से लगा हुआ व्यक्तित्व भी रेत के महल के मानिंद भर-भराकर ढह जाता है और रह जाती है बस अपमानित हुई एक काया ।

एक सच यह भी है कि पढ़ी-लिखी, बौद्धिक स्त्रियों से समाज और परिवार भी बड़ी विरोधाभास अपेक्षाएं रखता है । उनसे उम्मीद की जाती है कि जहां वह घरेलू मोर्चो पर अस्तित्वहीन होकर सारा दायित्व निभाये वहीं बाहरी मोर्चे पर भी सफल हो । और दोनों मोर्चो पर कामयाब रहने के बाद संघर्ष के कई नए और विचित्र मोर्चे खुल जाते हैं ।

''शाल्मली'' ऐसे सच को सदाशयता से प्रदर्शित करता उपन्यास है । दरअसल ''शाल्मली'' ही नहीं, नासिरा शर्मा की तमाम रचनाओं में बदलते वजूद का दस्तावेज बड़े मार्मिक ढंग से वर्णित होता है । रचनाओं के वे पात्र जो सामाजिक दबावों में पिसते रहते हैं, उनकी कुलबुलाहट, बेबसी, मजबूरी, विवशता, अकुलाहट व्यापकता में एवं परत-द-परत पन्नों पर उकेरती जाती है, वहीं इन घरों से बाहर आने को इन पात्रों की आतुरता, व्याकुलता और पशोपेश समग्र प्रस्तुति को सर्वांगीण बना देता है । दारुणता और करुणा पाठक के हृदय को व्यथित कर देती है । समाज के दोगले सोच के प्रति कटु वचन बोलने तक को पाठक मजबूर हो जाता है । और यही है नासिरा शर्मा की रचनाओं की सफलता ।

शाल्मली के मुँह से स्त्री-विमर्श की अपनी अवधारणा को नासिरा शर्मा इन शब्दों में व्यक्त करती हैं - ''मैं पुरुष विरोधी न होकर अत्याचार विरोधी हूँ । अत्याचारी का कोई नाम और धर्म नहीं होता, तो भी समूह या इकाई में वह हमारे सामने होता है और उसी अत्याचारी से हमें जूझना है ।''(27) वे मानती हैं कि समस्या केवल पति से निपटने और उससे मुक्त होने से हल होने वाली नहीं है । सही मायनों में स्त्री की मुक्ति और स्वतंत्रता समाज की सोच और स्त्री की स्थिति बदलने में है । लेखिका की यह जीवन दृष्टि स्त्री-विमर्श की प्रखर प्रवक्ता बनी अन्य अनेक लेखिकाओं से अलग कुछ-कुछ प्रतिक्रान्ति समर्थक-सी लगती है, इसीलिये कुछ समीक्षकों को उपन्यास का इस प्रकार अन्त 'एन्टीक्लाइमेक्स' या 'यू टर्न' जैसा भी लग सकता है । पर इसके पक्ष में नासिरा की वह दलील भी विचारणीय लगती है कि विवाह विच्छेद के बाद जो विकल्प स्त्री के सामने होते हैं वे भी तो उसे किसी बेहतर जीवन की आश्वस्ति नहीं देता। 'कुइंया जान' उनका एक चर्चित उपन्यास है लेकिन 'शाल्मली' का भी महत्त्व कम नहीं है । फिर भी यह लोगों का ध्यान आकर्षित करने में असफल क्यों रहा, इस पर विचार होना चाहिये ।

नासिरा शर्मा कृत एक अन्य उपन्यास ''ठीकरे की मंगनी'' (1989) भी स्त्री पात्र को केन्द्र में रखकर लिखा गया उपन्यास है । इस उपन्यास में महरुख नाम की एक स्त्री की संघर्ष यात्रा का चित्रण है जिसकी मंगनी एक टोटके के तहत बचपन में ही ठीकरे से कर दी जाती है । इसके बाद उसे अपने खालाजाद भाई रफत मियां के साथ सारी जिंदगी के लिए बांध दिया जाता है । यहां भी महरुख शाल्मली की भंति नाजों में पली है, लाड़-प्यार में पली है और अपने से गुणों में कमतर रफत मियां को अपनी जिंदगी का आधार समझने लगती है । हर प्रकार से वह स्वयं को रफत के ढांचे में ढालने का प्रयत्न करती है, उसी की खुशी के लिए वह परिवार से बिछुड़कर दिल्ली जाकर पढ़ाई करती है। लेकिन महत्वाकांक्षी रफत का व्यक्तित्व उस वक्त बेनकाब हो जाता है जब वह अमेरिका जाकर किसी और लड़की के साथ बंध जाता है । महरुख इस समाचार से सूखे पत्ते की भांति कंाप कर रह जाती है और यहीं से उसका कायाकल्प शुरु हो जाता है । वह अपनी जड़ें जमाने के लिए प्रयत्नशील हो जाती है और रफत का दिया हुआ खोल उतार कर दिल्ली की जिंदगी से गांव की जिंदगी में, वहां के लोगों में अपने को इस कदर स्थापित कर लेती है कि रफत मियां की वापसी, उनका पछतावा, उनकी क्षमा याचना से भी वह विचलित नहीं होती है । एक उम्र होने के बाद भी वह अपनी सामर्थ्य के बारे में आश्वस्त होकर कहती है - ''एक घर औरत का अपना भी तो हो सकता है, जो उसके बाप और शौहर के घर से अलग उसकी मेहनत और पहचान का हो ।''(28)

औरत के बदलते वजूद का दस्तावेज ''ठीकरे की मंगनी'' उपन्यास चंद सवाल बड़ी

निर्ममता से उछालता है, मसलन घर का सवाल ... औरत-मर्द की बराबरी का सवाल । ये सवाल उपन्यास का केन्द्रीय बिन्दु हैं ।

कितनी विडम्बनापूर्ण स्थिति है हमारे समाज की कि लड़का पैदा हुआ नहीं और लड़की खरीद ली गई - उसकी शादी कर दी गई एक ठीकरे से कि कल मरे यहां लड़का पैदा होगा तो यह लड़की उसी के साथ ब्याही जाएगी । समाज की इस स्थिति पर कटाक्ष से यह उपन्यास लिखा गया है जो रसपूर्ण भी है और भावपूर्ण भी । भाषा और शैली भी काफी उम्दा है । निहायत ही खूबसूरत हिन्दी-उर्दू का, अवधी के मिश्रण के साथ प्रयोग हुआ है । उपन्यास के अंतिम अध्याय में उपदेश और संदेश हैं जो हैं नासिरा शर्मा के स्त्री विमर्श पर संतुलित और विवेकपूर्ण विचार । अंतिम पृष्ठ पर महरुख अपनी मां को सांत्वना देती हुई कहती है ''तो मैंने भी अपनी पसंद की जिंदगी जीने की कीमत अदा की है, मैं अपनी जिंदगी से मुतमईन हूं ।''(29)

एक अनुभवी, परिपक्व, जिंदगी के धूप-छांव से ओतप्रोत तजुर्बेकार व्यक्ति के मुंह से ऐसी बातें निकलती हैं और नासिरा जी ने महिला पात्र के मुंह से यह बात कहलवाकर स्त्री वर्ग को ऊंचाई भी प्रदान की है और पुरुष प्रधान समाज पर करारा व्यंग्य भी किया है ।

नासिरा शर्मा का उपन्यास 'ठीकरे की मंगनी' दो दशक पहले प्रकाशित हुआ था । यह सुखद आश्चर्य है कि आज भी इस उपन्यास में स्त्री-विमर्श का एक विश्वसनीय एवं सार्थक रूप मिलता है । यह उपन्यास स्त्रीवाद के समक्ष कुछ चुनौतीपूर्ण सवाल भी व्यंजित करता है । इसीलिए बहुत से स्त्रीवादी इसके निंदक आलोचक हो सकते हैं । कहने का तात्पर्य यह है कि नासिरा शर्मा स्त्री की यातना, उसके जीवन की विसंगतियों-विडंबनाओं पर सशक्त ढंग से विचार करती हैं । वे सामान्य अर्थों में स्त्रीवादी लेखिका नहीं हैं । वे नारीवाद की एकांगिता, आवेगिता, आवेगात्मकता को पहचानती हैं । नारीवाद की पश्चिमी परंपरा का प्रभाव तथा उसकी सीमाएं नासिरा शर्मा की दृष्टि में है, इसलिए बहुत हद तक वे इन सीमाओं से मुक्त होकर लिखती हैं, उनकी स्त्री संबंधी दृष्टि कृष्णा सोबती, मन्नू भंडारी जैसी लेखिकाओं की दृष्टि के अधिक निकट ठहरती है । ये लेखिकाएं मौलिक, यथार्थवादी ढंग से स्त्री समस्याओं पर विचार करती हैं । इस संदर्भ में इन लेखिकाओं की रचनाएं द्वंद्वात्मकता से युक्त हैं ।

वेद प्रकाश लिखते हैं - ''जीवन की अंत:संबद्धता की उपेक्षा किसी भी प्रकार के लेखन की बहुत बड़ी सीमा हो सकती है । प्रभावशाली स्त्रीवादी और दलित लेखन वह है जिसमें जीवन की जटिलता और परस्पर संबद्धता की अभिव्यक्ति होती है । बुद्धिजीवी या लेखक, सक्रिय राजनीति के नकारात्मक पहलुओं का चाहे जितना उल्लेख करें लेकिन सक्रिय राजनीति की बड़ी शक्ति यह है कि वह अधिक समावेशी-सबको साथ लेकर चलने वाली होती है । आज

की दलित राजनीति इसका सबसे बड़ा प्रमाण है । इस समावेशिता से लेखन को समृद्ध होना चाहिए । स्त्रीवादी एवं दलित लेखन को भी ।''

वस्तुत: नासिरा शर्मा ने 'ठीकरे की मंगनी' के माध्यम से हिन्दी साहित्य को महरुख़ जैसा अद्वितीय एवं मौलिक पात्र दिया है । महरुख़ का जीवन उन स्त्रियों के जीवन का प्रतिनिधित्व करता है जो अपनी मुक्ति को अकेले में न ढूँढ़कर समाज के उपेक्षित, निम्नवर्गीय, संघर्षरत, शोषित पात्रों की मुक्ति से जोड़कर मुक्ति के प्रश्न को व्यापक बना देती है । वह 'मुक्ति अकेले में नहीं मिलती' पंक्ति को चरितार्थ करती है । बहुत बाद में लिखे गए चित्रा मुद्गल के उपन्यास 'आवाँ' की नमिता पाण्डे, महरुख़ की वंशज पात्र है । यह स्त्री-विमर्श का व्यापक, समावेशी रुप है इसीलिए अनुकरणीय भी । 'ठीकरे की मंगनी' उपन्यास के फ्लैप में ठीक ही लिखा गया है कि ''औरत को जैसा होना चाहिए, उसी की कहानी यह उपन्यास कहता है ।'' यह वाक्य औरत को परंपरागत आदर्शवाद की ओर न ले जाकर उसके व्यावहारिक एवं सशक्त रूप की ओर संकेत करता है । उसका स्वयं को समाज की सापेक्षता में देखने का समर्थन करता है । साथ ही पुरुष को जैसा होना चाहिए वैसा होने की माँग भी करता है क्योंकि औरत भी तभी वैसी होगी जैसी उसे होना चाहिए । इन्हीं सब बातों को लेकर चलने वाले महरुख़ की जीवन-यात्रा है । वह जहाँ से आरंभ करती है वह बिन्दु अंत में बहुत व्यापक बन जाता है । जैसे किसी नदी का उद्गम तो सीमित हो लेकिन समुद्र में मिलने से पहले उसका संघर्ष भी है, अनुकूल को मिलाने और प्रतिकूल को मिटाने की प्रक्रिया भी ।

समृद्ध और जन-संकुल ज़ैदी खानदान एक विशाल घर में रहता है जिसके द्वार ऐसे खुलते हैं मानो जहाज़ के दरवाजे खुल रहे हों । चार पुश्तों से इस खानदान में कोई लड़की पैदा नहीं हुई । जब हुई तो सबके दिल खुशी से झूम उठे । उसका नाम रखा गया महरुख़-'चाँद-से-चेहरेवाली । सबकी लाड़ली । दादा तो रोज़ सुबह महरुख़ का मुंह देखकर बिस्तर छोड़ते थे । ज़ैदी खानदान में बाइस बच्चे थे, जिनकी सिपहसलार महरुख़ थी । उसका बचपन कमोबेश ऐसे ही बीता । उसी महरुख़ की मंगनी बचपन में शाहिदा खाला के बेटे रफ़त के साथ कर दी जाए । रफ़त परंपरागत परिवार में पली-बढ़ी, नाजुक महरुख़ को अपनी तरह से ढालना चहता है । क्रांति और संघर्ष की बड़ी-बड़ी बातें करता है, पुस्तकें लाकर देता है । महरुख़ अपने को बदलती तो है लेकिन उसके बदलने की राह और उद्देश्य अलग हैं । वह क्रांति और आधुनिकता की बातें करने वाले लोगों के जीवन में झाँकती है तो काँप उठती है । वहाँ ये मूल्य फैशन अवसरवाद एवं कुण्ठाग्रस्त हैं । रफ़त दिखने को तो रूस का समर्थक है लेकिन पी-एच.डी. करने अमेरिका जाता है । उसका और उसके दोस्तों का

अपना तर्क है, ''पूंजीवादी व्यवस्था देखकर आओ, फिर इन साम्राज्यवादियों की ऐसी-तैसी करेंगे ।''(30)

खुलेपन और प्रगतिशीलता के नाम पर राव जो माँग एकांत में महरुख़ से करता है, उसे वह स्वीकार नहीं कर पाती । वह रवि की दृष्टि में पिछड़ेपन का प्रतीक बनती है लेकिन महरुख़ का तर्क है, ''उसे हैरत होती है कि इस विश्वविद्यालय में भी औरत को देखने वाली नज़रों का वही पुराना दृष्टिकोण है, तो फिर यह किस अर्थ में अपने को स्वतंत्र, प्रगतिशील और शिक्षित कहते हैं ?''(32)

वेद प्रकाश के अनुसार ''नासिरा शर्मा कम्युनिस्ट विचारधारा को मानने वाले कुछ लोगों की सीमाओं और उपभोक्तावाद के दोगलेपन की आलोचना करती है लेकिन वे कम्युनिस्ट विचारधारा की विरोधी नहीं समर्थक हैं, क्योंकि महरुख़ ने अपने सकर्मक जीवन के माध्यम से इसी विचारधारा को सार्थक बनाया । यह भी कह सकते हैं कि वह इस विचारधारा पर चलकर सार्थक पात्र बनी । इसके साथ ही लेखिका इस बात की भी अभिव्यक्ति करती है कि परंपरागत, संस्कारी, धर्म को मानने वाले सभी गैर प्रगतिशील तथा जड़ नहीं होते । इस स्तर पर नासिरा शर्मा अनेक रचनाकारों की तरह अग्निभक्षी या अराजकतावादी नहीं हैं । न ही वे पुराने माने जाने वाले मानवीय मूल्यों की विरोधी लेखिका हैं । बल्कि वे परंपरा और मूल्यों को साथ रखकर सहज जीवन में परिवर्तन के बिंदुओं को पकड़ती हैं । परिवर्तन का यह रुप अधिक स्वाभाविक एवं सहज है, साथ, ही अनुकरणीय और आशा जगने वाला भी । रचनाकार सामाजिक विसंगतियों का उद्‌घाटन करते हुए परिवर्तन की आशा की अभिव्यक्ति करता है लेकिन वह परिवर्तन यथार्थवादी-व्यावहारिक होना आवश्यक है । 'ठीकरे की मंगनी' में जिस परिवर्तन को सहज-गति से होते हुए दिखाया गया है वह ऐसा ही है । यह भी उल्लेखनीय है कि हमारे समय में, जहाँ निराशावाद एक फैशन और षड्‌यंत्र है, जिसकी एक वैचारिकी बन गई-ऐसे में नासिरा शर्मा एक आशापूर्ण प्रतिपक्ष रखती है ।''(33)

नाजुक, कोमल, छुई-मुई-सी महरुख़ का जीवन भी बदला, इस बदलने में पुस्तकों का योगदान भी रहा । वह ऐसा बदला कि संघर्ष की बातें बढ़-चढ़कर करने वालों के जीवन पर उसने प्रश्न चिन्ह लगा दिया । रफ़त साम्यवाद को किताबों और भाषणों में ढूँढ़ता रहा, महरुख़ ने उसे एक गाँव में रहकर ढूँढ़ लिया । 'सीधी-सादी ज़िन्दगी, न कुछ पाने की तमन्ना, सिर्फ़ देने और बनाने की ख़्वाहिश ।' वह गाँव निम्नवर्गीय बच्चों को स्कूल और घर में परिश्रम से पढ़ाती है । उनके परिजनों को शोषण से मुक्ति के रास्ते बताती है । गाँव की ग़रीब स्त्रियों के इलाज के लिए लेडी डॉक्टर विमला को प्रेरित करती है । अविवाहित रहने का रास्ता चुनने वाली महरुख़ जीवन भर किसी भी अभाव से ग्रस्त नहीं रही, क्योंकि उसने

दूसरों को बहुत कुछ दिया । उसका परिवार बहुत बड़ा हो गया जिसमें अनेक जातियों, मुख्यत: धोबी, पासी, नाई आदि जातियों के लोग हैं । महरुख़ इन्हें सिखाती है कि 'अंधेरे का ताला' कैसे खोला जाता है । वह इन परिवारों के लिए घर की बड़ी बूढ़ी बन गई । उसने इन्हें नींद से उठाकर नई चेतना दी । अपनी सारी संभावनाएं जन-जीवन को दे दी, ''उसने जो कुछ जाना था, समझा था, सीखा था, वह किताब में लिखे दूसरों के अनुभवों के ज़रिए नहीं, बल्कि लोगों के बीच एक हवा में साँस लेकर । तभी वह इंसानों को उनके मज़हब, सवाल-जवाब, रंग और लिबास से न पहचानकर उनके सुख-दुख से पहचानने लगी थी।''(34)

स्पष्ट है कि लेखिका ने महरुख़ के माध्यम से वास्तविक साम्यवादी होने को अभिव्यक्ति दी है । साम्यवादी विचारधारा एक व्यापक, समावेशी मानवीय विचारधारा है जिसमें राजनीतिक पार्टियों के कुछ मुद्दों से अधिक महत्त्व, जटिल असीम जीवन का है ।''(35)

महरुख़ के व्यक्तित्व में भारतीय परिवेश की संश्लिष्टताएं एवं अच्छाइयाँ भी मिलती हैं । उसका रफ़त से विवाह के लिए मना कर देना, ठीकरे की मंगनी तोड़ देना विचारधारा से प्रेरित कम, स्वाभाविक स्वाभिमान की अभिव्यक्ति अधिक है । भारतीय इतिहास और साहित्य में ऐसी परंपरा विद्यमान है जहाँ स्त्री ने पुरुष के समक्ष अपनी सत्ता को स्थापित करने का साहस दिखाया है । डॉ. नित्यानंद तिवारी ने इसे 'पुरुषार्थ' के समक्ष 'स्वार्थ' की संज्ञा दी है । महरुख़ में इस परंपरा का अंश है जिसके कारण वह ऐसा फ़ैसला लेती है और इस फ़ैसले पर ज़ैदी खानदान की औरतों को अबूझ गर्व की अनुभूति होती है - ''परम्परागत खानदान के लिए यह हादसा जितना शर्मनाक था, उतना ही हैरतअंगेज़ भी कि औरत मर्द को ठुकरा दे ? ग़म की पर्तों और फ़िक्र की घटाओं के बीच कहीं इस बात का दबा-दबा गुरूर भी था । जैसे समझकर भी कोई समझ नहीं पा रहा था कि इस ग़म का तेवर अलग क्यों है ?''

महरुख़ ने रफ़त के साथ अपने भावी जीवन के स्वप्न देखे । रफ़त ने उसकी भावनाओं तथा विश्वास को कुचल दिया । महरुख ने रवि जैसे व्यक्ति का असली रूप भी देखा । इन दोनों 'मर्दों' को महरुख़ ने ठुकराया । लेकिन वह मर्दों को लेकर कोई एकांगी समाज नहीं बनाती । व्यक्तिगत अनुभवों के आधार पर एकांगी समाज की स्थापना उसका एजेंडा नहीं है । तलाकशुदा रचना, बाल-विधवा सुलोचना और रफ़त के सामने वह स्त्री-पुरुष के संतुलित जीवन या बराबरी के आधार पर बने खूबसूरत समाज की कारका करती है । रफ़त के पूछने पर कि, ''क्या तुम्हारे दिल में मर्द के लिए नफ़रत पैदा हो गई है ?'' वह उत्तर देती है, ''नहीं, बिल्कुल नहीं, औरत के सारे क़रीबी जज़्बाती रिश्ते मर्द से ही होते हैं । बाप, भाई, शौहर, महबूब, बेटा जैसी अहमियत को नकार कर औरत कहाँ जाएगी रफ़त का नहीं है,

बल्कि सवाल यह उठता है कि मैं आपके ख़्वाबों में बसे घर की मालकिन बन सकती हूँ या नहीं । मुझे लगता है, यह नामुमकिन है ।''(36) रफ़त के ख़्वाबों का घर क्या है ? वह ऐसा घर है जिसे बहुत तेज़ दौड़कर सबको छोड़कर बनाया गया है । ऐसा घर महरुख़ को मंजूर नहीं ।

जिस समर्पण, भावुकता और संवेदनशीलता को औरत की कमज़ोरी मान लिया गया है, उनके प्रदर्शन का महरुख़ तिरस्कार करती है । वह अपने को लगातार मज़बूत बनाती जाती है । इन भावों को वह एक नई दिशा देती है । वह उस स्थिति का भी मुकाबला बड़ी बहादुरी से करती है जब रफ़त उस पर पुरुषों द्वारा गढ़ा गया चिर-परिचित आरोप लगता है - ''अगर महरुख़ की ज़िन्दगी में मेरे अलावा कोई और है तो मैं खुशी से अलग होता हूँ, वरना इस इंकार की वजह मेरी समझ में नहीं आ रही है ।''(37)

यहाँ पर भी रफ़त की कलई खुल जाती है । यदि महरुख़ उसके कहे अनुसार करे तो सच्चरित्र है नहीं तो उसके जीवन में कोई और पुरुष है । इस ब्रह्मशास्त्र का प्रयोग वह ज़ैदी खानदान के लोगों के सामने जान-बूझकर करता है । जिसका उत्तर महरुख़ यह कहकर देती है - ''आखिरी बार अब मैं सबके सामने, खासकर, अब्बू मैं आपसे कह रही हूँ कि रफ़त साहब सिर्फ़ मेरे बड़े भाई हैं, बस ।'' चेहरे की तमतमाहट, आँखों से टपकता फैसला, खड़े होने का अन्दाज़ और आवाज़ में आत्मविश्वास, इन सबने पलभर में ही मसले को हल कर दिया था ।''(38)

नासिरा शर्मा के लेखन की बजाय उनके कुछ तथाकथित वकतव्यों को लेकर गत चंद महीनों में कुछ विवाद हिंदी साहित्य - जगत में देखने - सुनने को मले । तथाकथित इसलिए कि उन वक्तव्यों के बारे में लेखिका ने पुरजोर शब्दों में खंडन किया है । नासिरा शर्मा बागी लेखक रही हैं । हिम्मती व जिजीविषा से भरपूर एक कद्दावर लेखिका रही हैं । इसलिए गाहे - बगाहे चर्चा में रहती हैं । अलबत्ता यह मानना पड़ेगा कि जिस साहस से उन्होंने मुस्लिम देशों का भ्रमण कर वहां की महिलाओं और समाज की नाटकीय स्थिति का वर्णन अपनी चंद चर्चित पुस्तकों ('सात नदियां एक समुंदर', 'जहां फव्वारे लहू रोते हैं', 'मरजीना का देश - इराक') में बेबाकी से किया है, व बेबाकीपन बीबीसी, सीएनएन जैसे शीर्ष प्रसारण-प्रकाशन संस्थान के वरिष्ठ पत्रकार, युद्ध संवाददाता ही कर सकने का माद्दा रखते हैं ।

नासिरा शर्मा ने महिला कथाकार होते हुए ईरान की क्रांति के दौरान वहां जाकर जिस साहस और जिजीविषा के साथ कार्य किया और 'सात नदियां एक समंदर' तथा 'जहां फव्वारे लहू रोते हैं' जैसी कृतियां गढ़ीं, उसकी सराहना करना भी हम भारतीयों को गवारा नहीं । किसी विदेशी लेखक ने सही कहा है कि भारतीय एक-दूसरे की प्रशंसा करने में काफी

कंजूस और संकोची होते हैं । हमें यह नहीं भूलना चाहिए कि नासिरा शर्मा ने ईरान के साथ इराक पर कार्य किया, अफगानिस्तान और पाकिस्तान का दौरा किया और उन्होंने इन मुस्लिम देशों की महिलाओं, पुरुषों, बच्चों और बूढ़ों की दयनीय स्थितियों का जीता-जागता चित्रण प्रस्तुत किया । उनकी 'मरजीना का देश-इराक' पढ़ा जाना चाहिए जो सामयिक, ऐतिहासिक और सामाजिक लेख संग्रह है और जो पृष्ठ - दर - पृष्ठ रोचक व उल्लेखनीय होने के साथ-साथ साहसिक लेखन का सबूत है । मुस्लिम देशों में व्यक्ति की जिंदगी कितनी, गुलामी भरी और नारकीय है, यह इस बागी मुस्लिम कथाकार ने बेसाख्ता लिखा है । मुस्लिम होते हुए भी कोई उन्होंने भी पक्षधरता नहीं दिखाई । दरअसल आरोप लगाने से पूर्व रचनाकार की कृतियों को भली-भांति पढ़ा-समझा जाना चाहिए ।

इराक की पृष्ठभूमि राजनीतिक, सामाजिक और सांस्कृतिक पृष्ठभूमि को अपनी नजरों से देखकर, उनमें स्वयं को आत्मसात कर लिखी गई कृति है 'मरजीना.... ' । नासिरा इससे पूर्व ईरान की पृष्ठभूमि पर लिखे जाने को लेकर जानी जाती रही है । वह स्वयं कहती है कि मैं ईरान को लेकर कुछ लिखने के अंतिम दौर में थी, तथ्य और कागजात, नोट्स आदि संजोकर रखे हुए थे । मैं काफी कुछ लिख भी चुकी थी कि इराक जाने का न्यौता आया । विश्व भर के लेखक, पत्रकारों को इराक आने का निमंत्रण था । मैंने तो निमंत्रण पत्र दराज में डाल दिए कि उपन्यास लिखने की एकाग्रता भंग न हो वह भी तब जब रचनाकार लिखने के आखिरी चरण में हो । पर मेरे पति ने कहा कि 'यह अच्छा अवसर है । अब तक तुमने ईरान पर काम किया है । पर सिक्के के दूसरे हिस्से को भी देखना-चाहिए । तुम लेखक-पत्रकार हो । तुम्हें दोनों सिरों को देखना चाहिए, अन्यथा पूर्वाग्रह से ग्रसित होने का आरोप लग सकता है ।' मैंने फिर अपना निर्णय बदला । सोचा, चलो इराक को देखूं व समझूं । और नासिरा ने इराक का दौरा किया । वहां की सरकारी बैठकों में नुमाइंदगी की, हिस्सा लिया, युद्धग्रस्त इलाकों में डरते हुए-सहमते हुए पर हिम्मत दिखाते हुए वह घूमी, विभिन्न वर्गों के लोगों से मिली, परिवारों में जाकर साथ बैठकर गप-शप किए, उन्हें-उनकी पृष्ठभूमि, उनकी सोच को जानने की कोशिश की । रिपोर्ताज शैली में लिखे गए इस लेख-संग्रह में संपन्न देश अमेरिका की धौंस को नहीं सहने वाले इराक, इराक वासियों और सद्दाम हुसैन की हिम्मत, हौसले और जिंदादिली की तस्वीर प्रस्तुत की गई है । उन्होंने तब अमेरिका की आलोचना की जब अमेरिकी दबाव शिखर पर था । 1980 से लेकर 2003 तक इराक ने क्या झेला, इसका मुख्तसर बयान लेखिका ने इस पुस्तक में ईमानदारी से बेबाक लहजे में दिया है । हाल के 25-26 वर्षों में इराक ने जो कुछ झेला है उसे दुनियाभर के लोगों ने देखा-पढ़ा-सुना है । वर्ष 2006 में ईद के मुबारक मौके पर सद्दाम हुसैन को फांसी दे दी गई । इससे भी इराक के बारे में, सद्दाम हुसैन के बारे में, उन्हें चाहने और न चाहने वालों के बारे में लोगों की

उत्सुकता बढ़ी है । ऐसे में नासिरा की इस पुस्तक की अहमियत ऊंची हो जाती है । कारण कि इसमें यह जानने को मिलता है कि सद्दाम ने कैसे निरंतर प्रतिकूल परिस्थितियों में रहते हुए इराक को तरक्की करता हुआ, प्रगतिशील बनाया और इराक वासियों को फिक्रमंद बने रहने का हुनर सिखाया । इराक ने तीन बड़ी लड़ाइयां झेलीं 1980 से 2003 के मध्य । बावजूद इसके इराक के बगदाद, बसरा आदि शहरों को देखकर कहीं खंडहर, ध्वंस के निशान देखने को नहीं मिलते; क्योंकि लेखिका के अनुसार उधर युद्ध चल रह होते हैं, इधर इमारतों की मरम्मत हो रही होती है ।

''बगदाद कई बार उजड़ा और कई बार बसा, मगर हर तबाही के बाद वह उस संस्कृति एवं सभ्यता की बुनियाद पर दोबारा शादाब हो गया । लेखकों ने कलम-दवात में डुबोये और कागज फिर अक्षरों से रंगे जाने लगे । मदरसों और खानकाहों की दीवारें उठने लगीं और संगीत में डूबी हवा हदला के पानी पर मचलती लहरों से अठखेलियां करने लगीं । इंसानों ने फिर बच्चों को जन्म देना शुरु कर दिया और कलाओं में डूबा बगदाद फिर बस गया ।'(39)

लेखिका ने यह पुस्तक वर्ष 2003 में लिखी जब सद्दाम दुनिया की महाशक्ति अमेरिका से जूझ रहे थे । लेखिका ने तब सद्दाम की प्रशंसा की । हिम्मत से यह लिखा कि सद्दाम और इराक दोनों ने समाज की, महिलाओं की तरक्की को हमेशा तरज़ीह-तवज्ज़ोह दी । अरब देश भी मुस्लिम देश है लेकिन वे सिर्फ मक्का-मदीना में आने वाले हाजियों की फिक्र रखने तक सीमित रहना चाहते हैं ताकि आने वाले पिछड़े रहें और उनकी दुकान चलती रहे । पाकिस्तान, तुर्की भी मुस्लिम देश हैं, लेकिन वहां की महिलाओं की नारकीय स्थिति किसी से छुपी नहीं है । ऐसे में इराक में महिलाएं बुरका नहीं पहनतीं, घरों से बाहर निकलती हैं, ऊंचे पदों पर नौकरियां करती हैं, प्रेम विवाह करने की आजादी रखती हैं, इकलौती लड़की को मां-बाप की मृत्यु के बाद पूरी जायदाद मिलती है, प्रसूति महिला को कुल 92 दिनों की दफ्तर से छुट्टी मिलती है, औरत यदि आर्मी में आती है तो उसकी पदवी सिर्फ अफसर की रहती है, श्रम कानून के अनुसार औरत और मर्द को बराबरी का दर्जा दिया गया है, आदि । इराक भी इस्लाम का अनुयायी है लेकिन दूसरे मुस्लिम देशों जैसा पिछड़ापन, रुढ़िवादिता, कट्टरवाद एवं दकियानूसीपन यहां के लोगों में नहीं है । इसलिए लेखिका ने सीधे-सीधे स्वीकारा है कि इराकी औरत का वर्तमान सुनहरा है और यहां के लोग विशेष विचार के अधीन नहीं हैं । वे सम्मान के साथ जीना चाहते हैं और जीते हैं, बात-बात में हंसना उनकी आदत है जो मुझे प्रिय लगी । इसलिए वे सद्दाम हुसैन को पसंद करते हैं । दरअसल लेखिका ने आज से पांच साल पूर्व ही सद्दाम और इराक को पहचान लिया था और उसकी सही

तस्वीर पाठकों के समक्ष रख दी । आज दुनिया के ज्यादातर देशों में लोग सद्दाम की सराहना कर रहे हैं उन्की मृत्यु के उपरांत । फांसी देने के समय और तरीके ने लोगों की हमदर्दी को बढ़ाया । पर 'मरजीना का देश - इराक' लिखते वक्त इराक की नब्ज पहचानना लेखिका की दूरदर्शिता और अनुभवी होने का सबूत देता है । 'बगदाद' का अर्थ होता है - 'शांति का शहर' । यह शहर मस्जिदों का शहर है । यहां चारों और गुलाब के फूल हैं - खूबसूरत-बड़े बड़े । युद्ध की विभीषिका में भी फूलों का खिलना यहां के लोगों की शांति प्रियता का मजमून बताता है । इराकियों का संगीतप्रेमी होना और भारतीयों के प्रति प्रेम-भाव रखना शुरु से दोनों देशों को सांस्कृतिक दृष्टि से जोड़कर रखा है । लेखिका ने विख्यात इराकी संगीतकार मुनीर बशीर के बारे में लिखा है और उनसे बातचीत को प्रकाशित किया है । वे कहते हैं कि इराकी 'मकाम' और हिंदी 'राग' एक ही हैं । इराकी संगीत में 146 राग हैं जिनमें से 50-60 का प्रयोग होता है और इसके आधे राग हिंदी राग हैं । इराक में भी लोकगीत हैं । यानी, इराक सांस्कृतिक देश है । परंपराओं और लोककलाओं को जीवित रखते हुए मुस्लिम कट्टरपंथियों के साथ-साथ इन्हें साथ देने वाले अमेरिका से लड़ने वाले इस देश और देशवासियों की सराहना करनी ही होगी । इराकी महसूस करते हैं कि अमेरिका ने ईरान - इराक को आपस में भिड़ाया ताकि उसके हथियार बिकें । इराकी यह भी महसूस करते हैं कि अमेरिका यही चाहता है कि इराकी पिछड़े और रुढ़िग्रस्त रहें । तरक्की नहीं करें । करें तो अमेरिकी शर्तों और नियमों पर ।

यह उपन्यास उल्लेखनीय है विशेषकर सद्दामोत्तर युग में क्योंकि लेखिका ने तब लिख दिया था कि इराक के बहाने अमेरिका का पतन शुरु हो गया है । इराक के सिलसिले से जो अमेरिका के नैतिक मूल्यों की हार हुई है वह अराजकता के इतिहास में भले ही सुनहरे अक्षरों में लिखी जाए मगर मानवीय एवं आधुनिक कहे जाने वाले इतिहास में सदा काले अक्षरों में याद की जाएगी । आज अमेरिका जिसको विजय कह रहा है दरअसल वह उसके पतन का पहला कदम और पराजय की उद्घोषणा है । अमेरिकी डॉलर कमजोर हो रहा है और सूचना प्रौद्योगिकी के क्षेत्र में उसकी तूती समाप्त हो गयी है । उसने विश्व के लगभग सभी देशों की जनता के दिलों में नफरत का गहरा बीज बो दिया है । ये शब्द आज इतने प्रासंगिक हैं कि सामान्य व्यक्ति भी समझ सकता है । आम आदमी यह समझने लगा है कि अमेरिका अपनी सरपरस्ती में छोटे देशों, खास तौर से तेल के कुंओं वाले देशों यथा, कुवैत, ईरान और इराक को अपने अधीन रखना चाहता है ताकि उसका एकछत्र राज हो और दूसरे छोटे-बड़े सभी देश हर वक्त मदद के लिए उसके दरवाजे पर खड़े रहें ।

ईरान का अध्ययन करने के उपरांत 'नासिरा' ने 'जहां फव्वारे लहू रोते हैं' लिखा । जरा

उनके पत्रों को पढ़ने और दिल से समझने की कोशिश करें हमारे लेखक बंधु गण जिनमें लेखिका ने ईरान क्रांति को उकेरा है । जहां लेखिका ने ब्रिटेन को ईरानी क्रांति का बैकबेंचर माना है, ईरानी क्रांति के जरिए अफगानिस्तान की पीड़ा को समझा है, फिलिस्तीन समस्या को भी समझने की ईमानदार कोशिश की है और पाकिस्तान स्थित फूलों के शहर पेशावर के बारे में लिखा है कि इस शहर ने बढ़ती जनसंख्या, घर-घर हथियारों के जमा होने और सड़क पर हथियार-बंद लोगों के घूमते रहने के बावजूद अपने पुरकसून माहौल और मेहमाननवाजी को दर किनार नहीं किया है ।

'सात नदियाँ : एक समुन्दर' में आज के ईरान की कथा कही गयी है । ईरान की जनता ने रजाशाह पहलवी के खिलाफ बगावत करके उनकी तानाशाही से मुक्ति प्राप्त करनी चाही थी, किन्तु इस बगावत से उसे लक्ष्य की प्राप्ति नहीं हुई । शाह के जाने के बाद इस्लामी गणतन्त्र के नाम पर अयातुल्ला खुमैनी ने जनता पर एक दूसरे प्रकार की तानाशाही लाद दी । प्रस्तुत उपन्यास में लेखिका ने इस धार्मिक तानाशाही के दबाव में पिसती हुई जनता का बड़ा ही सजीव चित्र खींचा है । लेखिका ने आम लोगों के दु:ख-दर्द को मानवीय दृष्टि से देखा है और उसे पूरी सहानुभूति दी है ।

ईरान पर 'शामी कागज़' कहानी संग्रह भी प्रकाशित हुआ है । 'सात नदियां एक समुंदर' पुस्तक से पहले उनके लेख अफगानिस्तान पर छपने लगे और उनकी जान का खतरा बढ़ गया । बेहद प्यारे सोवियत जोड़े की दोस्ती टूट गई । उसका दिल दुखा और ऊपर से उसके नजदीकी जानने वाले ने उसे फटकार लगाई कि मुझे पता था, आप 'कनफ्यूज्ड' राइटर हैं । याद रखें, आपके इस काम के बाद हमारी दोस्ती खत्म । उनको हार्ट अटैक हो गया और उसका दिल बेहद मजबूत । दु:ख था सिर्फ इस बात पर कि लेखक समय से बहुत पहले की बात कहता है, उसे लोग समझते थे, मगर आज सियासतदाँ जो कहता है, वही सच माना जाता है । जब गोर्की ने पेरोस्त्रोइका और ग्लास्नोस्ति पर बात शुरु की तो उन सज्जन की तरह कितने लोग इस नई जागृति पर चौंके, उसे सदी का सबसे बड़ा आदमी कह उठे । बहरहाल उसकी पुस्तक पर नकारात्मक लेबिल कई संस्थानों में लगा । ऐसी रिपोर्ट के कारण खरीददारी बंद हो गई । मगर सियासत ने जब एक जोरदार अँगड़ाई ली तो वही किताब बाजार में अपना सफर तय करने लगी और यह बात साबित हो गई कि सियासत का साथ देने वाला कलमकार लेखक नहीं होता । लेखक वह होता है जो आने वाले कल की बात करे ।

दरअसल नासिरा ने इराक के पूर्व ईरान पर इतना सब कुछ लिखा कि एक समय ऐसा भी आया जब नासिरा की कृतियों से नावाकिफ लोग भी उनका नाम सुनकर एका एक पूछ बैठते थे - 'वही नासिरा शर्मा, ईरान वाली' । लोग उन्हें ईरान एक्सपर्ट मानते थे ।

एक बार अंतरराष्ट्रीय धार्मिक सम्मेलन का दावतनामा उसे ईरान एक्सपर्ट के रूप में जब इराक से मिला तो एकाएक वह घबरा गई । उसका दिल नहीं चाह रहा था । मगर वहाँ जाकर उसका भ्रम दूर हुआ कि हर अरब देश नफरत का पात्र नहीं है । इराक की सभ्यता ही तो थी जिसने इंसान को कलम-कागज देकर लिखने की कला सिखाई । हमुराबी ने संसार का पहला लिखित कानून दे एक व्यवस्थित जीवन - पद्धति दी । उसी दजला-फरात नदी के किनारे अधिकार की जंग एक धर्म का रूप ले बैठी ।

उस अंतरराष्ट्रीय धार्मिक सम्मेलन में पाँच सौ मौलवियों के बीच वह अकेली औरत थी । उसके नाम को लेकर पाकिस्तानी पत्रकार और मौलवी अन्य भारतीयों का जीना दूभर कर रहे थे कि इसी कीमत पर वहाँ मुसलमान जिंदा हैं ? रमादी कैंप में ईरानी युद्धबंदी बच्चों से मिलने का अवसर उसे मिला और उसके द्वारा लिए गए इंटरव्यू पर फ्रेंच टी.वी. ने एक सात मिनट की फिल्म बनाई । यह फिल्म देख यू.एन.ओ. ने खुमैनी के अभी तक इंकार करने पर कि यह युद्धबंदी बच्चे ईरानी नहीं, उन्हें बच्चों को वापस लेने पर मजबूर किया । फिलिप को इस फिल्म के बाद 'लीमोंड' का संपादक बनने का प्रस्ताव मिला । दूसरी फिल्म जर्मन टी.वी. में नवीना सुंदरम ने बनाकर भूरि-भूरि प्रशंसा ली, मगर उस (ईरान एक्सपर्ट) को क्या मिला ? सिर्फ शंकित घूरती आँखें कि आखिर वह लड़ते-लड़ते सरहद पार क्यों निकल जाती है ? वास्तव में उसकी सरहद थी क्या ? आखिर उसे सारे इंसान अपने जैसे क्यों लगते हैं ?

उसकी लेखनी पढ़ यदि कोई कह उठता, ईरान पर बहुत लिखा, उसे छोड़ो, तो उसका मुँह लाल हो जाता है जैसे कोई कह रहा हो कि अपमान के घूँट शरबत बनाकर पी लें, मगर क्यों ? उन्हीं दिनों उसका उपन्यास 'ठीकरे की मंगनी' पूरा हुआ और 'पत्थर गली' कहानी-संग्रह के प्रकाशक को दिया और तीसरा उपन्यास 'शाल्मली' लिखने में डूब गई । कुछ करणों से 'शाल्मली' पहले छपा और जब वह प्रेस से बाहर आया तो वह अफगानिस्तान में मौत का पीछा कर रही थी ।

अफगानिस्तान पहुँचकर उसे उस ईरानी गुरिल्ला का वाक्य याद आया था कि आप ईरान पर काम करेंगी ? अगर लेनिन भी कब्र से उठकर आ जाएँ तो इस बिखराव को नहीं समेट पाएँगे । बात वास्तव में अफगानिस्तान पर सच्ची महसूस हो रही थी । ईरान पर काम करना कितना आसान था । जिस वर्ष वह अफगानिस्तान गई थी वह उस क्रांति का सबसे खतरनाक वक्त था, बहरहाल उसे देखकर सोवियत पत्रकार ने कहा था कि 'अजीबोगरीब औरत हैं आप, इतिहासकार न होकर भी आप समय की धड़कन को पकड़ना चाहती हैं ? किसी दूसरे ने कहा कि 'आप लेखकों के बीच मदर टेरेसा हैं मगर थोड़ी-सी भिन्न, वे केवल सेवा करती हैं मगर आप घायलों की कलम से सेवा कर, मुँह से उनके अधिकारों के लिए लड़ती भी हैं ।

तो फिर शत्रुता से घबराती क्यों हैं, वह आपका हिस्सा है ?'(39)

नासिरा स्वयं कहती हैं (जहां फव्वारे लहू रोते हैं - दो शब्द) -'एक ग़लतफ़हमी जो अक्सर लोगों को मेरे बारे में है जिसमें डॉक्टर रामविलास शर्मा सरीखे विद्वान भी शामिल हैं कि मैं ईरानी हूँ और बी.बी.सी. लन्दन वाले मार्क टुली की तरह भारत प्रेम एवं पेशे के चलते हिन्दुस्तान में रह गई हूँ । उनकी बातें सुनकर हँसती भी हूँ और ताज्जुब भी करती हूँ कि क्या वास्तव में राहुल सांकृत्यायन को लोग भूल गए हैं जिन्होंने ईरान पर विस्तार से काम किया या फिर रेणु को जो नेपाल क्रान्ति को देखकर बौद्धिक स्तर पर उद्वेलित हो उठे थे ?''(40)

'जहां फव्वारे लहू रोते हैं', कृति का शीर्षक ही दिमाग को सोचने पर मजबूर कर देता है । फव्वारे तो सुकून देते हैं, शांति और शीतलता का प्रतीक होते हैं । ईरान का सौंदर्य प्रकृति नहीं, वहां के लोग हैं- वात्सल्य और स्नेह से भरे हुए लोग भारतीय अपनी भावना को छुपाना मर्यादा समझते हैं मगर वहाँ मर्यादा-पालन का अर्थ था अपनी भावना को व्यक्त करना । उदाहरण के रूप में यदि किसी ने आपको चाय की प्याली थमाई तो आपको झट कहना पड़ेगा कि तुम्हारे हाथ दु:खें न और जिसने प्याली थमाई है वह फौरन कहेगा कि आपका मुँह और सर दर्द न करें । यही नहीं, बल्कि इससे आगे देखें कि अगर किसी ने कहा कि आपका यह जेवर बड़ा खूबसूरत है तो वह फौरन शुक्रिया के साथ यह वाक्य कहेगी, श्रीमती जी आपकी आँखें सुन्दर हैं । लेकिन ईरान में जहां भावनाओं को व्यक्त करना संस्कृति रहा है, वहां युद्ध की विभीषका और क्रांति के बिगुल ने सब कुछ तबाह कर दिया । तेल की धरती पर बह चली रक्त की धार!

सर्व गड़ गड़ गए

फव्वारे लहू रोते हैं

ख़ाक हुई बाग़ में

क्या क्या न हुआ मेरे बाद (41)

नासिरा शर्माने महिला कथाकार होते हुए ईरान की क्रांति के दौरान वहां जाकर जिस साहस और जिजीविषा के साथ कार्य किया और 'सात नदियां एक समंदर' तथा 'जहां फव्वारे लहू रोते हैं' जैसी कृतियां गढ़ीं, वह सराहनीय है । नासिरा शर्मा ने ईरान के साथ इराक पर कार्य किया, अफगानिस्तान और पाकिस्तान का दौरा किया और उन्होंने इन मुस्लिम देशों की महिलाओं, पुरुषों, बच्चों और बूढ़ों की स्थितियों का जीता-जागता चित्रण प्रस्तुत किया । उनकी 'मरजीना का देश-इराक' पढ़ा जाना चाहिए जो सामयिक, ऐतिहासिक

और सामाजिक लेख संग्रह है जो पृष्ठ - दर - पृष्ठ रोचक व उल्लेखनीय है । मुस्लिम देशों में व्यक्ति की जिंदगी कितनी, गुलामी भरी और नारकीय है यह इस बागी मुस्लिम कथाकार ने बेसाख्ता लिखा है ।

इराक की पृष्ठभूमि राजनीतिक, सामाजिक और सांस्कृतिक पृष्ठभूमि को अपनी नजरों से देखकर, उनमें स्वयं को आत्मसात कर लिखी गई कृति है यह । नासिरा इससे पूर्व ईरान की पृष्ठभूमि पर लिखे जाने को लेकर जानी जाती रही है । वह स्वयं कहती है कि ''मैं ईरान को लेकर कुछ लिखने के अंतिम दौर में थी, तथ्य और कागजात, नोट्स आदि संजोकर रखे हुए थे । मैं काफी कुछ लिख भी चुकी थी कि इराक जाने का न्यौता आया । विश्व भर के लेखक, पत्रकारों को इराक आने का निमंत्रण था । मैंने तो निमंत्रण पत्र दराज में डाल दिए कि उपन्यास लिखने की एकाग्रता भंग न हो वह भी तब जब रचनाकार लिखने के आखिरी चरण में हो । पर मेरे पति ने कहा कि 'यह अच्छा अवसर है । अब तक तुमने ईरान पर काम किया है । पर सिक्के के दूसरे हिस्से को भी देखना-चाहिए । तुम लेखक-पत्रकार हो । तुम्हें दोनों सिरों को देखना चाहिए, अन्यथा पूर्वाग्रह से ग्रसित होने का आरोप लग सकता है ।''[42] मैंने फिर अपना निर्णय बदला । सोचा, चलो इराक को देखूं व समझूं । और नासिरा ने इराक का दौरा किया । वहां की सरकारी बैठकों में नुमाइंदगी की, हिस्सा लिया, युद्धग्रस्त इलाकों में डरते हुए-सहमते हुए पर हिम्मत दिखाते हुए वह घूमी, विभिन्न वर्गों के लोगों से मिली, परिवारों में जाकर साथ बैठकर गप-शप किए, उन्हें-उनकी पृष्ठभूमि, उनकी सोच को जानने की कोशिश की । रिपोर्ताज शैली में लिखे गए इस लेख-संग्रह में संपन्न देश अमेरिका की धौंस को नहीं सहने वाले इराक, इराक वासियों और सद्दाम हुसैन की हिम्मत, हौसले और जिंदादिली की तस्वीर प्रस्तुत की गई है । 1980 से लेकर 2003 तक इराक ने क्या झेला, इसका मुख्तसर बयान लेखिका ने इस पुस्तक में ईमानदारी से बेबाक लहजे में दिया है । हाल के 25-26 वर्षों में इराक ने जो कुछ झेला है उसे दुनियाभर के लोगों ने देखा-पढ़ा-सुना है । पिछली ईद के मुबारक मौके पर सद्दाम हुसैन को फांसी दे दी गई । इससे भी इराक के बारे में, सद्दाम हुसैन के बारे में, उन्हें चाहने और न चाहने वालों के बारे में लोगों की उत्सुकता बढ़ी है । ऐसे में नासिरा की इस पुस्तक की अहमियत ऊंची हो जाती है । कारण कि इसमें यह जानने को मिलता है कि सद्दाम ने कैसे निरंतर प्रतिकूल परिस्थितियों में रहते हुए इराक को तरक्की करता हुआ, प्रगतिशील बनाया और इराक वासियों को फिक्रमंद बने रहने का हुनर सिखाया । इराक ने तीन बड़ी लड़ाइयां झेलीं 1980 से 2003 के मध्य । बावजूद इसके इराक के बगदाद, बसरा आदि शहरों को देखकर कहीं खंडहर, ध्वंस के निशान देखने को नहीं मिलते; क्योंकि लेखिका के अनुसार उधर युद्ध चल रह होते हैं, इधर

इमारतों की मरम्मत हो रही होती है ।

''बगदाद कई बार उजड़ा और कई बार बसा, मगर हर तबाही के बाद वह उस संस्कृति एवं सभ्यता की बुनियाद पर दोबारा शादाब हो गया । लेखकों ने कलम-दवात में डुबोये और कागज फिर अक्षरों से रंगे जाने लगे । मदरसों और खानकाहों की दीवारें उठने लगीं और संगीत में डूबी हवा दजला के पानी पर मचलती लहरों से अठखेलियां करने लगीं । इंसानों ने फिर बच्चों को जन्म देना शुरु कर दिया और कलाओं में डूबा बगदाद फिर बस गया ।'(43)

ईरान और ईराक में कठिन समय में रहकर इन देशों का भ्रमण और अध्ययन इतनी शिद्दत से लेखिका करती गई गरज कि उसे वतन की याद भी आती रही और खत व फोन भी आते रहे । पर यह कथन उसमें पूरे समय बाबस्त रहा -

इमां मुझे रोके हैं, तो खींचे हैं मुझे कुफ्र

काबा मेरे पीछे हैं, कलीसा मेरे आगे

मराठी में एक प्रचलित उक्ति है - 'मुलगी शिकली, प्रगती झाली ।' यानी बालिका या बच्ची या छात्रा पढ़ती - लिखती है तो प्रगति होती है । प्रगति खुद की, परिवार की, समाज की और देश की । एक पुरुष की शिक्षा अमृमन एक तक यानी उस तक की सीमित रह जाती है, बशर्ते वह कहीं शिक्षण कार्य से जुड़ा न हो या ऐसे किसी पेशे से संलग्न न हो जहां वह एक या अनेक को शिक्षित या प्रशिक्षित करता हो । परन्तु स्त्री की शिक्षा समग्र रुप से समाज पर प्रभाव डालती है । उसकी शिक्षा उसके व उसके परिवार के पूरे संस्कार में प्रतिबिम्बित होती है ।

4.3 नासिरा शर्मा के उपन्यास : वर्गीय चित्रण

कथाकार नासिरा शर्मा के उपन्यासों में वर्ग चेतना पूर्णत: आयातित मार्क्सवादी वर्ग चेतना नही है । डॉ. रोहिताश्व के शब्दों में - ''नासिरा शर्मा की वर्ग चेतना का भारतीय परिप्रेक्ष्य और कतिपय मुस्लिम देश अपने आपमें गम्भीर अध्ययन और विवेचन की अपेक्षा करता है । संक्षेप में यही कहा जा सकता है - यूरोप में वर्ग चेतना उच्च और निम्न वर्ग या शोषण और शोषित के बीच है । मार्क्स का ध्यान पूँजीपति वर्ग और श्रमिक मजदूर वर्ग पर अधिक केन्द्रित था । रंगभेद की नीति, गोरे तथा कालों तथा वर्णाश्रम जाति प्रथा का महत्व उनके सामने कम महत्वपूर्ण रहा है । परन्तु भारत में मार्क्स की समवर्ती वर्ग-चेतना उच्च या निम्न वर्ग, शोषक या शोषित की ही न होकर उच्च या निम्न जाति वर्ग की भी है । यहाँ पूँजीवाद और मजदूर किसान का वर्ग वैषम्य, सवर्ण और निम्न वर्ग के समानान्तर सक्रिय रहता है । अफगानिस्तान आदि मुस्लिम देश प्रधानत: सांस्कृतिक देश होते हुए भी विगत

बीसवीं सदी के उत्तरार्द्ध से कट्टरवाद, सामंतवाद के पोषक देश हो गए हैं जहां मानव सम्मान और सामाजिक हित मकान के कही कोने में पड़े मिलते हैं ।

लेखिका वर्ग चेतना की सबसे समर्थ, सबसे अधिक प्रतिभाशाली अपने काल परिवेश की प्रणेता रही हैं, जिन्होंने सम्पूर्ण भारत की संरचना की मूल धुरी वर्ग-वैषम्य जातिवाद, उच्चवाद-निम्नवाद को तो रेखांकित किया ही है; बल्कि इतर देशों के मुस्लिम परिवेश के पात्रों का वर्गीय चित्रण किया है । सम्पूर्ण भारतीय पाठक वर्ग की चेतना का न केवल सुधार ही किया है बल्कि परिष्कार भी किया है । मनु रचित समाज की संरचना ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य, शूद्र वर्ग की आन्तरिक विषमता को नग्न यथार्थ के साथ प्रस्तुत किया है । हिन्दू, मुस्लिम के अलावा भारत - ईरान - इराक - अफगानिस्तान के परिवेश पर काम किया है । शाल्मली, महरुख जैसे जीवन के आस्थाशील पात्रों की रचना की है ।

नासिरा के बहुचर्चित उपन्यास 'कुइयांजान' को ही लें । इलाहाबाद शहर के विभिन्न तबकों को लेकर एक ऐसा ताना-बुना इस उपन्यास में लेखिका ने बुना है कि जल की सार्वभौम समस्या खुलकर पाठकों के समक्ष आती है । जल का सेवन सभी वर्ग के लोग करते हैं, अत: जल की समस्या से भी सभी वर्ग समान रूप से जूझेंगे । उपन्यास में मुस्लिम परिवेश से जुड़े परिवारों के पात्रों का पात्रानुकूल चित्रण लेखिका ने किया है ।

नासिरा शर्मा कहती हैं - ''कुइयां अर्थात वह जलस्त्रोत जो मनुष्य की प्यास आदम युग से ही बुझाता आया है - जो शायद जिजीविषा की पुकार पर मानव की पहली खोज थी - पहली उपलब्धि जो हमने अतीत में अपनी प्राण रक्षा के लिए प्यास बुझाकर हासिल की थी और जो आज भी उतनी ही तीव्र है । पर आधुनिक टेक्नॉलॉजी में मनुष्य ने उस मूल स्त्रोत को आदिम करार दिया है और अपनी मशीनी ताकत के बल पर प्रकृति के इस अक्षय स्त्रोत 'जल' से खिलवाड़ कर रहा है जिसका परिणाम यह है कि अपार जल संपदा होते हुए भी हम आज प्यासे तड़पने को विवश हो रहे हैं । विशेषज्ञों ने लाख चेतावनी दी है कि जिस तरह आज हम इस प्राकृतिक वरदान - जल संपदा को नष्ट कर रहे हैं, उसके, कारण वह दिन दूर नहीं जब पानी को लेकर विश्व एक और महायुद्ध की दहलीज पर खड़ा होगा ।''(44)

जल की ज्वलंत समस्या पर अपना नजरिया प्रस्तुत करती नासिरा की लेखनी ने उकेरे हैं कई सामयिक सवाल अद्‌भुत कथा शैली - घटनाओं में । उपन्यास के शुरुआती क्रम में वाक्य संचयन कुछ इस प्रकार हैं कि समाज के सभी वर्गों की एक सनातन समस्या 'जल' से जूझाने की बेबसी और छटपटाहट प्रतिपादित होती है ।

'पग - पग रोटी, डग-डग नीर --- मगर अब ई शहर का कईसा हाल बनाय दिए हो भगवान ! न पानी है, न रोटी है ।'(45)

'मसजिद के मौलाना साहब गुजर गए हैं - अब बड़ी परेशानी है । आप तो जानती हैं कि हमारी तरफ लाइट कल से गई है ता अभी तक आई ही नहीं ।' बदलू अटक-अटककर अपनी पूरी बात कह गया ।

'फिर ?' बूड्ढी औरत के तेवर गिरे ! पानी चाहिए था । बदलू ने जल्दी से कहा 'लानत है ऐसे नलके पर ! अपने तो कुएं-तालाब भले रहे, जो काम के बखत धोखा तो नहीं देत रहे ।' बूढ़ी औरत इतना कह मुड़ी ।

क्या हुआ बुआ ! पीछे से आवाज आई । दुलहिन बी ! मसजिद वाली गली के मौलाना साहब गुजर गए हैं । पानी नहीं है -- जो-इलाहाबाद के कुछ मुहल्लों, मुसलमान, हिंदू घरों, उनमें भी औरतों की एक निहायत अपनी सी कहानी फर्राटा भरती है । नासिरा का 'नरेशन' गजब है । एक-एक डिटेल पर नजर, लेकिन हर बड़ी घटना में अपने आप 'पानी' की समस्या अजीबोगरीब ढंग से उद्घाटित होती रहती है । अस्सी साला मौलाना मौत फरमा गए । नहलाने को पानी तक नहीं, कुइयां, कुएं, नलों ने खत्म कर दिए । नलों में पानी नहीं । जल संकट कथा का संकट भी हो सकता है, नासिरा शर्मा ने बखूबी और बेबाकी से बताया है ।

छोटे-बड़े शहरों में पानी की कैसी किल्लत कि जिंदगी नरक । इस नरक की कहानी है 'कुइयांजान' ।

भाषा में अद्भुत रवानगी है । कहानी का पूरा मजा और समस्या का सांचा चारों तरफ ।

'अरे भैया, तुम निकले बेवफा । बचपन मा वायदा हमसे करत रहे । जवान हुए तो हमार बिटिया ब्याह ले गए । अब दामाद से निकाह पढ़ाए के आखिरी वक्त मा अपनी आकबद खराब करें ।''(46)

'किसी को कुछ पता नहीं बाबू । हम सब सोबत सोबत रहे । जब आग ने जोर पकड़ा तो गरमी से हमारी आंख खुल गई । फिर भगदड़ मची । जिसके पास जितना पानी था, डाला, मगर आग न बुझी ।' एक औरत ने रोते हुए बताया ।''(47)

''जीवन का यथार्थ सत्य पात्र के जरिए कथा प्रवाह के दौरान सहजता से कहलवा देना नासिरा की खासियत है । प्रवाह भी बना रहता है और दर्शन दिल में उतर भी जाता है ।(48)

'दूसरन को उठा के परखे वाला आज हाथ-पैर से मजबूर-- वाह रे तेरी कुदरत ।' इतना कह बुआ ने गरदन हिलाई और कटा प्याज लेकर उठी ।(49)

मुस्लिम संस्कृति, सभ्यता और तहजीब की गहरी जानकार नासिरा शर्मा हिन्दी कथा-साहित्य में ख़ास दखल रखती हैं । दकियानूसी परम्परा पर कुठाराघात करते अपने चर्चित

उपन्यास 'ठीकरे की मँगनी' में उन्होंने यही स्थापना दी है कि संस्कृति व सभ्यता की अहमियत गतिशीलता में है, जड़ता में नहीं । युगबोध से संस्कृति में भी लचीलापन आता है । आज के वैज्ञानिक युग में रूढ़ियों के नष्टशील होने से अब कोई नहीं रोक सकता । 'ठीकरे की मँगनी' की रूढ़ि, परम्परा का भी हश्र यही होता है । शिक्षा के प्रति जागरुकता के कारण अब इंसान निज की पहचान करने में समर्थ हो रहा है ।

'ठीकरे की मँगनी' की वजह से बचपन से ही महरूख किसी और की अमानत थी । जन्म के समय ही उसके जीवित रहने के लिए यह मँगनी की गयी थी । जवान होने पर उसे वही करना और होना पड़ता है जो मंगेतर रफ़त चाहता है और रफ़त के समर्थन में परिजन भी वैसा ही निर्णय उस पर थोपते हैं और महरूख आँख मूँदकर वही सब करती है । पारम्परिक लड़की की भाँति वह रफ़त की अनुगामिनी बनती है । तेज-तर्रार रफ़त उसे भी भाता है । लेकिन जब मार्क्सवादी, क्रान्तिकारी विचारों का संवाहक रफ़त अपना पाला बदल लेता है और दुनियादार बनते हुए अमेरिका जाता है पी-एच.डी. के लिए तथा एक अमेरिकी युवती के साथ 'लिविंग टुगेदर' जैसी 'ज़िन्दगी जीता है तब महरूख के भीतर एक 'नई औरत' का जन्म होता है । दिल्ली में ऊँची तालीम लेने के कारण उसमें भी इतना आत्मविश्वास आ जाता है । उसे अपनी निजता की पहचान होती है । जब अमेरिका से रफ़त की वापसी होती है और निक़ाह के लिए वह महरूख पर दबाव बनाता है तब महरूख निक़ाह से स्पष्ट इन्कार कर देती है । एक औरत मर्द को ठुकरा दे; यह रिश्तेदारों के लिए एक अविश्वसनीय घटना थी, ख़ासतौर से मुस्लिम समाज में ।

डॉ. शशिकला त्रिपाठी के अनुसार ''सदियों से समाज में विवाह संस्था के जरिए, स्त्री की दो भूमिका ही निर्धारित की गयी है । वह है 'सेक्स' और 'मातृत्व' । वर्ग और वर्ण की अहमियत उसके लिए कुछ ख़ास नहीं । परिणामतः उसकी सीमाएँ निर्धारित कर परिवार ही नहीं, समाज में भी पुरुष अपना वर्चस्व कायम कर लेता है । मगर चोट खायी महरूख इन दोनों भूमिकाओं को भी अस्वीकारती है । वैयक्तिक और पारिवारिक इन मुद्दों को अनदेखा करते हुए एक ज़िम्मेदार, सामाजिक व्यक्ति बनने का उपक्रम करती है । दलितों, मज़लूमों के आँसू पोंछने और उनके पैरों को ताकत देने के लिए महानगर कस्बा को छोड़कर गाँव में जा बसती है । 'मार्क्सवाद' को किताबों से निकालकर जमीन से जोड़ती है । अपने इसी जुनून में वह असाधारण औरत बन जाती है । उसका जनवादी रुझान उसे गाँव में लोकप्रिय बनाता है । उसके प्रति आत्मीयता और सम्मान रखने वालों की संख्या बढ़ती जाती है ।''

'ठीकरे की मँगनी' को पढ़ते हुए नारी-मन के चितेरे जैनेन्द्र याद आते हैं । जब महरूख कहती है,'' बिना रूह का ज़िस्म मुर्दा होता है । और बिना अहसास का रिश्ता ठंडा समझौता ।

वहाँ सब कुछ होगा मगर, जान नहीं होगी, ज़िन्दगी नहीं होगी । ऐसी मुर्दा के साथ आप भी ज़िन्दगी गुजारना नहीं चाहेंगे और मैं तो ... ''(50) कुछ इसी तरह का विचार जैनेन्द्र की कहानी 'जान्हवी' के जान्हवी का भी है । वह भावी पति को पत्र लिखकर विनम्रतापूर्वक विवाह के लिए इन्कार करती है । क्योंकि वह किसी अन्य से प्रेम करती है । विरहिणी है । ''एक अनुगता आपको विवाह द्वारा मिलनी चाहिए । वह जीवनसंगिनी भी हो । वह मैं हूँ या हो सकती हूँ ... ।'' 'रेखा' उपन्यास की रेखा भी अपने पति प्रोफेसर के चहेते छात्र से प्रेम करती है और यौन संबंध बनाती है ।

इस्लाम में पुनर्जन्म की अवधारणा नहीं है । मगर, लेखिका का विश्वास है कि ''इन्सान दो बार जन्म लेता है । पहली बार माँ की कोख से और दूसरी बार हालात की मार से ... ।'' हालात की मार ने ही ठोंक-पीटकर महरूख को मजबूत बनाया है, अपने पैरों पर खड़ा होना सिखाया है, खुद्दार और समझदार बनाया है ।

वर्गीय चित्रण की दृष्टि से 'जहां फव्वारे लहू रोते हैं' उपन्यास भी उल्लेखनीय है जिसमें ईरान के समाज के विभिन्न चित्रों को रखा गया है । 'जिंदा मुहावरे' उपन्यास में, जो जीते जागते दर्द का एक दरिया है, कहानी है उस दर्द के अनवरत चलते रहने की जो शुरु तो हुआ 1947 में जब भारत-पाक बंटा पर आज भी इस दर्द में कमी नहीं आई है बल्कि दर्द की शिद्दत, टीस बढ़ गई है । नगमा जावेद के कथानानुसार 'जिन्दा मुहावरे' बंटवारे की कोख से जन्मी एक चीख है, ऐसी चीख जिसकी अनुगूंज आज भी सुनाई देती है ।''(51)

4.4 दाम्पत्य जीवन एवं स्त्री का परिवर्तित स्वरुप

समाज द्वारा स्वीकृत पति-पत्नी के यौन संबंध के आधार पर संतानोत्पत्ति होती है और परिवार बनता है । यह परिवार ही बच्चों को प्रजनन एवं पालन-शोषण के अवसर प्रदान करता है । इसीलिए दांपत्य जीवन को हमारे समाज में काफी महत्त्व मिला है । शास्त्रों ने विवाह और सफल दाम्पत्य जीवन की महत्ता धर्म और संस्कृति की परिधि दर्शाई है । पारिवारिक जीवन से संबद्ध संवेदना में सबसे पहला स्थान दांपत्य जीवन का ही आता है । दांपत्य जीवन के महत्त्व को उषा देवी मित्रा ने इन शब्दों में वर्णित किया है -''...तो भी आज मुझे कहना पड़ रहा है - नर-नारी के लिए विवाह विशेष प्रयोजनीय है ।''(52)

भारतीय परिवेश में दाम्पत्य जीवन को प्राय: पुरुष की प्रधानता के रूप में अंगीकार किया जाता है । कहने को स्त्री-पुरुष परिवार रूपी गाड़ी के दो पहिए हैं, पर यथार्थ में आज भी परिवार में पुरुष की हुकूमत चलती है । अपवाद हर जगह हैं, किंतु मुख्यत: पुरुष ही परिवार का मुखिया, संचालक और सर्वेसर्वा होता है । चंद्रकिरण सौनरेक्सा ने अपने

उपन्यास 'चंदन चांदनी' में लिखा है - ''संसार में मनुष्य सबकी आलोचना सुन सकता है, पत्नी की आलोचना नहीं । भारतीय पति तो आज भी पत्नी को मात्र अपना ही ग्रामोफोन समझना चाहता है, जो केवल उसी के गाए रिकार्ड बजा सकती है ।''(53)

मृदुला गर्ग ने 'मैं और मैं' में पुरुष की अधिनायकवादी मनोवृत्ति इन शब्दों में चित्रित की है : ''कमजोर-से-कमजोर, गरीब-से-गरीब, निकम्मे-से-निकम्मे आदमी के पास एक जायदाद होती है, जिस पर वह हुकूमत कर सकता है - उसकी बीवी ।''(54)

नारी हृदय की पारखी शांति जोशी ने अपने उपन्यासों में दांपत्य की संवेदना को बड़ी बारीकी से उभारा है । 'प्यार, कितान प्यार !' की छोटी सी स्वाती । नौ साल की बच्ची । गुड़िया खेलने की उसकी उमर । उससे दुगुनी उमर का पति हरिनाथ स्त्री-पुरुष के भेद को थोड़ा-बहुत समझने की बुद्धि पा चुका था । पर आम-अमरूद के पेड़ पर चढ़कर खुशी हासिल करने वाली स्वाति को हरिनाथ का सामीप्य ही अखर जाता है ।

जिस हिंदू समाज में नौ वर्ष की बच्ची को ब्याह देने की रीति हो, वहाँ बालिका-वधू पति को 'बला' से कम क्या समझेगी ? उस अल्प वय में पति को अपना आत्मीय-स्वजन मानने की समझ आने से पहले ही शत्रु भाव उदित हो जाता था : ''ससुराल वालों का आदेश था कि बिना नथ पहने बहू की बिदाई नहीं करेंगे, यह पुश्तैनी नथ है, सुहाग का चिह्न ! स्वाति ने दर्द के साथ देखा कि उसकी नाक नथ के पास पक गई है । पका भाग चसकने लगा । अभी तक न जाने वह कैसे इस दर्द को भूले हुए थी । दर्द और आक्रोश से सिहरते हुए उसने हरिनाथ की ओर देखा । उसके चेहरे पर संतोष तथा गाल और ओंठों पर उसकी माँग का सिंदूर लगा हुआ था । स्वाति के बदन का दर्द कसमसा उठा, वह जोर से रो दी ।''(55)

दाम्पत्य जीवन का साहचर्य जब दो युवा हृदयों के मध्य होता है, तो उनका जीवन ही जैसे बदल जाता है । नवल के साथ रानीखेत के प्राकृतिक सौंदर्य के बीच पहुँचकर और प्यार की रसवंती फुहार से नहाकर तृप्ति सचमुच गहरी तृप्ति से भर जाती है : ''हिमालय के ज्योतित सौंदर्य का पान करते हुए वह... मंत्रमुग्ध नवीन को देखती, प्रेम के रहस्य से सिहर उठती ! कभी कमरे की खिड़की से धरती को छूते हुए आकाश में तिरते श्वेत बादलों के गुच्छों को देख वह आनंद-मग्न हो नवीन को अपनी बाँहों में भर लेती, देर तक उसे पकड़े लेटी रहती, निस्पंद, अपने अंतर के अमृत में डूबी हुई ।'' नासिरा शर्मा के उपन्यासों में बाल-विवाह का जिक्र नहीं आया है, न ही बाल विवाह उनका कथा विषय रहा है । हां 'ठीकरे की मंगनी' में मुख्य पात्र महरुख का बचपन में रफत से मंगनी जरूर हो जाती है । विवाह प्रकारांतर में होना तय होता है । हालांकि महरुख रफत के चाल-चलन से क्षुब्ध इंकार कर देती है ।

पति-पत्नी का संबंध इतना नजदीकी और प्रगाढ़ होता है कि पति की प्रसन्नता-अप्रसन्नता पत्नी पर त्वरित प्रभाव डालती है । दिनेशनंदिनी डालमिया ने 'कंदील का धुआँ' में लिखा है : ''पति की उदासीनता पल भर में ही मुझे नितांत अकेलेपन का अहसास करा जाती और जब वह प्रसन्न होते, तो एक साथ कितने ही हरसिंगार मुझ पर झरने लगते ।''(56)

ममता कालिया ने सुखी दांपत्य जीवन के लिए प्रेम की आवश्यकता पर बल दिया है । पति के अपने व्यवसाय में और पत्नी के घर के काम-काज में व्यस्त होने से उनके बीच दूरी बढ़ती चली जाती है । प्रेम रहित हेाने पर जीवन कुढ़ते हुए ही बीतता है । 'नरक-दर-नरक' में लेखिका ने नई गृहस्थी की समस्याओं का विस्तारपूर्वक वर्णन किया है ।

मालती जोशी ने भी दांपत्य जीवन की संवेदना को सूक्ष्म से देखा है । 'सहचारिणी' में पति योगेश और पत्नी नीलम के आपसी संबंधों का, बढ़ती दूरियों का चित्रण है । नीलम अनुभव करती है - ''पति-पत्नी के बीच जब संवाद शेष हो जाते हैं, तब दांपत्य जीवन कितना भयावह हो जाता है । केवल शारीरिक स्तर पर किसी से जुड़े रहना कितना अपमानजनक होता है, पर उन दिनों यही मेरा संबल था, सांत्वना थी । उन तक पहुँचने के लिए वही एकमात्र सेतु था, शेष सभी मोर्चों पर हम बार-बार टकरा चुके थे और यह तथ्य सामने उभरकर आ चुका था कि हम दोनों में कहीं कोई सामंजस्य नहीं है । हमारी विचारधारा अलग थी, हमारी आचार-संहिता भिन्न थी, जीवन के प्रति दृष्टिकोण में अंतर था और हमारे नैतिक मूल्यों में कोई समानता न थी ।''(57)

प्रेम के बिना सुखी दांपत्य जीवन की कल्पना नहीं की जा सकती । उषा प्रियंवदा की 'शेष यात्रा' की अनु तो प्रेम की पूँजी को लेकर इतनी आश्वस्त थी कि सोचती थी - 'पति-प्रेम एक ऐसी जादू की बूटी है, जिससे सारी आंधियाँ-व्याधियाँ दूर हो जाती हैं । अगर मैं मनसा, वाचा, कर्मणा समर्पित रहूँगी तो सब कुछ ठीक हो जाएगा । मेरा प्रेम उन्हें जीत लेगा ।''(58)

दांपत्य जीवन में सफल यौन संबंधों का अपना महत्त्व है । शशि प्रभा शास्त्री के 'परछाइयों के पीछे' में दांपत्य जीवन की इसी यौन सुख की संवेदना की मधुर अनुभूति है : ''सुमित्रा ने धीमे से गर्दन उठाई बहुत सुकामल दृष्टि से चुपचाप देखने लगी, जैसे उन क्षणों में तन-मन में बसी हुई उस मोहक सुगंध के जादू से वह खुद को अब भी विलग न करना चाह रही हो ।''(59)

मंजुल भगत के 'अनारो' की घर-घर चौका-बरतन करके जीवन-यापन करने वाली अनारो अपने सुखी दांपत्य जीवन की कल्पना में न जड़ाऊ आभूषणों की चाह करती है, न

व्योम बिहारी सपनों को साकार करने की उत्कंठा रखती है, वह तो पति का संग-साथ पाकर ही सुखी हो जाएगी : ''उसका जी चाहता, जिस ढब से उसका आदमी उससे बैठकर हँसे-बोले, उसमें न गाली-गलौज हो, न सौत । न रुपए-पैसे की हाय-हाय हो, न ठर्रे की गंध । बस, दुनिया-जहान की ऐसी बातें हों, जिनमें कुढ़न हो, न जलन ।''(60)

दांपत्य जीवन की शाखा पर संतति रूपी पुष्प खिलते हैं । शिशु की किलकारियाँ दांपत्य सुख को सौ गुना बढ़ा देती है । कृष्णा सोबती ने 'जिंदगीनामा' में इसका चित्रण किया है : ''शाहनी ने गोद में लाल उठाया और हौली-हौली मतवाली चल चौके की और बढ़ गई । .. पीले ऊनी आसनों पर माँ-बेटे ऐसे विराजे ज्यों धरती ने अपनी गोद में गगन का चाँद लिटा लिया हो ।''(61)

शशि प्रभा शास्त्री के 'परछाइयों के पीछे' की सुमित्रा, पति के निरंतर अत्याचार झेलकर भी, पुत्र को पाकर आनंद-सागर में डूब जाती है - ''यह तो महीपाल का अंश है, उसकी देन, जिसने अपने अत्याचारों से मेरा रोम-रोम बींधकर रख दिया है । उसी के इस अंश के स्पर्श से मैं एक कैसा अलौकिक सुख अनुभव कर रही हूँ, क्योंकि इस अंश को मैंने खुद धारण किया था - पूरे नौ महीने तक अपने में सेती रही थी, इसीलिए क्या ... ?''(62)

दाम्पत्य जीवन को प्रतिपादित करता नासिरा शर्मा का पहला उपन्यास है - शाल्मली । जिसकी प्रमुख पात्र शाल्मली शशिप्रभा शास्त्री की 'परछाइयों के पीछे' की किरदार सुमित्रा सरीखी है, पति नरेश के निरंतर मानसिक अत्याचार झेलती, सहती है और उत्पीड़ित होती है । बुद्धि से प्रखर, स्वभाव से सौम्य, रूप से सुंदर, पति व कर्तव्यपरायण भारतीय महिला की कहानी जिसका दाम्पत्य जीवन इसलिए कष्टप्रद बन जाता है कि उसका पति नरेश उससे यौन-सुख तो प्राप्त करता है परन्तु उसे वह मानसिक सुख प्रदान नहीं कर पाता । उसे आगे पढ़ने से रोकता है । नौकरी छोड़ने के लिए भी कहता है । घर से बाहर शाल्मली जाती है, इसलिए उस पर शक-शुबहा भी करता है, रह-रहकर फोन करता है, 'क्रॉस-चेक' करता है । शाल्मली का दाम्पत्य जीवन कटुतापूर्ण हो जाता है । पर वह विद्रोह नहीं कर पाती, नरेश को छोड़ नहीं पाती । उसे अंत तक यही उम्मीद रहती है कि नरेश अंततः उसका सर्वांग हो जाएगा । पर उसकी यह इच्छा अधूरी रह जाती है । 'ठीकरे की मंगनी' उपन्यास में हालांकि महरूख विद्रोह का स्वर अपना लेती है जब अमेरिका से लौटे उसके बचपन में बने मंगेतर रफत निकाह के लिए उस पर दबाव डालता है और वह निकाह से स्पष्ट इंकार कर देती है; क्योंकि उसे मालूम हो चुका था कि अमेरिका में पी-एच.डी. करते हुए रफत एक अमेरिकी युवती के साथ बिना विवाह के रह रहा था । प्रकारांतर में आत्मविश्वासी बनी महरूख का यह परिवर्तित रूप मुस्लिम समाज के लिए अविश्वसनीय कदम अवश्य है पर यह कदम एक

'नई औरत' को जन्म भी देता है जिसका स्वागत किया जाना चाहिए । महरूख के अंदर-अंदर चल रहे लंबे संघर्ष ने उसे मजबूत, निडर, स्वावलम्बी और आत्मविश्वासी बना दिया । महरूख के बारे में नासिरा शर्मा कहती हैं - ''मगर इस हकीकत को भी जानती थी कि सारी रुकावटें ज़हनी तौर से तोड़ है । वह जितना बड़ा इंसान बनना चाहे बने मगर, रहेगी तो वह इसी मर्दाना दुनिया में जहां औरतों को देखने का अंदाज सिर्फ एक है । ---- जहां प्रेमिका, रखैल से हटकर कोई बराबर का दर्जा देने को तैयार नहीं ।(63)

बकौल महरूख ''--हमें मर्द नहीं बनना है न ही मर्द को औरत बनाना है - एक-दूसरे का लबादा पहनने की यह ललक ही मुसीबत बन रही है । जरुरत है, अपनी-अपनी जगह खड़े होकर आपने आपको समझने और दूसरे को समझाने की ।(64)

डॉ. शशिकला त्रिपाठी के शब्दों में ''अंतत: 'ठीकरे की मंगनी' में यथास्थितिवाद का अस्वीकार है, परम्परा विरोध है । किन्तु क्रान्तिकारी परिवर्तन नहीं । --- महरुख परम्परा का आधुनिकता में सामंजस्य बिठाते हुए लगती है ।''(65) 'अक्षयवट' उपन्यास में शमीम अहमद और फिरोजजहां के दाम्पत्य जीवन का चित्रण है । इस खानदान को दुर्भाग्य का दुर्योग लग गया है । मर्दों की मौत का सिलसिला खानदान में चलता रहा । शमीम अहमद की भी हत्या हो गई । उनके बेटे नसीम का विवाह इस कारण जल्दी हो गया और अलीगढ़ में सिपतुन विवाह कर इलाहाबाद आ गई । कुछ दिनों बाद साम्प्रदायिक दंगे में नसीम भी खुदा के प्यारे हो गये । दाम्पत्य जीवन में दु:ख की बदली है इस उपन्यास में । विधवा फिरोजजहां और सिपतुन 'अक्षयवट' के जीवंत और आनंद प्रदायी चरित्र हैं । स्त्री के परिवर्तित स्वरुप पर टिप्पणी करते हुए कथाकार मैत्रेयी पुष्पा लिखती है - ''स्त्री-विमर्श को हम भले ही पिछली दो दशाब्दियों से जोड़ें, मगर साहित्य में इसका बिगुल गद्य के जरिये महादेवी वर्मा ने ही बजा दिया था । आज औरत अगर कहती है कि वह केवल सम्भोग और सन्तान पैदा करनेवाली मादा नहीं, उसे पुरुष की सेवा और वफादारी में 'गुड़िया घर' नहीं सजाना और वे त्याग की कहानियाँ नहीं सुननीं जिनसे मध्यवर्ग का साहित्य पटा पड़ा है । इस सबसे भिन्न है उसका स्त्रीत्व । इस स्त्रीत्व में ही उसकी प्रजाति की पहचान और इच्छाएँ शामिल हैं । वह सिर्फ सम्बन्धों में बँधी छुपी नहीं, अपने वजूद की मालकिन है''।(66)

वस्तुत: दाम्पत्य जीवन में मधुरता के अभाव एवं एकरसता की व्याप्ति तथा पति का अपनी पत्नी को भोग्या, शिष्या समझना सनातन व आधुनिक निम्न - मध्यवर्गीय समाज की पहचान रहा है । मंजुल भगत की अनारो भी परेशान है और मालती जोशी की नीलम भी । उषा प्रियंवदा की अनुसुखी दाम्पत्य जीवन की वकालत करती है । नासिरा ने भी शाल्मली और सिपतुन के जरिए सशक्त तरीके से अपने सुखी दाम्पत्य जीवन की वकालत करती है एवं विखंडित दाम्पत्य जीवन को परिवार व समाज के लिए अभिशाप बताती है ।

सन्दर्भ सूची

1.	डॉ. वी. के. अब्दुल जलील	:	समकालीन हिंदी उपन्यास : समय और संवेदना	आवरण पृ.	02
2.	डॉ. वी. के. अब्दुल जलील	:	समकालीन हिंदी उपन्यास : समय और संवेदना	पृ.	75
3.	डॉ. वी. के. अब्दुल जलील	:	समकालीन हिंदी उपन्यास : समय और संवेदना	पृ.	75
4.	डॉ. वी. के. अब्दुल जलील	:	समकालीन हिंदी उपन्यास : समय और संवेदना	पृ.	75
5.	नासिरा शर्मा	:	ठीकरे की मंगनी	पृ.	24
6.	नासिरा शर्मा	:	ठीकरे की मंगनी	पृ.	25
7.	नासिरा शर्मा	:	ठीकरे की मंगनी	पृ.	25
8.	डॉ. वी. के. अब्दुल जलील	:	समकालीन हिंदी उपन्यास : समय और संवेदना	पृ.	76
9.	नासिरा शर्मा	:	ठीकरे की मंगनी	पृ.	50
10.	नासिरा शर्मा	:	ठीकरे की मंगनी	पृ.	62
11.	नासिरा शर्मा	:	ठीकरे की मंगनी	पृ.	67
12.	नासिरा शर्मा	:	सात नदियां एक समंदर	पृ.	67
13.	नासिरा शर्मा	:	ठीकरे की मंगनी	पृ.	49
14.	नासिरा शर्मा	:	शाल्मली	पृ.	88
15.	नासिरा शर्मा	:	शाल्मली	पृ.	89
16.	नासिरा शर्मा	:	शाल्मली	पृ.	89
17.	नासिरा शर्मा	:	शाल्मली	पृ.	59
18.	सुरेश पंडित	:	वाङ्मय – अंक जुलाई 2009	पृ.	68
19.	नासिरा शर्मा	:	शाल्मली	पृ.	76
20.	नासिरा शर्मा	:	शाल्मली	पृ.	52
21.	नासिरा शर्मा	:	शाल्मली	पृ.	24
22.	नासिरा शर्मा	:	शाल्मली	पृ.	67

23.	सुरेश पंडित	:	वाङ्मय – अंक जुलाई 2009	पृ.	71
24.	नासिरा शर्मा	:	शाल्मली	पृ.	60
25.	नासिरा शर्मा	:	शाल्मली	पृ.	154
26.	नासिरा शर्मा	:	शाल्मली	पृ.	32
27.	नासिरा शर्मा	:	शोधकर्ता से निजी वार्ता	तिथि	20.12.2008
28.	नासिरा शर्मा	:	ठीकरे की मंगनी	पृ.	103
29.	नासिरा शर्मा	:	ठीकरे की मंगनी	पृ.	174
30.	वेद प्रकाश	:	वाङ्मय – अंक जुलाई 2009 'स्त्री मुक्ति का समावेशी रूप'	पृ.	75
31.	वेद प्रकाश	:	वाङ्मय – अंक जुलाई 2009 'स्त्री मुक्ति का समावेशी रूप'	पृ.	75
32.	वेद प्रकाश	:	वाङ्मय – अंक जुलाई 2009 'स्त्री मुक्ति का समावेशी रूप'	पृ.	75-76
33.	नासिरा शर्मा	:	ठीकरे की मंगनी	पृ.	112
34.	वेद प्रकाश	:	वाङ्मय – अंक जुलाई 2009 'स्त्री मुक्ति का समावेशी रूप'	पृ.	77
35.	नासिरा शर्मा	:	ठीकरे की मंगनी	पृ.	115
36.	नासिरा शर्मा	:	ठीकरे की मंगनी	पृ.	116
37.	नासिरा शर्मा	:	ठीकरे की मंगनी	पृ.	117
38.	नासिरा शर्मा	:	मरजीना का देश – इराक	पृ.	99
39.	नासिरा शर्मा	:	जहां फव्वारे लहू रोते हैं	तिथि	20.12.2008
40.	नासिरा शर्मा	:	जहां फव्वारे लहू रोते हैं	पृ.	07
41.	नासिरा शर्मा	:	जहां फव्वारे लहू रोते हैं	पृ.	08
42.	नासिरा शर्मा	:	शोधकता की निजी वार्ता	तिथि	20.12.2008
43.	नासिरा शर्मा	:	मरजीना देश – इराक	पृ.	100
44.	नासिरा शर्मा	:	कुइयांजान		भूमिका
45.	नासिरा शर्मा	:	कुइयांजान	पृ.	11
46.	नासिरा शर्मा	:	कुइयांजान	पृ.	41
47.	नासिरा शर्मा	:	कुइयांजान	पृ.	43
48.	नासिरा शर्मा	:	कुइयांजान	पृ.	48
49.	नासिरा शर्मा	:	कुइयांजान	पृ.	48
50.	नासिरा शर्मा	:	ठीकरे की मँगनी	पृ.	131

51.	वाङ्मय	:	अंक जुलाई 2009	पृ.	79
52.	डॉ. उषा यादव	:	हिंदी की महिला उपन्यासकरों की मानवीय संवेना	पृ.	136
53.	चंद्रकिरण सौनरेक्सा	:	चंदन चांदनी	पृ.	206
54.	मृदुला गर्ग	:	मैं और मैं	पृ.	97
55.	शांति जोशी	:	प्यार कितना प्यार !	पृ.	19
56.	दिनेश नंदन डालमिया	:	कंदील का धुआं	पृ.	124
57.	मालती जोशी	:	सहचारिणी	पृ.	55
58.	उषा प्रियंवदा	:	शेष यात्रा	पृ.	73
59.	शशिप्रभा शास्त्री	:	परछाइयों के पीछे	पृ.	98
60.	मंजुल भगत	:	अनारो	पृ.	33
61.	कृष्णा सोबती	:	जिंदगीनामा	पृ.	129
62.	शशिप्रभा शास्त्री	:	परछाइयों के पीछे	पृ.	98
63.	नासिरा शर्मा	:	हंस, अंक अक्तूबर 1992	पृ.	39
64.	नासिरा शर्मा	:	ठीकरे की मंगनी	पृ.	181
65.	डॉ. शशिकला त्रिपाठी	:	उत्तरशती के उपन्यासों में स्त्री	पृ.	27
66.	मैत्रेयी पुष्पा	:	माध्यम – अंक जुलाई–सितबंर 2006	पृ.	37

5. नासिरा शर्मा का कथा साहित्य : परिवेश और मूल्य

साहित्य का आधार मनुष्य और सामाजिक परिवेश हेाता है । परिवेश व्यक्ति के इर्द-गिर्द होता है । उसका संसार, उसकी दुनियादारी, रहन-सहन, स्वयं का, परिवार-समाज का संस्कार, शिक्षा, धर्म, सोच आदि परिवेश की श्रेणी में आते हैं । जगह बदलने से परिवेश भी बदलता है और परिवेश बदलने से मूल्य बदल सकते हैं । मूल्य जो व्यक्ति के जीवन जीने की शैली, तरीके को प्रभावित करते हैं, मूल्य जो व्यक्ति के संस्कार को प्रभावित करते हैं । और मूल्य को प्रभावित करता है समय, वक्त, परिवेश आदि । परिवेश की प्रधानता उपन्यास की तुलना में कहानी में अधिक होती है । कहानियों में तथ्य से अधिक परिवेश आता है जब कि उपन्यास में ठीक इसके विपरीत परिवेश से अधिक तथ्य को बल प्रदान किया जाता है । कारण यह भी है कि कहानी तात्कालिक होती है जब कि उपन्यास में काल खण्ड, परिवेश, पात्र कई चरणों में आते हैं । पाठक को पढ़ने में वक्त भी लगता है । 'कहानी' कभी-भी, कुछ क्षणों में भी पढ़ी जा सकती है । प्रख्यात आलोचक डॉ. नामवर सिंह ने 'नई कहानी' पत्रिका में परिवेश के बारे में विस्तारपूर्वक चर्चा करते हुए इसे कथा साहित्य का अनिवार्य अंग बताया है । कहा जा सकता है कि मूल्य और परिवेश एक-दूसरे से आबद्ध हैं या एक-दूसरे से अन्योन्याश्रय संबंध रखते हैं तो कोई अतिशयोक्ति नहीं होगी । जैसे, स्त्री-पुरुष संबंधों के बारे में भारत के ही विभिन्न इलाकों, शहरों, नगरों महानगरों में अलग-अलग प्रतिमान या कहें कि मूल्य स्थापित हैं तो अतिशयोक्ति नहीं होगी । एक ही

देश के एक इलाके में अपनी पसंद से विवाह करने पर गांव से बाहर निकाल दिया जाता है या कोई और अमानवीय सजा दी जाती है तो कहीं प्रेम-विवाह को माता-पिता रजामंदी से स्वीकार करते हैं । यह मूल्यों की बात है । कहा जाना उपयुक्त होगा कि मूल्यों को किसी की परवाह नहीं होती, कानून की भी नहीं । मूल्य परम्परा वाहक भी होते हैं और परम्पराभंजक भी । यही प्रेम विवाह और विवाहेतर संबंध ईरान, इराक, अफगानिस्तान और अन्य मुस्लिम देशों में स्थापित सामाजिक मूल्यों के हिसाब से भी तथा कानून की दृष्टि में भी गुनाह हैं । नए दौर में मुस्लिम देशों में बढ़ रही कट्टरवादिता ने स्त्रियों को और कई सदी पीछे धकेल दिया है । पिछले दिनों पाकिस्तान के पंजाब प्रांत से सटे स्वात घाटी में भी एक स्त्री पर इसलिए कोड़े बरसाए गए कि उसने अपनी पसंद के युवक से विवाह करने की इच्छा जताई थी । वह कराहती-चिल्लाती रही और कोड़े उसके नाजुक बदन पर बरसते रहे । सारी दुनिया ने इसके वीडियो कैसेट को टी.वी. चैनलों पर देखा । हैवानियत और अमानवीयता का यह रुप भी परिवेशगत मूल्यों के परिणामस्वरुप हैं । तालिबान की अपनी कठमुल्ला संस्कृति है, अपने मूल्य हैं जो वह मुस्लिम देशों पर आरोपित करना चाहता है । भारत के ही पटना शहर में गत 23 जुलाई 2009 को एक युवती को दिन दहाड़े सड़क पर एक युवक ने पीटा और उसके वस्त्र फाड़ दिये । पूरी भीड़ तमाशा देखती रही । टी.वी. चैनलों के जरिए पूरी दुनिया ने यह दृश्य देखा ।

जाहिर है, मूल्य समय के प्रतिमान होते हैं । मूल्य उद्देश्य होते हैं जीवन जीने के । प्राचीन भारतीय मूल्य चार थे - धर्म, अर्थ, काम और मोक्ष । प्राचीन भारतीय समाज में व्यक्ति के जीवन जीने के ये ही उद्देश्य थे । समय परिवर्तन के साथ-साथ मूल्यों में बदलाव आए । नए मूल्य बने और ये समयानुरूप एवं समय सापेक्षत: तीन रूपों में प्रतिपादित हुए - मार्क्सवाद मनोविश्लेषणवाद एवं अस्तित्ववाद । मार्क्सवाद मूल्य सामान्य जनजीवन में एक वर्गविहीन यथार्थ परक साम्यवादी संरचना का स्वप्न रचते हैं जिससे सामान्य मनुष्य भी आर्थिक-भौतिक सम्पन्नता के आधार पर कला-संस्कृति-जीवन शैली के उपभोक्ता एवं सृजक रूप में संसार में जीवन जीने का हक हासिल कर सकता है । परन्तु इसके लिए एक सकारात्मक जीवन दृष्टि, जीवन विवेक और यथार्थ के धरातल पर वर्गविहीन समाज व्यवस्था जरुरी है । स्त्री-विमर्श के संबंध में मार्क्सवादी विचारधारा की बात की जाए तो यह कहा जाएगा कि मार्क्सवादी मूल्य के अनुसार जिस तरह पुरुष अपने जीवन को अपनी शर्तों, सिद्धान्तों के अनुसार जीना चाहता है, उसी तरह, स्त्री को भी अपनी शर्तों, मानदण्डों पर जीवन जीने का हक मिलना चाहिए । पर परिवार की इकाई और समाज की संरचना में कोई व्यवधान न पैदा हो । स्पष्ट है, यह पूर्ण स्वतंत्रता नहीं है, पृष्ठभूमि में कहीं - न - कहीं शर्तें चलायमान रहती हैं ।

अस्तित्ववाद के मूल्य निर्धारण में भी कमोबेश यही मानदण्ड स्थापित हैं । अंतर यह है कि अस्तित्ववाद में व्यक्ति के आत्म निर्णय को अधिक महत्व दिया गया है । व्यक्ति का स्व-निर्णय सर्वोपरि होता है । उसके निर्णय-निर्धारण की पृष्ठभूमि में किसी संदर्भ आदि की शर्त नहीं होती । मसलन स्त्री भी पुरुष की भांति विवाहेतर संबंध रखना चाहे तो उसे अधिकार है । परन्तु मार्क्सवादी मूल्य की पृष्ठभूमि में संदर्भ की भूमिका अहम होती है । कहना न होगा कि मार्क्सवाद नियमों के साथ चलने वाली जीने की स्वच्छंदता है तो अस्तित्ववाद बेलौस और बिंदास तरीके से जीवन जीने का समान हक स्त्री व पुरुष दोनों को देता है । लेखक, विचारक और आलोचक डॉ. रोहिताश्व कहते हैं कि अस्तित्ववाद में स्त्री अपने अस्तित्व के संघर्ष में किसी भी पुरुष से देह संबंध बनाने का वही अधिकार रखती है जो एक पुरुष के पास होता है जबकि मार्क्सवाद में यद्यपि, पुरुष-स्त्री को अपने पार्टनर से इतर सेक्स संबंध रखने की छूट मिलती है तथापि वहां शर्त होती है कि दोनों के परिवार न टूटने पाएं ।''(1)

मार्क्सवाद की विस्तृत व्याख्या करते हुए डॉ. रोहिताश्व कहते हैं ।''विश्व के राजनैतिक-आर्थिक संक्रमण में, पूँजीवादी व्यवस्था और आधुनिकता बोध ने जहाँ मनुष्य मात्र को धर्म, राजनीति, विज्ञान, सामाजिक-विडम्बना, जाति प्रथा, स्त्री वर्ग की पराधीनता पर सोचने के लिए बाध्य किया है, वहीं मार्क्सवादी दर्शन और प्रगतिशील साहित्य दृष्टि ने एक यथार्थपरक, वर्गविहीन सामाजिक व्यवस्था के निर्माण की संकल्प दृष्टि भी अपनायी है ।''(2)

शिवदान सिंह चौहान के अनुसार ''वर्तमान काल उन मानव मूल्यों के निरुपण और समन्वय का है जो एक व्यापक सौदर्यमूलक सामाजिक दृष्टिकोण (सोशल एस्थेटिक्स) का मूलाधार बन सके ।(3)

मार्क्सवाद एक समग्र दर्शन है, जो मानवीय विकास के विभिन्न सोपानों को विभिन्न ऐतिहासिक दौर के वाद (Thesis), प्रतिवाद (Antithesis) और संवाद (Synthesis) की स्थिति में व्याख्यायित करता है । कोरे कल्पनावाद की जगह अन्य भाववादी दर्शन के बनिस्पत मार्क्सवाद यथार्थपरक भौतिकवादी दृष्टि की बात करता है ।

मार्क्स और एंगेल्स का प्रसिद्ध कथन है कि सामाजिक चेतना और अस्तित्व संदर्भ में सामाजिक जीवन की उत्पादन प्रक्रिया में मनुष्य ऐसे सुनिश्चित संबंधों की स्थापना करते हैं, जो अपरिहार्य हैं । इन संबंधों का योग अथवा संपूर्णता ही समाज के आर्थिक धरातल का निर्माण करती है, उसका आधार निर्मित करती है, जिस पर न्यायिक और राजनीतिक ढाँचा खड़ा होता है । सामाजिक चेतना के रूप इसके साथ सामंजस्य स्थापित करते हैं ।

भौतिक जीवन की उत्पादन विधि ही हमारे सामाजिक, राजनीतिक और बौद्धिक जीवन

की प्रक्रिया को अपने अनुसार मोड़ती है । मनुष्य की चेतना उसके अस्तित्व का निर्धारण नहीं करती है, बल्कि उसका सामाजिक अस्तित्व ही उसकी चेतना का निर्धारण करता है । ('ए कान्ट्रीब्यूशन टू क्रिटिक ऑफ पॉलिटिकल इकॉनामी'भूमिका)(4)

19वीं सदी में शुरु हुए मार्क्सवाद के जनक कार्लमार्क्स का मत है कि ''व्यक्ति और घटनाएँ इतिहास को जन्म नहीं देतीं वरन् आर्थिक आवश्यकताएँ इतिहा की घटनाओं की दिशा निर्धारित करती हैं । आर्थिक परिवर्तन, राजनीतिक और सामाजिक परिवर्तनों का आधार है । वस्तु-जगत और परिवर्तन को आर्थिक आवश्यकताएँ निर्धारित करती हैं । इतिहास में जो घटनाएँ होती हैं, वे महत्त्वपूर्ण नहीं हैं अर्थात् यह महत्त्वपूर्ण नहीं है कि घटना क्या थी ? यह भी महत्त्वपूर्ण नहीं है यह है कि घटना क्यों घटी ? इस प्रकार आर्थिक आवश्यकताएँ अथवा अर्थ उनका निर्धारक कारक बन जाता है ।''(5)

प्रारंभ से लेकर अब तक का इतिहास वर्ग-संघर्ष का ही इतिवृत्त है । समाज में दो वर्ग सदैव से निर्मित रहे हैं । एक वे जिनके पास सब कुछ है और दूसरे वे जिनके पास कुछ भी नहीं है । साधन और सुविधाओं (उत्पादन की शक्तियों) पर कब्जे के लिए इन दोनों वर्गों के मध्य संघर्ष गतिमान रहता है । इस संघर्ष के कारण समाज में परिवर्तन होता है ।

प्रत्येक वह व्यक्ति जो श्रम करेगा, खाना पाएगा । शोषण मुक्त इस नये समाज में भी कुछ सुविधाभोगी पुनः परिवर्तन के लिए प्रयत्नशील होते हैं । साम्यवादी या समाजवादी अवस्था अंतिम नहीं है परिणामतः सुविधाभोगी और सुविधाहीन वर्ग पुनर्स्थापित होते हैं । इस तरह समाज में एक नयी व्यवस्था जन्म लेती है । परिवर्तन का यह क्रम सतत् गतिमान रहता है । कथा फिर से दुहराई जाती है । आगे उसका स्वरुप कैसा होगा, इसे आर्थिक आवश्कयताएँ और परिस्थितियाँ निर्धारित करती है लेकिन समाज की किसी अंतिम या जड़ अवस्था की संकल्पना नहीं की जा सकती । इतिहास इसी क्रम से उत्तरोत्तर विकसित होता है ।

इतिहास साक्षी है कि प्रत्येक युग में वर्ग-संघर्ष का अस्तित्व रहा है । ''मार्क्स इसे आवश्यक ही नहीं अपितु अनिवार्य मानते हैं । बिना छीने कोई किसी को कुछ देने के लिए तैयार ही नहीं होता । इसलिए मार्क्स का मंतव्य है कि मानवता, त्याग, तपस्या, सहानुभूति, करुणा परोपकार, आतिथ्य-सत्कार आदि थोथे आदर्शों से समाज नहीं चलता । ये आदर्श जिनके पास हैं, उनके द्वारा जिनके पास नहीं है, उन्हें मूर्ख बनाने का सतत् षड़यंत्र-चक्र है । इसलिए अपना वास्तविक भाग प्राप्त करने के लिए मजदूरों के प्रारंभिक संगठन बनते हैं जो कालांतर में विश्वव्यापी स्वरूप-ग्रहण कर लेते हैं । कार्ल मार्क्स ने 'दास केपिटल' और 'कम्यूनिस्ट मेनिफेस्टो' में इस तथ्य की पुष्टि की है ।''(6)

आधुनिक काल में बुद्धिजीवियों का मत है कि हिंसा और संघर्ष पर आधारित होने के

कारण भी मार्क्स का यह सिद्धांत अग्राह्य है ।

फ्रायड काम और अर्थ को कला-चिंतन की मूल प्रेरणा मानते हैं । इनके लिए कर्म ही धर्म है तथा मोक्ष की संकल्पना तो यहाँ अनुपस्थित ही है । कबीर ने भी 'कनक-कामिनी लागि' कहकर अर्थ और काम को माया-मोहमय संसार निरूपित किया है । फ्रायड भी कुंठा, अतृप्ति व मानसिक विकृति का कारण अर्थ और काम को मानते हैं ।

डॉ. विनय कुमार पाठक के अनुसार ''फ्रायड काम-केंद्रित कुंठा को जीवन का अनिवार्य अंश मानते हैं जबकि एडलर इसे जीवन का एक भाग मानते हैं, प्राथमिक या अनिवार्य शर्त नहीं । मलीनता का त्याग आवश्यक है अन्यथा मनोरोग की वृद्धि से जीवन संकटग्रस्त हो जाएगा । अचेतन को अभिव्यक्ति मिले तथा असुंदरता के प्रवाह के पश्चात् सुंदरता का प्रसार हो, यह साहित्य का उदात्त पक्ष है । यह उदात्तता आरोपित है अर्थात् प्रकृत रूप नहीं है । फ्रायड इसे साहित्यकार की 'क्षति-पूर्ति की क्रियाएँ' निरूपित करते हुए भ्रामक, ओछी और थोथी प्रकृति के सिवाय कुछ नहीं मानते । साहित्यकार अपनी अतृप्ति, अवसाद व वर्जना को ही काम-कुंठाजनित प्रतीकों के माध्यम से व्यक्तिगत और सामाजिक कार्य-व्यापारों के मूल में निहित होते हैं । स्पष्ट है कि मनुज काम के हाथों की कठपुतली है तथा उसके समक्ष सारे आदर्श, मर्यादा व आध्यात्मिक आस्था बेमानी हैं ।''(7)

वस्तुतः परिवेश समाज से बनता है और मूल्य समाज के मापदण्ड अथवा प्रतिमान होते हैं । उधर साहित्य में, जिसकी परिभाषा है कि जो सबके हित में लिखा जाए वही साहित्य है, जो हित की भावना है वह समाज के लिए ही है । साहित्य इसीलिए समाज सापेक्ष होता है, न कि समाज निरपेक्ष । समाज-निरपेक्ष साहित्य चिरस्थायी नहीं होता, न ही उसकी कोई प्रासंगिकता होती है । समाज को समादृत करके ही साहित्य अपनी सार्थकता सिद्ध करता है । यानी कथा साहित्य का भी प्रेरक तत्व समाज है । साहित्यकार समाज की यथार्थ स्थिति का अंकन अपने साहित्य में करता है । महावीर प्र. द्विवेदी के अनुसार ''जाति विशेष के उत्कर्षापकर्ष का, उसके ऊंच-नीच भावों का, उसके धार्मिक विचारों और सामाजिक संगठन का, उसकी ऐतिहासिक घटनाओं और राजनीतिक स्थितियों का प्रतिबिम्ब देखने को यदि कहीं मिल सकता है तो उसके ग्रंथ-साहित्य में मिल सकता है । सामाजिक शक्ति या सजीवता, सामाजिक आशक्ति या निर्जीवता और सामाजिक सभ्यता तथा असभ्यता का निर्णायक एकमात्र साहित्य है ।''(8)

इस प्रकार कहना युक्तिसंगत होगा कि कथाकार देशकाल और परिवेश को उद्घाटित किए बिना कथा साहित्य की रचना नहीं कर सकता । साहित्य, समाज और देश से ही ज्ञान अनुभव प्राप्त कर संभावनाओं और असंभावनाओं की खोज में संलग्न होता है । कथाकार

समाज के बाह्य परिवेश के साथ उस परिवेश से प्रभावित आंतरिक स्वरूपों और घटनाक्रमों तथा मानवीय संवेदनाओं की अनुभूति कराता है । मैक्सिम गोर्की मानव चेतना का विकास तथा मानव सहानुभूति के विस्तार को साहित्य का सर्वोपरि गुण माना है ।''(9) मनोविश्लेषणवाद के पक्षधर कथाकार जैनेन्द्र कुमार के मतानुसार-''साहित्य में हमारी बीती ही उसमें नहीं, वरन हमारे संकल्प और हमारे मनोरथ आज उसमें भरे हैं ।''(10) मनोविश्लेषणवाद ने चेतन के साथ-साथ अवचेतन मन का भी साथ दिया है । जैनेन्द्र के उपन्यासों में पहली बार पाठकों को पात्रों के अंतरंग वर्णन के जरिए अपने आपको जानने और समझने का अवसर प्राप्त हुआ । जैनेन्द्र के ही शब्दों में कहें तो, ''मैंने जगह-जगह कहानी के तार की कड़ियाँ तोड़ दी हैं । वहाँ पाठक को थोड़ा कूदना पड़ता है और मैं समझता हूँ कि पाठक के लिए यह थोड़ा अभ्यास वांछनीय होता है, अच्छा ही लगता है । --- सभी पात्रों को मैंने अपने हृदय की सहानुभूति दी है ।--- दुनिया में कौन है जो बुरा होना चाहता है और कौन है जो बुरा नहीं है, अच्छा ही अच्छा है ? न कोई देवता है न पशु । सब आदमी ही हैं, देवता से कम ही और पशु से ऊपर ही ।'' उनके 'परख', 'सुनीता', 'त्यागपत्र', 'कल्याणी', 'सुखदा', 'विवर्त', 'व्यतीत', 'जयवर्धन', 'दशार्क', 'मुक्तिबोध', 'अनन्तर' आदि उपन्यास मानव के अन्तर्मन में चलने वाली सूक्ष्मातिसूक्ष्म हलचलों का लेखा-जोखा प्रस्तुत करते हैं । वे 'व्यक्ति-चरित्र' को लेकर चलते हैं । उनके स्त्री पात्रों की त्रासदी यह है कि वे जिस पुरुष से प्रेम करती हैं उसके साथ उनका विवाह नहीं हो पाता और जिसके साथ विवाह बन्धन में बँध जाती हैं, उससे वे प्रेम नहीं करतीं । यहीं से उनकी नैतिकता तथा आत्मसुख में संघर्ष उत्पन्न होता है । पति-प्रेमी तथा पत्नी-प्रेमिका वाला यह द्वन्द्व काम कुण्ठा को जन्म देता है । जैनेन्द्र के उपन्यासों में मुख्य रुप से यही मनोवैज्ञानिक प्रत्यय उभर कर आया है ।

दूसरे ख्यातिप्राप्त मनोवैज्ञानिक उपन्यासकार इलाचन्द्र जोशी ने अपने 'घृणामयी' (लज्जा), 'सन्यासी', 'प्रेत और छाया', 'पर्दे की रानी' 'निर्वासित', 'मुक्ति पथ', 'सुबह के भूले', 'जिप्सी', 'जहाज का पंछी', 'ऋतुचक्र', 'भूत का भविष्य' आदि उपन्यासों के अन्तर्गत अहम्वादिता, कुण्ठा, मनोविकृति आदि प्रवृत्तियों को चित्रित किया है । कतिपय आलोचक उन्हें फ्रायड के 'मनोविश्लेणवाद' तथा युंग की 'जातीय अवचेतना' की धारणा से प्रभावित मानते हैं । मनोवैज्ञानिक उपन्यासों के धारा-प्रवाह में अज्ञेय का अपना अलग ही स्थान है । डॉ. रांग्रा के अनुसार, ''शेखर : एक जीवनी' से पहले का चरित्र चित्रण चित्रपट पर दिखायी गयी 'सिनेमा स्लाइडो' के समान आन्तरायिक था, हिन्दी-उपन्यासों में 'चलचित्रों' का सा विकासमान चरित्र और वह भी अन्तर्दृष्टि (सब्जेक्टिवली) दिखाने का श्रेय अज्ञेय को ही है ।''(11) अपने 'शेखर : एक जीवनी', 'नदी के द्वीप', 'अपने-अपने

अजनबी' आदि उपन्यासों में उन्होंने व्यक्ति के व्यक्तित्व-विकास, कुण्ठाओं तथा उसके विकृत व्यवहार का अत्यन्त ही मर्मस्पर्शी चित्रण किया है ।

''मनोविश्लेषणात्मक अध्ययन से तात्पर्य केवल इडिपस ग्रन्थि, लिबिडो या अतृप्त वासनाओं का चित्रण नहीं है बल्कि किसी पात्र या चरित्र विशेष का आक्रामक रुप, असहाय रुप, उदात्त रूप हमें विक्षुब्ध भी करता है और चमत्कृत भी । पूर्व विवेचित मनोविश्लेषणपरक सिद्धान्तों के विवेचन में रोजर्स ने संकेत दिया है कि एक व्यक्ति को इन्सान बनने की प्रक्रिया में विभिन्न सोपानों से गुजरना पड़ता है । अतृप्ति, वासना आवेग, आत्म-विश्लेषण, प्रेम की आकुलता और व्यक्तित्व निर्माण की बलवती इच्छा मनोविश्लेषणात्मक अध्ययन के अलक्षित सोपान हैं जिनकी और सुधी विद्वानों का ध्यान कम आकर्षित हुआ है ।(12)

अस्तित्ववाद बीसवीं के उत्तरार्द्ध में पनपा आधुनिक सामाजिक मूल्य है । नाम के अनुरुप अस्तित्ववाद मानव के अस्तित्व पर आधारित सिद्धांत है जो उसकी महत्ता को अक्षुण्ण रखने के लिए जहाँ उसकी व्यावहारिक समस्याओं पर ध्यान देता है, वहीं उसकी स्वायत्तता के लिए संघर्षरत रहता है । यदि एक ओर भीड़ खोकर मनुष्य उसका एक हिस्सा प्रमाणित होता है तो दूसरी ओर यंत्र से संपर्कित होकर अपनी इयत्ता खो बैठता है । डॉ. विनय कुमार पाठक कहते हैं कि ''मानव के क्षरण को रोकने और खोयी हुई सत्ता को पुनर्स्थापित करने की चिंता ने अस्तित्ववाद को जन्म दिया है । अस्तित्ववादी मानते हैं कि अपने इस संकट के लिए मनुष्य स्वत: जिम्मेदार है । उसने स्वार्थ के लिए मानवीयता की उपेक्षा की और युद्ध को आमंत्रित करके व्यक्तित्व का विखंडन किया । दूसरों को फाँसने के लिए उसने मकड़जाल बनाया और जब स्वत: फँसने लगा तब इससे उबरने के लिए छटपटाने लगा । मनुष्य की इस तड़पन की कोख से अस्तित्ववाद का जन्म हुआ ।''(13) मानव-अस्मिता की अन्वेषण-यात्रा में सतत संलग्न अस्तित्ववादी मानव की स्वतंत्रता को कायम रखने तथा उसके व्यक्तित्व और परिस्थितियों के पर्यवेक्षण करने के निमित्त-प्रतिष्ठित हुए ।

अस्तित्ववाद पाश्चात्य दर्शन है जिसका उद्‌गम जर्मन दार्शनिक हसरेल, हेडेगर और डेनिस-चिंतक कीर्कगार्ड की विचार-सरणियों में निहित है । फ्रांस में ज्यां पाल सार्त्र (1946) के माध्यम से अस्तित्ववाद को ख्याति मिली । कामू व कार्ल पास्पर्स भी इसे साहित्य और कला-संबंधी आलोचना के प्रतिमानों का आधार प्रदान कर मानवीय अस्तित्व को नवीन दृष्टि सौंपते हैं । दो महायुद्धों की विनाशलीला से मनुष्य अब ऊब-उदासी, कुंठा-संत्रास, शोषण-उत्पीड़न से आक्रांत होकर अनास्था और अनिश्चयता के दोराहे पर अवस्थित हो गया । उसने कीट-पतंगों की तरह मरते हुए बेबस मनुजों को देखा । लाशों के बेतरतीब ढेर ने यह प्रमाणित कर दिया कि मानव-जीवन का मूल्य अब रहा नहीं । यही दृष्टि

अस्तित्ववाद के रूप में उभरी । यद्यपि ये विचार प्राचीन हैं तथापि समसामयिक स्थितियों और युगीन परिस्थितियों ने अस्तित्ववाद को स्वीकृति की मुहर लगायी । निरूपाय-असहाय मनुज ने मृत्यु का तांडव क्या देखा, उसने संज्ञान आते ही बहुत-पूर्व समझ लिया था कि मृत्यु अनिवार्य व शाश्वत है जिसके आगे उसका वश नहीं है । अध्यात्म से हटा और समाज से कटा वह द्वीप की तरह अकेला है । वह चेतना के धरातल पर सोचने के लिए स्वतंत्र है जहाँ ईश्वरीय सत्ता का कोई अस्तित्व ही नहीं है । वह सामाजिक और धार्मिक रूढ़ियों पर प्रहार करके और नये जीवन-मूल्यों की तलाश करके निजी अस्तित्व को खंगाल रहा है। उसकी यह तलाश यथार्थ के अंकन और अस्तित्ववादी जीवन-दर्शन के रुप में गतिमान है । कलाकार या साहित्यकार जिस परिस्थिति में रहता है, उससे संघर्ष करता हुआ परिवर्तन या समूल उच्छेदन की भावना जागृत करता है । पाठक या दर्शक भी इस बोध के धरातल पर समान भाव-भूमि को ग्रहण करते हैं । यही किसी कला या साहित्य की सार्थकता भी है । अस्तित्ववादी कर्म के अंत में निरर्थकता और निरर्थकता और निर्वहन के क्रम में विसंगतियों और विद्रूपताओं को चिंतन की उपलब्धि के रुप में रेखांकित करता है । अस्तित्ववाद एक ओर पारंपरिक आदर्श दार्शनिक मान्यताओं को अस्वीकार करता है ।

अस्तित्ववादियों की मान्यता है कि व्यक्तित्व की प्रधानता के कारण ही मनुष्य अन्य जीवधारियों से अलग है । मनुष्य ही एकमात्र ऐसा जीव है जो व्यक्तित्व की स्वतंत्रता के कारण ही आज सृष्टि में राज्य कर रहा है । उनकी मान्यता है कि स्वतंत्र व्यक्तित्व ही मनुज के अलग अस्तित्व का आधार है ।

अस्तित्ववादियों के अनुसार मनुष्य अपना निर्माता स्वयं, भाग्य-विधाता स्वयं है । वह जैसा कर्म करता है, उसी के अनुरूप उसे फल भी प्राप्त होता है । इसी आधार पर वह सजग-सतर्क रहकर लक्ष्य का निर्धारण करता है । उसे चयन का अधिकार तो है, अचयन का नहीं । तात्पर्य यह है कि उसे उद्देश्य की प्राप्ति के लिए पथ चुनने की स्वतंत्रता तो है लेकिन उसकी उपेक्षा करने का हक नहीं है । मनुष्य अपना रास्ता स्वत: बनाता है और उस पर चलने का उद्यम भी स्वयं करता है । इस तरह वह स्वयं नियंता है ।

अस्तित्ववादियों के अनुसार प्रत्येक क्षण का महत्त्व है । प्रतिक्षण एक अलग अनुभव-कण होता है । क्षण के परिवर्तन से प्रत्येक अनुभव-कण अपनी नवीन छटा बिखेरता है । इससे उसका व्यक्तित्व भी प्रभावित होता है अत: मनुष्य प्रतिक्षण सजग-सतर्क रहता है । मनुज विवश है क्योंकि क्षण उसकी पकड़ से बाहर है । मनुज विवश है क्योंकि वह क्षण के प्रभाव व परिवर्तन से अंजान है । वह दु:ख को सुख में बदलने का प्रयास तो करता है, लेकिन सफलता उसके वश में नहीं है ।[14] अस्तित्ववाद के जनक ज्यां पॉल सार्त्र और स्त्री विमर्श की

प्रणेता सिमोन द बोउवार दोनों बिना विवाह के साथ-साथ रहे । दोनों में यह समझौता था कि वे अलग-अलग अपनी निजता रखने को स्वतंत्र हैं । देह संबंध स्थापित करने को भी स्वतंत्र हैं । परन्तु जब स्वयं एक-दूसरे के संसर्ग में रहें तब पूरी निजता व ईमानदारी से एक-दूसरे के ही होकर रहें । नासिरा शर्मा के कथा साहित्य में यह रुप कथानक बनकर नहीं आया है । यद्यपि 'दूसरा ताजमहल' कहानी में नयना रविभूषण से प्रेम करती है, पर रविभूषण सिर्फ फ्लर्ट करता है । उसमें प्रेम को लेकर गंभीरता नहीं है ।

''अस्तित्ववाद आत्म-नियंता मानने और भाग्यविधाता बताने के मूल में मनुष्य चेतना के धरातल पर चिंतन करता है । उसकी यह सोच 'स्व' पर केंद्रित होती है । वह ईश्वर जैसी किसी सत्ता को स्वीकार ही नहीं करता । वह केवल अपने अस्तित्व को स्वीकारता है और ईश्वर के प्रति अनास्था प्रदर्शित करता है । अस्तित्ववाद एक व्यक्तिवादी दर्शन है जो व्यक्ति को सर्वोपरि सत्ता समझकर ही मानवीय जीवन और उसकी नियति का वास्तविक विवेचन-विश्लेषण करता है ।''(15)

अस्तित्ववाद 'स्व' पर कुछ ज्यादा ही केन्द्रित होने के कारण पुरुष-स्त्री संबंधों को 'स्व' पर ही केन्द्रित करने की वकालत करता है । इसलिए कई समीक्षक मानते हैं कि इससे स्त्री पुरुष-संबंध की नैतिकता किसी मायने में टिकी नहीं रहेगी । कोई भी किसी से यौन संबंध बनाने को स्वतंत्र होगा । हाल-फिलहाल के वर्षों में नव-अस्तित्ववाद ने समाज में पैर पसारना शुरु कर दिया है । नव-अस्तित्ववाद भी अस्तित्ववाद ही है पर इसमें स्वच्छंदता कुछ और आगे बढ़कर समाज की नई पीढ़ी को गले लगाती है और यह नई पीढ़ी अपने 'स्व' में केन्द्रित होकर अप्राकृतिक यौन संबंध अर्थात समलैंगिकता को कानून-सम्मत करार दिए जाने की मांग कर बैठती है । उनका तर्क होता है कि समलैंगिकता प्राचीन काल से मानव समाज में विद्यमान है, अत: इसे वैद्य माना जाना चाहिए । पलटवार करते हुए योग गुरु रामदेव कहते हैं कि ''जबसे ब्रह्मांड बना तभी से चोरी, व्यभिचार, बलात्कार, जैसे अपराध भी जारी हैं तो क्या उन्हें भी इस आधार पर वैध मान लिया जाना चाहिए कि वे प्राचीन काल से विद्यमान हैं ।''(16)

दिल्ली उच्च न्यायालय द्वारा समलैंगिकता को गुनाह मानने की धारा 377 को भारतीय नागरिक के मौलिक अधिकारों का उल्लंघन मानने के बाद 'लेस्बियन' और 'होमोसेक्स' समर्थकों का उत्साह बढ़ा है और वे देश भर में प्रदर्शन कर रहे हैं । नव अस्तित्ववाद को लेकर नासिरा शर्मा की कोई कथा रचना उपलब्ध नहीं, शायद वे नवअस्तित्ववाद की पक्षधर भी नहीं हैं । वे कहती हैं कि स्त्री-पुरुष संबंधों के बारे में इशारतन बात कह दी जाए तो गरिमा रहती है ।(17) आज के दौर में खासकर भूमंडलीकरण की शुरुआत के उपरांत एक नीति जो सर्वत्र एवं सभी क्षेत्रों में लागू होती है, वह है पाठकीय मूल्य । जिस तरह बाजार में

जिस वस्तु की मांग होती है उसी की मूल्यगत पहचान होती है, उसी प्रकार लेखन के क्षेत्र में पाठकीय मूल्य का महत्व है । हालांकि साहित्य के क्षेत्र में पाठकीय मूल्य नितांत पुस्तक की ब्रिक्री से तात्पर्य नहीं रखता है । डॉ. रोहिताश्व कहते हैं कि पाठकीय मूल्य की पृथक विवेचना किसी समीक्षक या साहित्यकार ने नहीं की है तथापि यह चिरंतन सत्य है कि जिस लिखे को पाठक ने खारिज कर दिया हो उसका क्या मूल्य रह जाएगा । यह पाठकीय मूल्य की महत्ता ही है कि देवकीनंदन खत्री की 'चंद्रकांता संतति' आज भी उतनी ही लोकप्रिय है जितनी डेढ़ सौ वर्ष पहले थी । यह पाठकीय मूल्य की ही देन है कि मात्र एक कहानी 'उसने कहा था ने गुलेरीजी को ख्याति दिला दी ।

बहरहाल प्रस्तुत अध्याय में विवेच्य कथाकार नासिरा शर्मा के कथा साहित्य का विभिन्न सामाजिक मूल्यों और परिवेश के संदर्भ में आकलन करने का प्रयास किया गया है-

5.1 नासिरा शर्मा का कथा साहित्य : परिवेश विमर्श

नासिरा शर्मा के कथा साहित्य का परिवेश फलक काफी विस्तृत है । उन्होंने भारत के तो विभिन्न नगरों को अपने कथा-साहित्य का परिवेश बनाया ही यथा दिल्ली, कानपुर, अलीगढ़, इलाहाबाद, अवध प्रांत, राजस्थान, आदि, भारत से इतर देशों को भी अपने उपन्यासों एवं कहानियों में रचनाधर्मिता का धरातल बनाया है । ये देश हैं - ईरान, इराक, अफगानिस्तान और पाकिस्तान । यानी सभी मुस्लिम देश । नासिरा मुस्लिम होते हुए विवाह हिंदू ब्राह्मण से करती हैं । वहीं से उनका परिवेश फलक विस्तार पाने लगता है । उन्होंने उक्त मुस्लिम देशों की स्वयं यात्रा की, वहां का चप्पा-चप्पा घूमा, गलियों-चौराहों को नापा, घरों-मुहल्लों के अंदर जाकर लोगों-स्त्रियों, बच्चों, पुरुषों से रु-ब-रु होकर उनके दुख-दर्द-पीड़ा को महसूस किया और उन्हें अपने कथा साहित्य में उकेरा । परिवेश यदि व्यापक हो और कथा-केन्द्र में हो तो वह नायक का प्रतिरूप बन जाता है । जैसे, फणीश्वरनाथ 'रेणु' ने बिहार के पूर्णिया जिले को अपना परिवेश बनाया तो 'रेणु' के नायक का प्रतिरूप वह परिवेश बन गया है । निर्मल वर्मा की रचनाओं में परिवेश इतना जीवंत होता है कि पाठक उसके इर्द-गिर्द ही अपने को पाता है । नासिरा ने भी अपने व्यापक परिवेश पर विस्तारपूर्वक काम किया है ।

इराक की पृष्ठभूमि राजनीतिक, सामाजिक और सांस्कृतिक पृष्ठभूमि को अपनी नजरों से देखकर, उनमें स्वयं को आत्मसात कर लिखी गई कृति है 'मरजीना.... ' । नासिरा इससे पूर्व ईरान की पृष्ठभूमि पर लिखे जाने को लेकर जानी जाती रही है । वह स्वयं कहती है कि मैं ईरान को लेकर कुछ लिखने के अंतिम दौर में थी, तथ्य और कागजात, नोट्स आदि संजोकर रखे हुए थे । मैं काफी कुछ लिख भी चुकी थी कि इराक जाने का न्यौता आया । विश्व भर के

लेखक, पत्रकारों को इराक आने का निमंत्रण था । मैंने तो निमंत्रण पत्र दराज में डाल दिए कि उपन्यास लिखने की एकाग्रता भंग न हो वह भी तब जब रचनाकार लिखने के आखिरी चरण में हो । पर मेरे पति ने कहा कि 'यह अच्छा अवसर है । अब तक तुमने ईरान पर काम किया है । पर सिक्के के दूसरे हिस्से को भी देखना-चाहिए । तुम लेखक-पत्रकार हो । तुम्हें दोनों सिरों को देखना चाहिए, अन्यथा पूर्वाग्रह से ग्रसित होने का आरोप लग सकता है ।'(18) मैंने फिर अपना निर्णय बदला । सोचा, चलो इराक को देखूं व समझूं । और नासिरा ने इराक का दौरा किया । वहां की सरकारी बैठकों में नुमाइंदगी की, हिस्सा लिया, युद्धग्रस्त इलाकों में डरते हुए-सहमते हुए पर हिम्मत दिखाते हुए वह घूमी, विभिन्न वर्गों के लोगों से मिली, परिवारों में जाकर साथ बैठकर गप-शप किए, उन्हें-उनकी पृष्ठभूमि, उनकी सोच को जानने की कोशिश की । रिपोर्ताज शैली में लिखे गए इस लेख-संग्रह में संपन्न देश अमेरिका की धौंस को नहीं सहने वाले इराक, इराक वासियों और सद्दाम हुसैन की हिम्मत, हौसले और जिंदादिली की तस्वीर प्रस्तुत की गई है । उन्होंने तब अमेरिका की आलोचना की जब अमेरिकी दबाव शिखर पर था । 1980 से लेकर 2003 तक इराक ने क्या झेला, इसका मुख्तसर बयान लेखिका ने इस पुस्तक में ईमानदारी से बेबाक लहजे में दिया है । हाल के 25-26 वर्षों में इराक ने जो कुछ झेला है उसे दुनियाभर के लोगों ने देखा-पढ़ा-सुना है । वर्ष 2006 में ईद के मुबारक मौके पर सद्दाम हुसैन को फांसी दे दी गई । इससे भी इराक के बारे में, सद्दाम हुसैन के बारे में, उन्हें चाहने और न चाहने वालों के बारे में लोगों की उत्सुकता बढ़ी है । ऐसे में नासिरा की इस पुस्तक की अहमियत ऊंची हो जाती है । कारण कि इसमें यह जानने को मिलता है कि सद्दाम ने कैसे निरंतर प्रतिकूल परिस्थितियों में रहते हुए इराक को तरक्की करता हुआ, प्रगतिशील बनाया और इराक वासियों को फिक्रमंद बने रहने का हुनर सिखाया । इराक ने तीन बड़ी लड़ाइयां झेलीं 1980 से 2003 के मध्य । बावजूद इसके इराक के बगदाद, बसरा आदि शहरों को देखकर कहीं खंडहर, ध्वज के निशान देखने को नहीं मिलते; क्योंकि लेखिका के अनुसार उधर युद्ध चल रह होते हैं, इधर इमारतों की मरम्मत हो रही होती है ।

''बगदाद कई बार उजड़ा और कई बार बसा, मगर हर तबाही के बाद वह उस संस्कृति एवं सभ्यता की बुनियाद पर दोबारा शादाब हो गया । लेखकों ने कलम-दवात में डुबोये और कागज फिर अक्षरों से रंगे जाने लगे । मदरसों और खानकाहों की दीवारें उठने लगीं और संगीत में डूबी दवा हजला के पानी पर मचलती लहरों से अठखेलियां करने लगीं । इंसानों ने फिर बच्चों को जन्म देना शुरु कर दिया और कलाओं में डूबा बगदाद फिर बस गया ।'(19)

लेखिका ने यह पुस्तक वर्ष 2003 में लिखी जब सद्दाम दुनिया की महाशक्ति अमेरिका से जूझ रहे थे । लेखिका ने तब सद्दाम की प्रशंसा की । हिम्मत से यह लिखा कि सद्दाम और इराक दोनों ने समाज की, महिलाओं की तरक्की को हमेशा तरज़ीह-तवज्ज़ोह दी । अरब देश भी मुस्लिम देश है लेकिन वे सिर्फ मक्का-मदीना में आने वाले हाजियों की फिक्र रखने तक सीमित रहना चाहते हैं ताकि आने वाले पिछड़े रहें और उनकी दुकान चलती रहे । पाकिस्तान, तुर्की भी मुस्लिम देश हैं, लेकिन वहां की महिलाओं की नारकीय स्थिति किसी से छुपी नहीं है । ऐसे में इराक में महिलाएं बुरका नहीं पहनतीं, घरों से बाहर निकलती हैं, ऊंचे पदों पर नौकरियां करती हैं, प्रेम विवाह करने की आजादी रखती हैं, इकलौती लड़की को मां-बाप की मृत्यु के बाद पूरी जायदाद मिलती है, प्रसूति महिला को कुल 92 दिनों की दफ्तर से छुट्टी मिलती है, औरत यदि आर्मी में आती है तो उसकी पदवी सिर्फ अफसर की रहती है, श्रम कानून के अनुसार औरत और मर्द को बराबरी का दर्जा दिया गया है, आदि इराक भी इस्लाम का अनुयायी है लेकिन दूसरे मुस्लिम देशों जैसा पिछड़ापन, रुढ़िवादिता, कट्टरवाद एवं दकियानूसीपन यहां के लोगों में नहीं है । इसलिए लेखिका ने सीधे-सीधे स्वीकारा है कि इराकी औरत का वर्तमान सुनहरा है और यहां के लोग विशेष विचार के अधीन नहीं हैं । वे सम्मान के साथ जीना चाहते हैं और जीते हैं, बात-बात में हंसना उनकी आदत है जो मुझे प्रिय लगी । इसलिए वे सद्दाम हुसैन को पसंद करते हैं । दरअसल लेखिका ने आज से पांच साल पूर्व ही सद्दाम और इराक को पहचान लिया था और उसकी सही तस्वीर पाठकों के समक्ष रख दी । आज दुनिया के ज्यादातर देशों में लोग सद्दाम की सराहना कर रहे हैं उन्की मृत्यु के उपरांत । फांसी देने के समय और तरीके ने लोगों की हमदर्दी को बढ़ाया । पर 'मरजीना का देश - इराक' लिखते वक्त इराक की नब्ज पहचानना लेखिका की दूरदर्शिता और अनुभवी होने का सबूत देता है । 'बगदाद' का अर्थ होता है - 'शांति का शहर' । यह शहर मस्जिदों का शहर है । यहां चारों और गुलाब के फूल हैं - खूबसूरत-बड़े बड़े ।[20] युद्ध की विभीषिका में भी फूलों का खिलना यहां के लोगों की शांतिप्रियता का मजमून बताता है ।

ईरान की खूनी क्रान्ति पर लिखे गये बहुचर्चित उपन्यास 'सात नदियां एक समुन्दर' में लेखिका नासिरा शर्मा ने सात बरस तक ईरान में रहकर इस खूनी क्रान्ति को अपनी नंगी आंखों से देखा, महसूसा और जिया और खूनी संगीनों की परवाह न कर बड़ी दिलेरी और दुस्साहस के साथ इसे कागज़ पर उतारा । इस बात की परवाह किए बग़ैर की उसकी भी दशा उपन्यास की पहाड़ी नदी सादृश्य मार्क्सवादी लेखिका तय्यबा जैसी हो सकती है ।

कोई भी युद्ध, कोई भी क्रान्ति हो उससे सबसे अधिक प्रभावित स्त्री ही होती है, सबसे

अधिक पीड़ा और यन्त्रणा स्त्री को झेलनी पड़ती है । सबसे अधिक नुकसान स्त्री को ही उठाना पड़ता है । इस उपन्यास के केन्द्र में एक नहीं सात स्त्रियां हैं । तेहरान विश्वविद्यालय में अपनी शिक्षा के अन्तिम चरण पर जा पहुंचने वाली सात युवा लड़कियां सात सहेलियां । भविष्य के सपनों में डूबी । साथ ही भविष्य के भय से आशंकित और आतंकित । एक कहवाघर में एक फालगीरन (महिला ज्योतिष) उनके कहवे के जूठे प्यालों की बची तलछट से उनका भविष्य बांच रही है । झूठे भाग्यवादी सपने दिखा रही फालगीरन का विरोध करती है तय्यबा-'मेरा भाग्य पढ़ना इतना आसान नहीं है । उसकी भाषा तुम्हारे लिए अनजान है । मेरा भाग्य मेरा करम है न कि कहवे की तलछट ।''(21)

तय्यब जो एक लेखिका के साथ-साथ मार्क्सवादी एक्टिविस्ट भी है, को छोड़कर उसकी शेष छः सहेलियां परम्परागत स्त्री जीवन को ही अपना भविष्य मान रही हैं लेकिन तय्यबा-कहती हैं - 'नहीं, ये रेखाएँ मेरा भाग्य नहीं हैं । यह ईरान का चित्र है जो मेरे हाथ में है । ये पहाड़, ये नदियां, यह मैदान और विश्वविद्यालय, यह कारावास और यह घर इसे मुझे संवारना है । इसे तुम क्या पढ़ पाओगी ।'(22)

विश्वविद्यालय की पढ़ाई के दौरान ही इन सात सहेलियों में से एक महनाज़ का अपने विश्वविद्यालय के एक छात्र असलम अतापोर, जो कि कॉलेज टॉपर होने के साथ-साथ एक चर्चित शायर भी है, के साथ इश्क हो जाता है, लेकिन परम्परा और परिस्थितयां विपरीत होने के कारण सफल नहीं हो पाता । शिक्षा समाप्त होते ही सहेलियों का यह समूह बिखरने लगता है - 'महनाज़, शहनाज़, अख़्तर, परी को सूसन और मलीहा की कमी बहुत खल रही थी । उनका विवाह हो चुका था ... ''(23) ईरान में वहां के बर्बर शाह का सामन्ती शासन अपनी अन्तिम सांसें गिन रहा था - 'शाही जेल में लगभग दो हज़ार सियासी क़ैदी । विभिन्न बुद्धिजीवी देश से बाहर विदेशों में बस गए थे।''(24) ईरान की स्त्रियां भी शाह के खिलाफ़ चल रहे आन्दोलन में सक्रिय भागीदारी कर रहीं थीं - ''मशहद में लगभग साठ हज़ार औरतों का जुलूस निकला । काली चादरों में लिपटा सारा शरीर और आधे खुले चेहरे से निकलते नारे - खुमैनी अज़िज़त बेगू खून वे रीज़म (खुमैनी प्रिय कहो, हम हाज़िर हैं खून बहाने के लिए) ।''(25)

औरतें अपनी बंधी मुट्ठी लिए जब सड़क पर निकलीं तो उनके पीछे उनके पति और बच्चे थे । इस इन्कलाब की सबसे बड़ी खूबी यही थी कि वह हसीन गुड़िया जो सजना और संवरना जानती थी । उसने हाथ में बन्दूक उठानी सीख ली थी । तेहरान, मशहद, शीराज के विश्वविद्यालयों में एक साथ नमाज़ पढ़ी जाती थी जिसका मूक सन्देश धार्मिक एकता और मॉडर्नाइजेशन के विरुद्ध भीषण प्रतिरोध । औरतों का कहना था, हम इस सेक्स और नंगे

नाच से तंग आ गए हैं । इसमें कोई शक नहीं कि शाह ने औरत को रूढ़िवादिता से स्वतन्त्रता दिलाई । यह कैसी स्वतन्त्रता ? जबकि हम दूसरी तरह से कैद हो गए हैं ।''(26)

यह कुछ-कुछ ऐसी ही स्वतन्त्रता थी जैसी कि इस वक्त अपने देश भारत में अमेरिका रचित भूमण्डलीकरण और बाज़ारवाद के कारण यहां की स्त्रियां महसूस कर रही हैं । लेकिन अमेरिका कोई सखी, दाता, दरवेश देश नहीं है । एक क्रूर विशुद्ध व्यापारिक देश । पूरे विश्व को अपना बाज़ार बनाने के लिए वह साम, दाम, दण्ड, भेद से लेकर युद्ध तक के स्तर पर उतरने से गुरेज़ नहीं करता । ईरान में भी उसने वहां के शाह के सहयोग से अपनी बहुराष्ट्रीय कम्पनियों का बाज़ार फैला रखा था । ईरान में चल रही क्रान्ति की लहर इसी के विरुद्ध थी । ''अमेरिकन्स धीरे-धीरे घर व कम्पनियां बन्द कर भाग रहे थे । उनके घरों पर आक्रमण हो रहा था । सामान की तोड़फोड़ चल रही थी ।''(27)

समाचार-पत्रों पर पहली पंक्ति थी - 'शाह रफ़्त, शाह रफ़्त । ईरान की दरो दीवार, लोगों के मन मस्तिष्क और संसार भर को आश्चर्य हुआ कि शाह ईरान छोड़ कर चला गया ?''

शाह के जाने के बाद - 'मीलों तक लोग कन्धों पर खुमैनी की कार ले जा रहे थे । सब दीवाने हो रहे थे । ... दीवानाकर लोग चीख रहे थे - 'खुमैनी हमो नेता ... खुमैनी हमारे रहबर ... ''(28)

धर्म ने इन्सानी सभ्यता की शुरुआत में आदमी को जानवर से इन्सान बनाने में अहम भूमिका निभायी थी इस बात से मुझे गुरेज नहीं है लेकिन मौजूदा वक़्त में धर्म इन्सान को किस कदर वहशी बना डाला है कि वह अपने धार्मिक जुनून में सारी की सारी इन्सानी कद्रो-कीमत, एहसासों व जज़्बातों को दरकिनार कर पूरी पृथ्वी को एक विराट कब्रिस्तान में बदल देने पर आमादा हो गया है । सत्तारूढ़ होते ही धर्म कैसे निरंकुश तानाशाह में बदल जाता है इसका ज्वलंत उदाहरण है अयातउल्ला खुमैनी और उसका शासन-कुछ दिन बाद बढ़ने अंकुश से घबराये बुद्धिजीवी अपने पुराने ठिकाने की ओर लौटने लगे । एक वर्ग भाग चुका था । तय्यबा जैसा वर्ग अब अर्थहीन होकर नहीं रह गया था । रूढ़िवादिता का दानव समाज को निगलने को आतुर था । ऐसे माहौल में सात सहेलियों, सात नदियों, में से एक अख़्तर शाह के ख़िलाफ़ हुई क्रान्ति में काम आई थी । मलीहा के अनुसार-''वह हम सबसे जीवट और भाग्यवान निकली जो चाहा वह उसे जीवन मिला । शहादत भी कैसी गौरवपूर्ण मिली ।''(29)

तय्यबा को छोड़ कर शेष सहेलियों की धीरे-धीरे शादी होती चली गयी । महनाज़ पहले ही सुलेमान से शादी कर जर्मन जा चुकी थी । परी का पति खालिद भ्रमर प्रवृत्ति का था । उसे हर दिन नई लड़की चाहिए थी । सूसन अपने पति असद से तलाक़ ले लेती है,

क्योंकि वह किसी और स्त्री से प्रेम करता था । वह अब्बास से पुनर्विवाह कर लेती है ।

खुमैनी के सत्तारूढ़ होते ही धर्म अपने असली तानाशाही रूप में आता चला गया था । कट्टरवादी मुल्ला - मौलवियों की बन आई थी - 'ईरान विचारधारा के धरातल पर बंट गया थश । गृहयुद्ध की ज्वाला अपनी लपटों से उसके हर कोने को झुलसा रही थी । घरों में तहखाने खोदकर लोगों ने पुस्तकें गाड़ दी थीं ।''(30)

''किसी का बेटा मुजाहिद होने के कारण गोली से उड़ाया जा रहा था तो किसी का फिदाईन गुरिल्ला तो कोई अन्य मार्क्सवादी विचारों के कारण ।''(31)

मलीहा अपने दो बच्चों के साथ अकेली पड़ गई थी । उसका पति हसन न जाने कहां आलोवा हो गया था । खुमैनी की कमेटी के पासदारों (सिपाहियों) ने उसे देशद्रोही करार दे दिया था । परी का पति खालिद सपरिवार विदेश पलायन कर रहा था । शाह के साम्राज्य के पतन के वक़्त उसने सोचा था - ''लघु उद्योग धन्धे वाले विदेशी बाज़ार के टूटने से पनपेंगे और इसी आशा में हमने जी भर कर शाह का विरोध किया था मगर आज न कच्चा माल है, न बिजली, न उपभोक्ता, न उत्पाद ...'' खालिद आगे कहता है - ''मुझे दुख नहीं हो रहा कि मेरी जायदाद जा रही है बल्कि दुख इस बात का है कि जिन्होंने उसे लिया है, वह गरीबी के नाम के स्थान पर अपने नाम करा रहे हैं । दूसरा भय जो मुझे यह सता रहा है, वह जान मुफ़्त गवाने का है । मैं अपनी जान इन मौलवियों और मुजाहिदीनों के आपसी युद्ध में न्यौछावर नहीं करना चाहता ।''(32)

उधर सूसन अपने पति अब्बास के गांव का माहौल पासदारों द्वरा असहनीय कर दिए जाने पर अपने पति के साथ हिन्दुस्तान पलायन कर जाती है ।

ईरान का एक बड़ा बुद्धिजीवी वर्ग विदेशों को पलायन कर जाता है । कुछ अमेरिका, जर्मनी, इंग्लैण्ड, हिन्दुस्तान इत्यादि मुल्कों में । पेरिस में तो अच्छा ख़ासा जमावड़ा ही हो गया था ईरानियों का । भूख की मार से बेहाल ईरानी औरतें वेश्यावृत्ति करने पर विवश हो गयीं - 'पेरिस में ईरानी वेश्याओं से मिलोगी ? शाम को ले चलता हूँ । पेरिस के उन इलाकों में जहां पैसा हक़ीक़त है, मान मर्यादा, वह भी हमारी ... हमें मुंह चिढ़ाती है ... उन लड़कियों से पूछना कि पेट कितना ज़ालिम होता है । जान कितनी प्यारी होती है ?''(33)

'उधर वह इमाम खुमैनी गुनाह को जड़ से उखाड़कर ईरान को शुद्ध करना चाहते हैं । दरवाज़े कजविन की सारी वेश्याओं को शूट कर दिया गया था ।''(34)

'कोई तो खुमैनी को जाकर बताये ... गोलियों से गुनाहगारों को भूनने वाले जालिम गुनाहगार आकर देख कि जिस अरब को शत्रु मानकर युद्ध कर रहा है वह अरब... खुजिस्तान से वह दो मिलियन भागी हुई बेघर-बार औरतें पेशा करती वह कमसिन लड़कियां पूरे

तेहरान ही नहीं पूरे ईरान में फैली हुई हैं ।''(35)

लेखिका ने ईरान की स्त्रियों की दयनीय दशा का मनोवैज्ञानिक अध्ययन किया है । तभी तो लेखका इस निष्कर्ष पर पहुंचती है कि एक ओर जहां धर्म की उपजाऊ ज़मीन औरत है वहीं यह भी सच है कि औरत का सबसे बड़ा दुश्मन धर्म है । सामन्ती व्यवस्था धर्म के माध्यम से ही हमेशा औरत को अपना गुलाम बना कर रखती आयी है । धर्म ने स्त्री को कभी धन, कभी रत्न तो कभी खेतियां कहा । उसे हमेशा वस्तु बनाये रखा । इन्सान होने ही नहीं दिया ।

उपन्यास की सातों स्त्रियां भी खुमैनी के इस धार्मिक इन्कलाब का शिकार होकर अपने समुन्दर से जुदा हो इधर-उधर बिखर गईं- 'मेरी सारी सहेलियां एक-एक कर छूट गयीं । कौन कहां है कुछ पता नहीं है ? दो वर्ष पहले मलीहा के बारे में परी ने कुछ लिखा था । हुसैन लापता है फिर परी के पत्र मिलने बंद हो गए । शहनाज़, सनोवर, अख़्तर और सूसन किस हाल में हैं कुछ पता नहीं ... तय्यबा तो कहना ही क्या ... वह तो उस समय भी ख़तरों से खेलती थी । हनाज़ ने खाय-खोये अन्दाज़ में कहा ।''(36)

एक ओर ईरान - 'पहाड़, पेड़, घर नहीं कब्र ... कब्रों में ढल गया है ।'' वहीं ईरान जहां-पहले ईरान में हर दूसरा आदमी शायर होता था और अब हर दूसरा ईरानी मरसिया - गो हो गया है ।'' दूसरी ओर इमाम खुमैनी अपने बुढ़ापे का रोना रोकर ईरान की पूरी नई नस्ल, नये खून को सद्दाम हुसैन के विरुद्ध इराकी युद्ध में झोंक रहा था-'मैं बूढ़ा हो रहा हूं । कब तक इन्तज़ार करूं .... इमाम की अन्तिम इच्छा थी - बसरा से बगदाद और फिर नज्फ़ में हज़रत अली के चौखट पर सिर टिका कर ज़ियारत करन की ।''(37)

तभी तो पासदार मार्क्सवादी विचारधारा की तय्यबा को पकड़ कर जेल में बंद कर देते हैं और असहनीय यातनाएं देते हैं - ''बिजली का केबिल हवा में लहराया और सड़ाक से तय्यबा पर पड़ा । तख़्त... पसीने और आंसुओं से तरबतर थी । हाथ पैर प्लास्टिक की पतली रस्सी से बंधे थे । दर्द से जब भी वह ऐंठती उसके हाथ-पैर पर खून से डूबी एक नई लकीर उभर आती ।''(38) शारीरिक यातनाओं से भी जब तय्यबा नहीं टूटती तो, बलात्कार का हथियार अपनाते हैं खुमैनी के काम पिपासु दुम हिलाऊ कुत्ते - ''नंगा शरीर बिजली की रोशनी में चमक रहा था । उसे अपने शरीर से नफ़रत हुई । बड़ी शदीद नफ़रत । यह नारी शरीर सिर्फ भोगने के लिए बना है चाहे प्रेम से, चाहे तिरस्कार से ।''(39)

तय्यबा ही नहीं ईरान की जेलों में बंद सब स्त्रियों की यही दशा थी । तय्यबा के लिए चिंतित मलीहा जब कहती है - 'या अल्लाह ! क्या बनेगा उसका ?

तो उसे उत्तर मिलता है - बनना क्या है ? जो सब औरतों और लड़कियों का बन रहा है । बस इतना करना कि उसे गर्भ निरोधक गोलियां जरूर दे आना, जो हर मां और बहन करती है ... हमारी औरतों का नसीब ... उनकी ग़न्दगी भी अपने में खाली करो ... उनकी गन्दगी का बोझ भी उठाओ फिर ताने का बोझ सुनो ।''(40)

नासिरा शर्मा ने अपने इस उपन्यास में ईरान में अयातुल्ला खुमैनी की धार्मिक तानाशाही के दौर में वहां के आम आदमी, ख़ासकर स्त्रियों की दुर्दशा को खौफनाक चित्र खींचा है । वस्तुत: धर्म आदमी के अन्दर की चीज़ है । वह आदमी के अन्दर ही बना रहे तो बेहतर है लेकिन जब वह सड़कों पर उतर आता है, सियासत में दाखिल हो जाता है तो वह खूंखार दरिन्दा बन जाता है और धर्म के नाम पर स्त्रियों के साथ अत्याचार करता है । ईरान की तात्कालिक घटनाओं पर अपना ध्यान केन्द्रित करते हुए नासिरा ने 'शामी-काग़ज़' और 'संगसार' 'जैसी महत्त्वपूर्ण कहानियाँ लिखीं, जहाँ मानवीय गौरव और गरिमा से सम्बद्ध व्यापक प्रश्नों से जूझती उत्पीड़नकारी स्थितियों, गहन पीड़ा बोध और संघर्षधर्मी चेतना का अत्यन्त सूक्ष्म, सहानुभूतिपूर्ण मार्मिक रूप प्रत्यक्ष हुआ । उन्हें पता है कि अगर वहाँ स्त्रियों ने साथ न दिया होता तो मुक्ति का स्वप्न अधूरा ही रह जाता । उन्हें अच्छी तरह पता है कि हमारे यहाँ औरत यदि पत्थर है तो पश्चिम की औरत यंत्र । खुले व्यक्तित्व की धनी लेखिका के विचार में स्त्री सही दिशा में, सही समय में, सही जगह पर अपने एहसान को अभिव्यक्त करने में कोताही न बरते ताकि एक मानवीय स्थिति पैदा हो । ऐसी मानवीय स्थिति जहाँ अपने स्वत्व हेतु संघर्ष करती सिर्फ स्त्रियाँ ही न हों वरन् पुरुष भी अपनी वर्चस्ववादी चेतना और मिथ्या अहम् से परे जाकर औरतों को उनकी बंधी-बंधायी ज़िन्दगी से उबारने में सहायक हों । यही वजह है कि उनकी 'सबसे पहली बात जो विश्व स्तर पर समझ में आती है वह यह कि औरत को इंसान समझा जाए । उन्हें बराबरी से जीने का अधिकार दिया जाए । खुदा ने औरत और मर्द को अलग-अलग शक्लें जरूर दी हैं, मगर उनको किसी भी स्तर पर ... छोटा-बड़ा नहीं बनाया है ।' 'संगसार' यानी पत्थर से किसी को तब तक मारना जब तक कि वह मर न जाए । ईरान में प्रेमी पुरुष को पत्थरों से मारा जाता है । यह भारत से बाहर कट्टर मुस्लिम परिवेश में ही संभव है । इस कहानी में लेखिका ने ईरान को परिवेश की जीवंत प्रस्तुति की है ।

5.2 नासिरा शर्मा के नारी पात्र : मूल्य चेतना संदर्भ

नासिरा शर्मा के नारी पात्रों में पहला स्थान अगर किसी का है तो वह है 'शाल्मली' । इसी नाम से उपन्यास का शीर्षक है जो करीब 35 वर्ष पूर्व लिखा गया । परन्तु आज भी यह उपन्यास प्रासंगिक है इस मायने में खासकर कि पढ़ी-लिखी मध्यम वर्ग की नौकरीशुदा

महिलाओं की जिंदगी से रुबरु होती है यह कथा यात्रा । 'शाल्मली' न जाने कितनी कामकाजी स्त्रियों का प्रतिनिधित्व करती है । उनमें आज की कामकाजी महिलाओं को अपनी छवि दिखती है । इसलिए यह उपन्यास अक्सर पुन:मुद्रित होता रहता है और तुरंत 'आउट ऑफ प्रिंट' हो जाता है । बहरहाल इस उपन्यास की शीर्ष पात्र, शाल्मली के रुपायन में रामधारी सिंह दिनकर की ये पंक्तियां समीचीन प्रतीत होती है ।

गृहिणी जाती हर दांव
सम्पूर्ण समर्पण करके
जयिनी रहती बनी अप्सरा
ललक पुरुष में भरके

दिनकर की ये पंक्तियां स्त्री-पुरुष के आकर्षण एवं शाश्वत और नैसर्गिक सत्य की ओर संकेत करती है । सम्पूर्ण समर्पण करते स्त्री प्रेम करती है । प्रेम में डूब जाती है । प्रेम में डूबती है पहले, वासना में रमती है बाद में । पुरुष वासना में डूबना चाहता है पहले और इसके लिए प्रेम का सहारा लेता है । 'शाल्मली' शुद्धरुप से दिनकरजी की उक्त अप्सरा की भांति नरेश को तन भी सौंपती है मन भी । मन पहले सौंप चुकी होती है । इसलिए जब कभी नरेश ताने मारता है, शाल्मली कट कर रह जाती है पर संबंध को बनाए रखती है । ससुराल और मायके से स्वयं को तो जोड़कर रखती है, नरेश को भी जोड़े रखना चाहती है । एक ही शहर मायका होने के कारण कई-कई बार किसी कारणवश उसे, काम से लौटने के बाद मायके जाना पड़ता है, कभी दफ्तर से सीधे मायका चली जाती है । नरेश को बाद में बुलाने का यत्न करती है, फोन करती है, मिन्नतें करती है, मान-मुनहार भी करती है । कभी-कभी नरेश भाव भी खाता है, दामाद होने का नखरा भी करता है, चिढ़ भी जाता है, दोस्त आने वाले हैं कहकर पीछा छुड़ाने की कोशिश करता है, किसी पार्टी में जाना है - कहकर कन्नी भी काटता है । पर शाल्मली अटल यौवना की भांति जोड़े रखती है उसे सबसे ।

शाल्मली के पिता पछताते हुए कहते हैं - मैं जानता तो यहाँ न ब्याहता तुझे शालू, बड़ों ने ठीक ही कहा है कि घर परिवार को ठोक बजाने के बाद कुल भी महत्त्वपूर्ण होता है । नरेश के पास जो संस्कार हैं वे तेरे संस्कार से पूर्णत: भिन्न हैं । न उसकी ग़लती है न तेरी, दुख तो मुझे है, जो ऊपर से पढ़ा-लिखा लड़का देखकर बाकी चीज़ों की तरफ से आँखें बन्द कर लीं । पर वे भी जानते हैं कि अब हुए को अनहुआ नहीं किया जा सकता । इसलिये उसी को उपदेश देते हैं - 'तू बहुत समझदार है, बेटी, इस बहाव को सम्हाल सकती है । ... मुझे विश्वास है, सदा की भांति तू कठिन डगर चुनेगी ।' आमतौर पर यही सलाह-उपदेश हर वह माता पिता अपनी बेटी को देता है जो अनमेल विवाह के बाद उसकी कोई मदद नहीं कर पाता या नहीं करना चाहता । चाहे इसका अंजाम बेटी की हत्या या आत्महत्या में ही क्यों न

होता हो ।

वह अपने माता-पिता की इकलौती संतान है । इसलिये उन्होंने उसे बेटी नहीं बेटे की तरह पाला है और अब उसे ऐसी अवस्था में देखकर वे मन ही मन दुखी होने के अलावा और कुछ कर नहीं पाते । दूसरी ओर शाल्मली अपने घर से, जीवन से नरेश के व्यवहार से जब अधिक आहत होती है तो माता-पिता के पास चली आती है । यद्यपि इसके पीछे उन्हें अपने दुख से दुखी करने की बजाय बुढ़ापे से पैदा हुई उनकी असहाय अवस्था में उनकी कुछ मदद कर देने की मंशा अधिक रहती है । लेकिन यह भी नरेश को सहन नहीं होता । उसे शाल्मली पर एकाधिपत्य चाहिये । वह उसकी इच्छा के बिना कुछ भी करे यह उसे अच्छा नहीं लगता । वह साफ कहता है कि वह अपने आपको स्वतंत्र समझने लगे और जो चाहे सो करने लगे । पर उसे याद रखना होगा कि मर्यादा का ध्यान तो रखना ही है । दरअसल नरेश का बार-बार यह जताना कि वह मर्द है । उसे परम्परा से मिला संस्कार, पैतृक परिवार के परिवेश से प्राप्त प्रभाव का परिणाम तो है ही उस कुंठा से निजात पाने का एक तरीका भी है जो शाल्मली की लगाम कसकर नहीं थामे रखी तो एक दिन वह उसके हाथ से निकल जायेगी । इस डर को बढ़ाने में हमारे धर्मशास्त्र और लोक में व्याप्त मान्यताएँ भी हैं जो हमेशा पुरुषों को आगाह करती रहती हैं कि स्त्री स्वभावत: चंचल होती हैं और उसे काबू में नहीं रख गया तो 'हस्ते गता गता:' की भांति उसका दूसरे मर्द से पास चले जाना स्वाभाविक है ।

अपना वर्चस्व बनाये रखने के लिये नरेश उन सब उपायों को काम में लाने से नहीं हिचकिचाता जो शाल्मली को हर दम यह याद दिलाते रहते हैं कि वह औरत है और उसे पति की हर इच्छा प्रत्येक स्थिति में पूरी करनी है । शराब पीना, पार्टियों-क्लबों में जाना रात देर से लौटना । पराई स्त्रियों से सम्बन्ध बनाना, घर में दोस्तों को बुलाकर यह दिखाना कि उसका अपनी पत्नी पर कितना रौब है जैसी हरकतें उसे पुरुषोचित लगती हैं । शाल्मली उसकी मानसिकता को बड़ी अच्छी तरह जानती है पर कोई प्रतिक्रिया नहीं करती । फिर भी नरेश को लगता है वह शाल्मली को अपने शिकंजे में नहीं रख पा रहा है ।

5.3 नासिरा शर्मा के नारी पात्र : मनोविश्लेषणात्मक विवेचन

मनुष्य सामाजिक प्राणी होने के साथ-साथ संवेदनशील प्राणी है । कहते हैं कि प्रेम के बाद संवेदना ही मानव के अंतरतम की सर्वाधिक पवित्र भावना है । सहानुभूति, सान्त्वना, दिलासा के दो शब्द किसी के दु:ख - कष्ट का निवारण भले ही न कर सकें, उसके दिल को तसल्ली तो दे ही सकते हैं । सुख के साथ दु:ख भी महसूस करने की स्थिति है । अत: सहानुभूति व्यक्ति के दु:ख की अनुभूति को कम अवश्य करते हैं । 'संवेदना' शब्द साहित्य और मनोविज्ञान दोनों विषयों में ग्रहीत है और भिन्न अर्थों का परिचायक है । मनोविज्ञान में

यह ज्ञानेन्द्रियों का अनुभव है । पर साहित्य में जब हम मानवीय संवेदना की बात कहते हैं तो इसका आशय मात्र ज्ञानेन्द्रियों का अनुभव न होकर मानव मन की अतल गहराइयों में छिपी करुणा, सहानुभूति एवं दया की उदात्त वृत्तियों तक हो जाता है ।

मनोविश्लेषकों एवं विद्वानों ने माना है कि स्त्रियां अधिक भावुक और संवेनशील होती हैं । हृदय की कोमल वृत्तियों से आपूरित होने के कारण उनमें व्यक्तिक को समझने, परखने, महसूस ने की क्षमता अधिक होती है । जय शंकर प्रसाद की 'कामायनी' की श्रद्धा नारी-हृदय की इन्हीं उदात्त भावुक व संवेदनशील वृत्तियों की प्रतीक है -

''दया, माया ममता यो आज,
मधुरिमा यो, अगध विश्वास,
हमारा हृदय रत्न निधि स्वच्छ,
तुम्हारे लिए खुला है पास ।''

विवेच्य लेखिका नासिरा शर्मा स्वयं नारी होने के कारण अपने कथा साहित्य के नारी पात्रों का मनोविश्लेषणात्मक विवेचन प्रस्तुत कर पाने में अधिक सफल रही है । पुरुष को नारी को समझना मुश्किल है, पर नारी पुरुष को भी समझ सकती है और खुद नारी को भी । डॉ. नगमा जावेद के शब्दों में लेखिका के चिन्तनशील मस्तिष्क और संवेदनशील हृदय की एक-एक परत ने 'जिंदा मुहावरे' उपन्यास के पात्रों के दर्द, पीड़ा और छटपटाहट को अपने भीतर महसूस किया है जिसे सरहद पार के लोग घूंट-घूंट पीने के लिए मजबूर हैं ।''(41)

'जिंदा मुहावरे' एक ऐसे विषय-भारत-पाक बंटवारे को लेकर लिखा गया उपन्यास है जिसमें समाज का सच नंगा होकर सामने आता है । ऐसी कृति के कथानक के साथ न्याय कर पाना और उसके पात्रों का मनोविश्लेषणात्मक अध्ययन कर पाना टेढ़ी खीर है । इसके लिए तेज दिमाग से अधिक दिल की गहराई चाहिए । दरअसल 'जिन्दा मुहावरे' की संरचना में धरती को मोह लेने वाली बास-गंध के साथ अनुकूल भाषा का जीवंत प्रयोग व रिश्तों के साथ वास्तविक तालमेल ने अलग-अलग समाजों, वर्गों और विचारों को एक सूत्र में जोड़कर प्रमाणित कर दिया कि सभी धाराएं एकजुट होकर एक मुख्यधारा का निर्माण करती हैं और सांस्कृतिक एकरसता की विरासत को अपने समूचेपन में ठोस धरातल पर खड़ा कर देती हैं । इसी सच के कारण यह रचना तमाम भ्रमों, शंकाओं को विरस्त करते हुए इस सच्चाई को सामने लाती है कि राजनैतिक स्वार्थों के कारण भले ही धरती बँट जाए पर इंसानी रिश्ते नहीं बँटते !(42) निजाम की बीवी सबीहा के पुत्र प्रेम को लेखिका ने बखूबी अभिव्यक्त किया है जब वह अपने शौहर से कहती है - ''अभी छोटा है । इतनी जोर से मत उछालिए ! कहीं हंसली उखड़ गई तो --- ! सबीहा दो महीने के बच्चे को कपड़े के गुड्डे की

तरह उछालते-कुदाते देख परेशान हो जाती । 'ऐसे ही तो मजबूत बनेगा पट्ठा ।' निजाम प्यार में सराबोर हो उठता ।(43)

'छोड़िए -- अभी इसकी हर चीज नरम है ।' सबीहा बेटे को निजाम के हाथों से लेकर उसका मुआयना करती । हाथ-पैर इस तरह टटोलती, जैसे देख रही हो कि कुछ टूटा तो नहीं ।(44) उपर्युक्त संवाद-अर्पण में सबीहा और निजाम के सुखी दाम्पत्य जीवन की आभा भी परिलक्षित होती है एवं वात्सल्य प्रेम की सदाशयता भी । सबीहा के देश प्रेम को लेखिका ने उपन्यास में वर्णित किया है जब वह निजाम के हिन्दुस्थान चलने के बारे में उसकी इच्छा जानने के जवाब में कहती है - ''नेकी और पूछ-पूछ ।'' हँसकर बोली सबीहा तुम तैयारी करो, मैं चलने का इंतजाम करता हूँ । अम्मी, अब्बू से भी पूछ लो । अगर वो भी राजी हों, तो सब इकट्ठा चलते हैं । महीने-दो-महीने रहकर आते हैं ।'' निजाम ने जूता उतारते हुए कहा ।

''वह तो कब से तड़प रहे हैं ----'' ।

''बच्चे कहां हैं ?''

''पास वाले घर में खेलने गए हैं । आते ही होंगे आप चाय पियें ।'' सबीहा ने जवाब दिया ।(45)

विवेच्य उपन्यास में सबीहा द्वारा पुत्री के जन्म पर खुशी व्यक्त की जाती है और बेटी को घर की बरकत, लक्ष्मी का रुप माना जाता है । आज से करीब 62 वर्ष पूर्व के परिवेश पर लिखे गए उपन्यास में यदि यह बात सामने आती है तो यह स्त्री विमर्श का एक सुखद पहलू है और आशा की किरण भी । हालांकि प्राचीन ग्रंथों में कन्या के जीवन का स्वागत किया गया है । 'परवर्ती वृद्धारण्यक उपनिषद' में जहां कन्या जन्म का 'दुहिता में पंडित्य जायते' कहकर आदर किया गया है वहीं 'बाराह गृह्य सूत्र' में सुन्दर कन्याओं की उत्पत्ति पर प्रसन्नता व्यक्त की गई है । यहां कन्या के प्रति कुछ श्लोकों में पुत्री के प्रति अभिभावकों के स्नेह की अभिव्यक्ति मिलती है ।(46)

प्रसंगवश यहां यह उल्लिखित करना उपयुक्त होगा कि 'कन्या' शब्द की उत्पत्ति कर्म् धातु से हुई है और इसका अर्थ है किसी भी पुरुष की इच्छा कर सकती है । वह स्वतंत्र है, उस पर किसी का अधिकार नहीं ।(47)

'शाल्मली' उपन्यास की शाल्मली का मनोविश्लेषणात्मक विवेचन करने में लेखिका शुरु से अंत तक काफी सचेष्ट और ईमानदार दिखी । इसी का परिणाम है कि 'शाल्मली' आज भी बड़े चाव से पढ़ी जाती है । भारतीय महिलाएं शाल्मली में अपना अक्स देखती हैं

। कामकाजी महिलाओं को शाल्मली से सहानुभूति होती है जबकि उसके दकियानूस और पुरुष सत्तात्मक समाज के प्रति वे आक्रोश व्यक्त करती हैं । शाल्मली को नरेश मानसिक रूप से परेशान करता है पर शाल्मली ताउम्र इस उम्मीद के साथ उसके पास रहती है कि कभी-न-कभी नरेश को उसकी सुध आएगी ही ।

लेखिका ने शाल्मली को अपने ही अन्य उपन्यास 'ठीकरे की मंगनी' की महरुख की तरह विद्रोही नहीं बताया है बल्कि उसे कर्तव्यपरायण, पति परायण और शास्त्र सम्मत ऐसी भारतीय महिला के रुप में प्रस्तुत किया है जैसी महिला बनने की सीख बुजुर्ग-मनीषी समाज में देते आए हैं । तभी तो कार्य क्षेत्र में भी और मानसिक धरातल पर वह नरेश से बीस रही है पर उसे कभी दंभ नहीं हुआ जबकि नरेश व्यर्थ के आडम्बरों का ही दंभ भरता रहता है । स्वयं नासिरा उपन्यास में कहती है - ''पिछले आठ वर्षों में नरेश कई बार शाल्मली की दृष्टि में गिरा था, मगर हर बार शाल्मली ने बड़ी तत्परता से उसे अपनी पलकों से संभालकर फिर आंखों में सजाया था, मगर आज नरेश कुछ इस तरह से गिरा कि शाल्मली के मन ने उठाना स्वीकार नहीं किया । कहां गिरा, कहां गया उसे नहीं पता ।''(48)

शाल्मली का यह क्रोध इस बात को लेकर था कि नरेश ने बस इस छोटी सी बात पर शाल्मली को अपमानित, प्रताड़ित किया कि वह एक पुरुष सहकर्मी को घर छोड़ने गई । पर वही भारतीय नारी का समर्पण भाव ! आखिर में भी वह विद्रोह नहीं कर पाती और नरेश के बदल जाने की आशा में उसके साथ रहने को तैयार हो जाती है । आलोचक कह सकते हैं कि शाल्मली का नरेश के साथ रहने का फैसला नारी स्वतंत्रता का विपर्याय है । परन्तु यहां यह ध्यातव्य है कि शाल्मली शुरु से आखिर तक बुद्धि से प्रखर और शील से उच्चतर रही, नरेश का अन्तर्मन भी इसे स्वीकार कर रहा है पर पुरुष होने के कारण हीन ग्रंथि उसके आड़े आती है ।

'जहां फव्वारे लहू रोते हैं' यात्रा आलेख सह उपन्यास में लेखिका स्वयं एक पात्र के रुप में कई जगह उभर कर आई है और स्वयं की प्रस्तुति कर ईरान और इराक में महिलाओं की स्थिति एवं उससे अधिक महिलाओं के बारे में पुरुष के विचार उद्‌भासित करती है । एक उदाहरण यह कि इराक जहां इस्लाम धर्म का जन्म स्थल है और जहां रेगिस्तानी सौंदर्य का अनुपम नमूना भी, वहां नासिरा शर्मा उस एक सुबह जाती है रमादा कैम्प में जहां ईरानी युद्धबन्दी लड़कों को रखा गया था । दो सौ ईरानी लड़के बैठे थे । कौने में बैठे एक आठ-दस साल के लड़के से लेखिका का संवाद कुछ इस प्रकार है -

''तुम्हारा नाम क्या है ?''

ख़ामोशी !

''तुम्हारा नाम क्या है ?'' मेरे कई बार दोहराने पर भी मुझे कोई उत्तर नहीं मिला ।

''क्यों ? जवाब क्यों नहीं दे रहे हो ख़ानम को ?'' पीछे से रसोई के इंचार्ज अली रहीमी ने कहा जो ईरान की फ़ौज में सार्जेण्ट रह चुके थे और दो वर्ष से बन्दीगृह में थे ।

ख़ामोशी !

''जवाब दो, क्या पूछा जा रहा है ?'' पीछे से इराक़ी अफ़सर ने उखड़ी फ़ारसी में कहा । जवाब देने पर इतना ज़ोर दिया जाने लगा कि अन्त में उस लड़के ने बड़ी मुश्किल से अपना सर ऊपर उठाया और मिनमिनाते हुए कुछ कहा जो मेरी समझ में नहीं आया ।

''वह कह रहा है मैं औरत से बात नहीं कर सकता हूँ ।'' अली रहीमी ने दबे लहजे से उसकी बात दोहराई ।

''मैं औरत कहाँ ... ? तुम्हारी माँ, तुम्हारी बहन भी तो हूँ !''

''यदि आप मेरी बहन या माँ होतीं तो इस तरह से बेपर्दा न होतीं ।''

उसके इस जवाब से मैं ख़ामोश हो गई ।

''मैं मुसलमान हूँ, मुझसे बात करनी है तो पहले सर ढँकिए !''

''लो'' इतना कहकर मैंने सर पर अपनी साड़ी का आँचल डाल दिया । मुझे उसकी बातों, तेवर और लहजे की उग्रता से तेहरान में मौलवियों से लिए गए अपने इण्टरव्यू याद आ गए । चीफ जस्टिस डॉ. बेहिश्ती जो इस्लामी पार्टी के अध्यक्ष थे, उनके पास जाने से पहले पासदार ने मुझसे सर ढँकने को कहा था । मुझे ताज्जुब हुआ था कि मेरे सर पर स्कार्फ तो बँधा हुआ है, फिर ? मालूम हुआ बाल दिखने नहीं चाहिए वरना .. डॉ. बेहिश्ती का कहना है कि औरत के बालों से निकलने वाली चमक मर्द को उत्तेजित करती है । स्कार्फ माथे तक लाने के बाद भी जब उसने फिर टोका तो मुझे पर्स से आईना निकालकर उस नन्हे बाल को माथे से पकड़कर स्कार्फ की क़ैद में डालना पड़ा जो पसीने से चिपककर मेरे माथे से होता हुआ मेरी भौंहों से नीचे गाल पर चिपका हुआ था । बहरहाल ... मैं उस बच्चे के आगे सर ढँककर बैठ गई ।[49]

लेखिका की कहानियों के नारी पात्र भी विविध रुप प्रस्तुत करते हुए समग्रता में हिन्दू व मुस्लिम समाज में सोच, मानसिकता और नारी की दशा-दिशा को रुपायित करते हैं । यद्यपि यह भी मानना पड़ेगा कि नासिरा शर्मा की रचनाओं में नारी का वह रुप तो सामने आता है जिससे पाठक को नारी पात्र से सहानुभूति हो पर वह रुप नहीं आता जिसमें वह बागी बनकर व्यवस्था के खिलाफ स्वर बुलंद करती है एवं आत्मनिर्णय से लैस होकर

अपना रास्ता चुन लेती है । यद्यपि 'हंस' के संपादक राजेन्द्र यादव ने स्वयं नासिरा शर्मा को कथा जगत की बागी मुस्लिम औरतों की सूची में प्रमुखता से शामिल किया है । मिसाल के तौर पर फणीश्वरनाथ रेणु की रचना 'नैना जोगिन' को लें । इसकी नारी पात्र रतन का विवाह अधेड़ उम्र के व्यक्ति से कर दिया जाता है जब कि वह अल्प वया है । वह बिफर पड़ती है और कई बरसों तक बच्चा नहीं पैदा होने का सारा दारोमदार अपने सास-ससुर के समक्ष अपने बूढ़े हो चले पति पर यह कहते हुए जड़ देती है कि अपने बेटे को समझाइए, मैं तो अभी भी हरी हूं, दस बारह बच्चों की फौज खड़ी कर सकती हूं । नामर्द तो आपका बेटा है । रेणु ने इस कहानी में नारी पात्र का जो बोल्डनेस आज से चालीस-पैंतालीस साल में दिखाया वह नासिरा की कहानियों में नहीं मिलता है ।

यद्यपि नासिरा की कहानियों में कई नारी पात्र हैं और उनके माध्यम से लेखिका ने नारी विमर्श के अध्याय में महत्वपूर्ण योगदान दिया है । कह सकते हैं कि जिस प्रकार ''स्वतन्त्र श्रवणक्रमणिका में उल्लिखित प्राचीन परम्परा के अनुसार ऋग्वेद की रचना में कोई बीस स्त्रियों ने योगदान दिया है''(50) उसी तरह स्त्री विमर्श के अध्याय में अन्य पूर्ववर्ती व समकालीन लेखिकाओं की श्रेणी में नासिरा शर्मा की भी अहम भूमिका है तो अतिरंजना नहीं होगी । 'तीसरा मोर्चा' शीर्षक कहानी कश्मीर की समस्या के विकराल रुप घटने के बाद वहां के निवासियों के पलायन करने के दौर की कहानी है । एक अनाम महिला, जिसका पति लापता हो गया है, अपने को और अपने बच्चों को जिनकी दहशतगर्दों ने पीट-पीटकर हत्या कर दी, खुद उसे अंतहीन सीमा तक जलील किया, सामूहिक बलात्कार किया, उसे बचाने आए राहुल और रहमान से कहती है - तुम दोनों जाओ भाई, मैं मां हूं । मुझे बच्चों को दफनाना है -- पत्नी हूं -- मुझे अपने शौहर का इंतजार करना होगा -- औरत हूं इसलिए जुल्म के खिलाफ मुझे जिंदा रहना है -- मुझे भागना या मुंह छुपाना नहीं है -- मुझे अभी जिंदा रहना है ।''(51) एक पत्नी, मां का मनोविश्लेषणात्मक विश्लेषण इस एक वाक्य में कर पाने में सफल हुई हैं नासिरा ।

'प्रोफेशनल वाइफ' और 'दूसरा ताजमहल' कहानियों में नासिरा शर्मा ने अपने नारी पात्रों का अभिव्यक्ति के माध्यम से कुशलतापूर्वक मनोविश्लेषणात्मक विवेचन किया है । 'प्रोफेशनल वाइफ' आधुनिक जीवन के संघर्ष से परिपूर्ण और मनोविश्लेषण की उलझनों से ग्रस्त जटिल संवेदनाओं की कहानी है । सुधा संघर्षशील भी है और संवेदना से परिपूर्ण भी । परित्यक्ता है, जिंदगी अपनी शर्तों पर गरिमामय तरीके से जीने को इच्छुक है । वह फिल्म स्क्रिप्ट टाइटर है । उसका सम्पर्क फिल्म निर्माता-निर्देशक विजय से होता है जो संबंधों को लेकर गंभीर नहीं है । अभिनय और बेहतर कैरियर की चाह में लड़कियां उसकी

हम बिस्तर होती हैं जो उसके लिए रोजमर्रे की बात है । उसके मनोविश्लेषण की परतें धीरे-धीरे बनी अययर खोलती है जिसके लिए स्केण्डल रचना, अन्य नारी-चरित्रों से ईर्ष्या करना अपने आपको बलात्कार की शिकार बतलाकर लोगों से सहानुभूति बटोरना आम बात है ।

संवाद लेखिका सुधा कहानी के प्रारम्भ में ही बनी अय्यर के ईर्ष्यालु स्वभाव और दोहरे चरित्र के मनोविज्ञान के बारे में सोचती है जब वह पहली बार के मिलन अवसर पर दोनों हाथ जोड़कर उससे कह रही है । '... जाइये । ...' जैसे कि पत्नी हो, जो घर आये मेहमान के साथ बदसलूकी से पेश आना अपना अधिकार समझती हो, खासकर पति की स्त्री परिचित से । वही बनी बाद में अवसरवादी प्रवृत्ति से खुशनुमा अन्दाज में उसकी मिजाज पुर्वी करते हुए विजय की सेक्युअल हरकतों को जाहिर करती है ।

इलाहाबाद के परिवेश पर रची 'तुम डाल डाल हम पात पात' कहानी में नासिरा युवा बेरोजगार लड़कों की छीना-झपटी, यार-मुसाहिबी पुलिस से छेड़छाड़ की घटना के साथ-साथ मुस्लिम समाज की स्त्रियों की दुर्दशा का बयान भी करती है । डॉ. रोहिताश्व के शब्दों में

''अपनी सास की सारी जहालत, गालियाँ और अपनत्व की बातें सुनती हुयी बुढ़ाती माँ सिपतुन की हमदर्दी अपने जवान बेटे जहीर की बदहवासी व परेशानी भरी करगुजारी से है । लगता है कि यह कहानी हिन्दुस्थान के कई-कई शहरों के बिखरे युवा पात्रों की विश्वसनीय जिन्दगानी से है ।[52]

प्रतिनिधि व बहुचर्चित कहानी 'दूसरा ताजमहल' में आधुनिक नारी का मनोविश्लेषणात्मक विवेचन बखूबी किया गया है । नयना सुंदर है, इंटीरियर डेकोरेटर है और डॉक्टर नरेन्द्र की पत्नी है । आधुनिक विचारों की है व धनी है । कभी दोनों का सुखी जीवन था परन्तु पति की काम में बढ़ती व्यस्तता से नयना एकाकी होती गई और रविभूषण की और मुड़ गई पर वहां भी रविभूषण का 'वर्कोलिक' होना और संबंधों को भी प्रोफेशन की तरह लेने के उसके 'एप्रोच' के कारण उसे दुबारा एकाकीपन की अंधेरी गलियों का चयन करना पड़ा । कहानी में नयना के जीवन में व्याप्त इस एकाकीपन और अलगाव बोध को लेखिका ने बड़े खुलकर अभिव्यक्त किया है पर डॉ. रोहिताश्व के मत में उसके पास निर्मल वर्मा के मार्मिक शब्दों वाली सांकेतिकता और आन्तरिक भावों की नक्काशी कम है । भोपाल की गैस त्रासदी के कारण त्रस्त गीता के मन की त्रासदी को 'इब्ने मरियम' कहानी में व्यक्त किया गया है ।

'रामधन की बड़ी बेटी भोपाल में ही ब्याही गई थी । जिस दिन मायके आई उसी सुबह

गैस का हादसा हो गया । सब बिछुड़ गए । गीत तीन दिन बाद अहमदिया अस्पताल में मिली । मौत के करीब जाकर लौट आई थी, मगर उसके ससुराल वालों ने खुशी की जगह गुस्सा दिखाया और गीता को वापस लेने से इंकार कर दिया ।''(53) गीता को ससुराल वालों ने इसलिए अपनाने से मना कर दिया उसकी संतान अपंग पैदा होगी । लेखिका ने गीता के साथ-साथ कुबरा और सुगरा की तस्वीरों भी चित्रित सी है । इब्ने मरियम शीर्षक सांकेतिकता का सूचक है । इसी संग्रह की एक अन्य कहानी 'जहांनुमा' में अपने सिद्धांतों का भौतिक मूल्य न पाकर स्वार्थी कमाल नबीला से तड़प कर कहती है - ''सुनो कमाल, जब मोहब्बत जिंदगी में दाखिल होती है तो उसपर इंसान का कोई वश नहीं हेाता, मगर जब जिंदगी से विदा होने लगती है तो उसे थामकर रखना भी गैर मुमकिन होता है । यही मेरी मजबूरी है । ऐसा ही कुछ मेरे साथ हुआ । उम्मीद है, तुम मेरी मुश्किल समझोगे ।(54)

वस्तुत: नासिरा शर्मा के कथा साहित्य के नारी पात्र विभिन्न भारतीय परिवेश एवं मुस्लिम देशों के परिवेश के सामाजिक सोच और मानसिकता का कुशलतापूर्वक प्रतिनिधित्व करती हैं ।

5.4 नारी पात्र : आत्मसंतापी, जिजीविषा और विद्रोही पात्र

सुख का विलोम शब्द दुख, प्रतिकूल होने के भाव का सूचक है । सब कुछ दुख, अवसाद है, कहकर गौतम बुद्ध ने सर्वप्रथम इस सिद्धांत का प्रचार किया । उन्होंने इस लोक को दुख-लोक तथा जन्म-मरण को सबसे बड़ा दुख माना । दुख से बचने के लिए गौतम बुद्ध ने अष्टांग मार्ग का प्रवर्तन किया । बौद्ध दर्शन के दुखवाद ने बाद के हिंदू दर्शनों को भी प्रभावित किया ।

वस्तुत: सुख और दुख, दिन-रात की भाँति अन्योन्याश्रित और परिवर्तनशील हैं । एक की अनुभूति के लिए दूसरे का अनुभव भी आवश्यक है । इसीलिए साहित्य में सुखात्मक संवेदना के साथ ही दुखात्मक संवेदना को भी यथोचित महत्त्व मिला है । ''हिंदी साहित्य की प्रयोगशील धारा के कुछ लेखकों ने दुखवाद को एक रचनात्मक तथा प्रेरक शक्ति के रूप में ग्रहण किया है । ... परंतु ऐसा लगता है कि इन लेखकों का दुखवाद किसी दार्शनिक चिंतन धारा से संबद्ध न होकर वर्तमान युग में सक्रांतिकालीन विघटन से प्रेरित है ।''(55)

डॉ. उषा यादव के अनुसार कथाकार आज के यथार्थ की कटुता को वहन करने में सक्षम है । वह पलायन या मुक्ति नहीं, अपनी पूरी जिजीविषा के साथ संघर्ष चाहता है । यथार्थ का यह अनुभव जीवन को अपनी पूरी समग्रता में ग्रहण करके व्यक्तित्व को पूर्णता प्रदान करता है । उसे विभक्त करने के बजाय ऐसे नए आयाम देता है, जिससे नए जीवन-मूल्य उद्घाटित होते हैं, मानवीय चेतना नए संदर्भों में प्रतिष्ठित होती है तथा अनुभूतियों को नया

परिवेश मिलता है । इसीलिए आज के कथा साहित्य में परंपरा का ठहराव नहीं व्यक्ति के आचरण एवं उसके अंत:संघर्ष को व्यापक अनुभूति के धरातल पर प्रतिष्ठा प्राप्त होती है । दुखात्मक संवेदना की नई यथार्थवादी अभिव्यक्ति आज के उपन्यासों की विशेषता है ।(56)

जीवन को दुख-सुख की क्रीड़ास्थली मानते हुए सिम्मी हर्षिता का कथन है : ''दुख-सुख आते हैं, मेहमान की तरह कुछ दिन अपना संग-साथ देते हैं-मेहमानवाजी करवाते हैं । कभी हम उन्हें अपने आँसू परोसते हैं-और कभी हँसी । और फिर वे अपनी राह चले जाते हैं । वे जब भी आते हैं, वापसी की गाड़ी का टिकट साथ लेकर आते हैं । पर इनसान को आगे का सफर जारी रखना पड़ता है - उनके साथ या उनके बिना ।''(57)

दु:ख की ही श्रेणी में आता है आत्मसंताप और व्यक्ति के स्वभावनुसार हालात से लड़ने और आगे बढ़ने की जिजीविषा । यह आत्मसंताप, उत्पीड़न, प्रताड़ना समाज में नारी के हिस्से ही क्यों आते हैं । दु:ख-सुख जीवने के धूप-छांव हैं, जीवन संघर्ष में दोनों स्थितियों का आना-जाना लगा रहता है, यह पुरुष-स्त्री दोनों के लिए समान रूप से आता है, लेकिन इस उप अध्याय में हम जिस दु:ख, प्रताड़ना, उत्पीड़न, सिसकियों की बात कर रहे हैं वह पुरुष सत्तात्मक समाज द्वारा स्त्री के हिस्से दी गई सौगात है । इंदु भारती के शब्दों में - ''मेरी मान्यता यह है कि हमारी सामाजिक पारिवारिक संरचना अक्सर पुरुषों को भी एक व्यक्ति से ज्यादा एक 'पुरुष' की तरह पलने-विकसित होने को मजबूर करती है ।''(58) मिसाल के तौर पर हमारे इर्द-गिर्द ऐसी नसीहतें बचपन से ही लड़कों को देने वाले परिवार में मिल जाते हैं - 'मर्दों को रोना-धोना शोभा नहीं देता', या न तुम तो मर्द हो तुम्हें औरतों के बीच बैठना शोभा नहीं देता ... आदि-आदि । लेकिन ये रोल मॉडल बुनियादी रूप से जहां एक पुरुष को एक व्यक्ति बनने का पूरा अवसर देते हैं, वहीं एक स्त्री को महज एक स्त्री के रूप में खुद को जानने-पहचानने का माहौल देते हैं । यह बुनियादी और कुदरती सच कि हर पुरुष पहले एक मनुष्य है, तब एक सेक्स और हर स्त्री पहले एक मनुष्य है, तब एक सेक्स नकार दिया जाता है । जब स्त्री और मानवाधिकार की बात चलती है तो शुरुआत यहीं से होनी चाहिए कि हर मानवाधिकार स्त्रियों का अधिकार है न कि केवल पुरुषों का ।

विवेच्य कथाकार नासिरा शर्मा स्वयं महिला होते हुए नारी पात्र के मन को गहरे तक समझने की क्षमता रखती है, तभी वह शाल्मली के आत्म संताप को कुशलतापूर्वक व्यक्त कर पाती है । नरेश की दी जा रही मानसिक प्रताड़ना से वह तड़प उठती जरुर है पर उसकी 'शाल्मली' में कृष्णा सोबती के 'मित्रो मरजानी' या रेणु के 'नैना जोगिन' जैसा विद्रोही स्वर नहीं है तथापि वह अपने अंदर के क्रोध और आक्रोश को नरेश को बताती रही है । हां, वह नरेश के व्यवहार से क्षुब्ध होकर भी उसे त्यागने का साहस नहीं जुटा पाती । वह यहां

आशावादी है । मालती जोशी के सहमे हुए प्रश्न' की अंजु जैसे वह भी घुटन की शिकार होती है । अंजु को बेटों के मुंडन की पार्टी के अवसर पर पति अतुल का उखड़ा हुआ मूड गहरी घुटन से भर देता है तो शाल्मली को मिश्राजी को साथ घर छोड़ने के कारण नरेश के शक्की स्वभाव से घुटन होती है और वह अवसाद के क्षणों में घिरकर तड़पती है । शांति जोशी की रचना 'मछली और महाजल' में पति कमल की संदेहशीलता जिस प्रकार मंदिरा का जीवन विषाक्त कर देती है, कुछ उसी प्रकार नरेश के मन मस्तिष्क में संदेह का कीड़ा कुलबुलाता है और शाल्मली मानसिक पीड़ा का शिकार होती है ।

जिजीविषा का जीवंत पहलू नासिरा की अन्य कृति 'ठीकरे की मंगनी' में देखने को मिलता है जहां वह मंगेतर रफत को विद्रोही स्वर में शादी से स्पष्ट इंकार कर देती है क्योंकि उसे मालूम हो जाता है कि रफत अमेरिका में किसी युवती के साथ बिना विवाह के यौन-संसर्ग में था और एक साथ एक घर में रह रहा था ।

कामकाजी महिलाओं की पीड़ा और विद्रोही तेवर की बात की जाए तो नासिरा शर्मा की 'दूसरा ताजमहल', 'तुम डाल डाल हम पात पात' तथा 'प्रोफेशनल वाइफ' कहानियों में ये रूप देखने को मिलते हैं । 'दूसरा ताजमहल' में नयना, 'तुम डाल डाल हम पात पात' में सिपतुन एवं 'प्रोफेशनल वाइफ' में 'बनी अय्यर' की पीड़ा है । इनमें 'तुम डाल डाल हम पात पात' में कामकाजी महिला का परिवेश नहीं है । पर शेष दोनों कहानियां रोमांटिक अवसाद के साथ-साथ कामकाजी स्त्रियों के आत्म संताप का चित्रण हैं । डॉ. अमरकांत कहते हैं कि इस समूह की नारियों का शोषण दोहरा-तिहरा है । सामन्तवादी उत्पीड़न की सीमाएँ स्पष्ट हैं । वे काफी इकहरे रूपों में त्रासद और पीड़ादायक होती हैं । लेकिन अर्ध-सामन्ती, अर्ध-पूँजीवादी ढाँचे के अन्तर्गत सामाजिक और पारिवारिक जीवन के अन्तर्विरोध, शारीरिक उत्पीड़न, अनैच्छिक विवाह, आर्थिक शोषण और पारिवारिक जिम्मेदारियों का बोझ इन महिलाओं के जीवन को जानवरों-गुलामों से भी बदतर बना डालते हैं ।[59]

सन्दर्भ सूची

1.	डॉ. रोहिताश्व	:	शोधकर्ता की निजी वार्ता	तिथि 23.06.09	
2.	डॉ. रोहिताश्व	:	मार्म्सवादी सौंदर्यशास्त्र की भूमिका	पृ.	68
3.	शिवदान सिंह चौहान	:	साहित्यानुशीलन	पृ.	11
4.	डॉ. रोहिताश्व	:	आलोचना के हाशिये पर	पृ.	86
5.	डॉ. विनय कुमार पाठक	:	हिंदी साहित्य की वैचारिक पृष्ठभूमि	पृ.	72
6.	डॉ. विनय कुमार पाठक	:	हिंदी साहित्य की वैचारिक पृष्ठभूमि	पृ.	74
7.	डॉ. विनय कुमार पाठक	:	हिंदी साहित्य की वैचारिक पृष्ठभूमि	पृ.	78
8.	अजय कुमार पटनायक (सं.)	:	दस हिंदी निबंध-शीर्षक साहित्य की महत्ता - महावीर प्र. द्विवेदी	पृ.	18
9.	मैक्सिम गोर्की	:	साहित्य और जीवन	पृ.	91
10.	जैनेन्द्र कुमार	:	जैनेन्द्र कुमार साहित्य	पृ.	25
11.	रणवीर रांग्रा	:	मनोवैज्ञानिक हिंदी उपन्यास की वृहदत्तयी गाथा	पृ.	16
12.	डॉ. सोनिया सिरसाट	:	राजेन्द्र यादव के कथासाहित्य में मनोविश्लेषणात्मक विवेचन	पृ.	110
13.	डॉ. विनय कुमार पाठक	:	हिंदी साहित्य की वैचारिक पृष्ठभूमि	पृ.	80
14.	डॉ. विनय कुमार पाठक	:	हिंदी साहित्य में संबद्ध विशिष्ट मतवाद	पृ.	83
15.	डॉ. विनय कुमार पाठक	:	हिंदी साहित्य में संबद्ध विशिष्ट मतवाद	पृ.	80-83
16.	स्वामी रामदेव	:	स्वामी रामदेव से साक्षात्कार - इंडिया टुडे (हिंदी पाक्षिक) अंक 01 जुलाई 2009		
17.	नासिरा शर्मा	:	शोधकर्ता की निजी वार्ता	तिथि 20.12.2008	
18.	नासिरा शर्मा	:	मरजीना का देश इराक	पृ.	13
19.	नासिरा शर्मा	:	मरजीना का देश इराक	पृ.	83
20.	नासिरा शर्मा	:	मरजीना का देश इराक	पृ.	99
21.	वाङ्मय	:	अंक जुलाई 2009	पृ.	61
22.	नासिरा शर्मा	:	सात नदियां एक समंदर	पृ.	10
23.	नासिरा शर्मा	:	सात नदियां एक समंदर	पृ.	45
24.	वाङ्मय	:	अंक जुलाई 2009	पृ.	62

25.	नासिरा शर्मा	:	सात नदियां एक समंदर	पृ.	40
26.	वाङ्मय	:	अंक जुलाई 2009	पृ.	63
27.	नासिरा शर्मा	:	सात नदियां एक समंदर	पृ.	47
28.	नासिरा शर्मा	:	सात नदियां एक समंदर	पृ.	89
29.	नासिरा शर्मा	:	सात नदियां एक समंदर	पृ.	63
30.	नासिरा शर्मा	:	सात नदियां एक समंदर	पृ.	67
31.	नासिरा शर्मा	:	सात नदियां एक समंदर	पृ.	104
32.	नासिरा शर्मा	:	सात नदियां एक समंदर	पृ.	80
33.	नासिरा शर्मा	:	सात नदियां एक समंदर	पृ.	152
34.	नासिरा शर्मा	:	सात नदियां एक समंदर	पृ.	190
35.	नासिरा शर्मा	:	सात नदियां एक समंदर	पृ.	155
36.	नासिरा शर्मा	:	सात नदियां एक समंदर	पृ.	165
37.	नासिरा शर्मा	:	सात नदियां एक समंदर	पृ.	277
38.	नासिरा शर्मा	:	सात नदियां एक समंदर	पृ.	127
39.	नासिरा शर्मा	:	सात नदियां एक समंदर	पृ.	266
40.	नासिरा शर्मा	:	सात नदियां एक समंदर	पृ.	175
41.	वाङ्मय	:	अंक जुलाई 2009	पृ.	79
42.	नासिरा शर्मा	:	जिंदा मुहावरे	आवरण पृ.	02
43.	नासिरा शर्मा	:	जिंदा मुहावरे	पृ.	38
44.	नासिरा शर्मा	:	जिंदा मुहावरे	पृ.	38
45.	नासिरा शर्मा	:	जिंदा मुहावरे	पृ.	54
46.	रामनाथ वेदालंकार	:	वैदिक नारी	पृ.	24-25
47.	महाभारत	:	वनपर्व 307 रा. 61		
48.	नासिरा शर्मा	:	शाल्मली	पृ.	130
49.	नासिरा शर्मा	:	जहां फव्वारे लहू रोते हैं	पृ.	233
50.	ए. एस. अल्तेकर	:	पोजीशन ऑफ वूमेन	पृ.	12
51.	नासिरा शर्मा	:	इब्ने मरियम कथा संग्रह	पृ.	68
52.	वाङ्मय	:	अंक जुलाई 2009	पृ.	201
53.	नासिरा शर्मा	:	इब्ने मरियम	पृ.	150

54.	नासिरा शर्मा	:	इब्ने मरियम	पृ.	134
55.	डॉ. नगेन्द्र	:	हिंदी साहित्य कोश	पृ.	370
56.	डॉ. उषा यादव	:	हिंदी की महिला उपन्यासकारों की मानवीय संवेदना	पृ.	155
57.	सिम्मती हर्षिता	:	संबंधों के किनारे	पृ.	240
58.	इंदु भारती	:	आधी आबादी	पृ.	32
59.	डॉ. अमरकांत	:	नारी का मुक्ति-संघर्ष	पृ.	137-138

6. नासिरा शर्मा का कथा साहित्य : भाषा - शैली एवं शिल्प

नासिरा शर्मा के कथा साहित्य में भाषा-शैली का विलक्षण प्रयोग मिलता है और शिल्प के स्तर पर पर्याप्त वैविध्य । एक समर्थ रचनाकार ही अपने कथ्य के अनुरूप कथा-भाषा का विकास करता है और पात्रानुकुल भाषा-शैली का रचना विधान रचता है ।

भाषा न केवल आत्मभिव्यक्ति का माध्यम होती है बल्कि वह विचारों के सम्प्रेषण का, सामूहिक चेतना के अभिव्यक्ति पक्ष का कारगर स्वरूप भी होती है । यह तो तय है कि ''कथ्य और शिल्प एक सिक्के के दो पहलू होते हैं । वे कलात्मक एकान्विति में एक हैं पर विचार और रूप पक्ष में अलग अलग । बकौल रोहिताश्व 'किसी भी कलाकृति में वस्तु और रूप अलग अलग नहीं होते हैं बल्कि दोनों मिलकर एक समग्रता का, जिसे रचना कहते हैं, उसका निर्माण करते हैं पर विवेचन की सुविधा के लिए हम उन्हें अन्तर्वस्तु, भाषा, शैली, शिल्प माध्यमों के अनुखण्डों में देखने के अभ्यस्त हैं । शिल्प-रूप के अन्तर्गत अन्तर्वस्तु के प्रभावी पक्षों में व्यवहृत बिम्ब, प्रतीक, अलंकार, छंद, आद्यबिम्ब आदि का अपना अपना विशिष्ट योगदान होता है अत: कलाकृति को केवल वस्तुपक्ष में अथवा रूप पक्ष में व एकांगी रूप विवेचन में देखने से हम सौंदर्यबोधी 'संरचना' के विवेचन से वंचित रह जायेंगे ।''[1]

प्रगतिशील आलोचना में अक्सर यह कहा जाता है कि कथ्य महत्वपूर्ण होता है । वह अपनी अभिव्यक्ति के अनुकूल भाषा-शैली व शिल्पविधान तलाश कर लेता है । जबकि फ्रेड्रिक जेम्सन जैसे रूपवादी यह मानते हैं कि 'रुप अभिव्यक्ति' पक्ष अपने अनुकूल कथ्य की

संरचना करता है । मार्क्सवादी सौन्दर्यशास्त्र के अनुसार कला में विषयवस्तु कभी भी इतनी महत्वपूर्ण नहीं बन सकती कि वह कलाकार, रचनाकार के शिल्प कौशल के महत्व को बिल्कुल समाप्त कर दे क्योंकि विभिन्न कला रूपों के माध्यम के अभाव में कोई भी रचना सम्भव नहीं होती है । विभिन्न कलाएँ अपने अपने माध्यम-रूपों से विशिष्ट कला अपेक्षा रखती हैं । चित्रकला के लिए जहाँ माध्यम रंग है, वहाँ उसे रंगों के ज्ञान के साथ साथ रंग विवर्तन का ज्ञान भी आवश्यक होता है ।''(2) कहना न होगा कि जिस तरह एक पेंटर के लिए परिदृश्य संबंधी दृष्टिकोण व ऐंगल का ज्ञान और मूर्तिकार के लिए आकर्षक संरचना का ज्ञान आवश्यक होता है, उसी प्रकार एक रचनाकार को शिल्प-माध्यम, भाषा, शैली, बिम्ब, प्रतीक, फैण्टेसी, आद्यबिम्बों, छन्दों आदि की संरचना व कलात्मकता का ज्ञान भी आवश्यक होता है । क्योंकि रचनाकार का उद्देश्य जहाँ सत्यानुभूतियों के तथ्यपरक सन्धान के अभिज्ञापन का होता है वहाँ साथ ही साथ सामाजिक अन्तर्विरोधों-विसंगतियों में सौन्दर्य-बोधात्मक बोध का भी होता है ।''(3)

सामान्य रुप से माना जाता है कि कहानी हो या उपन्यास दरअसल प्रत्येक रचना समाज सापेक्ष होती है कारण वह किसी न किसी सामाजिक समस्या को प्रस्तुत करती है । इसीलिए जब हम कोई उपन्यास पढ़ते हैं तो हमें किसी न किसी 'कहानी' से गुजरने का बोध होता है । ''उपन्यास का सामान्य सहृदय पाठक भी, जो फॉर्म (रूप) स्ट्रक्चर (ढाँचा) 'प्वांईट ऑफ व्यू' (अवलोकन बिन्दु), 'डिज़ाइन', 'पैटर्न' आदि शिल्प की तकनीकी विशेषताओं से अवगत नहीं होता वह भी कहानी से भली भाँति परिचित होता है । इसीलिए वह कभी उपन्यास में 'कहानी' न होने की शिकायत करता है, कभी अत्याधिक ब्यौरों के कारण 'कहानी' के बाधित होने की शिकायत करता है और कभी 'रौचक कहानी' पाकर संतुष्ट होता है । इससे स्पष्ट है कि उपन्यास में 'कहानी' होती है । कहीं कम, कहीं ज्यादा, कहीं सुगठित, कहीं बिखरी हुई । अत: 'कहानी' को उपन्यास का मूल ढाँचा माना जा सकता है । इसके बिना उपन्यास की रचना संभव नहीं है क्योंकि वह शरीर में कंकाल की तरह है ।''(4)

लेखिका व समीक्षक शशिकला त्रिपाठी कहती हैं - ''प्रत्येक रचनाकार अपनी इच्छित विषय वस्तु के सम्प्रेषण हेतु सृजनात्मक प्रक्रिया अपनाता है । किसी भी कथा-वस्तु की रचनात्मक भाषा, आम भाषा से भिन्न इस रूप में होती है कि उसमें विचारों की संयमित श्रृंखला होती है और अर्थ की संवहन क्षमता ।''(5) बकौल सोनिया सिरसाट ''रचनाकार जिन परिस्थितियों, जीवन संदर्भो और आसपास के परिवेश का अंकन करता है, वह सब कुछ उसे भाषा में ही प्राप्त नहीं होता । दृश्य, संवेग, मूक घटनाओं और स्पष्ट स्थितियों की भाषा निर्मित करनी पड़ती है । अतएव लेखन का सारा संघर्ष अनुभव को सम्प्रेषित करने का होता है ।''(6) विवेच्य कथाकार नासिरा शर्मा ने भी अपने कथा लेखन में पात्रानुकूल भाषा-शैली का प्रयोग किया है जिसकी विवेचना अगले अनुच्छेद में की जायेगी ।

6.1 भाषा शैली एवं शिल्प संदर्भ

नासिरा शर्मा के कथा साहित्य की सबसे बड़ी विशेषता पात्रानुकूल भाषा शैली का प्रयोग है । प्रसंगवश प्रगतिवादी समीक्षक रामविलास शर्मा ''भाषा को भी एक सांस्कृतिक उपकरण मान कर उसके अध्ययन का आग्रह करते हैं, उनके लिए भाषा एक ऐसा सांस्कृतिक उपादान होती है, जिसको बनाने में, बदलने में और विकसित करने में युग की विचारधारा, भाव चेतना और संवेदना की सक्रिय भूमिका होती है ।''(7)

वास्तव में अपनी कथा रचना में रचनाकार या तो एक नितान्त नई भाषा गढ़ता है, जो भाव सम्प्रेषण के लिए सक्षम उपयुक्त हो या वह भाषा के आदि स्त्रोत यानी उसकी गहराई में जाकर एक ऐसी भाषा की तलाश करता है, जहाँ वह ताजी भाव सम्पृक्त और जादुई स्त्री शक्ति रखती हो । यहाँ जो बात उल्लेखनीय है, वह है भाषा के सम्प्रेषण पक्ष के प्रति रचनाकार समीक्षक की सजगता । अर्नेस्ट फिशर के शब्दों में ''नई भाषा गढ़ते हुए भी रचनाकार उसके सम्प्रेषण पक्ष के प्रति सजग रहता है, क्योंकि उसको मालूम है कि व्यक्ति की अनुभूति चाहे जितनी भी निजी हो वह एकान्त समाज निरपेक्ष नहीं हो सकती है ।''(8)

सुधी विद्वान जानते ही हैं कि ''भाषा साहित्य का अभिन्न अंग है । बगैर भाषा के साहित्य की कल्पना नहीं की जा सकती । यह साहित्य का रूप भी है और आत्मा भी । राजेन्द्र यादव के अनुसार ''संवेदना की तहों में बिखरी जीने की आकांक्षा को शब्दों में बीनकर जब हम अपने पात्रों के माध्यम से तत्कालीन परिवेश में सांस लेते हैं, उसे अतिक्रान्त करते हैं, या इस प्रयास में जुटते हैं तो सार्थक रचना जन्म लेती है । यदि वह शब्द न होते तो .... ?(9) नासिराजी ने निजी वार्ता में कहा ''मैंने वही भाषा लिखी है जो अब तक अनुपस्थित थी । मैने अनुपस्थित पात्र, उनकी समस्याओं, संघर्षों के माध्यम से परिवारों के साथ उन्हें साहित्य जगत में लाने की कोशिश की है । साहित्य जगत में इस भाषा को स्थान देने के लिए कभी लोकगीतों की तो कभी लोककथाओं के बहाने, कभी लोक बोलियों के जरिए कभी परंपराओं, तो कभी त्यौहारों के माध्यम से कोशिश की है । साधारण लोगों के जीवन संघर्षों को अभिजात्य वर्ग की भाषा में चित्रित करना तर्कसंगत न था । किताबी भाषा में मैं वह सब नहीं कह सकती थी जो उनकी अपनी बोली-भाषा में कह पायी हूँ । दूसरा कारण यह भी था कि साहित्यिक भाषा इतनी गूढ़ भाषा है कि सामान्य लोग इसे पढ़ नहीं पाते । मैंने उन लोगों के लिए लिखा है, जिनकी यह कथा-व्यथा है । यह भाषा जन-जन तक पहुँचे यह भी मेरी दिली ख्वाइश थी । जो साहित्य मुट्ठी भर लोगों तक सीमित है, उसे कबीर के दोहों की तरह, प्रेमचन्द की कहानी की तरह विस्तृत समाज में फैलनी चाहिए, यही मेरा उद्देश्य था । मैंने विवेच्य सामाजिक परिवेशकी भाषा का प्रयोग करने की कोशिश की । उस भाषा से मैं कभी सहमत नहीं हुयी जो एकदम

अकादमिक शब्दों से सराबोर हो ।''[10]

भाषा मूलत: अपनी अनुभूति एवम् संवेदना के संप्रेषण का माध्यम होती है जिसका निश्चित सामाजिक आधार होता है । नामवर सिंह के अनुसार ''भाषा संप्रेषण से पहले संवेदना का माध्यम है । इस प्रकार वह हमारे संवेदन का भी नियमन करती है । जिसे हम अपना अनुभव और अपना अन्वेण समझते हैं उसमें कितना अपना है और कितना सार्वजनिक भाषा का, यह बोध किसी भी विवेकशील व्यक्ति की नींद खो देने के लिए काफी है ।[11] कहना न होगा कि किसी भी मनुष्य या रचनाकार की मानसिक बुनावट की पहचान उसके द्वारा प्रयुक्त भाषा सम्बन्धी तेवर से संभव है ।

भाषा शैली प्रयोग के संदर्भ में नासिरा कहती हैं - 'मैंने वही भाषा लिखी जो पाठक व संबंधित वर्ग समझते हैं, उनकी समझदारी के लिए हम कोई विचार उन्हीं की बोलचाल की भाषा में देंगे तभी उपयोग में आयेगा । मैंने ज्ञान प्रदर्शन नहीं, परिवर्तन की भावना चाही है । जो सदियों से परंपरा चली आ रही है वह न बदलने के कारण रूढ़ होती जा रही है । निश्चित ही हमें रूढ़ियों को हटाना है । क्योंकि जब तक रूढ़ियां नहीं हटेगी तब तक व्यक्ति को सही मायने में स्वतंत्रता नहीं मिलेगी । व्यक्ति की स्वतंत्रता हर वर्ग की चाहत है । उन्ही परम्पराओं को सामने रखकर मैंने अपनी भाषा, अपने पात्र, अपनी नैतिकताए लिखी है ।''[12]

6.1.1 हिन्दी, उर्दू-फारसी शब्दों का प्रयोग

नासिरा शर्मा ने हिंदी भाषा-बोलियों के शब्दों के अतिरिक्त उर्दू-फारसी शब्दों का बहुलता से उपयोग अपनी कृतियों में किया है । कारण, उनकी कई रचनाओं के परिवेश व पात्र मुस्लिम हैं । नासिरा कहती हैं - ''परिवेश के अनुरुप भाषा नहीं होने से अभिव्यक्ति में अनुवाद का बोध होता है । इससे रचना में बनावटी पन भी आता है ।''[13]

'कुइयांजान' में लेखिका द्वारा प्रयुक्त उर्दू-फारसी शब्दों में से कुछ यहां उद्धृत किए जा रहे हैं - लिल्लाह, दीनी तालीम, बावर्चीखाने, दालान, नजिस, गोता-तहारत, दस्तरख्वान, मुफलिसी, इत्मीनान, नापाक, गुस्ल, इन्नाल्लिाहे व इन्नाइल्लाहेराजे - उन सलाम अलैकुम, पेंचदार गली, हांके-पुकारे, इंतकाल, बेलाग, फेहरिस्त, जूठी रकाबियां, पाक-नापाक का खदशा, लप्पड़, नातका, बघार और आलथी-पालथी आदि ।

दूसरी ओर, इसी उपन्यास में उन्होंने विशुद्ध हिंदी शब्दों का प्रयोग कर उपन्यास की पठनीयता बढ़ाई है और संतुलन को सामंजस्यता प्रदान की है । यथा, 'कितना सुंदर । कितनी मनमोहिनी सूरत है इसकी जैसे स्वयं मुरली मनोहर साक्षात अंखियन के सामने आय

गये हों ।''[14]

6.1.2 मध्य वर्ग एवं उच्च वर्ग की भाषा शैली

प्रत्येक समर्थ रचनाकार अपनी भाषा-क्षमता का परिचय पात्रगत संवाद और अभिव्यक्ति शैली में दे पाता है । रचनाकार बार-बार भाषा शैली सम्बन्धी प्रयोगधर्मिता में अपनी शक्ति की अथक परीक्षा भी देते रहता है । विद्वानों के मतानुसार ''शास्त्रीय दृष्टिकोण से शैली के अंतर्गत प्राय: वे तत्व आते हैं जिन्हें स्थूलत: भाषा तत्वों के अंतर्गत रखा जाता है । परन्तु उपन्यास में शैली के विशेष अर्थ के अन्तर्गत कथावस्तु का नियोजन और पात्र रचना आदि का भी समावेश किया जाता है । इसलिए शैली का सम्बन्ध उपन्यास के भिन्न-भिन्न उपकरणों से रहता है, यद्यपि प्रथमत: वह कथा तत्व और द्वितीयत: पात्र-तत्व से सम्बन्धित होती है ।''[15] पर यह बात भी पात्रों के वर्गगत प्रभावों से असम्पृक्त नहीं होती । विवेच्य संदर्भ में यह ध्यातव्य है कि भाषा पात्र, स्थिति और वातावरण के अनुरूप बदलती है । विधागत भाषा का चरित्रानुरुप होना अत्यंत आवश्यक है ।

6.2 बिम्ब एवं प्रतीक संबंधी विवेचन

काव्य संरचना में बिम्ब और प्रतीकों का प्रयोग अक्सर मर्द रचनाकार करते हैं । पर कतिपय कथाकार अपने अभिव्यक्ति कौशल में काव्यमय गद्य का प्रयोग करते है । जिसमें अज्ञेप, निर्मल वर्मा, रेणु, मैत्रेयी पुष्पा और नासिरा शर्मा जैसे कृतिकार महत्वपूर्ण मानी जायेंगी । विवेच्य कथाकार नासिरा शर्मा की रचनाओं मं व्यवहृत बिम्ब प्रतीकों की व्याख्या के पूर्व तत्सम्बन्धी सामान्य परिभाषा व चर्चा अवश्यम्भावी है ।

पाश्चात्य आलोचक सी.डी. लेविस ''जहाँ बिम्ब को एक प्रकार का शब्द चित्र मानते हैं''[16], टी.एस. हुल्में वहाँ ''बिम्ब को वस्तुओं के आन्तरिक सादृश्य का प्रत्यक्षीकरण मानते हैं ''[17] सुसान के लैंगर के विचारानसार जहाँ ''बिम्ब ऐन्द्रिय माध्यम के द्वारा आध्यात्मिक अथवा तार्किक सत्यों तक पहुँचने का एक मार्ग होता है ।''[18] वहाँ जार्ज वैली के अनुसार ''बिम्ब एक अमूर्त विचार अथवा भावना की पुनर्रचना होता है ।''[19] जब कि एलेनहेट उसे अर्थात बिम्ब को ''दो विरोधी संवेदनाओं अथवा अनुभुतियों के आन्तरिक तनाव टेन्शन रूप में स्वीकारते हैं ।''[20] परन्तु प्रस्तुत विवेचन संदर्भ में कालरिज के कल्पना सिद्धांत पर विचार करते हुए आई. ए. रिच्र्डस ने बिम्ब को जो स्वरूप स्थिर किया, वह हमारे शोध प्रबंध की सीमा में अधिक प्रासंगिक हो सकता है । कि ''बिम्ब एक दृश्य चित्र, संवेदना की एक अनुकृति, एक विचार, एम मानसिक घटना एक अलंकार, अथवा दो भिन्न अनुभूतियों के तनाव से बनी एक भाव स्थिति कुछ भी हो सकता है ।''[21] वास्तव में बिम्ब अपनी सांकेतिक शैली

में भाषा को केन्द्रित करने के साथ-साथ वह रचनागत अनुषंगों को भी केन्द्रित करता है । शब्द की अपेक्षा बिम्ब अधिक संदर्भ-सापेक्ष होता है क्योंकि वह यथार्थ का एक सार्थक टुकड़ा होता है । वह अपनी ध्वनियों और संकेतों से भाषा को अधिक संवेदनशील और पारदर्शी बनाता है । उसका आधार कोशगत शब्द नहीं होता है बल्कि संपूर्ण विस्तृत जीवन और इतिहास होता है । वह अभिधा की अपेक्षा लक्षणा और व्यंजना पर आधारित होता है ।''(22)

यह एक विवादास्पद पर विलक्षण संयोग है कि नामवर सिंह, कमलाप्रसाद पाण्डेय, सुवास कुमार और रोहिताश्व काव्यालोचना के प्रतिमानों का प्रयोग कथा-साहित्य की संरचना व मीमांसा के लिए भी आजमा लेते हैं जिनमें काव्य भाषा, बिम्ब, प्रतीक, सपाटबयानी, नाटकीयता और मूल्य-चेतना प्रमुख हैं । पाश्चात्य विचारक सी. इ. लेविस जहाँ बिम्ब को एक प्रकार का शब्द चित्र मानते हैं, वहाँ टी. एस. हुल्मे बिम्ब को वस्तुओं के आन्तरिक सादृश्य का प्रत्यक्षीकण मानते हैं । सुसान के लैंगर के विचारानुसार जहाँ बिम्ब ऐन्द्रिय माध्यम के द्वारा आध्यात्मिक अथवा तार्किक सत्यों तक पहुँचने का एक मार्ग होता है । जार्ज वैली के अनुसार बिम्ब एक अमूर्त विचार अथवा भावना की पुनर्रचना होता है । एलेन टेट के अनुसार बिम्ब दो विरोधी संवेदनाओं अथवा अनुभूतियों के तनाव से बनी, एक भावस्थिति कुछ भी हो सकता है । वह एक ओर स्पष्ट और स्थल रुप से दृश्य और दूसर ओर नितान्त गहन और अमूर्त भी हो सकता है । पूरे संवेग और वासना पैशन के साथ रखा हुआ एक सीधा-सादा विचार आइडिया भी बिम्ब हो सकता है ।

सामान्य रुप से यह माना जाता है कि बिम्ब एक दृश्य, चित्र, संवेदना की एक अनुकृति, एक विचार, एक मानसिक घटना, एक अलंकार अथवा दो भिन्न अनुभूतियों के तनाव से बनी एक भाव स्थिति कुछ भी हो सकता है । पर बिम्ब सृजन एवम् प्रयोग किसी भी कलाकृति का सशक्त आधार भी प्रमाणिक होता है । कारण 'शब्द की अपेक्षा बिम्ब अधिक सन्दर्भ-सापेक्ष होता है क्योंकि वह यथार्थ का एक सार्थक टुकड़ा होता है । वह अपनी ध्वनियों और संकेतों से भाषा को अधिक संवेदनशील और पारदर्शी बनाता है । उसका आधार कोशगत शब्द नहीं होता, सम्पूर्ण विस्तृत जीवन और इतिहास होता है । वह अभिधा की अपेक्षा लक्षणा और व्यंजना पर आधारित होता है ।

बिम्ब प्रयोग की दृष्टि से नासिरा शर्मा को एक लासानी रचनाकार माना जा सकता है उदाहरण : नासिरा शर्मा की 'छोटे छोटे ताजमहल' कहानी है । शिल्प रचना की दृष्टि से ऐसे बिम्ब से अर्थव्यंजना बढ़ जाती है । बिम्ब रचनाकार की काल्पनिक संयोजना होते हैं जब कि प्रतीक सामान्य जन जीवन में प्रचलित रुढ़ अर्थों, ध्वनियों, रुपकों के परिचायक होते हैं

। प्रतीक का आशय स्पष्ट करते हुए रेनेवेलेक और आस्टिन वेरेन जहाँ लिखते हैं कि 'प्रतीक एक ऐसी वस्तु है जो किसी अन्य वस्तु की ओर संकेत करती है, पर एक प्रस्तुतीकरण के रुप में उसके अपने स्वरुप की ओर भी ध्यान देने की अपेक्षा होती है ।'' वहाँ आर्थर साइमन्स उसके प्रभाव साम्य के दृष्टिकोण से विवेचित करते हुए लिखते हैं : काव्य प्रतीक द्वारा जो वस्तु सम्प्रेषित होती है, वह है तो रुप विधान ही किन्तु इसका लक्ष्य इससे आगे बढ़कर सौन्दर्य बोधात्मक और भावोद्बोधनात्मक भी होता है ।'' प्रतीक ही अमूर्त को मूर्त रुप प्रदान करता है । प्रतीक के माध्यम से ही रंगरेखा रहित अव्यक्त वेदना या मानुष 'अर्थ' या आत्मलोक आकार पाता है, व्यक्त होता है । प्रतीक बिम्ब का सर्वाधिक निकटवर्ती शब्द है । बिम्बों से ही प्रतीक का अविर्भाव सम्भव माना गया है । वस्तुत: प्रतीक अपने मूल में बिम्ब होता है, जो कल्पना की मूर्तता में, बार-बार प्रयुक्त होकर निश्चित अर्थ का वाहक बनने पर प्रतीक रूप में निर्मित हो जाता है ।

प्रतीक योजना के संदर्भ में यह मान्यता भी प्रचलित है कि 'किसी वस्तु का कोई एक भाग पहले गोचर हो, और फिर आगे उस वस्तु का ज्ञान हो तब उस भाग को प्रतीक कहते हैं । 'प्रतीक कलाकार के परिकल्पना और चिन्तन का वह पदार्थ-बोध है, जो मानव-जीवन के प्राथमिक मूल्यों का उद्योदन, कुछ-न-कुछ अंशों में करता है ।'' कहना न होगा कि 'प्रतीक शब्द का प्रयोग उस दृश्य (अथवा गोचर) वस्तु के लिए किया जाता है, जो किसी अदृश्य (अगोचर या अप्रस्तुत) विषय का प्रतिविधान उसके साथ अपने साहचर्य के कारण करती है; अथवा कहा जा सकता है कि किसी अन्य स्तर की समानुरुप वस्तु द्वारा किसी अन्य स्तर के विषय का प्रतिनिधित्त्व करने वाली वस्तु प्रतीक है । अमूर्त, अदृश्य, अश्रव्य, प्रस्तुत विषय का प्रतीक प्रतिविधान मूर्त, दृश्य, श्रव्य, प्रस्तुत विषय द्वारा करता है ।

सामान्यत: बिम्बों के कई वर्गीकरण किये जाते हैं जो उनकी विविधताओं के समकक्ष हैं। डॉ. नगेन्द्र ने भी अपनी पुस्तक ''काव्य बिम्ब'' में उन समस्त वर्गीकरणों को जुटा लिया है जो पश्चिमी लेखकों से मिले हैं। सारांशत: प्रभाकर श्रोत्रिय द्वारा निष्कर्षित बिम्ब शब्द के अनुमोदित वर्गीकरण को स्वीकारा जा सकता है, जो अपनी रूप-शैली तत्त्वों की पृथकता में नहीं है बल्कि अर्न्तवस्तु की सहायक आवश्यकता में ही स्वीकारे जा सकते हैं। यथा;

वर्ग एक : ऐन्द्रिय आधार पर : दृश्य, श्रव्य, स्पृश्य, घ्राणत्य, रस्म ।
वर्ग दो : सर्जक कल्पना के आधार पर : लक्षित स्मृति, उपलक्षित कचित ।
वर्ग तीन : प्रेरक अनुभूति के आधार पर : सरल, संश्लिष्ट ।
वर्ग चार : अनुभूति के आधार पर : खण्डित, समाकलित ।
वर्ग पाँच : काव्य दृष्टि के आधार पर : वस्तुपरक, स्वच्छंद ।

प्रतीक का आशय स्पष्ट करते हुए रेनेवेलेक और आस्टिन वेरेन जहाँ लिखते हैं कि ''प्रतीक एक ऐसी वस्तु है जो किसी अन्य वस्तु की ओर संकेत करती है, पर एक प्रस्तुतीकरण के रुप में उसके अपने स्वरुप की ओर भी ध्यान देने की अपेक्षा हेाती है ।''(23) वहाँ आर्थर साइमन्स उसके प्रभाव साम्य के दृष्टिकोण से विवेचित करते हुए लिखते हैं : 'काव्य प्रतीक द्वारा जो वस्तु सम्प्रेषित होती है, वह है तो रुप विधान ही, किन्तु इसका लक्ष्य इससे आगे बढ़कर सौंदर्यबोधात्मक और भावोद्‌बोधनात्मक भी होता है ।''(24) प्रतीक ही अमूर्त को मूर्त रूप प्रदान करता है । प्रतीक के माध्यम से ही रंगरेखा रहित अव्यक्त वेदना या मानुष 'अर्थ' या आत्मलोक आकार पाता है, व्यक्त होता है ।'' वैसे ''प्रतीक के संबंध में ध्यान देने योग्य तथ्य यह है कि प्रतीक बिम्ब का सर्वाधिक निकटवर्ती शब्द है । बिम्बों से ही प्रतीक का अविभार्य सम्भव माना गया है ।''(25)

वैसे ''प्रतीक और बिम्ब की भिन्नता इस बात से समझी जा सकती है कि जहाँ प्रतीक अनुभूति की एक निश्चित अर्थ दिशा की ओर इंगित करता है वहाँ बिम्ब काव्य वस्तु की पूरी भाव सत्ता को रूपांतरित कर उसे अनेक अर्थ स्तरों को व्यंजित करता है ।''(26) बिम्ब और प्रतीक के अपने कई सहसम्बन्ध होते हैं । सी. डी. लेविस के अनुसार भी 'एक श्रेष्ठ बिम्ब, प्रतीक का विपरीत होता है । प्रतीक सांकेतिक होता है और अनिवार्यत: उसी एक वस्तु या विचार का प्रतिनिधित्व करता है जिसके लिए वह प्रयुक्त किया गया है, जैसे, अंक स्पष्टतया इकाई को ही दर्शाता है । बिम्ब कविता में प्रतीकात्मक आशय दे सकता हैं; परंतु वे अपने संदर्भ के कारण मूलत: भावनात्मक होते हैं, जिसे प्रत्येक पाठक अपनी अनुभूतियों के आधार पर ग्रहण करता है ।''(27)

सामान्यत: प्रतीक प्रतिरूप या पुनुरुत्पादन नहीं होता है बल्कि सम्प्रेषित करने का माध्यम होता है । यों तो प्रतीक पद्धति सामान्य जीवन और व्यवहार में भी दिखायी पडती है । 'राष्ट्रीय ध्वज, सिक्का, लिपि, वृक्ष, फल-फूल आदि प्रतीक रूप में व्यवहृत होते हैं । तिरंगा ध्वज भारतीय राष्ट्र का, वटवृक्ष विद्या का, कमल भारतीय संस्कृति का और नागरी लिपि भारतीय लिपि का प्रतीक है ।'' इसी प्रकार जयचंद देशद्रोही का, कालिदास कवि-रूप का, बृहस्पति ज्ञान का और गांधी शान्ति का प्रतीक है । यह प्रतीक पद्धति हमेशा ही उस दौर की सृजना का उपलक्षण था: एक पदेन तदर्थान्य पदार्ध कथमुप लक्ष्मण ।''(28)

प्रतीक विधान के अन्तर्गत प्रत्येक रचनाकार व सहृदय पाठक के लिए दो बातों का ज्ञान विशेष आवश्यक होता है । यथा,

1. विभिन्न अनुभूतियों या संवेदनाओं के बीच चुनाव करने की प्रक्रिया का ज्ञान ।

2. अनुभूतियों का अभिव्यक्त करनेवाली सांकेतिक सम्प्रेषणीय वस्तु का चयन रूपाकार

ज्ञान । इन्हीं ज्ञान स्वानुभूतियों के कारण रचनाकार उन अंशों को, जिन्हें कलाकार समान्यत: शब्द, रेखा, ध्वनि आदि के माध्यम से व्यक्त नहीं कर पाता, उन्हें अपनी कलाकृति काव्य-सृजना में प्रतीक माध्यम से व्यक्त करता है, रचता है । जिसे सुधी पाठक अपनी-अपनी संवेदना क्षमता से चीन्ह लेता है ।''(29)

प्रसंगवश साइमन्स द्वारा दी गयी प्रतीक संबंधी प्रसिद्ध परिभाषा इस प्रकार है ''ए-सिम्बल माइट बी डिफाइण्ड एण्ड ए रिप्रेजेंटेशन विच इज नाट ऐम एट वीडिंग रिप्रोडेक्शन ।'' प्रतीक पुनरूत्पादन शक्ति भी होता है । कारण प्रतीक का अर्थ गहरे में होता है और उसे निकालने के लिए तिल की तरह बदलना पड़ता है । प्रतीकों के माध्यम से कलाकार की मानसिक प्रवृत्ति जहाँ रूपायित होती है, वहाँ उसकी व्यंजना शक्ति की सम्प्रेषणीयता भी अभिव्यक्त होती है । वैसे भी जो अनुभूतियाँ दैनंदिन भाषा में व्यक्त नहीं की जा सकती हैं वे प्रतीकों के माध्यम से व्यक्त की जाती हैं ।''

कहना न होगा कि नासिरा शर्मा की अधिकांश कहानियों और उपन्यास के शीर्षक प्रतीकात्मक है । जैसे, 'दूसरा ताजमहल', 'संगसार', 'बुतखाना', 'पत्थर गली', 'अपनी कोख', और 'और गोमती देखती रही', 'संदूकची' आदि कहानियां । 'शाल्मली', 'ठीकरे की मंगनी', 'कुइयांजान', 'जिंदा मुहावरे', 'जीरो रोड' उपन्यासों के शीर्षक भी प्रतीकात्मकता का संकेत देते हैं । सुधी जन जानते ही हैं कि किसी भी रचना का महत्वपूर्ण तत्त्व उसका शीर्षक होता है ।

6.3 कथा भाषा व शिल्प विधान

शैली विशेष का प्रयोग रचनाकार के व्यक्ति वैशिष्ट्य का ही प्रमाण है । फ्रांसीसी उपन्यासकार स्टेण्डल ने भी शैली को अच्छी रचना का गुण माना है । उनके मतानुसार ''शैली का अस्तित्व इसी में निहित है कि दिये हुए विचार के साथ उन सब परिस्थितियों को जोड़ दिया जाए जो कि उस विचार के अभिमत प्रभाव को संपूर्णता में उत्पन्न करने वाली हैं ।(30)

शैली अनुभूत विषयवस्तु को सजाने के उन तरीकों का नाम है, जो उस विषय वस्तु की अभिव्यक्ति को सुंदर एवम् प्रभावपूर्ण बनाते हैं । शैली न तो केवल अनुभूत विषयवस्तु का धर्म है और न कहने के तरीके का ही । शैली की आत्मा के रूप संबंध मुख्यत: वे संबंध हैं, जिनसे ढाँचे में अनुभूत विषयवस्तु को समाहित, व्यवस्थित किया जाता है । विषयवस्तु में उक्त संबंध की स्थापना रस की उत्पत्ति के लिए की जाती है ।''(31)

सामान्यत: शैली-रूप को क्राफ्ट, तकनीक, रीति और विधा में अपचयित रिड्यूस करना वस्तु को कथ्य और विषय सामग्री में रिड्यूस अपचयित करने के बराबर है । विषय सामग्री + तकनीक = कृति, समीकरण से बहुधा रूपवादी यह प्रकट करना चाहते हैं कि विषय सामग्री की

तीव्रता तो जीवनानुभव है ही । अत: कृतियों में जो कुछ कला है यह यही तकनीक, जिससे हम किसी रूपहीन विषय को रूप प्रदान करते हैं और पुन: मानते हैं कि एक समूची कृति को कथ्य और तकनीक में वितरित किया जा सकता है । यह निहायत अवैज्ञानिक और भ्रामक है ।''(32)

शिल्प का सामान्य अर्थ सम्पूर्ण रूप संबंधी संरचना है जिसमें आत्मा रूपी कथा समाहित हो जाती है । ''शिल्प सम्बन्धी संरचना में कथ्य, भाव, पात्र, वातावरण, परिवेश आदि तत्व अनुषंग में सक्रिय रहते हैं । रचनाकार कथ्य की माँग और प्रस्तुति सम्बन्धी विवेचन के अनुरूप आत्मकथात्मक शैली, विवेचन शैली, संवाद शैली, फैण्टसी शैली या रूपक शैली में से किसी एक या दो अथवा विभिन्न शैली पैटर्नों का इस्तेमाल करता है, रचनात्मक प्रस्तुति के लिए ।''(33)

डॉ. सोनिया सिरसाट के अनुसार वस्तुत: शिल्प विधान की संरचना ही वह क्राफ्टमैनशिप व पच्चीकारी है जो बाहरी रुपाकार के प्रस्तुति माध्यम से पाठकों पर छा जाती है और उन्हें रसमग्न कर देती है । रचनाकार अपने शिल्प विधान में कथ्य के अनुरुप कभी लम्बे वाक्यों का प्रयोग आता है और कभी छोटे-छोटे वाक्यों का । यह रचनाकार की अपनी मनोवृत्ति, मूड्स एवम् पात्र-परिकल्पना पर निर्भर है ।(34)

डॉ. रोहिताश्व ने विवेच्य कथाकार के शिल्प विधान के बारे में कहा है कि ''कहीं लम्बे-लम्बे वाक्यों का प्रयोग हुआ है तो कहीं पात्रानुसार छोटे-छोटे वाक्यों का । 'थीम' के अनुपात में या कहें कि आवश्यकतानुसार वाक्य नहीं होते, वे काफी लंबे व लच्छेदार हो जाते हैं ।''(35) मानव-मन के अंतस में रचनाकार जब प्रवेश करता है तो उसकी पेचीदगी यानी जटिलता के तहत् उसके वाक्य भी लम्बे और दुरुह हो जाते हैं । प्रसंगवश 'दूसरा ताजमहल' तथा इस कथा संकलन की अन्य कहानियों में मनोविश्लेषण का प्रयोग अधिक हुआ है, इसलिए स्वाभाविक है कि वहाँ वाक्य भी गम्भीरता लिये हों । लेकिन, कहीं-कहीं छोटे वाक्य अधिक प्रसिद्ध सिद्ध हुए हैं । इस दृष्टि से 'किस्सा जाम का' की सभी कहानियां बहुत समृद्ध हैं । कहानी का नैरेटर एक छोटा बालक है, इसलिए कहानी छोटे-छोटे वाक्यों से गुँथी गयी है। कहना न होगा कि किस्सागो शैली में कही गई बात संरचना के अनुकूल छोटे-छोटे वाक्य में ही उपयुक्त अभिव्यक्ति व प्रभाव दे पाती है।

सुधी विद्वान यह जानते हैं कि हर रचनाकार अपनी इच्छित विषयवस्तु की अभिव्यक्ति हेतु विभिन्न शैली रूपों या पैटर्नों का इस्तेमाल कर लेता है । जैसे, आत्मकथात्मक शैली, विवेचन शैली, इतिवृत्तात्मक शैली, विश्लेषणात्मक शैली, भावाभिव्यंजना शैली, उद्बोधन शैली, व्यंग्यात्मक शैली, वार्तालाप एवं संवादशैली, वक्तव्यपूर्ण शैली, तर्कपूर्ण शैली, कथा शैली, पत्रात्मक शैली, प्रतीकात्मक शैली आदि । नासिरा ने भी अपनी संवेगात्मक तीव्रता और

सामाजिक व्यापकता के मुताबिक अपने विचार एवं भावों की अभिव्यक्ति के लिए विभिन्न शैली पैटर्नों का प्रयोग किया है जिनका सम्यक विवेचन अगले अनुच्छेदों में किया जा सकता है ।

आत्मकथात्मक शैली : आत्मकथात्मक शैली का तात्पर्य यह है कि कथागत अन्तर्वस्तु प्रथम पुरुष में प्रस्तुत की जाए । प्रस्तुत शैली में लिखी जाने वाली कहानियों एवम् उपन्यासों में रचनाकार वर्णन के माध्यम से अथवा पात्र के द्वारा अपने बारे में कुछ न कुछ कहता है । उपन्यास या कहानियों की घटनाओं में और भी अधिक विश्वसनीयता पैदा करने तथा मानवीय आन्तरिक भावनाओं को व्यक्त करने के लिए यह शैली बेजोड़ रही है । इसमें रचनाकार और पाठक रूबरू हो जाते हैं । ''मैं'' शैली में रचित उपन्यासों व कहानियों की शैली में ओज तथा प्रवाह पाया जाता है।''(36) नासिरा शर्मा की कतिपय कहानियाँ प्रथम पुरुष व 'मैं' शैली के अन्दाज में लिखी गयी है और उनके उपन्यासों के पात्र भी अक्सर अपनी मनस्तापी मुद्रा में मोनोलॉग, एकालाप एवम् आत्मसंतापी शैली में विचारों एवं भावनाओं को प्रस्तुत करते हैं। साठ के बाद की रचनाओं में आत्मकथात्मक शैली को सर्वाधिक अपनाया गया है । इस शैली में भी अनेक विकास सोपान आये हैं । कई जगह नये प्रयोग भी हुए हैं । आत्मकथात्मक शैली का दूसरा रूप वह है जहाँ उपन्यास या कहानी में अनेक पात्र होते हैं तथा हर पात्र अपनी बात कह जाते हैं । उदाहरण के लिए, 'जहां फव्वारे लहू रोते हैं' उपन्यास एवं 'मरजीना का देश-इराक' रिपोर्ताज काफी कुछ आत्मकथात्मक शैली में लिखे गये हैं। ईरान की कहानी बयां करते-करते लगता है कि नासिरा शर्मा अपना दु:ख बयां कर रही है, इतना डूब गई है लिखने और महसूसने के दौरान । 'मरजीना ..' में भी लेखिका ने इराकी स्त्रियों, पुरुषों व बच्चों की पीड़ा को कहीं-कहीं आत्मकथात्मक शैली में प्रस्तुत किया है।

इतिवृत्तात्मक शैली : इतिवृत्तात्मक शैली का प्रयोग रचनाकार सैकड़ों वर्षों से करते आये हैं जिसमें सामान्य विवेचन के आधार पर रचनाकार पात्रों के विकास कार्यों की झलक देता है । 'किस्सा जाम का' की प्राचीन कहानियाँ इतिवृत्तात्मक शैली की कहानियाँ रही हैं । रचनाकार जब जीवन परिवेश घटनाओं के माध्यम से पात्र के जन्म से लेकर उसके जीवन का विकास चित्रित करने के लिए विवेचन करता है वहाँ पर इतिवृत्तात्मक शैली का प्रयोग किया जाता है । नासिरा शर्मा ने ईरान की लोककथाओं एवं अन्य प्राचीन कहानियों में इतिवृत्तात्मक शैली का प्रयोग किया है । इनके उपन्यासों में भी विवेचन शैली का प्रयोग हुआ है ।

विश्लेषणात्मक शैली : इस शैली में कथानक की स्थूलता नहीं होती । यह वर्णनात्मक शैली की तरह एक सतही आधार लेकर कहने की पद्धति नहीं है । इसमें कथा की सूक्ष्मता होती है और अनेक स्तर पर विश्लेषण प्रस्तुत कर उसके हर पक्ष को देखा जाता है । सोनिया

सिरसाट के अनुसार ''विश्लेषणात्मक शैली में लिखी गयी रचना के केन्द्र में कोई न कोई विचार होता है, इसी का विवेचन और विश्लेषण कृति में किया जाता है । उस कृति का हर तत्व उस केन्द्रीय विचार से प्रभावित रहता है । तार्किक बहुलता के चलते कभी-कभी रचना का कथानक वास्तविकता से दूर हटता चला जाता है जिसके परिणामस्वरूप वह काल्पनिक लगता है । इस प्रकार की शैली में लिखी गयी रचनाओं में बौद्धिकता या शिक्षित पात्र अधिक होते हैं ।''(37)

''उपन्यास में कथा विकास की विश्लेषणात्मक शैली अनेक रूपों में विकसित हुई मिलती है जिनमें से प्रमुख मनोवैज्ञानिकता युक्त विश्लेषणात्मक पद्धति, बौद्धिकता युक्त मनोविश्लेषणात्मक पद्धति, यथार्थपरक विश्लेषणात्मक पद्धति, आदर्श से आगृहीत विश्लेषणात्मक पद्धति आदि हैं ।'' हर रचनाकार अपनी कलाकृति में विभिन्न प्रसंगों, घटनाओं, परिस्थितियों के परिवेश में पात्रगत स्थिति का विवेचन करता है । उदाहरण हेतु नासिरा शर्मा कृत 'कुइयांजान' एवं 'जीरो रोड' उपन्यासों को लिया जा सकता है । 'कुइयांजान' में केन्द्रगत विचार जल समस्या को लेकर है जबकि 'जीरो रोड' में मौजूदा विभिन्न सामाजिक समस्याएं यथा, आतंकवाद, दंगे-फसाद आदि हैं ।

विवेचन व विश्लेणात्मक दृष्टिकोण से नासिरा शर्मा की निम्न कहानियाँ प्रमुख मानी जायेंगी- मन:स्थिति एवम् विचारों को लेखिका ने विश्लेषणात्मक शैली में प्रस्तुत किया है। सामान्य जन भाषा की अभिधा शक्ति से प्रभावित नहीं होता है । पर वह व्यंग्य की लाक्षणिक शक्ति और व्यंजना की गहराई से कम आक्रान्त नहीं होता है । इसीलिए नासिरा ने अपनी रचनाओं में अक्सर ही व्यंजनापरक शैली का प्रयोग किया है । 'दहलीज' कहानी में जावेद के पिता जब जावेद के अपनी बहन सकीना, शाहीन और हुमैरा को अपमानित करने के प्रयास पर गुस्साते हैं तो तीनों बहनों की मन:स्थिति का विवेचन इस शैली में प्रस्तुत किया गया है । 'दूसरा ताजमहल' और 'संदूकची' कहानियों में विवेचन शैली का सफल प्रयोग किया गया है ।

व्यंग्यात्मक शैली : जब सामान्य भाषाा या अभिधापरक अभिव्यक्ति से काम नहीं चलता तब रचनाकार अपनी भावभिव्यंजना हेतु व्यंग्य का सहारा लेता है । सुधी पाठक इस बात से अनभिज्ञ नही हैं कि नासिरा शर्मा ने जीवनगत सच का खुलासा करने के लिए व्यंग्यात्मक भाषा को अपनाया है । उनका व्यंग्य धार्मिक, सामाजिक, राजनीतिक आर्थिक शोषण के खिलाफ अधिक मुखर है । पुरुष सत्तात्मक सामंती मूल्यों के विरूद्ध भी उनका तेज प्रकट होता है, भले ही उसका रूप प्रच्छन्न हो । वे अन्याय को घटते देखकर पचा नहीं

पाती और अभिव्यक्ति के खतरें उठाती हैं । उनकी अधिकांश कहानियों में व्यंग्य का सशक्त प्रयोग हुआ है । उदाहरण स्वरूप 'अपनी कोख' कहानी में वह व्यंग्यात्मक शैली में कई जगह भावाभिव्यक्ति करती है ।

कथा संरचना में सांकेतिकता का प्रयोग कर्म कोई नया कार्य नहीं है । कारण सांकेतिकता में व्यंग्य छिपा रहता है और इस व्यंग्य या सांकेतिकता की वजह से कथा दम-खम वाली, वजनदार और प्रवाहपूर्ण बन जाती है । सुधी पाठक जानते भी हैं कि जब अभिधा में कही गई बात या सामान्य भाषा में की गई अभिव्यक्ति पूर्ण भाव देने में सक्षम नहीं होती तब रचनाकार अपनी भावाभिव्यंजना हेतु व्यंग्य का सहारा लेता है । विवेच्य कथाकार नासिरा शर्मा ने अपनी रचनाओं में, चाहे वे कहानियां हों अथवा उपन्यास, व्यंग्यात्मक शैली का विपुल एवं कामयाब प्रयोग किया जैसे, 'कुइयांजान' उपन्यास की निम्नलिखित अभिव्यक्तियों पर गौर किया जा सकता है जो व्यंग्य के प्रयोग का सटीक प्रमाण हैं ।

''खालिस दूध नहीं मिलता - यह शिकायत तो पुरानी हो चुकी है, नई शिकायत है - खालिस पानी नहीं मिलता है देखने को, पीना तो दूर -- खालिस शहद की तरह खालिस पानी भी लोग बोतल में बंद रखेंगे, ताकि उसकी एक-दो बूंद सूखे के समय चाटकर अमृत का स्वाद ले सकें । ऐसा दौर जल्द ही आने वाला है । जब हीरे के मोल पानी मिलेगा और पूंजीपति उसको अपनी तिजोरी में बंद कर रखेंगे ।''(38)

जल की समस्या इस सदी की और इस धरती की सबसे बड़ी समस्या है । इसी ज्वलंत समस्या को केन्द्र में रखकर लिखे गए 'कुइयांजान' उपन्यास में लेखिका ने व्यंग्यात्मक शैली में संवाद प्रस्तुत कर वाकई इस संदेश को और पुख्ता बनाया है कि जल को बचाओ, यह है तो ही जीवन है ।

'अक्षयवट' उपन्यास में लेखिका द्वारा प्रयुक्त व्यंग्यात्मक शैली का एक उल्लेखनीय उदाहरण निम्नवत है - 'सवालों की ट्रेन काफी बरसों से इलाहाबाद स्टेशन पर रुकी हुई है । उसको जवाब का इंतजार है । जवाब का मतलब था उसके टूटे-फूटे अंजर-पंजर की मरम्मत । --वह ट्रेन आज भी इस इन्तजार में स्टेशन पर खड़ी उन मुसाफिरों का इन्तजार कर रही है जो अंग्रेजों के कभी न डूबने वाले साम्राज्य से लोहा लेने की तरह इस नई व्यवस्था को उखाड़ने का संकल्प ले, जो इलाहाबाद से दिल्ली तक भ्रष्टाचार की बजबजाहट से भर उठा है मगर -- दूर-दूर तक कोई मुसाफिर स्टेशन पर लुकाठी लिए खड़ा नजर नहीं आ रहा है । बस-इंतजार है ।''(39)

वार्तालाप और संवाद शैली : सुधी जन जानते हैं कि संवाद शैली को नाट्यात्मक शैली भी कहते हैं क्योंकि नाटकों के प्राण संवाद होते है । संवादों के माध्यम से कहानी या

उपन्यास चलता है और इसी कारण कथानक और पात्र में कोई दूरी नहीं होती है । पात्रों के संवाद ही कथानक का गठन करते चलते हैं । साथ ही, वह नाटकीय गुण लिये होता है कि हर दृश्य अपने में पूर्ण होता रहे । संवादों के माध्यम से वह एक प्रभावपूर्ण अंत तक पहुंच जाता है । वास्तव में नासिरा शर्मा रचनाओं के आन्तरिक संवाद के लिए जितनी जानी जाती है, उतनी ही अपने पात्रों के स्तर विचार, मनोभाव आदि को स्पष्ट करने के लिए पात्रों के पारस्परिक संवादों की सृष्टि भी कर देती है ।

नासिरा शर्मा ने वार्तालाप या संवाद शैली का भी अपनी रचनाओं भरपूर प्रयोग किया है । 'अग्नि परीक्षा' कहानी में मंगलू और बेनी के बीच वार्तालाप शैली में कथागत सूत्रों को गति मिलती है । चाचा, अगर वैसा कुछ हो गया न, तो फिर न कहना कि मंगलू ने बताया नहीं । एकाएक आंगन में आन खड़ा हुआ मंगलू टांग हिलाता हुआ बोला ।

'धौंस किस बात की जमाता है रे ? बीता भर का लौंडा और हमको बताने चला है कि वह खेत किसका है ।' बेनी हंसा ।

'कौन लड़ेगा तुम्हारी तरफ से ? वही अपंग छोकरा – तुम्हारे कम्मो का दूल्हा !' जोर से कहकहा लगाया मंगलू ने ।

'अभी हम जिंदा हैं । जाओ यहां से --- पूरे गांव को पता है कि वह जमीन हमारे पुरखों की है ।' बेनी की जोरू ने मिट्टी का लोंदा थप से मारा जमीन पर और गुस्से से उठ खड़ी हुई ।

''बेच दो । मुझे वह जमीन चाहिए, वरना --'' कहता हुआ मंगलू वहां से चल पड़ा ।

''हरामी पूत !'' बेनी कुम्हार ने चक्का घुमाते हुए गाली दी ।(40)

पत्राचार शैली : पत्राचार शैली का प्रयोग हमारे दौर के कई वर्तमान रचनाकारों ने सशक्त रुप से किया है जिसकी बानगी हम अज्ञेय कृत 'शेखर एक जीवनी' और देवराज कृत 'अजय की डायरी' नामक कृति में देख सकते हैं । आचंलिक स्तर पर शैलेश मटियानी ने भी पत्र शैली का प्रयोग किया है । प्रस्तुत अध्ययन की सीमा में हम यह रेखांकित करना चाहेंगे कि लेखकीय कथ्य को सुगम बनाने के लिये इस शैली का भी बहुत अधिक योग रहा है । जिन बातों को पात्रों के आमने-सामने जिस भावपूर्ण ढंग से प्रस्तुत करना मुश्किल होता है उन्हें पत्रों की सांकेतिक शैली में आसानी से कहा जाने लगा है । इस शैली का प्रयोग अधिकतर पात्रों को आन्तरिक रूप से एक-दूसरे के सामने प्रकट करने के लिये हुआ है । लेखक इस प्रयोग में उन्हीं बातों के लिए लम्बी घटनाएँ सजाने और अनावश्यक वर्णन से बच जाता है तथा अपना कथ्य भी पूरा कर लेता है । पत्रात्मक शैली के प्रयोग विदेशी कथा-साहित्य में बहुतायत से पाये जाते है । 'स्टीफन ज्वाय' ने 'एक अनुरक्ता की डायरी' में पत्र शैली का

सफलतम प्रयोग किया है । कैसे अन्यान्य अरविंग स्टोन, हार्वड फास्ट, चेखव, एलिया एहरेन बुर्ग आदि लेखक-लेखिकाओं ने पत्र शैली द्वारा अपने पात्रों के मनोभावों का चित्रण किया है । हिन्दी उपन्यास साहित्य में अज्ञेय, नरेश महेता, इलाचंद्र जोशी, राजेन्द्र यादव, रोहिताश्व, देवराज, राजकमल चौधरी और नासिरा शर्मा ने पत्रात्मक शैली का प्रयोग अपनी कथा रचना में अन्तर्वस्तु की माँग के अनुरूप किया है ।

डायरी शैली : डायरी व्यक्ति का निजी दस्तावेज है । उसमें वह उन्हीं बातों को लिखता है जिन्हें वह किसी के सामने सामाजिक बंधनों के कारण प्रकट नहीं कर पाता । अत्यन्त निजी बातों का लेखा-जोखा डायरी में दर्ज होने के कारण व्यक्ति के अर्न्तमन को समझने में इससे बडी सहायता मिलती है ।''(41) डायरी शैली पाश्चात्य विचारकों और लेखकों की प्रिय शैली रही है । मन की गुप्त भावनाओं के प्रकटीकरण एवम् अश्लील सी लगती छवियों अथवा जीवन प्रक्रिया के बनते बिगड़ते संदर्भों की साक्षी 'डायरी लेखन' या 'डायरी शैली' ही दे सकती है । नयी कहानी के दावेदारों में 'अज्ञेय' का 'अपने अपने अजनबी', मोहन राकेश के 'अन्तराल', प्रभाकर माचवे के 'तीस चालीस पचास', श्री लाल शुक्ल के ' मकान, आदि उपन्यासों में डायरी शैली का प्रयोग मिलता है ।

डायरी शैली का दो रूपों में प्रयोग प्राप्त होता है । एक तो उपन्यास या कहानी किसी अन्य शैली में होता है तथा उसी में डायरी शैली के कुछ पन्ने देकर विकास दिया जाता है । सुविधानुसार रचनाकार इसका प्रयोग बीच-बीच में कर लेता है । नासिरा शर्मा ने 'अफगानिस्तान बुजकशी का मैदान', 'मरजीना का देश इराक' तथा 'जहां फव्वारे लहू रोते हैं' कृतियों में डायरी शैली का प्रयोग किया है ।

वर्णनात्मक शैली : हिन्दी कथा साहित्य में प्राय: वर्णनात्मक शैली का ही ज्यादा उपयोग होता आया है । वर्णनात्मक शैली कथा-कथन की सबसे प्रारम्भिक एवं प्रचलित शैली है । इस शैली के द्वारा रचनाकार इतिहास की तरह रचना के चरित्र एवं उससे सम्बन्धित घटनाओं का इतिवृत्तात्मक वर्णन करता जाता है । अन्त में अपने विचार या निर्णय की भी अभिव्यक्ति करता है । वर्णनात्मकता कथा सृजन का आवश्यक अंग है जिसके अभाव में शायद ही कोई कहानी या उपन्यास रचा जा सकता है । वर्णनात्मक शैली के माध्यम से ही रचनाकार पाठक के मन मस्तिष्क को छूने में कामयाब हो पाता है । वर्णन काल्पनिक होकर भी यथार्थपरक महसूस होना चाहिए जिस प्रकार मानव के शरीर में रक्त शिराओं का प्रवाह होता है वैसे ही कहानी में वर्णन प्रवाहित रहता है, वह खण्डित नहीं होना चाहिए ।

हिंदी कथा साहित्य में प्राय: वर्णनात्मक शैली का ही ज्यादा उपयोग होता आया है । प्रसिद्ध मनोविश्लेषणकर्ता डॉ. धनराज मानधाने के शब्दों में 'कथानक को आराम देने,

उसमें वास्तविकता तथा विश्वसनीयता लाने और चरित्र-चित्रण के अस्पष्ट पहलुओं को उभारने में 'वर्णन' बड़ा रोल अदा करता है । वर्णन सामान्य भी हो सकता है और सांकेतिक भी, विवरणात्मक भी हो सकता है और प्रभावात्मक भी ।(42)

'कुइयांजान' उपन्यास में वर्णनात्मकता के प्रयोग कई जगह दिखाई पड़ते हैं । एक उदाहरण निम्नवत है -

तूफान के बाद जो सुकून नजर आता है वह घर में छा गया था । कल बारात जानी थी । हजार तरह के काम थे । इंतजाम बड़ा था सो उसकी नोक-पलक भी देखनी थी । उधर राबिया की अम्मा ने पांच हजार महीने पर एक माह के लिए नया बना मकान किराए पर ले लिया था । बेटी का दहेज भी वहीं सज गया था । पलंग-सोफा तो मखफूर ने मौके की नजाकत देख अपनी पसंद का खरीदकर पहले ही भेज दिया था । इधर कुछ बर्तन और सजावट का सामान भी उनके घर पहुंच गया था । इस शादी के चर्चे नए-पुराने जानने वालों में चल रहे थे ।

बरात खूब ठाट-बाट से चौकी और हाथी के साथ सजकर पहुंची । राबिया की अम्मा को जैसे अपनी आंखों पर यकीन नहीं हो रहा थश कि उनका देखा बरसों पुराना सपना सचमुच सजकर उनकी चौखट पर खड़ा है । बरी देखकर तो उनकी आंखें चकाचौंध हो गई । यतीम लड़की की ऐसी किस्मत खुलेगी ? काश ! हमारी बड़ी बेगम साहिबा जिंदा होतीं तो यह सब देखकर कितना खुश होतीं !''(43)

फ्लैश बैक शैली : सामान्य रूप में कथा-संरचना में व्यवहृत जिन टेक्निकों को कार्यान्वित किया जाता है, उनमें 'फ्लैश बैक' सर्वाधिक लोकप्रिय है । पारूकांत देसाई के अनुसार ''किसी पात्र विशेष को विशिष्ट घटना-चक्र में उपस्थित कर अतीत की स्मृतियों को ताजा करने के लिए सिनेमा में फ्लैश बैक की टेक्निक अपनायी जाती है । इससे एक ही घटना पर पात्र के दोहरे मनोभावों को सरलता से अंकित किया जाता है । सिनेमा में यह टेक्निक इतनी लोकप्रिय हो गई है कि प्राय: प्रत्येक चित्र में उसका उपयोग होता है । फ्लैश बैक की सिनेमाई सफलता ने उपन्यासकारों को भी इस दिशा में प्रेरित किया है और आजकल के उपन्यासों में सर्वसाधारणत: इसे प्रयोग में लाया जा रहा है ।''(44) कथा-साहित्य में इस शैली का प्रयोग दो प्रकार से होता है । एक तो वहाँ, जहाँ कथा के प्रारंभ में ही इसे उपस्थित किया जाता है दूसरा उपन्यास में यत्र-तत्र प्रभावित हेतु ।

विवेच्य रचनाकार की 'प्राफेशनल वाइफ' तथा 'दूसरा ताजमहल' में कहानियों फ्लैश बैक शैली के सफलतम प्रयोग हैं । ये कहानियां फ्लैश बैक शैली के द्वारा ही धीरे-धीरे विकसित होती हैं । डॉ. रोहिताश्व के कथनानुसार ''दूसरा ताजमहल कहानी की शुरुआत ही फ्लैश बॅक शैली में आरम्भ होती है नयना किसी परिन्दे की तरह सहमी और निराश थी -

जिसको उड़ान भरते हुए बीच में ही बहेलिए ने झपट लिया था । नियति का यह खेल उसकी समझ में नहीं आया । ऐयर-होस्टेस ही उसकी अटैची हवाई जहाज से निकालने में मदद करती है । टहक्सी वाले को - वह अपनी खोयी हुयी मन: स्थिति - न बदहवासी से अपने घर का पता नहीं बता पाती है । (लगता है शिवानी की कथा शैली लौट फिल्मों का मेलो ड्राम यहाँ होती है । बमुश्किल -- बैग में से अपना लिफिटिंग काई टैक्सी ड्राइवर को देकर घर पहुँच पाती है । ---सन्दर्भ रात में टेलीफोन की घनंघनाटी घण्टी के बीच से जी के शब्दों का भी पाठकों को आकर्षित करने के लिए है सर अपने दु:खों को नरो की हालत में तरतीब दे देते हैं । अनळाने में ही उनका यह अंदाज बड़ा निर्मम लगा । आपको देखकर में समझ सकती हूँ कि आपका विश्वास कहाँ पर टूटा है । प्लीज मेम हो सके तो सर को भूल जाइए ।''(45)

6.3.1 मुहावरों एवं लोकोक्तियों का प्रयोग

सामान्य अर्थ का बोध न कराकर किसी विशिष्ट अर्थ का बोध कराने वाले लघु वाक्यांश को 'मुहावरा' कहते हैं जिसकी सार्थकता संक्षिप्त शब्दों और गहरी अर्थवत्ता में होती है । किसी कहानी या घटना से निकली हुई बात या वाक्यांश बाद में 'लोकोक्ति' अथवा 'कहावत' बन जाती है । आंचलिक भाषा मुहावरों एवं कहावतों के सटीक और प्रसंगवश प्रयोग द्वारा समर्थ एवं सर्जनात्मक बन पड़ती है । इनके प्रयोगों से ही आंचलिकता के रंग को उभारा जाता है जिससे भाषा में नवीनता एवं लालित्य प्रवाहित होता है । आदर्श सक्सेना के अनुसार ''आंचलिकता के हल्के-गहरे रूप शब्दों के लोक प्रचलित रूपों तथा आंचलिक भाषा के शब्दों, मुहाबरों तथा लोकोक्तियों के विस्तृत प्रयोग द्वारा प्राप्त किये जाते हैं ।(46)

''प्रेमचंद के कथा साहित्य में सहज रूप से लोक प्रचलित मुहावरों और लोकोक्तियों का प्रयोग पाया जाता है और उन्हीं की परवर्ती परम्परा में मार्कण्डेय, रेणु, शिवप्रसाद सिंह, भीष्म साहनी आदि ने मुहावरों तथा लोकोक्तियों का प्रयोग किया है ।''(47) विवेच्य कथाकार आंचलिक जन-जीवन में व्यवहृत बोली बानी और अभिव्यक्ति का सशक्त प्रयोग करती हैं, अत: उसकी कथा संरचना में सामान्य पात्र-पात्राए भी ऐसी बूझ-अनबूझ भाषा-शैली का प्रयोक करती है कि उसमें जन प्रचलित लोकोक्तियों और मुहावरों का आकण्ठ लाक्षणिक प्रवाह उपलब्ध हो जाता है । नासिरा शर्मा ने अपनी कहानियों और उपन्यासों में मुहावरों और लोकोक्तियों का पूरी शिद्दत और आजाद ख्याल से उपयोग किया है । कहीं-कहीं तो उनके रचित वाक्य बिना किसी जाने-पहचाने अथवा चर्चित या स्थापित मुहावरे के बगैर भी मुहावरेदार प्रतीत होते हैं । उदाहरण के लिए उत्तर प्रदेश के सांस्कृतिक-साहित्यिक नगरी इलाहाबाद की धमनियों पर रचित उपन्यास 'अक्षयवट' के इन चंद वाक्यों को ही लें ।

''तकदीर को आप लोगों से मिलवाना था सो इसी बहाने ---- वैसे इतना तो मुझे मेरे गणित के पण्डित जी ने भी नहीं मारा था जितना भाई साहब आप लोगों ने मुझे लादी की तरह पछाड़ा है ।'' तेज बहादुर हंसते हुए बोला ।(48)

''चुप अन्धे मारे, जो सिखाओ वह तो बोलता नहीं, टांच टांच के कंकड़ फेंक कान के पर्दे फाड़ता है ।'' बड़ी बी ने जोर की घुड़की लगाई और बर्तन धोने में लग गई ।(49)

''कउन साला --- कहत है कि इलाहाबादी गाली बहुत बकते हैं'' - कुली बैग सिर से उठाकर गुस्से में पटकता हुआ बोला । बेचारा मुसाफिर कुली के इस तेवर को देख बौखला उठा । कुली ने सिर पर रखा अंगोछा झाड़ा और बाबू को लाल-पीली आंखें दिखा कंधे उचकता हुआ बोला ।(50)

उपर्युक्त वाक्यों में मुहावरे के अतिरिक्त पात्रानुकूल बोली का सहारा लिया गया है ।

'कुइयांजान' में भी लेखिका ने मुहावरों और लोकोक्तियों का यथानुरूप प्रयोग करके उपन्यास के कथानक को प्रवाहपूर्ण एवं पात्रों को जीवंत बनाया है । दृष्टांत के तौर पर निम्न वाक्यों पर गौर किया जा सकता है :-

''इन बातों के जहरीले तीरों का घाव शकरआरा बहन को तरह-तरह से तंग कर दिल की भड़ास निकाल लेती । यह देखकर मां अक्सर कुढ़ती कि मुझे खुदा ने दो ही लड़कियां दीं, दोनों अपने-अपने रंग की । उसका शुक्र है कि उन दोनों में कोई न कोई खूबी है, मगर यह दुश्मनी, यह लड़ाई-झगड़ा यह तो इनके बीच नहीं होना चाहिए ।''(51)

'जिंदा मुहावरे' उपन्यास में मुहावरों व लोकोक्तियों के माध्यम से बंटवारे के दर्श को अनुभव करने की कोशिश की गई है । ''बिल्ली के बच्चे की तरह सात घर झांकने तो कोई नहीं जाते''(52)

'जिंदा मुहावरे' उपन्यास में लेखिका का एक मुहावरेदार वाक्य काफी आकर्षक बन पड़ा है - ''बंटवारा उनके गले में फांसी का फंदा बन चुका था जो न पूरी तरह फंसता था, न ढीला होकर छूटता था ।''(53) इस उपन्यास में मुहावरों की बहुलता है । एक और वाक्य का जायजा लिया जा सकता है - ''सूत न कपास, जुलाहों से लट्ठम - लट्ठा । पास में नहीं दाने चली अम्मा भुनाने ।''(54)

फैजाबाद से पाकिस्तान गया निजाम वहां बड़ा आदमी तो बन गया, पैसे वाला, रसूखवाला भी बन गया पर हिन्दुस्थान की याद में आधा हो गया है शरीर से और टूटकर मरमरा हो गया है मन से । लेखिका ने निजाम की दशा के बारे में लिखा है - ''निजाम तो बिलाई से भी गया बीता हो गया है ।''(55)

डॉ. आदित्य प्रचण्डया कहते है कि नासिरा शर्मा का भाषा पर अद्‌भुत अधिकार है । वह यथावश्यक पात्रानुकूल बुनती चली गई है । मुहावरों से कथन में वजन आया है । नासिरा शर्मा द्वारा 'अक्षयवट' उपन्यास में देशज शब्दों से लगता है कि स्थानीय मिट्टी से उसका गहरा जुड़ाव है । बीच-बीच में पात्रों द्वारा गाए गए गीत, कोरस, समूहगान, श्लोकों ने प्रसंगों को गहराई दी और रोचकता में अभिवर्द्धन हुआ है ।''(56)

स्त्री पुरुष सम्बन्धों की अन्तर्गाथा के इन्तजार और विरह के पल क्षणों को जिस माहौल से नासिरा ने 'दूसरा ताजमहल' में रचा है उस पर एक पृथक प्रकल्प की गज्जाइश है । रोहिताश्व जहाँ इसे कथ्य के स्तर पर जहाँ रोमांटिक फैण्टेसी की महागाथा मानते है वहाँ पारम्परिक शैली के पण्डित शिल्प के स्तर पर अन्तजर्टिल काव्य-विन्यास का पर्याय मानेंगे । इसे गद्य या पद्य की कृति न मानकर 'चम्पू-काव्य की संज्ञा देंगे जो एक ओछी या हल्की उपमा हो सकती है । फैण्टेसी का अर्थ यथार्थ और कल्पना का मिला जुला पैटर्न है । अत: इसे रोमांटिक फैण्टेसी की ट्रेजेडी भी कह सकते है कारण और का मिलन वैचारिक तो है पर देह के स्तर पर कामना का अंश ही है । शोध प्रबन्ध की सीमा है पर संकेत रूप में यही कहना चाहूंगा कि वर्तमान दौर की इस चर्चित लेखिका नासिरा शर्मा की शिल्प शैली का समुचित मूल्यांकन करना एक दु:साहस भरा कार्य है शायद ही कोई 'विज़न' और शिल्प स्तर पर कण्टेन्ट और फार्म के स्तर पर स कार्य में कृत कार्य हो सकेगा ।

6.4 नासिरा शर्मा का कथा शिल्प संबंधी वैशिष्ट्य

पाश्चात्य उपन्यास साहित्य में जेम्स ज्वायस ने 'यूलीसीस' उपन्यास में स्ट्रीम ऑफ अनकान्शियसनेस और फेण्टेसी शिल्प का प्रयोग किया है और परवर्ती दौर में कई समर्थ रचनाकारों ने इस शिल्प की इजाद किया है । फ्रायड के मनोविज्ञान ने फैण्टेसी के अध्ययन की नयी दिशा खोज ली है । सिगमंड फ्रायड के मतानुसार ''स्वप्नगत फैण्टेसी जीवनगत अनुभवों का विघटन रूपांकन है । इनका अध्यन मन की अतल गहराइयों को खोज निकालने का प्रयास है ।''(57) ''फेण्टेसी शब्द की व्यत्पत्ति ग्रीक भाषा के फेंटेसिया शब्द से हुई है जिसका अर्थ है ''मानव की एक काल्पनिक दुनिया निर्माण करने की अद्‌भुत सामर्थ्य ।'' एडलर के अनुसार 'स्वप्नों में हम कवि होते हैं । काल्पनिक दुनिया अथवा स्वप्न अथवा फैण्टेसी के मूल में यथार्थ के प्रति असंतोष रहता है ।'' लूना चार्स्की के अनुसार जो व्यक्ति यथार्थ से असंतुष्ट रहते हैं, वे स्वप्न और फैण्टेसी की दुनिया में होते हैं ।''(58)

कथा की प्रस्तुति ईमानदारी से की जाए, इसके लिए कथा के पात्रों का मनोविश्लेषणात्मक अध्ययन जरुरी है । हिन्दी कथा साहित्य के सम्राट मुंशी प्रेमचंद ने कहा था - ''सबसे उत्तम कहानी वह होती है, जिसका आधार किसी मनोवैज्ञानिक सत्य पर हो ।''(59)

'प्रेमचंद कृत 'निर्मला' को हिंदी का प्रथम मनोवैज्ञानिक उपन्यास' कहलाने का गौरव प्राप्त है ।[60]

मार्लोपोंती ने और उन्हीं के आधार पर आर.डी. लेग ने भी इसे मानव-कर्म के भीतर निहित अर्थ और समझ (सेंस) से अनिवार्यत: जोड़ है ।'' (मार्लो पोंती : द पॉलिमिक्स ऑफ एक्सपीरियंस पृ. 27) फैण्टेसी सदा अनुभवात्मक और यर्थवती होती है । यहाँ तक कि अगर व्यक्ति समझदारी के नाम पर नासमझी बरतता हुआ इससे अपने को विच्छिन्न नहीं कर लेता है तो यह जीवन जगत के सम्बन्ध में सम्बन्ध मूलक होती है ।''[61] मुक्तिबोध के अनुसार 'फैण्टेसी एक झीना परदा है, जिसमें जीवन तथ्य झाँक झाँक उठते हैं । फैण्टसी का ताना-बाना कल्पना बिम्बों में प्रकट होने वाली विभिन्न प्रक्रियाओं से ही बना हुआ होता है । दूसरे शब्दों में तथ्यों का उद्‌घाटन अत्यन्त गौण विचारपूर्ण होता है, किन्तु उन तथ्यों के प्रति की गयी क्रिया-प्रतिक्रियाएँ ही प्रधान होती हैं ।''[62]

वास्तव में जीवन में अप्राप्य वस्तुओं की पूर्ति हेतु रचनाकार फंतासी की मदद लेता है । फ्रायड के अनुसार ''किसी स्थिति-विशेष में लेखक की कोई महत्वपूर्ण इच्छा जागृत होती है जिसकी उसके शैशव में न हुई हो । अत: उस इच्छा को तृप्त करने के लिए वह ऐसी स्थिति का निर्माण करता है जिसमें पुन: उसकी वह इच्छा तुष्ट हो जाए ।'' यह एक प्रकार से वैचारिक क्षतिपूर्ति का भी माध्यम है ।

फैण्टेसी जहाँ एक शिल्प-माध्यम है अभिव्यक्ति संरचना में वहाँ लोकगीत लोकजीवन का आंतरिक अनुषंग है । कतिपय आलोचक यह मानते हैं कि लोक साहित्य पहले स्वांत: सुखाय रचना होती है, पश्चात् परिवर्तित होते-होते समुदाय की वस्तु बन जाती है । यही समुदाय की वस्तु विकसित होते-होते जाति, नगर और फिर राष्ट्र तक की हो जाती है । लोक साहित्य के प्रमुख अंग लोक गीतों की रचना और उसमें व्यक्तित्व के अभाव के संबंध में सुप्रसिद्ध नृत्य शास्त्र वेत्ता वेरियर एलविन का कहना है कि ''यह सच है कि अधिकांश गीत संपूर्ण हृदय रूप में एक समुदाय या वर्ग की संपत्ति होते हैं । पर वस्तुस्थिति यह है कि समुदाय का ही कोई प्रतिभाशाली व्यक्ति सर्वप्रथम उसकी रचना करता है, फिर भी वह उसे अपनी संपत्ति नहीं कहता या उस पर अपना सर्वाधिकार या 'कॉपीराइट' नहीं रखता । वह तो भावावेश या नाच-गान के समय उत्तेजित अवस्था में उसकी रचना करता है और जब तक कि उसे पता चले या वह दुबारा यह जानने की चेष्टा करे कि उसने क्या गाया या कहा, तब तक वह जन समुदाय की संपत्ति बन जाता है ।''[63] बैजनाथ सिंह ''विनोद'' ने इसी विषय पर लिखते हुए कहा है कि ''लोक गीतों में समष्टि भावना है । लोक गीतों की रचना वहीं होती है जहाँ व्यक्ति समाष्टि में लीन हो जाता है । लोक गीतों में व्यक्तिगत स्वांत:

सुखमय कहीं नहीं होता । लोक साहित्य में समष्टिगत सारभेद, समष्टिगत पक्ष विपक्ष, और समष्टिगत परंपराओं का प्रमाण उपलब्ध होता है ।(64)

प्रसंगवश गोम्भे ने 'एथ्नॉलॉजी इन फोकलोर' में कहा है '' लोक साहित्य के निर्माण तत्व मानव की अविकसित आदिम अवस्था से संबंधित हैं । हम इसमें मानव की जिस मनोदशा का चित्रण पाते हैं, उसमें हमें जाति तत्व स्पष्ट दिखाई देते हैं । सर्वप्रथम आदिम मानव का प्रकृति से संपर्क हुआ जिसने उत्पादित मातृशक्ति और प्राकृतिक दिव्य रूपों की कल्पना को जन्म दिया । इसके पश्चात् उसने प्रकृति को अपने ही समान समझकर उसमें प्राण प्रतिष्ठा की और उसमें अपने ही समान जीवन व्यापारों में विश्वास कर उसके विभिन्न उपादानों को विविध क्रियाओं में रत देखा । उसकी इस कल्पना और विश्वास ने प्रकृति संचालिनी शक्ति के होने की कल्पना की । इस के पश्चात् उसने परा-प्रकृति के अपने में परिकल्पना की और अपने को महान शक्तिशाली मानने लगा । इस प्रकार मानव ने परा-प्रकृति और अपने में एक पारस्परिक व्यक्ति की भावना ग्रहण की ।''(65)

लोकगीतों का विकास मानवीय सभ्यता और संस्कृति के विकास का सहवर्ती पक्ष है । इसीलिए संसार की सभी भाषाओं में लोकगीत मिलते हैं। लोक साहित्य साधारणत: लोकगीतों, लोकमानस को भी सुख-दु:ख, हर्ष-विषाद, संयोग वियोग की तरल अनुभूतियों से आप्लावित कर देता है । पूरन सहगल के अनुसार संस्कृति के अक्षय स्त्रोत से लोकगीत आज भी काव्य विधा की किसी भी शैली से बढ़कर है । शिल्प में या अपनी सहजता, सुघड़ता और सुगमता में किसी भी स्तर पर अपने समय के श्रेष्ठ काव्य प्रतीक और प्रासंगिक हैं ये लोकगीत।''(66)

ब्रजरानी वर्मा के मतानुसार ''लोकगीत न पुराना होता है और न नया वह तो उस जंगली पेड़ की तरह है कि जिसकी जड़ें अतीत की गहराइयों में घुसी होती हैं परंतु जिसमें नित नई शाखाएँ-नई पत्तियाँ और फूल निकलते रहते हैं ।''(67) नासिरा शर्मा के कथा साहित्य में व्यवहृत और उपलब्ध लोकगीत के प्रासंगिक विवेचन के पहले कतिपय परिभाषाओं की चर्चा जरूरी है ।

हिन्दी साहित्य कोश के अनुसार 'लोकगीत वस्तुत: समाज सापेक्ष नहीं हो सकता है जिसमें रचयिता का निजी व्यक्तित्व नहीं होता । वह लोक-मानस से तादात्म्य रखता है और ऐसी व्यक्तित्वहीन रचना करता है कि समस्त लोक का व्यक्तित्व ही उसमें उभरता है और लोक उसे अपनी चीज कहने लगता है । वह लोक का अपना गीत होता है, जो परम्परा में पड़ जाता है और परम्परा उसमें समय-समय पर अनुकूल परिवर्तन करती रहती है ।(68)

बिहार के प्रसिद्ध आलोचक प्रो. मृत्युंजय उपाध्याय के अनुसार ''लोकगीत का मुख्य लक्षण है गेयता या गीतात्मकता । वह लयात्मक कथन है जिसमें हृदय को बहा ले जाने की

क्षमता है । श्रृंगार, करूण, वीर और वात्सल्य रस की वहाँ प्रधानता देखी जाती है ।'' कहना न होगा कि विभिन्न लोकगीतों में अंचल विशेष की लोकरीतियाँ, लोकाचार व्यक्त होते हैं। लोकसंस्कृति के तत्व ही समाज में मनुष्य के सम्बन्धों एवं साहचर्य की भावना को अभी तक जीवित रख सके हैं । इन लोकगीतों के प्रयोग से अंचल के सजीव परिवेश की अवधारणा हो सकती है । वैसे भी ''आंचलिकता को अधिक मुखर बनाने का कार्य लोकगीतों की कुशल संयोजना द्वारा भी होता है । सभी आंचलिक उपन्यासों में लोकगीतों की कड़ियाँ बिखरी हुई मिलती है । अवसारानुकूल होने के कारण इन गीतों का उपन्यास में रस-सृष्टि की दृष्टि से विशेष महत्व तो होता ही है, उत्सवों के नीरस विवरण इनके संयोग से सरस भी होते हैं।''(69)

सन्दर्भ सूची

1.	रोहिताश्व	:	समकालीन कविता : मार्क्सवादी सौन्दर्यशास्त्र के परिप्रेक्ष्य मं,	पृ.	262
2.	एवर जिस	:	फाउण्डेशन ऑफ मार्सिस्ट एस्थेटिक्स	पृ.	138
3.	डॉ. रोहिताश्व	:	मार्क्सवादी सौंदर्यशास्त्र के परिप्रेक्ष्य में	पृ.	261
4.	गोपाल राय	:	उपन्यास का शिल्प विधान	पृ.	13
5.	शशिकला त्रिपाठी	:	राजेन्द्र यादव : कथ्य और दृष्टि	पृ.	223
6.	सोनिया सिरसाट	:	राजेन्द्र यादव के कथा साहित्य का मनोविश्लेषणात्मक विवेचन		
7.	रामविलास शर्मा	:	भाषा और समाज	पृ.	17
8.	अर्नेस्ट फिशर	:	नेसेसिटी ऑफ आर्ट	पृ.	168
9.	राजेन्द्र यादव	:	प्रेमचंद की विरासत	पृ.	21
10.	नासिरा शर्मा	:	शोधकर्ता की निजी वार्ता, नई दिल्ली दिनांक 20.12.2008		
11.	नामवर सिंह	:	वाद-विवाद संवाद	पृ.	23
12.	नासिरा शर्मा	:	शोधकर्ता की निजी वार्ता, नई दिल्ली दिनांक 20.12.2008		
13.	नासिरा शर्मा	:	शोधकर्ता की निजी वार्ता, नई दिल्ली दिनांक 20.12.2008		
14.	नासिरा शर्मा	:	शोधकर्ता की निजी वार्ता, नई दिल्ली दिनांक 20.12.2008		
15.	सं. धीरेन्द्र वर्मा	:	हिन्दी साहित्य कोश (भाग 1)	पृ.	681
16.	सी. डि. लेविस	:	दी पोएटिक इमेज	पृ.	19
17.	टी. एस. हुल्में	:	स्पेक्युलेशन	पृ.	281
18.	सुसान के. लैंगर	:	प्रॉब्लम्स ऑफ आर्ट	पृ.	132
19.	जार्ज वैली	:	पोएटिक प्रोसेस	पृ.	83
20.	एलेन हेट	:	सलेक्टेड एस्सेस	पृ.	83
21.	आई. एस. रिचर्डस	:	कालरिज़ ऑन इमेजिनेशन	पृ.	34

22.	केदारनाथ सिंह	:	आधुनिक हिन्दी कविता में बिम्ब विधान	पृ.	28
23.	साइमन्स	:	द सिम्बोलिक मूवमेण्ट इन लिटरेचर	पृ.	01
24.	डॉ. रोहिताश्व	:	समकालीन कविता : मार्क्सवादी सौंदर्यशास्त्र के परिप्रेक्ष्य में	पृ.	301
26.	डॉ. रोहिताश्व	:	समकालीन कविता : मार्क्सवादी सौंदर्यशास्त्र के परिप्रेक्ष्य में	पृ.	301
27.	सी. डि. लेविस	:	द पोएटिक इमेज	पृ.	40-41
28.	भगीरथ मिश्र	:	काव्य शास्त्र	पृ.	295
29.	शान्तिस्वरूप गुप्त	:	पाश्चात्य काव्यशास्त्र के सिद्धांत	पृ.	399
30.	डॉ. धनराज मानधाने	:	हिन्दी के मनोवैज्ञानिक उपन्यास	पृ.	409
31.	डॉ. रोहिताश्व	:	समकालीन कविता : मार्क्सवादी सौन्दर्यशास्त्र के परिप्रेक्ष्य में	पृ.	262-263
32.	डॉ. रोहिताश्व	:	शोधकर्ता की निजी वार्ता, दिनांक 23.06.2009		
33.	मार्क्स एंगेल्स	:	लिटरेचर एण्ड आर्ट, भारतीय संकरण	पृ.	52
34.	सोनिया सिरसाट	:	राजेन्द्र यादव के कथा साहित्य का मनोविश्लेषणात्मक विवेचन	पृ.	246
35.	डॉ. रोहिताश्व	:	शोधकर्ता की निजीवार्ता दिनांक 23.06.2009		
36.	डॉ. धनराज मानधाने	:	हिन्दी के मनोवैज्ञानिक उपन्यास	पृ.	412
37.	सोनिया सिरसाट	:	राजेन्द्र यादव के कथा साहित्य का मनोविश्लेषणात्मक विवेचन	पृ.	254
38.	नासिरा शर्मा	:	कुइयांजान	पृ.	271
39.	नसिरा शर्मा	:	अक्षयवट	पृ.	378
40.	नासिरा शर्मा	:	इनसानी नस्ल	पृ.	62
41.	सोनिया सिरसाट	:	राजेन्द्र यादव के कथा साहित्य का मनोविश्लेषणात्मक विवेचन	पृ.	256
42.	डॉ. धनराज मानधाने	:	हिंदी के मनोवैज्ञानिक उपन्यास	पृ.	410
43.	नासिरा शर्मा	:	कुइयांजान	पृ.	338
44.	डॉ. धनराज मानधाने	:	हिन्दी के मनोवैज्ञानिक उपन्यास	पृ.	417
45.	नासिरा शर्मा	:	अक्षयवट	पृ.	482

46.	आदर्श सक्सेना	:	हिन्दी आंचलिक उपन्यास और उनकी शिल्प-विधि	पृ.	262
47.	पारूकांत देसाई	:	साठोत्तरी हिन्दी उपन्यास	पृ.	379
48.	नासिरा शर्मा	:	अक्षयवट	पृ.	234
49.	नासिरा शर्मा	:	अक्षयवट	पृ.	482
50.	नासिरा शर्मा	:	अक्षयवट	पृ.	378
51.	नासिरा शर्मा	:	कुइयांजान	पृ.	133
52.	नासिरा शर्मा	:	जिंदा मुहावरे	पृ.	52
53.	नासिरा शर्मा	:	जिंदा मुहावरे	पृ.	89
54.	नासिरा शर्मा	:	जिंदा मुहावरे	पृ.	41
55.	नासिरा शर्मा	:	जिंदा मुहावरे	पृ.	84
56.	नासिरा शर्मा	:	जिंदा मुहावरे	पृ.	84
57.	वाङ्मय	:	पत्रिका, जुलाई 2009	पृ.	90
58.	बच्चनसिंह	:	आधुनिक हिन्दी आलोचना के बीज शब्द	पृ.	69
59.	प्रेमचंद	:	कुछ विचार	पृ.	30
60.	सुरेश सिन्हा	:	हिंदी उपन्यास	पृ.	188-189
61.	डेविड एण्ड सिल्स	:	इण्टरनेशनल एनसाइक्लोपीडिया ऑफ द सोशल साइंसेस, खण्ड 5	पृ.	327
62.	एल्फ्रेड एडलर	:	मीनींग आफ अवर लाइफ	पृ.	15
63.	वेरीयर एलविन	:	फोकसाँग ऑफ छत्तीसगढ़ भूमिका		
64.	बैजनाथ सिंह	:	जनपद, वर्ष 1 अंक 2		
65.	महेन्द्र राजा जैन	:	समकालीन भारतीय साहित्य, जुलाई-अगस्त 2003	पृ.	141
66.	पूरन सहगल	:	भाषा, जनवरी-फरवरी-99	पृ.	42
67.	ब्रजरानी वर्मा	:	आजकल, सितम्बर 89	पृ.	29
68.	धीरेन्द्र वर्मा	:	हिन्दी साहित्य कोश,	पृ.	594
69.	मृत्युंजय उपाध्याय	:	भाषा, मार्च-अप्रैल 2002	पृ.	52

✣ ✣ ✣

7. उपसंहार

वर्तमान दौर की स्त्री समान अधिकार, समान अस्तित्व और समान अस्मिता की न केवल हकदार है बल्कि शिक्षा रोजगार, प्रगति की कामना लिए हुए वैयक्तिक विकास की अवधारणा व्यक्त करती है । सुधा सिंह का अभिमत भी स्त्री की पराधीन स्थिति के बारे में रहा है कि ''स्त्री-संबंधी सवालों को उठाने और विचारने से पुंसवादी-वर्चस्ववादी सामाजिक चेतना के दुर्ग में सेंध लगी है ।''(1)

सुधीजन जानते हैं कि 'बीसवीं शताब्दी में अनेकानेक विचारधाराएँ साहित्य, कला ज्ञान के क्षेत्र में पनपी हैं । स्त्री विमर्श, दलित विमर्श, मनोविश्लेषण, अस्तित्ववाद, मार्क्सवादी संरचनावाद साहित्य के कभी साहित्य के केन्द्र में रहे हैं और कभी हाशिए पर । बकौल राजेन्द्र यादव के ''बीसवीं सदी की सबसे बड़ी ट्रेजेडी ही यह है कि हमने अपनी वास्तविकताओं के संदर्भ में विश्व की विचारधाराओं को नहीं समझा, बाहरी विचारधाराओं की रोशनी में ही अपने आपको पहचानते रहे ! ... प्रारंभिक मानवतावाद, राष्ट्रीयता, लोकतंत्र, व्यक्ति स्वातंत्र्य, मार्क्सवाद, अस्तित्ववाद से लेकर उत्तर आधुनिकता तक ... हर पश्चिमी विचार ने हमारे ऊपर प्रयोग किये और उधर हम उत्तर उपनिवेशी मानसिकता में सांस्कृतिक सामन्तवाद का नरक भोगते रहे .... नतीजे में समाज सौ साल पहले जहाँ था वहीं बना रहा और मध्यवर्गीय बौद्धिक-विमर्श अपनी अलग दुनिया के सारे द्वन्द्व और अन्तर्विरोध यही रहे कि बृहत्तर समाज अपनी जड़ता या अपरिवर्तनशीलता में शांत-भ्रान्त निर्विकार रहा और मध्य-वर्ग अधिक से अधिक पश्चिम को आत्मसात करता गया ।''(2)

स्त्री रचनाकार पुरुषों के मुकाबले और पुरुषों की उपस्थिति के बावजूद साहित्य में अपनी अस्मिता सिद्ध करती रही । उनके संवेदन की गहनता, उनके अनुभव का सीमित लेकिन सार्थक संसार, उनकी मार्मिक जीवन दृष्टि, उनकी अभिव्यक्ति की विशिष्टता और उनके व्यक्तित्व के अतिरिक्त 'बोल्डनेस' ने एक तरफ और असहायता ने दूसरी तरफ, पुरुष लेखन के आगे चुनौती खड़ी कर दी । इस चुनौती का परिणाम यह हुआ कि स्त्रीवादी विचारधारा और आन्दोलन पूरी शक्ति से स्त्री को केन्द्रित करने लगे और साहित्य में स्त्री दृष्टि बनाम पुरुष दृष्टि की बहस खड़ी हो गई । विवेच्य संदर्भ में प्रश्न यह है कि अपनी जैविक सत्ता, मानसिकता और ऐतिहासिक विकास में भिन्न स्थिति के बावजूद क्या स्त्री दृष्टि और पुरुष दृष्टि परस्पर इतना पार्थक्य और वैशिष्ट्य है कि कोई रचना, बिना लेखक का नाम प्रकट किए, यह बता सकती है कि उसका, लेखक स्त्री है या पुरुष ?

वस्तुत: ऐसे लेखकों की कमी नहीं है जो रचनाकार को लिंगभेद से परे मानते हैं । मन्नू भण्डारी, मृदुला गर्ग, ममता कालिया, कृष्णा अग्निहोत्री, निर्मला जैन, कृष्णा सोबती, मैत्रेयी पुष्पा और नासिरा शर्मा जैसी लेखिकाओं का स्पष्ट अभिमत है कि स्त्री केवल रचनाकार के रुप में पहचान नहीं चाहती न ही वे स्त्री-लेखन के लिए अलग 'आरक्षित जगह' या छूट चाहती है। अधिकांश भारतीय लेखिकाएँ न केवल भारतीय साहित्य परम्परा से परिचित हैं बल्कि वे विश्व साहित्य, अस्तित्ववाद, मार्क्सवाद, मनोविश्लेषणवाद से भी परिचित हैं जिनमें प्रभा खेतान जैसी अस्तित्ववाद विचारक, मृदुला गर्ग जैसी आत्मचेतस लेखिकाएँ स्त्री लेखन को विशिष्ट और उसके मूल में अपने स्त्री देह की जैविकी के आधार पर मिले अनुभवों को मानती हैं। वास्तव में स्त्री-पुरुष संबंध मानव इतिहास में हमेशा शोषित और शोषक संबंध में ही उद्धृत होते रहे हैं और स्त्री का अनुभव जगत शोषण की इस प्रक्रिया से निष्पन्न रहा है ।

परिणामत: स्त्री रचनाकार की उपस्थिति आज के साहित्य में दिशा परिवर्तन की भूमिका निभा रही है । आकस्मिक नहीं कि बीसवीं शताब्दी के अतिंम दशक के अधिकांश मुख्य उपन्यास स्त्री लेखकों द्वारा लिखे गये हैं, जिनमें 'दिलो दानिश' (कृष्णा सोबती) 'कलिकथा वाया बाइपास' (अलका सरावगी) 'हमारा शहर उस बरस' (गीतांजलि श्री) कठगुलाब (मृदुला गर्ग), छिन्नमस्ता, पीली आँधी (प्रभा खेतान) आवां (चित्रा मुदगल), चाक, इदन्नम, अल्मा कबूतरी (मैत्रेयी पुष्पा), 'ठीकरे की मंगनी', 'शाल्मली' और 'अक्षयवट' (नासिरा शर्मा) आदि... जो ममता कालिया के विचारानुसार कालजयी रचनाएँ हैं ।

नासिरा शर्मा के पूर्व कृष्णा सोबती, मन्नू भण्डारी, कृष्णा अग्निहोत्री, मैत्रेयी पुष्पा निरूपमा सेवती आदि ने सार्थक रचनाएँ दी हैं । कहना न होगा कि समकालीन यथार्थ से रू-ब-रू हो रही विचारोत्तेजक और प्रयोगधर्मी रचनाएं महिला उपन्यासकारों की महत्त्वपूर्ण

देन हैं । इलैक्ट्रॉनिक मीडिया के इस युग में टी.वी. सीरियल की चुनौती का सामना करते हुए भी महिला उपन्यासकारों के उपन्यास अपनी अद्वितीय पठनीयता के कारण पाठकीय संचेतना को चुम्बकीय शक्ति-सा आकर्षित कर रहे हैं । तर्क और तथ्य के आधार पर यह साहित्य पुरुष और स्त्री की समान प्रतिभागिता को लिए हैं ।''(3)

परन्तु कथा लेखन के क्षेत्र में स्त्री-पुरुष रचनाकारों का भेद-भाव एक कृत्रिम भेदभाव है । कभी पुरुष रचनाकार भी स्त्रियों के पक्ष में कालजयी रचनाएं दे सकता है ।हम शरदचन्द्र, प्रेमचंद को विस्मृत नहीं कर पायेंगे । पर स्त्री-लेखिका की भी अपनी स्पृहणीय भूमिका हो सकती है जिसमें मन्नू भण्डारी, कृष्णा सोबती, प्रभा खेतान और विवेच्य कथाकार नासिरा शर्मा विलक्षण मानी जायेंगी। वैसे भी, ज्योतिष जोशी के अनुसार 'बीसवीं सदी का अंतिम दशक इसलिए याद किया जाएगा कि उसमें हिन्दी महिला उपन्यास लेखन ने अपनी संपूर्ण दृष्टि दी है और वह है साहित्य के केन्द्र में उपन्यासों की वापसी और उपन्यास में महिला लेखन की संपूर्णता ।''(4)

सम्पूर्ण भारतवर्ष की रचनाशीलता में पिछले दो दशकों से दो ही मुद्दे सशक्त रूप से उभरे हैं वे हैं - स्त्री विमर्श और दलित विमर्श । सीमोन द बोउवार ने 'द सेकेण्ड सेक्स' के माध्यम से स्त्री-विमर्श की प्रारम्भिक भूमिका रची थी । जर्मन ग्रीयेर और केट मिलर बाद के नाम हैं । वास्तव में ''नारीवाद के जन्म का मूल अभिशप्त आत्माओं की वह अंतहीन सेना थी, जो पारिवारिक, सामाजिक, प्रशासनिक फैसलों का छाता लिए घूम रही थी । अमेरिका की नारी अधिकारवादी लेखिका बेट्टी फ्राइडन की 'द फेमिनिन मिस्टिक' (1963) आधुनिक नारी अधिकारवादी आंदोलन की प्रथम पुस्तक कही गई है । नारीवाद उस समाज का विरोध करता है, जहां पुरुष का कथन ही कानून है । जहां पुरुष मार्स (योद्धा) और स्त्रियां वीनस 'सौन्दर्य देवी' की सन्तान मात्र हैं । (मधु सन्धु : महिला उपन्यासकार पृ. 8)

स्त्री विमर्श की दावेदार लेखिकाएँ स्त्री को देहमात्र अथवा उपभोक्ता सामग्री समझने की अवधारणा का विरोध करती है।बंगला देश की फेमिनिस्ट लेखिका तसलीमा नसरीन लिखती हैं, ''दुनिया में सब कुछ भोग्य सामग्री है और दुनिया की सर्वोत्तम सामग्री है स्त्री । विनिमय वस्तु के बतौर, मूल्यवान दासी के रुप में कीमती सामग्री के रुप में समाज में नारी का स्थान है ।..मुझे लगता है मैं वही लड़की हूँ, चार हजार साल पहले जिसके हाथ से वेद छीन लिया गया था । धिक्कार है उन पूर्वजों को, जिन्होंने एक लड़की को गृहबन्दिनी वधू बना दिया तो दूसरी को नगर वधू ।''(5) जो एक प्रकार से पूरे वर्चस्व के प्रति ललकार और हिकारत भी है ।

दो दर्शक पूर्व प्राय: ''महिला लेखन पर आरोप लगाया जाता था कि यह सीमित दृष्टि का साहित्य है, कि यह परिवार के दायरे से बाहर नहीं निकलता कि यह समय और समाज

के उन पेचीदा आयामों को नहीं उठाता जो समकालीन जीवन को परिभाषित करें ।''[6] परन्तु हमारे कतिपय पोंगापथी आलोचक, धर्म धुरन्धर परमपूज्य समीक्षक यह भूल जाते हैं कि आत्माभिव्यक्ति की आकांक्षा के साथ-साथ आत्म सजगता का रेखांकन पिछले पचास वर्षों में महिला लेखन का केन्द्र बिन्दु रहा है 'कहानी के समानांतर उपन्यास के सृजन में भी आज लेखिकाओं ने कमान संभाल रखी है । पिछले कुछ वर्षों के महत्वपूर्ण उपन्यास महिला द्वारा ही रचे गये है । कृष्णा सोबती का 'जिंदगीनामा' और 'समय सरगम', मन्नू भंडारी का 'महाभोज', मृणाल पांडे का 'पटरंगपुर पुराण', मृदुला गर्ग का 'अनित्य', चित्रा मुद्गल का 'आवां', ममता कालिया का 'बेघर', और 'नरक दर नरक', मैत्रेयी पुष्पा का 'चाक', अलका सरावगी का 'कलिकथा वाया बाइपास' और नासिरा शर्मा की 'ठीकरे की मंगनी', 'कुइयांजान' हमारे दौर के ही कालजयी उपन्यास हैं ।

ममता कालिया का अभिमत है कि ''कहानी के क्षेत्र में आज भले ही कोई सक्रिय आंदोलन न हो पर समकालीन लेखन में कहानी अपने समय और समाज को व्यक्त करने में जी जान से जुटी है । आज का यथार्थ भी ज्यादा जटिल, कुटिल और बहुकोणीय है । समकालीन रचनाकार नये प्रयोगों द्वारा वर्तमान सामाजिक, राजनीतिक संरचना, 'संवाद' के जरिये साकार करता है । समकालीन लेखन में कहानी की कमान महिलाओं ने बिलकुल इस तरह संभाली जिस तरह वे अन्य गतिविधियों में मोर्चा संभालती हैं । लेकिन व्यापक स्वीकृति पाने के लिये उन्हें लंबा संघर्ष करना पड़ा । महिला लेखन प्राय: हाशिये का लेखन माना गया; कोष्ठक में बन्द एक पूरक कर्म । हाशिये और कोष्ठक से निकल कर उसे केन्द्र में तलाशने के लिए पिछली पीढ़ी की लेखिकाओं ने अथक परिश्रम किया । आज महिला-लेखन विश्वविद्यालय का एक महत्त्वपूर्ण विषय है ।''[7] यह भी कहा गया है कि रचनाशीलता केवल पुरुष वर्ग की ही बपौती नहीं है । पर क्या आप कोई एक भी ऐसा उपन्यास बता सकते हैं जिसमें केवल पुरुष पात्र ही हों या कोई उपन्यास ऐसा जो केवल स्त्री-पात्रों को लेकर लिखा गया हो । विश्व के पर्दे पर शायद ही हमें ऐसा उदाहरण मिले । स्त्री और पुरुष के द्वैतक और अद्वैत संबंधों का राग-विराग ही किसी रचनात्मक कृति का आधार होता है ।

अक्सर विवादास्पद उपन्यासों में स्त्री-पुरुष संबंधों के विलक्षण आख्यान उपलब्ध होते हैं । चाहे वह 'लेडी चेटर्ली लवर्स' हो या 'अन्ना केरेनिना' । हिन्दी जगत में 'मछली मरी हुई,' 'रेत की मछली,' 'कलंक मुक्ति,' 'चित्रकोबरा' अथवा 'चाक' पर समुचित ढंग से व्याख्या और चर्चा नहीं हुयी है । राजेन्द्र यादव भी मानते हैं कि शरद देवड़ा का 'प्रेमी-प्रेमिका संवाद' निहायत बचकाना 'उपन्यास' है और उसमें बाल-बच्चों वाले स्त्री पुरुषों की बैठकों में देह (विशेषकर स्त्री देह) सैक्स के अंग-प्रत्यंगों, उनके उपयोग उपभोग के

विवरण ऐसी बाल-सुलभ उत्सुकता से बताये गये हैं मानों दोनों दो अलग नक्षत्रों से आये हैं और पहली बार इनका अविष्कार कर रहे हैं । इसे उपन्यास न कहकर सैक्स की बाल-पोथी कहना ज्यादा सही है । आश्चर्य होता है कि इसी देवड़ा ने कभी 'कालेज स्ट्रीट का मसीहा', 'पत्थर का लैम्प पोस्ट' और यहां तक कि 'आकाश : एक आप बीती' जैसे उपन्यास भी लिखे हैं । यहां शरीर और सैक्स संबंधी सूचनाएँ भी इतने प्राथमिक स्तर पर हैं कि वे सिर्फ सुधीश पचौरी को ही मुग्ध कर पाती हैं । सूचनाओं के धरातल पर ही जिन्होंने इर्विंग वैलेस की 'सैविन-मिनिट्स' या 'सैलेशियल बैड' जैसे उपन्यास पढ़े हैं उन्हें इस रचना को पढ़कर सिर्फ दया ही आ सकती है क्योंकि हिन्दी में ही, पचास साल पहले द्वारका प्रसाद ने सैक्स पर ज्यादा प्रौढ़ उपन्यास लिखे हैं ।[8] केवल स्त्री पुरुष के देह प्रसंगों, रति प्रसंगों पर या सैक्स स्केण्डलों पर लिखे गये उपन्यास 'हॉट केक' की तरह बेस्ट सेलर बन सकते हैं पर एक दार्शनिक विजन नैतिक उत्थान प्रतिरोध की शक्ति के लिए हुए पात्र-पात्राएँ न हों तो वे केवल लोकप्रिय साहित्य हो सकते हैं पर क्लासिक नहीं ।[10]

वैसे देह गाथा और रतिगाथा के प्रसंग समकालीन लेखन में कथन ही हैं । इन सबसे अलग है सुरेन्द्र वर्मा का 'दो मुर्दों के लिए गुलदस्ता' ... सम्पन्न फुरसती प्रौढ़ महिलाओं की शारीरिक भूख के लिए फाइव-स्टार होटलों या घरों में सुलभ पुरुष-वेश्या की विजय-गाथा शायद 'जिगोलो' पर पहली कथा-कृति । वह देह और धन दोनों स्तरों पर स्त्री का 'शोषण' करता है ... स्त्री की जागृत होती अस्मिता और उभरते व्यक्तित्व का 'शोषण' अगर 'मुझे चाँद चाहिए' का कथ्य था तो देह-धन का शोषण 'दो मुर्दों के लिए गुलदस्ता' ...। सामन्ती समाज स्त्री की देह का इस्तेमाल एक तरह से करता है तो पूंजीवादी व्यवस्था उसकी 'जागृति' को भुनाने के लिए दूसरा जाल बिछाये है ।''[11]

पूंजीवादी व्यवस्था का प्रतिरोध अगर हमारा स्त्री विमर्श वाला कलाकोष करता है, स्त्री-व्यक्तित्व के विकास का उद्घोष और अस्मिता का दुधर्ष संघर्ष रचनालोक करता है तो हम अपने ऐतिहासिक समय और युगबोध के सही हस्ताक्षर माने जायेंगे ... यथार्थ के स्तर पर । लेकिन यथार्थवादी लेखन की एक विडम्बना यह भी है कि वह अपने किसी आग्रह में जाकर अपना वैविध्य खो देता है और फिर प्रेमचंद, यशपाल या भीष्म साहनी हों, या मैत्रेयी, चित्रा मुद्गल और नासिरा शर्मा, सभी का द्वंद्व, सभी का संघर्ष और सभी का कथानक एक जैसे चरम पर आकर कथा के आंतरिक मर्म तक का समान रुपायन बन कर रह जाता है ।

7.1 समकालीन कथा साहित्य और स्त्री विमर्श

विगत पचास वर्षों में स्त्री-जीवन संबंधी साहित्य कहीं सहानुभूति का कार्य-कारण रहा है तो कहीं पुरुष वर्चस्व का अनुगामिनी पक्ष । स्त्री प्रेमिका, अनुरक्ता, प्रणयिनी, आत्म समर्पिता

नारी अधिक रही है और कहीं-कहीं विद्रोहिणी, परम्परा भंजिका और स्वैर चारिणी । प्रेमचंद के यहाँ समर्पिता, अनुगामिनी और कहीं कहीं राष्ट्र सेविका रही है तो यशपाल, भैरवप्रसाद, रेणू और मार्कण्डेय आदि के यहाँ आत्मसंघर्ष शील पात्रा अधिक रही हैं ।

अज्ञेय के नारी पात्र प्रेम संबंधों की कल्पना में आत्यंतिक भाव से डूबे हैं जैसे रोज कहानी, जयदोल कहानी आदि । जैनेन्द्र और इलाचन्द्र जोशी में नारी-पात्र मनोविश्लेषण की गुत्थियों में उलझे हुए पात्र । रांगेय राघव की 'गदल' कहानी में नायिका विद्रोहिणी है तो धर्मवीर भारती कृत 'गुल की बन्नों' में निरीह पात्र । मोहन राकेश की नायिका 'सुहासिनी' कहानी में पुरुष वर्ग के शोषण को जान लेती है तो राजेन्द्र यादव की कहानी 'खेल खिलौने' और 'छोटे-छोटे ताजमहल' में नायिका पुरुष पात्र की बेबसी को चीन्ह लेती है । ''1950 के बाद जिन लेखकों ने मध्य वर्ग की स्त्री की अस्मिता का प्रश्न उठाया, उनके लिए शोषण का केन्द्र बिन्दु अधिकतर वैवाहिक जीवन रहा है । इसे तीन तरह से चित्रित किया गया है । विवाहेतर प्रेम संबंधों का विचारशील और बेबाक चित्रण जिसका अंत अधिकतर त्रासद रहता है । 1930 से लेकर अब तक फर्क सिर्फ यह आया है कि पहले प्रेम संबंध के खत्म होने पर स्त्री को लांछन, अपमान, अपराध बोध सहते रहना होता था । अब वह इस निष्कर्ष पर पहुंचने लगी है कि उसका अभिष्ट पुरुष नहीं है, न पति, न आदर्श प्रेम की तलाश, बल्कि अपने व्यक्तित्व को सशक्त जिसमें पुरुष साथी हो सकता है, जैसा कि उसके 'हिस्से की धूप' और राजी सेठ के 'तत्सम' उपन्यासों में हुआ है । वैवाहिक जीवन की यंत्रणा में फंसकर स्त्री की अस्मिता और प्रतिभा का नाश हो जाता है । इस तथ्य पर लिखे सिमी हर्षिता के उपन्यास का तो नाम ही 'याना शिबिर है ।''[12] ज्योत्सना मिलन का 'अपने साथ', मृणाल पांडे का 'विरुद्ध', मन्नू भंडारी का 'आपका बंटी', नासिरा शर्मा का 'शाल्मली' व 'ठीकरे की मंगनी' सभी उपन्यास अपने कथ्य में एक तरीके से स्त्री अस्मिता के अन्तर्गत विवाहित स्त्री के संघर्ष के ही प्रश्न उठाते हैं । स्त्री का विवाह से विमुख होना कहीं-कहीं विद्रोह का प्रतीक बनकर सामने आना है । वस्तुतः सारी समस्याएँ हमें विवेच्य कथाकार नासिरा शर्मा के 'शाल्मली' और 'ठीकरे की मंगनी' उपन्यास में दृष्टिगोचर होती हैं ।

नर और नारी शब्दों में मात्राओं का अंतर होता है न कि तेजस्विता का । कांतिकुमार जैन लाक्षणिक विवेचना करते हुए कहते हैं कि बहुत कम ऐसे प्रसंग आते हैं जब कोई यह कहने की तेजस्विता दिखाता है - ''एक नहीं दो दो मात्राएँ, नर से भारी नारी ।''

कथाकार व संपादक राजेन्द्र यादव के अनुसार ''पुरुष मानसिकता के इन गड़बड़ाये समीकरणों का सबसे प्रामाणिक दस्तावेज है कृष्णबलदेव वैद का उपन्यास 'नर-नारी' । भाषा के बेहद रचनात्मक प्रयोगों के माध्यम से आत्मालापों के रुप में लिखे गये इस

उपन्यास का नायक अपने आपको 'सूअर' (स्त्रीवादियों द्वारा 'मेल शॉवेनिस्टिक पिग' का संक्षिप्त रुप) कहकर अपनी स्थिति का मज़ाक उड़ाता है तो कभी अपने पर दया करता है । वह आत्मदया और आत्मधिक्कार का अजीब सम्मिश्रण है । कभी वह शेखचिल्ली है तो कभी दुखियारा निरीह । कभी पत्नी से लड़ने, उसे ध्वस्त करने और शारीरिक स्तर पर उसका कचूमर निकालने के मंसूबे बांधता है तो कभी घिघियाता हुआ मां की गोद में आ छुपता है । हर संकट या आनन्द में 'हाय मां' कहने वाले भारतीय पुरुष का प्रतीक यह 'सूअर' मां पर इतना अधिक आश्रित है कि उससे देह संबधों तक का संकेत देता है ... मां और बेटी दोनों की साझा शत्रु है घर में पत्नी बनकर आयी स्त्री.... यह स्त्री स्वतन्त्र, स्वच्छंद और स्वैरिणी है ... आंख ओट होते ही पता नहीं कहां क्या कर आती है ? इन्ही फैण्टेसियों में सारा उपन्यास लिखा गया है ।''(13) जो पुरुष पात्रों की मानसिक विकृति का परिचायक ग्रंथ है ।

विगत दशकों में अपने कथा साहित्य में नारी पात्र रवीन्द्र, शरत, जैनेन्द्र और चतुरसेन शास्त्री ने खूब रचे हैं । वैसे उनका स्त्री विमर्श उन क्षणों की याद दिलाता है जब इस समस्या पर घनघोर मंथन होता था कि स्त्री को घर से बाहर निकाला जाये या नहीं, बाहर निकाला जाये तो उसकी मर्यादा क्या हो ? उसे किस हद तक बाहरी पुरुषों के सम्पर्क में आने दिया जाये ? वह भी कहीं न कहीं पुरुष-क्षेत्र में हस्तक्षेप था और पुरुष के संरक्षण-सम्मोहन के पार जाता था । हालांकि मृदुला गर्ग का 'कठगुलाब' स्त्रीवादी होने के आरोप से बचता हुआ उन संबंधों का विश्लेषण तो करता है मगर शीघ्र ही सारी समस्या का बौद्धिकीकरण उन्हें तर्कों की मरीचिका में भटका देता है । इसके मुकाबले उनका 'अनित्य' ज्यादा विस्तृत परिप्रेक्ष्य में संतुलन खोजता है । राजी सेठ की कथा-रचनाएँ पुरुष द्वारा स्थापित नैतिक मान्यताओं और लक्ष्मण रेखाओं को चुनौती देने से प्राय: कतराती हैं और उसी दिये गये स्पेस में अपनी सार्थकता तलाश करती हैं दार्शनिकीकरण की मुद्रा में ।

कभी कृष्णा सोबती, कृष्णा अग्निहोत्री, दीप्ति खण्डेलवाल, मृदुला गर्ग, आदि ने इस्मत चुगताई और कुर्तुल ऐन हैदर की परम्परा में बोल्ड और प्रतिरोधी भावना की रचनाएँ लिखी थीं, जो अमानवीयता और उभरती लोकतांत्रिक स्थितियों के बीच सहज नारी आकांक्षाओं की ऐसी कहानियां है जहां 'संघर्ष' और 'विद्रोह' शब्द बाहर से थोपे हुए नहीं लगते हैं क्योंकि वहां वे सिर्फ जीने की ज़िद और समाज द्वारा थोपी गई नियति के अस्वीकार की संकल्प-कथाओं का रूप लेती हैं ... सैक्स, बलात्कार भी वहां उसी जीवन-प्रणाली का हिस्सा होकर आता है। राजेन्द्र यादव के शब्दों में वे नारी के अपने अस्तित्व से अस्मिता तक पहुंचने वाली कहानियां है... बेबाक और बेलाग (अन-इनहिबिटेड) । पुरुष मानसिकता में इन्हें 'मित्रो

मरजानी', 'सूरजमुखी अंधेरे के', 'यारों के यार' की तरह 'निर्लज्ज' कहानियों की संज्ञा दी गई है । जिस समाज में हजारों सालों से नारी को सिर्फ सैक्स बनाकर रखा गया हो, वहां सैक्स-विहीन नारी-कथा या तो हवाई आदर्शवाद है या जान-बुझकर गढ़ा गया झूठ ।(14)

प्रसंगवश चित्रा मुदगल ट्रेड यूनियन की गाथा 'आवां' उपन्यास में उकेरती है तो देश-विदेश में व्यापार करनेवाली नारी पात्र की त्रासदी प्रभा खेतान अपने उपन्यास 'आओ पेपे घर चलें' में रचती है । राजनीतिक षड़यंत्रों की खबरें 'मन्नू भण्डारी' अपने 'महाभोज' में रेखांकित करती है तो मैत्रेयी पुष्पा 'चाक' उपन्यास में पंचायत व्यवस्था की भ्रष्ट नीतियों को उकेरती है और नासिरा शर्मा 'अक्षयवट' उपन्यास में राजनीतिक भ्रष्टाचार की परतों को नग्न करती है जबकि 'जहां फव्वारे लहू रोते हैं' में इरान की सरजमीं पर व्याप्त अन्याय और दमन का खुलासा करती है । मधु संधु के शब्दों में ''महिला उपन्यासकारों के उपन्यासों मे आयी विविधता आश्चर्य में डाल देती है । स्त्री जीवन के अनेक जटिल प्रश्नों के साथ-साथ, समय और समाज का कोई भी पक्ष यहां अछूता नहीं रहा । राजनीति और कूटनीति का कोई भी पक्ष उनकी लेखनी से ओझल नहीं हुआ । उसने राजनीति को केन्द्रीय शक्ति के रुप में स्वीकारा है । उसने जान लिया है कि आज के समय में व्यक्ति के जीवन का तापमान राजनीति ही निर्धारित करती है ।''(15)

स्त्री रचनाकार अपने लेखन में तो विद्रोही होगी पर पारम्परिक समाज में संशयशील बनी रहेगी । हालांकि इक्कीसवीं सदी की पूर्व संध्या में अधिकांश उपन्यासों में नारी ने अपनी दीनता का रोना प्राय: बंद कर दिया है । उसका स्थान जीवन संघर्षों ने ले लिया है । बेचारगी प्रतिशोध और विद्रोह में बदल गई है । समस्याओं को सुलझाने की बजाय उन्हें बाइपास करते जाने की कामचलाऊ सोच से वह परिचित हो चुकी है ।

नासिरा शर्मा एक ऐसी विलक्षण कथाकार हैं जिनके पास बड़बोलापन तथा गर्वोक्ति नहीं है । वह बाज जैसी तीक्ष्ण निगाह रखते हुए, पात्रों के पक्ष-विपक्ष को पाठकों के सम्मुख रखकर निर्णय लेने के लिए बाध्य कर देती हैं । अक्सर नासिरा के स्त्री पात्र अपनी विपरीत परिस्थितियों से जूझकर अपना जीवन लक्ष्य स्वयं अर्जित करना चाहते हैं । उनके ये पात्र अशिक्षित, अर्धशिक्षित, गँवार ग्रामीण परिवेश से भी हैं तो दूसरी ओर उच्च शिक्षित महानगरीय परिवेश से सम्बन्धित भी और विदेशी परिवेश से जुड़े पात्र भी । परंतु वे सच्चे जीवन लक्ष्यों के अन्वेषक हैं । सकारात्मक और नकारात्मक पात्रों की अर्न्तविरोधी दुनिया पाठकों को रचनागत सत्य को आत्मसात करने और विचार करने के लिए प्रेरित करती है। नि:सन्देह नासिरा का कृतित्व अपने समकालीनों में पूर्ण रूपेण विशिष्ट है .... पूर्ववर्ती प्रगतिशील महिला रचनाकारों की परम्परा की सशक्त कड़ी में ही वह समाहित होगी ।

विगत चतुर्थ अध्याय के अंतर्गत स्त्री विमर्श के आलोक में नासिरा के विविध उपन्यासों एवम् तृतीय अध्याय में कहानियों की यथासम्भव सटीक चर्चा की गयी है ।

रचनाकार का शिल्प-कौशल तभी श्रेष्ठ माना जा सकता है जब पाठक वर्ग अधिकतम सीमा तक रचनाकार की विचारधारा और अभिव्यक्ति कौशल का श्नै:श्नै: कायल हो जाये । विचारधारा का अस्तित्व 'सब्जी में नमक' की तरह होना चाहिए, न ज्यादा न कम । शाहीद और सकीना के माध्यम से स्त्री विमर्श वाले जो तर्क दिए गए हैं वे पाठकों को अपने निजी अनुभव लगते हैं चाहे वे स्त्री भाषा में हों या पुरुष वाले तेवर में ।

7.1.1 नासिरा शर्मा के लेखन की विशिष्टताएं

नासिरा शर्मा स्त्री विमर्श की प्रमुख हस्ताक्षर हैं, यह कहना गलत न होगा क्योंकि उन्होंने ही शहरी परिवेश तथा पात्रों तक सीमित स्त्री विमर्श को ग्रामीण परिवेश तथा गाँव की साधारण स्त्री से जोड़कर उसे जन साधारण तक पहुँचाने का दुस्साहस किया है । स्त्री विमर्श के तहत पितृसत्तात्मक मूल्यों, दोहरे नैतिक मानदंडों, लिंगभेद की कुत्सित राजनीतिक व सामाजिक मान्यताओं एवं अर्न्तविरोधों को झकझोर कर रख दिया है । सदियों से जिस बर्बर व्यवस्था ने स्त्री को कदम-कदम पर रौंदने की कोशिश की है, उसके व्यक्तित्व एवं अस्तित्व को नकारा गया है, उसकी गरिमा का हनन किया गया है, उस बर्बर व्यवस्था के खिलाफ सशक्त पात्रों की संरचना कर घमासान युद्ध छेड़ा है, अब तक पुरुष वर्चस्व समाज ने स्त्री को मातृत्व, सतीत्व, नारीत्व का महिमा मंडन कर जिस मोहजाल में फंसाकर गुलाम बना रखा था, उसी मोहजाल को चीर डाला है । उनकी स्त्रियाँ आचरण की पैतृक मर्यादाओं और खोखली परंपराओं की लक्ष्मण रेखाओं को अस्वीकार करती हैं, उनके स्त्री पात्र तन-मन से स्वतंत्रता की मांग करते है । सांस्कृतिक एवं धार्मिक वर्चस्व के दोहरे मानदंडों को ललकारते हैं ।

7.1.2 कथ्य सम्बन्धी विशिष्टता :

विगत चतुर्थ एवं पंचम अध्याय में जहाँ हमने नासिरा के उपन्यास एवं कथा साहित्य की कथ्य संरचना पर विवेचन प्रस्तुत किया है वहाँ षष्ठ अध्याय में शिल्पपक्ष की विशेषताओं को रेखांकित किया है । उपसंहार रूपी वर्तमान विवेचन में सार रूपी कथन माना जाये कि विवेच्य कथाकार नासिरा की सबसे बड़ी विशिष्टता उनके कथ्य और शिल्प की विविधता है। विविधता के कारण ही नासिरा का लेखन विविध वर्गों के पाठकों को अधिक प्रभावित करता है । जिस किसी ने भी उनके कथा साहित्य को पढ़ा होगा, वह इस बात को ठुकरा नहीं पायेगा, प्रसंगवश 'कुइयांजान' उपन्यास में नासिरा शर्मा ने अवधी व राजस्थानी आंचलिक

परिवेश में जल समस्या पर केन्द्रित व्यथा-कथा कही है । लेखिका ने राजस्थान के छिटके टाँकों, कुंड-कुंडियों, बोरियों, जोहड़ों, नाड़ियों, तालाबों, बावड़ियों, कुये-कुंइयों और पार आदि में भरकर उड़ने वाले समुद्र के अखंड हाकड़ों को खंड-खंड नीचे उतार लिया है । नासिरा जी ने राजस्थानी पानी के शास्त्र को पूरे विस्तार से खोला है । उपन्यास में विशेष जानकारी मिलती है जैसे-राजस्थानी समाज ने पानी को तीन रूपों में बांटा है । पहला 'पालर पानी' जो सीधे बरसात से मिलता है । नदी तालाब में इसको रोका जाता है । दूसरा रूप 'पाताल' पानी जो कुंओं से निकाला जाता है और तीसरा रूप है 'रेजाणी पानी' । धरातल से उतरा, लेकिन पाताल में नहीं मिल पाया पानी । उसी को 'रेजाणी' कहते हैं । इस विशिष्ट रेजाड़ी पानी को समेट सकने के लिये कुंई बनाना सचमुच एक विशिष्ट कला है । इसमें जान का खतरा है । कुंई 'देखने में जितनी छोटी व गहरी होती है, उसका बनाना उतना ही मुश्किल । लेखिका ने भीगी रेत से कुंई में पानी संचय की इस अनोखी परम्परा का इतनी खूबसूरती से जिक्र किया है कि उपन्यास का एक महत्त्वपूर्ण पात्र प्रतीत होने लगती है । इस समूची संवेदनशील तकनीक को उपन्यास में धारा प्रवाह पढ़ना एक अनोखा एवं तरल अहसास देने वाला शीतल अनुभव है ।

'अक्षयवट' उपन्यास में उन्होंने राजनीतिक परिवेश को चित्रित किया है । मन्नू भंडारी का 'महाभोज' कभी इस पक्ष का एकमात्र उदाहरण था । लेकिन राजनीतिक परिवेश को जिस तरह से पुरुष लेखकों ने चित्रित किया था वैसे चित्रण का महिला रचनाकारों के रचनाओं में अभाव था । परंतु 'अक्षयवट' एवं विदेशी धरती पर लिखे 'जहां फव्वारे लहू रोते हैं' उपन्यास में नासिरा ने इस परिदृश्य को नया आयाम दिया है । 'जीरो रोड' उपन्यास के माध्यम से वह व्यक्ति के मनोविज्ञान का विश्लेषण करती है तो 'ठीकरे की मंगनी' में ग्रामीण मुस्लिम समाज की गाथा-कथा रचती है । 'जिंदा मुहावरे' उपन्यास के माध्यम से भारत-पाक बंटवारे की पीड़ा और छटपटाहट को महसूस किया गया है । 'अफगानिस्तान: बुजकशी का मैदान' में काबुल की घाटी में कदम रखते ही नासिरा ने काबुलीवाले की याद को शब्दों में व्यक्त किया है । इस पुस्तक में अफगान समाज की समाजशास्त्रीय विवेचना की गई है । 'प्रोफेशनल वाइफ' और 'दूसरा ताजमहल' कहानियों में महानगरीय परिवेश के साथ-साथ प्रोफेशनल लाइफ को भी वाणी दी है । 'केरियर वुमन' की समस्या तथा पुरुष वर्चस्व समाज के साथ उनकी टकराहट को जीवन्तता प्रदान की है । ''जिस तरह जायसी ने अवध प्रांत की लोक-कथा का आश्रय लेकर 'पद्मावत' रच डाला उसी प्रकार नासिरा ने राजस्थान की लोककथा को 'कुइयांजान' के माध्यम से रचनात्मक रूप दे दिया और पानी के भीषण संकट को भी उकेरा । 'जीरो रोड' के चरित्र आज के युवा वर्ग के प्रतिनिधि हैं, वे कोई लुकाव-छुपाव नहीं चाहते, इसलिए इन चरित्रों के माध्यम से लेखिका आधुनिक समाज

को नये ढंग से प्रस्तुत करने में सफल हुयी है । नासिरा की कहानियों में भी विविधता दृष्टिगोचर होती है । उदाहरण के लिए 'दूसरा ताजमहल' और 'और गोमती बहती रही', 'बुतखाना', 'दहलीज' आदि कहानियों के तथ्य और शिल्प दोनों में विविधता पायी जाती है ।

नासिरा ने जिस साहसिकता और बेलौस ढंग से 'जहां फव्वारे लहू रोते हैं' उपन्यास लिखा है, वैसा शायद ही कोई अन्य रचनाकार लिख पाया है । यह उपन्यास सांस्कृतिक देश ईरान के खून से लथपथ होते देश में तब्दील होते रहने की प्रक्रिया की प्रस्तुति है । पुरुष तक इतनी साहसिकता नहीं दिखा पाता परंतु नासिरा शर्मा ने महिला होते हुए भी बिना किसी दुराव-छिपाव व भय के लिखा है । यह उनकी हिम्मत और साहसिकता का ही परिचय देता है । हरिवंश राय बच्चन ने अपनी आत्मकथा चार खण्डों में लिखी, लेकिन वह अपने आपको कई जगह पर ग्लोरिफाई करते नज़र आते हैं । जयशंकर प्रसाद ने 'आँसू' जैसी कृति लिखने के लिए रहस्यवाद का आश्रय लिया । लेकिन नासिरा शर्मा ने राजनीतिक व समाजशास्त्रीय संबंधी विवेचन के संदर्भ में अपनी सच्ची अनुभूति को अभिव्यक्ति देने के लिए अपने जुझारूपन के साथ सब कुछ कह डाला । सच है, नासिरा शर्मा अपनी रचनाओं के माध्यम से अपने जीवट, दुस्साहस और अपने आत्मस्वीकार से अपने समय, देश-काल और समाज को रेखांकित करती है ।

पारम्परिक प्रतीकों और मिथकों को नासिरा नया आयाम देती हैं। नागार्जुन, रेणु, अमृतलाल नागर भी कभी सशक्त आंचलिक कथाकार माने जाते रहे हैं, कहीं-कहीं मार्कण्डेय और शिव प्रसादसिंह भी । पर नासिरा शर्मा ने बीसवीं शताब्दी के अंत व इक्कीसवीं सदी की शुरुआत में आंचलिक भाषा-बोली-बानी को अभिनव लोकरुप में प्रस्तुत किया है - इस सन्दर्भ में अनेक आलोचकों ने उन्हें सराहा है ।

भावबोध और शिल्प का एक आंतरिक संबंध होता है । जिस प्रकार का विशिष्ट भावबोध होगा उसी के अनुरूप शिल्प-संरचना होगी । नासिरा ने भी अपने उपन्यास की रचनाओं में अलग-अलग भावबोधों का प्रयोग किया है । 'शाल्मली' उपन्यास का भावबोध पति परायण महिला की त्रासदी है तो 'ठीकरे की मंगनी' एक ऐसी स्त्री का जीवन संघर्ष है, जो अपने व्यक्तिगत सुखों से ऊपर उठकर समष्टिगत हित के लिए अपना जीवन समर्पित करती है । 'जीरो रोड' उपन्यास के भावबोध की बात की जाए तो इसमें सारंभ की परिवेश गत त्रासदी के प्रति विद्रोह है । उसकी लड़ाई व्यक्तिगत लड़ाई नहीं है बल्कि उन समस्त स्त्री जाति की लड़ाई है जो किसी न किसी रूप में परंपरा और जीवन मूल्यों के निर्वाह में होम हो जाती है । बन्धु कुशावर्ती के शब्दों में 'ज़ीरो रोड' की मूल कथा इलाहाबाद के सिद्धार्थ,

उसके मुहल्ले चक, शहर की महत्त्वपूर्ण ज़ीरो रोड सड़क के आसपास से लेकर इलाहाबाद के कुछ अन्य इलाकों से जुड़ी हुई है किन्तु, सिद्धार्थ की बेरोज़गारी के माध्यम से 'ज़ीरा रोड' आज के भूमण्डलीकृत विश्व की 'वैश्विक स्थानीयता' के बड़े वितान से लेकर देश-दुनिया की साम्प्रदाात्कता, आतंकवादी, एकध्रुवीय विश्व के वर्चस्ववा और इस सब में जूझते-जीते, राह खोजते-बनाते या इस कोशिश में अपने को झोंक देते इंसान की कथा कहता है । इन सन्दर्भ में 'ज़ीरो रोड' का सिद्धार्थ, नासिरा शर्मा की कलम से सिरजा हुआ है वैसा ही महत्त्वपूर्ण पात्र है जैसे कि अमृतलाल नगर के 'बूँद और समुद्र' में 'ताई' और 'नाच्यो बहुत गोपाल' में निरगुनियाँ, जिन्हें हिन्दी के स्वातन्त्र्योत्तर उपन्यास साहित्य में विशेष रुप से चिह्नित-रेखांकित करते हुए अनेक कोणों से प्रक्षेपित किया गया है । 'कुइयांजान' में सामाजिक भावबोध की त्रासदी है तो 'मरजीना का देश इराक' में इराकी समाज-संस्कृति का राग-विराग है एवं विदेशी परिवेश का आंचलिक भावबोध प्रस्तुत है । इस तरह नासिरा ने अपने भावबोध को प्रकट करने के लिए विभिन्न उपन्यासों की रचना की है । इन कथा साहित्य के माध्यम से वे अलग-अलग भावबोध को चित्रित करने में सफल हुई है जो हमारे वर्तमान युग की सामाजिक विसंगतियों को विभिन्न आयामों में दर्शाती है ।

समकालीन कथा साहित्य की दुनिया में नासिरा शर्मा की सबसे बड़ी विशेषता विभिन्न अंचलों की भाषा-शैली है । ये अंचल इलाहाबाद, ब्रज-आगरा-कानपुर का सीमावर्ती प्रदेश, अवध प्रांत और राजस्थान आदि है । उन्होंने हिंदू व मुस्लिम समुदायों के परिवारों में बोली जाने वाली बोलियों और शब्दों का बड़ा ही प्रवाहरुप प्रयोग किया हैं । 'ठीकरे की मंगनी', 'कुइयांजान' और 'अक्षयवट' इसके उदाहरण है । प्रसंगवश 'नयी कहानी' के कहानीकार भाषा के प्रति विशेष सजग रहे हैं । अमरकान्त ('दोपहर का भोजन') तथा भीष्म साहनी ('खिलौने') ने अत्यंत सहज तथा बोलचाल की भाषा का सहज प्रयोग किया । मोहन राकेश भी इसी कोटि में आते हैं । दूसरी ओर कमलेश्वर तथा राजेन्द्र यादव ने भाषा से ज्यादा काम लेने का प्रयास किया है ।कहना न होगा कि ''कथा साहित्य का शिल्प विधान कल्पना और यथार्थ के ताने बाने से बुना हुआ वातायान होता है, जिसमें कथ्य, पात्र, परिवेश, कथोपकथन एवं सौद्देश्यता के तत्वों के साथ-साथ सांकेतिकता, सम्प्रेषणीयता की मूल्य चेतस भावना भी सक्रिय होती रहती है । विषय की मांग के अनुसार कथा साहित्य के शिल्प में निरंतर प्रयोग होते रहे हैं ।[16]

नासिरा शर्मा ने समकालीन कथा साहित्य में न केवल आंचलिक भाषा-शैली के नये पुराने साँचों का प्रयोग किया है बल्कि वह स्त्री भाषा के साँचों को भी रेखांकित करती है, लगभग विस्मृत आंचलिक बोली-बानी के प्रयोग । पर उन्होंने मैत्रेयी पुष्पा की भांति स्त्री

पुरुष संबंधों में बेलौस गाली-गलौज की भाषा-शैली का प्रयोग नहीं किया है । नासिरा कहती हैं कि ''गालियों का प्रयोग या स्त्री-पुरुष संबंधों का खुलकर चित्रण करना शालीनता नहीं है । बस इशारे से बात कह दी जाए और आगे बढ़ जाया जाए, इसी में कथा की बनावट और बुनावट है ।''(17) ऐसा प्रतीत होता है कि वह पात्रानुकूल भाषा-शैली का सहज प्रयोग कर लेती हैं, कथ्य अनुरूप शिल्प का अभिनव साँचा बन जाता है । यद्यपि एकाध उदाहरण इसके अपवाद स्वरूप अवश्य हैं । जैसे, 'कुइयांजान' का यह वाक्य ''उसकी हरकत पर रंगीले को ताव आ गया । दांत पीसकर बोला - 'मादरचो-' । लेखिकाने कहीं-कहीं पुंस भाषा का प्रयोग किया है ।

नासिरा शर्मा की विनम्रता है कि वह सीमोन द बुआ, इस्मत चुगताई और तसलीम नसरीन के भाषा प्रयोगों पर, कथ्य की बेबाकी और शिल्प सम्बन्धी तराश पर नजर तो रखती हैं पर अपनी लकीर को बड़ा करने के लिए । वह बड़बोलेपन से बचना चाहती है । उनमें कमल कुमार जैसी आत्मप्रवंचना नहीं है जबकि वह भी स्त्री-विमर्श की सबसे बड़ी दावेदार है । प्रसंगवश राजेन्द्र यादव भी कहते है कि ''यह कैसी हास्यास्पद विडम्बना है कि हजारों सालों से पुरुष ने स्त्री को देह से अधिक कुछ भी नहीं माना । शस्त्रों और शास्त्रों से उसे यही समझाया जाता रहा कि वह सिर्फ देह है, और उसकी इस देह के स्वामित्व पर ही उसने संस्कृति का सा वितान खड़ा कर लिया ... लेकिन आज जब स्त्री ने सिर उठाकार यह कहना शुरु कर दिया कि हां, वह सबसे पहले शरीर है और अपनी देह की मालिक वह स्वयं है तो सारे पुरुष समीकरण गड़बड़ा गये ।''(18) पर उनका यह दावा तथाकथित स्त्री विमर्श की दावेदार नारियाँ पूर्णत: स्वीकारना नहीं चाहती हैं ।

7.2 स्त्री विमर्श के क्षेत्र में नासिरा शर्मा का योगदान

समकालीन कथा साहित्य में नासिरा शर्मा एक विवादास्पद लेकिन महत्वपूर्ण रचनाकार हैं जिन्होंने हिंदी कथा साहित्य में अपनी रचनात्मक कृतियों से विशिष्ट पहचान दर्ज की है । स्त्री विमर्श के संदर्भ में प्राय: मन्नू भंडारी, प्रभा खेतान, मैत्रेयी पुष्पा, अलका सरावगी, ममता कालिया आदि की चर्चा की जाती है । पर नासिरा शर्मा का लेखन संबंधी कैनवास उपर्युक्त स्त्री रचनाकारों की अपेक्षा व्यापक है । कारण, उनके यहां हिंदू समाज, मुस्लिम समाज, ईरान, इराक एवं पाकिस्तान में नारी पात्रों का संघर्ष रुपायित होता है । विभिन्न जाति-समुदाय, वर्ग एवं वर्ण की नारियों का संघर्षशील जीवन उनके कथा लेखन की मुख्य धुरी है जबकि अन्य स्त्री रचनाकारों का अनुभव जगत और अभिव्यक्ति जगत अधिकतर हिंदू नारियों के संघर्ष तक ही सीमित है । यह तुलना नहीं है बल्कि संवेदनशील मन से अनुभव की गयी भावाभिव्यक्ति है ।

नासिरा शर्मा के आठ उपन्यास सृजनात्मक जगत में उपलब्ध हैं : 'सात नदियां एक

समंदर', 'शाल्मली', 'ठीकरे की मंगनी', 'जिंदा मुहावरे','कुईंया जान', 'अक्षटवट', 'जीरो रोड' और 'जहां फव्वारे लहू रोते हैं ।

नासिरा शर्मा महत्वपूर्ण कथाकार तो हैं ही, साथ ही, एक सफल अनुवादक और रिपोर्टर भी हैं । उनके कई लेख संग्रह एवं रिपोर्ताज (यथा, मरजीना का देश इराक, एवं 'अफगानिस्तान बुजकशी का मैदान' ''जहां फव्वारे लहू रोते हैं'') भी प्रकाशित हुए हैं । ''शाहनामा-ए-फिरदौसी'', ''गुलिस्तान-ए-सादी'', ''बर्निंग फायर'', ''इकोज ऑफ ईरानियन रेवोल्यूशन'', ''प्रोटेस्ट पोएट्री'', ''काली छोटी मछली'', ''किताब के बहाने'' तथा ''औरत के लिए औरत'' ऐसे ही संग्रह हैं । बच्चों के लिए भी उन्होंने काफी लिखा है ।

समाज के विभिन्न पक्षों और जाहिर तौर पर साहित्य-लेखन में पुरुषों का वर्चस्व रहा है । लेकिन यह भी सत्य है कि साहित्य रचना-संसार में पुरुष रचनाकारों का वर्चस्व गुजरे जमाने की बात हो चली है । समय परिवर्तन के साथ गुजरे कुछ दशकों से नारी ने विभिन्न आयामों में अपनी पहचान विश्व को कराई है । परंतु विकास के विभिन्न आयामों से रु-ब-रु होने के बावजूद समाज में महिलाओं की स्थिति आज भी दोयम दर्जे की बनी हुई है । समाज में परिवर्तन के साथ, नारी उद्धार के आंदोलनों के साथ सती प्रथा, दहेज प्रथा, बाल-विवाह तथा विधवा समस्या से समाज को मुक्ति तो मिल गई, महिलाएं अपने अधिकारों के प्रति जागरुक तो हो गईं, नारी शिक्षा का प्रतिशत भी बढ़ गया लेकिन समाज का नारी के प्रति पक्षपातपूर्ण रवैया, पुरुष द्वारा स्त्री को अपने से कमतर एवं स्वयं को श्रेष्ठतम समझने की सोच में कमी नहीं आई है । और यही वजह है कि अकेले भारत में ही नहीं, वरन दुनिया भर में महिलाएं स्त्री होने के दर्द एवं त्रासदी को, जीवन के घुटन को समान रुप से झेल रही हैं और वे विद्रोह करके हीन भाव से छुटकारा पाना चाहती हैं । स्त्री के इस दर्द, अंदर की बेचैनी और छटपटाहट को महिला रचनाकारों ने पुरुषों की अपेक्षा अधिक मुखर एवं बेबाक होकर प्रस्तुत किया है । इसी बेबाकीपन की वजह से पिछले तीन दशकों में महिला कथाकारों ने कथा साहित्य में अपनी विशिष्ट पहचान बनाई है ।

समकालीन कथाकारों में नासिरा शर्मा एक ऐसा नाम है जो नारी स्वभाव, मन:स्थिति, मनोविज्ञान के साथ-साथ वर्तमान विभिन्न अंचलों एवं क्षेत्रों यहां तक कि इतर देश की सामाजिक परिस्थितियों एवं व्यवस्थाओं में भी महिलाओं की दशा एवं सोच का निष्ठापूर्वक सुस्पष्ट चित्रण प्रस्तुत कर पाने में अदब के साथ लिया जाता है । उनके द्वारा रचित उपन्यास हों अथवा कहानियां, नासिरा शर्मा बड़ी सादगी से जीवन के यथार्थ को पाठकों के समक्ष रखती हैं । अंतर्धारा में एक आग्रह अवश्य महसूस होता है कि इन्सान ने स्वयं को जीना छोड़ दिया

है और बाहर की बनावटी, भौतिक दुनिया के कोलाहाल का किसी-न-किसी वजह से अपनाने में स्वयं को फूला-फूला सा और गौरवान्वित महसूस करता है । परंतु हकीकत यह है कि भौतिकवाद और बाजारवाद के कोलाहल में उसकी निजता लुप्त होती जा रही है और वजूद भटकता जा रहा है । नतीजतन उसकी सारी सहजता तेजी से उसके सुख एवं चैन के सारे क्षण छीनती जा रही है । कभी-कभी ऐसा भी संकेत मिलता है कि वह पाषाण युग की प्रवृत्तियों की तरफ अकारण बढ़ रहा है जो सारी उपलब्धियों के बावजूद उसको वह ''चैन'' नदी दे पा रही हैं जिसका वह सही हकदार है । इन प्रवृत्तियों का खुलासा करती कहानियां विशेष रुप से ''इंसानी नस्ल'' नाम से प्रकाशित नासिरा शर्मा के कथा संग्रह में संग्रहीत हैं । कुल तेरह कहानियां हैं इस संग्रह में । इन कहानियों में नारी मन की बातें भाव एवं संवाद दोनों रुपों में प्रकट होती हैं ।

नासिरा शर्मा ने कई समीक्षाएं भी लिखी हैं जिनके माध्यम से स्त्री विमर्श के बारे में उनके विचार एवं दृष्टिकोण प्रतिपादित होते हैं । ये समीक्षा लेख लेखिका ने स्वतंत्र भारत के संपादक घनश्याम पंकज के अनुरोध पर अपनी पसंद की किताबों पर लिखे जो 'स्वतंत्र भारत' के रविवारी परिशिष्ट में 'किताब के बहाने' कॉलम में छपने लगे । पहला लेख अक्तूबर 1992 में शंकर दयाल सिंह की पुस्तक 'राजनीति की धूप और साहित्य की छांव' पर छपा और यह सिलसिला 1993 तक चला । बाद में ये लेख नासिराजी की पुस्तक 'किताब के बहाने' में संकलित होकर छपे । इस किताब में कुल 24 लेख हैं - जो पांच भागों में विभाजित हैं - इतिहास, समाज, साहित्य, नारी और जीवनी । यानी नारी विमर्श को लेखिका ने अपनी रचनात्मकता का महत्वपूर्ण अंग माना है ।

नासिरा शर्मा कहती हैं - ''महिलाओं के प्रति बने कानून फाइलों की शोभा अवश्य बन चुके हैं मगर समाज का दृष्टिकोण अधिक पुरातनपंथी बन गया है । यदि यदा - कदा पाठकगण अपनी प्राचीन सभ्यता के इतिहास को उलटते-पलटते रहें तो उनकी मानसिकता पर वर्तमान का इतना गहरा अंधेरा नहीं छाएगा और अतीत की रोशनी से वह वर्तमान को अच्छी तरह देख पाएंगे और मानव सभ्यता एवं प्रगति अपनी दिशा नहीं खोएगी ।''(19)

इस समीक्षा में रामविलास जी के हवाले से नासिरा जी लिखती हैं कि पुरुष सत्तात्मक समाज बनने से नारी की पराधीनता शुरु होती है और पुरुष यह प्रचार करने लगता है कि ''नारी स्वभावत: पुरुष से हीन है, वह भोग की वस्तु है, सार्वजनिक जीवन में भाग लेने के योग्य नहीं है । उसका काम चौका-चूल्हा करना और बच्चे पालना भर है । इस दृष्टिकोण का कारण और सार्वजनिक जीवन में नारी के भाग न लेने का कारण समाज-व्यवस्था है, न कि यह कि नारी जन्म से ही पुरुष से हीन है ।'' बिना समाज-व्यवस्था के बदले नारी की स्थिति को नहीं

बदला जा सकता । ऋग्वैदिक काल में ''नारी पूर्ण रूप से स्वाधीन थी । लोग हल चलाना, पशुपालन, खेती करना, घर बनाना जानते थे । इस समय राजा जनता द्वारा निर्वाचित नायक मात्र था और वह उसे हटा भी सकती थी । समाज में संपत्ति की वृद्धि और उत्पादन के विकास से यह परिस्थिति पैदा हो रही थी कि राज्य सत्ता का जन्म हो और शासक-वर्ग शेष जनता को अपने अधीन रखने के लिए उसका उपयोग करे । प्राचीन गणराज्य जनतांत्रिक थे । उस समय ''स्त्री-पुरुष में तीव्र असमानता न होने के कारण सामाजिक कार्यों में स्त्रियां अधिक भाग लेती थीं ।''

एम.ए. अंसारी की दो पुस्तकें 'नारी चेतना और अपराध' और 'महिला आपराधिकता एवं पुनर्स्थापन' हैं । अंसारी जी ने जब ये पुस्तकें लिखीं तब वे उपमहानिरीक्षक, कारागार, राजस्थान, जयपुर थे । नासिरा जी ने इन पुस्तकों की समीक्षा 'यहां नारी वहां अपराध कहां चेतना' नाम से की है । आज की नारीवादी वीरांगनाओं को श्री अंसारी के यह वाक्य याद रखने चाहिए - ''शारीरिक सौंदर्य में अपने जीवन की इतिश्री खोजने वाली नारी को सजने-संवरने की स्वभावगत मूल प्रवृत्ति से ऊपर उठना होगा और पुरुष को रिझाने मात्र कार्य को छोड़कर नई सामाजिक व्यवस्था का निर्माण करना होगा, जिसमें व्यक्ति का व्यक्तित्व अपने पूर्ण मानसिक गुण व शक्तियों के आधार पर ही प्रतिष्ठा का विषय बने । निडरता, स्पष्टवादिता व बुद्धि-कौशल दिखाकर पुरुष-वर्ग को अपनी सदियों से चली आ रही मानसिकता में बदलाव लाने को विवश करना होगा । नारी-जीवन के मूल मंत्र होने चाहिए - आत्मविश्वास, आत्मसम्मान, आत्मानुशासन व आत्मनिर्भरता ।'' निस्संदेह ये वाक्य नारी अस्मिता के जन्नती जेवर हैं । नासिरा ने अपनी समीक्षा में लेखक के सारतत्व को सुस्पष्ट कर दिया है । इससे आगे लेखक के ये विचार भी अत्यंत महत्त्वपूर्ण हैं - ''जीवन को आदर्श बनाने के लिए नारी को सामाजिक परिवर्तन के लिए शंखनाद करना होगा, मानसिक एवं शारीरिक शोषण करने वालों को सही पाठ पढ़ाना होगा और शपथ लेनी होगी कि नारी का शोषण, उत्पीड़न नारी के माध्यम से नहीं होगा । एक नारी दूसरी नारी के उत्पीड़न व शोषण में कदापि सहयोगी व प्रतिद्वंद्वी नहीं होगी ।'' इसे हम नारी मुक्ति का घोषणा-पत्र कहें तो अतिश्योक्ति न होगी ।

रीना निसिम की पुस्तक 'नेचुरल हीलिंग इन गायनाकॉलॉजी' है । रीना पेशे से नर्स रही हैं । जनेवा की 'डिस्पेंसायर डे फैमीस' नामक संस्था की आजीवन सदस्य हैं । इस पुस्तक की नासिरा जी ने 'आधी दुनिया की पहली दुनिया' नाम से समीक्षा की है । इस पुस्तक में रीना ने महिला स्वास्थ से जुड़ी समस्याओं पर लिखा है । रीना निसिम ने 'लेबर रुम' और महिलाओं के प्रति डाक्टरों के व्यवहार पर लिखा है, ''वहां पर उसके आराम की चीज़ें कम हैं और डॉक्टर के लिए एक शानदार ईजी चेयर रखी होती है जिसमें न गर्भाशय

होता है और न योनि होती है । यही औरत के कोमल अंगों और उसके उपचार के नए शोधकर्ता होते हैं जिनकी मालूमात महिलाओं की हर बीमारी के बारे में होती है और वे स्वयं अपने को दक्ष समझने लगते हैं । मगर ये डाक्टर कहलाए जाने वाले वास्तव में औरतों के उपचार के बारे में बहुत कम बातें गहराई से जानते और समझते हैं ।'' समीक्षा के ये वाक्य स्त्री उपेक्षिता के संदर्भों को ताजा कर देते हैं ।

प्रेमकृष्ण शर्मा का उपन्यास 'यत्र नार्यस्तु' है । इसकी समीक्षा 'दर्द का दस्तावेज-यत्र नार्यस्तु' नाम से की है । नासिरा जी लिखती हैं कि इस उपन्यास को पढ़ते हुए ''एक पाठक के रुप में आपका मन-मस्तिष्क निरंतर उन व्यथाओं से जूझता पन्ने दर पन्ने आगे बढ़ता रहता है जिस अनुभव से रोज़ हमारी आधी आबादी की असंख्य ज़िंदगियां दो-चार होती रहती हैं ।'' प्रसिद्ध उपन्यास लेखिका होने के नाते यह समीक्षा अत्यन्त मार्मिक बन पड़ी है । इसे पढ़कर पाठक उपन्यास पढ़ने के लिए सन्नबद्ध हो उठता है ।

कात्यायनी की पुस्तक 'दुर्ग द्वार पर दस्तक' की समीक्षा 'विश्व के दुर्गद्वार पर दस्तक' नाम से है । कात्यायनी अति क्रांतिकारिणी हैं । एक्टिविस्ट हैं । परिवार-संस्था की विरोधी हैं । उनके अनुसार: ''हमें अब तक मौजूद परिवार के सभी किस्म के ढांचों के नाश की कामना करनी चाहिए और समाज को इस दिशा में आगे ले जाने का संचेतन उद्यम करना चाहिए ।'' इन विचारों का समर्थन करती हुई नासिरा जी लिखती हैं ''ये विचार क्रांतिकारी होने के बावजूद यथार्थ के नज़दीक हैं । वह मर्द-औरत की घुटती ज़िंदगी के खिलाफ खुली-खुशहाल ज़िंदगी की कामना करती हैं । यह लगभग सभी मर्द-औरतों के मन की आवाज़ है भले ही वह इसको समाज के भय से खुलकर व्यक्त न कर सकें ।'' किंतु इन विचारों से मेरे मन में कुछ प्रश्न बौखला कर उठ बैठे हैं । यथा, परिवार का विकल्प क्या है ? बिना विकल्प के परिवार को नष्ट करने के परिणाम से क्या दोनों प्रबुद्ध लेखिकाएं अपरिचित हैं ? पहले हमें विकल्प देना होगा तब नष्ट करने की बात करनी होगी । मार्क्सवाद विकल्प देता है । अशुभ का विनाश और मंगल का निर्माण साथ-साथ चलेंगे । जनवादी समाज में ही स्त्री स्वतंत्र होगी । हमें उसके निर्माण के लिए प्रयत्न करने ही होंगे ।

कुछ साहित्यकार यौन-चित्रण को ही नारी मुक्ति समझते हैं । उन्हें आइना दिखाते हुए कात्यायनी लिखती हैं कि साहित्य ''में स्त्री का यौन-उत्पीड़न चित्रित किया जाए या न किया जाए । अवश्य किया जाए । यह संभव है न किया जाए । उन्नीसवीं शताब्दी के आलोचनात्मक यथार्थवादी साहित्य में भी वेश्याओं, रखैलों, भगाई गई और बदचलन औरतों की कहानियां आती हैं, पर वे स्थिति से गहरी वितृष्णा का भाव पैदा करती हैं । आजकल नारी-उत्पीड़न के चित्रण के नाम पर या यथार्थ का रंग कुछ ज्यादा ही विस्तार से

भरने के नाम पर थोड़ा 'यौन-रस' लेने की मैलाखाऊ प्रवृत्ति प्राय: दिख जाती है ।'' आज साहित्य में 'नंगई' हो रही है, उससे कात्यायनी सहमत नहीं हैं । कुछ स्वैरणी लेखिकाएं यौन-विप्लव को ही नारी मुक्ति मान बैठी हैं । उन्हें कात्यायनी की इस पुस्तक को अवश्य पढ़ना चाहिए । जीवनी खण्ड में चार लेख हैं - 'कहानी एक बुरी औरत की' किश्वर नाहीद पर, 'पहाड़ी रास्ता, बेढब रास्ता' फतवा तूफान पर, 'निजामी बंसरी के चालीस दिन' हसन निजामी पर और 'सुरमई कबूतर और पत्ता-पत्ता, बूटा-बूटा' रिफअर सरोश पर ।

किश्वर नाहीद पाकिस्तानी लेखिका हैं । उनका जन्म बुलंदशहर में 1940 में हुआ । प्रेम विवाह किया । परिवार का विरोध झेला । पति से अलगाव हुआ । उन्होंने सिमोन की पुस्तक 'सकेंड सेक्स' का 'औरत' नाम से उर्दू में अनुवाद किया । यह अनुवाद 1982 में छपा और पाकिस्तान में इस पर 1983 में बैन लगा दिया गया । इसपर आरोप था कि 'औरतों के बारे में खुली बातें लिखी गई हैं ।' नाहीद की आत्मकथा 'बुरी औरत की कथा' 1995 में भारत में छपी है । नासिरा जी इस पुस्तक के बारे में लिखती हैं : 'इस पुस्तक में किश्वर अपनी कहानी कहती हैं मगर एक सामाजिक आलोचक की तरह, अपने लेख की एडिटिंग करती गैर जरूरी विस्तार से बचती, किसी एक दृष्टि को लेकर एक फैसले पर पहुंच उसका निचोड़ लिखती हैं । पढ़ने वालों को, विशेषकर उन पाठकों को जो किश्वर को व्यक्तिगत रूप से नहीं जानते हैं या नहीं जान सकते हैं, वे वाक्यों और शब्दों में छुपे तूफान को उस शिद्दत से पकड़ नहीं पाएंगे जिस तकलीफ से दर्द के इस समंदर को लेखिका ने पार किया है । कई जगह कम बयानी खलती है, विस्तार की प्यास बढ़ती है ।'' यह विश्लेषण सर्वदा उचित और न्याय संगत है । नासिरा जी की मानवीय प्रतिबद्धता का प्रमाण भी है ।

ललित शुक्ल कहते हैं - '' कोई दर्द और संवेदना जब रचनाकार के कलम से उतरती है उसमें आत्मीयता की चमक के साथ-साथ विश्वसनीयता भी भरपूर मात्रा में रहती है । प्रस्तुति के इन आयामों को देखते हुए यह स्पष्ट होता है कि लेखिका के सोच का दायरा बड़ा है जिसमें राष्ट्रीय और अन्तर्राष्ट्रीय वस्तु-विधान झलक मारता है । परिणामत: 'संगसार' कहानी ईरान की प्रथा या कुप्रथा पर सवलिया निशान लगाते हुए जन्म लेती है । इनकी कहानियों से लेखकीय प्रस्तुति का दायरा बढ़ता है । और पाठक के लिए कलम एक सनातन बात रेखांकित करती है - ''तो फिर भेजने दो उन्हें लानत उसे सूरज पर जो ज़मीन को ज़िन्दगी देता है, उस मिट्टी पर जो बीज को अपने आगोश में लेकर अंकुश फोड़ने के लिए मजबूर करती है और इस कायनात पर जिसका दारोमदार इन्हीं रिश्तों पर कायम है जिसमें हर वजूद दूसरे के बिना अधूरा है । यह कथन कल भी सत्य था, आज भी सत्य है, कल भी सत्य रहेगा। जब अनुभव करते-करते समय राहगीर को आवाज देने लगता है तब ऐसे कथन

कलम से झरने प्रारम्भ हो जाते हैं । और वे कथन धूप, वर्षा, आंध, तूफान में एक जैसे रहते हैं । यही वह उपलब्धि है जो रचनाकार की दृष्टि को शाश्वतता प्रदान करती है ।''[20]

वस्तुत: नासिरा शर्मा अपने समय की सर्वाधिक चर्चित रचनाकार हैं । उन्होंने देश-विदेश के जन मानस से विचारपूर्ण साक्षात्कार किया है । उसकी पीड़ा और दु:ख-दर्द को केवल देखा और महसूस ही नहीं किया बल्कि उस पर उन्होंने अपनी कलम भी चलायी हैं । उनकी निष्ठा संवेदनाओं के साथ है । मानव द्वारा मानव को दी गयी पीड़ा की बर्बरता के खिलाफ आवाज़ उठायी है । यह आवाज कि वर्ग विशेष के लिए नहीं है । जहां अवसाद है, उत्पीड़न है, प्रताड़ना है वहां आप नासिरा शर्मा को खड़ी पाएंगे । ''ठीकरे की मंगनी'', ''शाल्मली'', और ''जिंदा मुहावरे'' नामक उपन्यासों में हम स्त्री विमर्श के यथार्थ परक संबधों का साक्षात्कार पाते हैं । नासिरा शर्मा एक ऐसी विलक्षण कथाकार हैं - संभवत: भारतीय महिला रचनाकारों में पहली कथाकार हैं जिन्होंने भारत के साथ-साथ ईरान-इराक की नारियों का रोमांचकारी दस्तावेज कलाकृति रुप में रचा है । ''सात नदियां एक समंदर'' व 'जहां फव्वारे लहू रोते है' इसी दस्तावेज को दर्ज करते बहुचर्चित उपन्यास हैं ।

शहरी जिंदगी, शहरों में रहने वाले युवा वर्ग खासकर मध्य वर्गीय, युवक-युवतियों एवं उनके परिवारों से जुड़े मसलों जैसे विविध विषयों पर भी नासिरा जी दमदार लेखिनी से पाठक वर्ग प्रभावित होता रहा है । ''अक्षयवट उपन्यास ऐसे ही कथा साहित्य श्रेणी में आता है ।

परित्यक्त स्त्रियों पर, प्रेम संबंधों में असफल स्त्रियों, ग्रामीण और शहरी जीवन के विभिन्न वर्ग और वर्णों की स्त्रियों के जीवन संघर्ष का चित्रण हमें ''शामी कागज'', ''पत्थर गली'', ''इब्ने मरियम'', ''संगसार'', ''सबीना के चालीस चोर'', ''खुदा की वापसी'', ''इनसानी नस्ल'', ''गूंगा आसमान'', ''दूसरा ताजमहल'', ''बुतखाना'' कहानी संग्रहों की अधिकांश कहानियों में मिलता है ।

नासिरा शर्मा ने अपने कथा साहित्य में कहीं-कहीं स्त्री भाषा का प्रयोग किया है और कहीं कहीं पुंस भाषा का । ''स्त्री विमर्श के परिप्रेक्ष्य में हमें यह भी ध्यान रखना चाहिए कि लेखिका किस भाषा में लिख रही हैं । लेखिका ने पुंसभाषा में लिखा है या स्त्री भाषा में । हिंदी में अभी भी अधिकांश लेखिकाएं पुंसवादी भाषा में लिख रही हैं । मान्यता है कि जिस लेखिका की भाषा जितनी मर्दानी है, पुरुष समाज की नजर में उतनी ही बड़ी लेखिका है'' ।[21]

कहना न होगा कि नासिरा शर्मा का कथा साहित्य मानव मूल्यों, विशेषकर नारी-मन को उकेरता साहित्य है जिसमें स्त्री-पुरुष संबंधों, पुरुष प्रधान समाज में स्त्री की दशा-दुर्दशा स्त्री विमर्श का ईमानदारी पूर्वक किया गया चित्रण है । कथा साहित्य में विद्रोह की एक

परम्परा भी विकसित होती है जिसका उद्देश्य है एक व्यवस्था की स्थापना जो पूर्ण रुप से पुरुष प्रधान न हो, स्त्री-पुरुष की समान भागीदारी हो, किसी का किसी पर वर्चस्व न हो, आजादी की सुबह हो समाज में और इस सुबह की लालिमा से ओत-प्रोत हो हमारा समाज तभी प्रकृति प्रदत्त इन्सानियत की खुशबू से हमारा जगत सुवासित हो सकेगा । इस उद्देश्य की पूर्ति हेतु नासिरा जी का कथा साहित्य महिलाओं में नई शक्ति, ललक और हिम्मत भरने की क्षमता भी रखता है ।

समग्र रुप से कहना न होगा कि संपूर्ण व्यवस्था में जिस आमूल रुप से स्त्री विमर्श के पुनर्मूल्यांकन और विश्लेषण की जरुरत है इस निर्णय के अधिकार को पुरुष-व्यवस्था ने अभी तक अपने पास ही रखा है । ऐसी स्थिति में नारी की बेचैनी, छटपटाहट, घेरे से बाहर निकलने की अकुलाहट स्वाभाविक है और प्रकृति प्रदत्त भी क्योंकि प्रकृति प्रदत्त आजादी को अपनी कूवत बना रखा है पुरुष प्रधान समाज ने । इस अकुलाहट को ईमानदारीपूर्वक पन्नों पर उतारने में कामयाब चंद महिला कथाकारों में नासिरा शर्मा का कथा संसार अनूठा है, खासतौर से स्त्री-पुरुष संबंधों की अभिव्यक्ति कर पाने एवं स्त्री विमर्श की प्रतिध्वनि दर्ज कर पाने में ।

सन्दर्भ सूची

1.	सुधा सिंह	:	स्त्रीअस्मिता साहित्य और विचारधारा	पृ.	11
2.	राजेन्द्र यादव	:	हंस, जुलाई, 1998	पृ.	04
3.	मधु सन्धु	:	महिला उपन्यासकार	पृ.	07
4.	मधु सन्धु	:	महिला उपन्यासकार	पृ.	07
5.	तसलीमा नसरीन	:	औरत के हक में	पृ.	19, 38
6.	ममता कालिया	:	नयी सदी की पहचान : श्रेष्ठ महिला कथाकार भूमिका		
7.	ममता कालिया	:	नयी सदी की पहचान : श्रेष्ठ महिला कथाकार भूमिका		
8.	रोहिताश्व	:	हिन्दी उपन्यास : नारी विमर्श, सेमिनार कार्मेल कालेज गोवा	17–18 जनवरी 2006	
9.	राजेन्द्र यादव	:	हंस, जुलाई 1998	पृ.	06
10.	रोहिताश्व	:	शोधकर्ता की निजी वार्ता,	7 जनवरी 2008	
11.	राजेन्द्र यादव	:	हंस, जुलाई 1998	पृ.	06
12.	जगदीश्वर चतुर्वेदी	:	स्त्रीवादी साहित्य विमर्श	पृ.	188
13.	राजेन्द्र यादव	:	हंस, जुलाई 1998	पृ.	5–6
14.	राजेन्द्र यादव	:	हंस, जुलाई 1998	पृ.	10
15.	मधु सन्धु	:	महिला उपन्यासकार	पृ.	12
16.	अशोक भाटिया	:	समकालीन हिन्दी कहानी का इतिहास	पृ.	29
			मनोविश्लेषणात्मक विवेचन	पृ.	269
17.	नासिरा शर्मा	:	शोधकर्ता की निजी वार्ता	तिथि–20.12.2008	
18.	राजेन्द्र यादव	:	हंस, जुलाई 1998	पृ.	05
19-	नासिरा शर्मा	:	किताब के बहाने	पृ.	54
20-	ललित शुक्ल	:	नासिरा शर्मा : शब्द और संवेदना की मनोभूमि	पृ.	365
21-	जगदीश्वर चतुर्वेदी	:	स्त्रीवादी साहित्य विमर्श	पृ.	127

✣ ✣ ✣

सहायक ग्रंथ सूची

	रचनाकार / आलोचक	पुस्तक का शीर्षक	प्रकाशक	संस्करण वर्ष
1.	अमर ज्योति	महिला उपन्यासकारों के उपन्यासों में नारीवादी दृष्टि	अन्नपूर्णा प्रकाशन कानपुर	2004
2.	अरविंद जैन	न्याय क्षेत्रे : अन्याय क्षेत्रे	राजकमल प्रकाशन नई दिल्ली	2005
3.	अशोक भाटिया	समकालीन हिन्दी कहानी का इतिहास	भावना प्रकाशन दिल्ली	2003
4.	आदर्श सक्सेना	हिन्दी के आंचलिक उपन्यास और उनकी शिल्प विधि	सूर्य प्रकाश मंदिर बीकानेर	1971
5.	आशारानी व्होरा	भारतीय नारी : दशा और दिशा	नेशनल पब्लिशिंग हाउस, दिल्ली	1983
6.	आशारानी व्होरा	भारतीय नारी : अस्मिता और अधिकार	नेशनल पब्लिशिंग हाउस, दिल्ली	1986
7.	इन्द्रनाथ मदान	आधुनिकता और सृजनात्मक साहित्य	राधाकृष्ण प्रकाशन	1998
8.	इन्दु प्रकाश पाण्डेय	हिन्दी के अधुनातन नारी उपन्यास	हिन्दी बुक सेंटर नई दिल्ली	2004
9.	उषा झा	हिन्दी कहानी और स्त्री विमर्श	साक्षी प्रकाशन, जयपुर	
10.	एम. ए. अंसारी	महिला और मानवाधिकार	ज्योति प्रकाशन, जयपुर	2000
11.	एम. ए. अंसारी	राष्ट्रीय महिला आयोग और	ज्योति प्रकाशन, जयपुर	2000
12.	एम. वेंकटेश्वर	हिन्दी के समकालीन महिला उपन्यासकार	अन्नपूर्णा प्रकाशन कानपुर	2002
13.	ओम अवस्थी	रचना-प्रक्रिया	राष्ट्रभाषा संस्थान, दिल्ली	1985

14.	ओम प्रकाश शर्मा	समकालीन महिला लेखन	पूजा प्रकाशन, दिल्ली	2000
15.	कुसुम शर्मा	साठोत्तरी हिन्दी उपन्यास : विविध प्रयोग	श्याम प्रकाशन, जयपुर	1990
16.	गीता शर्मा	नंगे पाँव : मरु यात्रा	नेशनल पब्लिशिंग हाउस, नई दिल्ली	2006
17.	गोपाल राय	उपन्यास का शिल्प	बिहार हिन्दी ग्रन्थ	1973
18.	चन्द्रकांत बांदीवडेकर	आधुनिक हिन्दी उपन्यास : सृजन और आलोचना	नेशनल पब्लिशिंग हाउस	1988
19.	जगदीश्वर चतुर्वेदी	स्त्री-अस्मिता साहित्य और विचारधारा	आनन्द प्रकाशन	2004
20.	जगदीश्वर चतुर्वेदी	स्त्रीवादी साहित्य विमर्श	अनामिका पब्लिशर्स एंड डिस्ट्रीब्यूटर्स, नई दिल्ली	2000
21.	जार्ज लुकाज	स्टडीज इन युरोपियन रियलिज्म	रूपा एण्ड कं. कलकत्ता	1987
22.	जोसेफ टी शिपले	डिक्शनरी ऑफ वर्ल्ड लिटररी टमर्स	रूपा पब्लिकेशन	
23.	देवेन्द्र चौबे	समकालीन कहानी का समाजशास्त्र	प्रकाशन संस्थान नयी दिल्ली	2001
24.	धीरेन्द्र वर्मा (सं)	हिन्दी साहित्य कोश	ज्ञानमंडल वाराणसी	संवत 2020
25.	नवीन चन्द्र लोहनी (सं)	नई सदी के उपन्यास	भावना प्रकाशन,	2004
26.	नीरा देसाई	भारतीय समाज में नारी	मैकमिलन इंडया लि. दिल्ली	1982
27.	परमानन्द श्रीवास्तव	उपन्यास का यथार्थ और रचनात्मक भाषा	नेशनल पब्लिशिंग हाउस, नई दिल्ली, जयपूर, इलाहाबाद	1976
28.	प्रभा खेतान	आओ पेपे घर चलें	सरस्वती विहार	1990
29.	प्रभा खेतान	बाज़ार के बीच : बाजार के खिलाफ	वाणी प्रकाशन	2004
30.	प्रभा खेतान	छिन्नमस्ता	राजकमल प्रकाशन	1993
31.	पारूकान्त देसाई	हिन्दी उपन्यास साहित्य की विकास परम्परा में साठोत्तरी उपन्यास	चिंतन प्रकाशन,कानपुर	2002

32.	प्रीति मिश्रा	हिन्दू महिलाओं के जीवन	आदित्य पब्लिशर्स	2001
33.	प्रेमिला कपूर	कॉल गर्ल्स	आनंद पेपरबैक्स दिल्ली, बम्बई	1990
34.	प्रेमिला कपूर	मैरिज एण्ड द वर्किंग वुमैन इन इण्डिया	विकास पब्लिकेशन्स नई दिल्ली	1970
35.	भगवत शरण उपाध्याय	भारतीय समाज का ऐतिहासिक विश्लेषण	वाणी प्रकाशन	2004
36.	मधु सन्धु	महिला उपन्यासकार (21 वीं शती की पूर्व संध्या के संदर्भ में)	निर्मल पब्लिकेशन्स, दिल्ली	2000
37.	मधु सन्धु	साठोत्तर महिला कहानीकार	सन्मार्ग प्रकाशन, दिल्ली	1984
38.	महादेवी वर्मा	श्रृंखला की कड़ियाँ	भारती शंकर, इलाहाबाद	1950
39.	मार्क्स एंगेल्स	कम्युनिस्ट पार्टी का घोषणा पत्र	पीपुल्स पब्लिकेशन हाउस, नई दिल्ली	1992
40.	माधुरी छेड़ा	नारी का रचना-संसार एक दुनिया कोणांतर	मनीष प्रकाशन दिल्ली	1995
41.	मृणाल पाण्डेय	स्त्री देह की राजनीति से देश की राजनीति तक	राधाकृष्ण प्रकाशन नयी दिल्ली	1987
42.	रमेश उपाध्याय	कहानी की समाजशास्त्री समीक्षा	नमन प्रकाशन नई दिल्ली	1999
43.	रमेश कुन्तल मेघ	आधुनिकता बोध और आधुनिकीकरण	अक्षर प्रकाशन दिल्ली	1969
44.	रमेश कुन्तल मेघ	क्योंकि समय एक शब्द है	लोकभारती प्रकाशन इलाहाबाद	1975
45.	राकेश कुमार	नारीवादी विमर्श	आधार प्रकाशन हरियाणा	2001
46.	राजकिशोर	स्त्री परंपरा और आधुनिकता	वाणी प्रकाशन नई दिल्ली	1999
47.	राजकिशोर	स्त्रीत्व का उत्सव	वाणी प्रकाशन नई दिल्ली	2003

48.	राजेन्द्र यादव एवं अर्चना वर्मा	अतीत होती सदी और स्त्री का भविष्य	राजकमल प्रकाशन नई दिल्ली	2001
49.	राजेन्द्र यादव	आदमी की निगाह में औरत	राजकमल प्रकाशन नई दिल्ली	2001
50.	राजेन्द्र यादव एवं अर्चना वर्मा	औरत : उत्तरकथा	राजकमल प्रकाशन नई दिल्ली	2002
51.	राजेन्द्र यादव एवं अभयकुमार दुबे	पितृसत्ता के नए रूप	राजकमल प्रकाशन नई दिल्ली	2003
52.	रामधारी सिंह दिनकर	संस्कृति के चार अध्याय	लोकभारती प्रकाशन इलाहाबाद	1998
53.	राल्फ फॉक्स अनु. नरोत्तम नागर	उपन्यास और लोकजीवन	पीपुल्स पब्लिशिंग हाउस, दिल्ली	1979
54.	रेखा कस्तवार	स्त्री चिन्तन की चुनौतियाँ	राजकमल प्रकाशन नयी दिल्ली	2006
55.	रेणुका नैयर	नारी स्वातंत्र्य के बदलते रूप	अभिषेक पब्लिकेशंस चण्डीगढ़	
56.	रेने बेलेक वारेन आस्टीन	थियरी ऑफ लिटरेचर	हार्मन्डस्वर्थ पेंविन्ग	1954
57.	डॉ. रोहिताश्व	आलोचना के हाशिए पर	युनिवर्सिटी बुक हाुस प्रा. लि., जयपूर	2006
58.	डॉ. रोहिताश्व	समकालीन कविता : मार्क्सवादी सौन्दर्यशास्त्र के परिप्रेक्ष्य में	प्रभा प्रकाशन, इलाहाबाद	1986
59.	डॉ. राहिताश्व	समकालीन कविता और सौन्दर्यशास्त्र	वाणी प्रकाशन, नई दिल्ली	1996
60.	डॉ. रोहिताश्व	समकालीनता और शाश्वतता	विद्या प्रकाशन, कानपुर	2006
61.	रोहिणी अग्रवाल	हिन्दी उपन्यास में कामकाजी महिला	दिनमान प्रकाशन, दिल्ली	1997
62.	वर्जिनिया वुल्फ अनु. गोपाल प्रधान	अपना कमरा	संवाद प्रकाशन	2002

63.	शीला रजवार	स्वातंत्र्योत्तर हिन्दी कथा-साहित्य में नारी के बदलते संदर्भ	ईस्टर्न बुक लिंकर्स दिल्ली	
64.	शोभा वेरेकर	साठोत्तरी हिन्दी उपन्यासों का शिल्प विकास	पीयूष प्रकाशन दिल्ली	2001
65.	सदन कुमार पाल	मोहन राकेश की कहानियों में आधुनिक बोध	भावना प्रकाशन	2000
66.	सरिता सूद	महिला कहानीकारों की कहानियों में प्रेम का स्वरूप	सूर्य प्रकाशन दिल्ली	1978
67.	साधना अग्रवाल	वर्तमान हिन्दी महिला कथा लेखन और दाम्पत्य जीवन	वाणी प्रकाशन दिल्ली	1995
68.	सीमोन द बुआ	स्त्री उपेक्षिता	हिन्दी पाकेट बुक्स दिल्ली	1994
69.	सुनत कौर	समकालीन हिन्दी कहानी स्त्री-पुरुष सम्बन्ध	अभिव्यंजना प्रकाशन दिल्ली	1991
70.	सुभाषिणी पालीवाल	भारत में महिला शिक्षा और साक्षरता	कल्याणी शिक्षा परिषद, दिल्ली	1998
71.	सुरेश सिन्हा	नई कहानी की मूल संवेदना	अशोक प्रकाशन दिल्ली	2004
72.	सोनिया सिरसाट	राजेन्द्र यादव के कथा साहित्य का मनोविश्लेषणात्मक विवेचन	विद्या प्रकाशन कानपुर	2004
73.	क्षमा शर्मा	स्त्रीत्ववादी विमर्श समाज और साहित्य	राजकमल प्रकाशन नयी दिल्ली, पटना	2002
74.	ज्ञानचंद गुप्त	स्वातंत्र्योत्तर हिन्दी उपन्यास और ग्राम चेतना	अभिनव प्रकाशन दिल्ली	1989

पत्र-पत्रिकाओं की सूची

1. हिंदी अनुशीलन, प्रयाग
2. नया ज्ञानोदय, दिल्ली
3. मुक्तकथन, बेगूसराय
4. अहा ज़िंदगी (अगस्त, 05)
5. आउटलुक (29.08.05)
6. समीक्षा (अप्रैल-जून, 05)
7. मनस्वी (अंक : 8, अगस्त 2005)
8. प्रगतिशील वसुधा (जनवरी-पार्च 2005, अंक 64)
9. प्रगतिशील वसुधा (जनवरी-पार्च 2005, अंक 65)
10. समकालीन जनमत (सितम्बर 2003, वर्ष 22, अंक 2-3)
11. 'क' (कला सम्पदा और वैचारिकी) अप्रैल-मई 2005
12. अंतरंग संगिनी (जनवरी 2005)
13. इतिहास बोध (जून 2005)
14. आर्य कल्प (28 दिसंबर 2000)
15. आर्य कल्प (28 दिसंबर 2001)
16. तद्भव (अंक - 11 अगस्त 2004)
17. दोआबा (प्रकाशनारंभ से तीन अंक, पटना)
18. नई दुनिया (रविवारीय पत्रिका)
19. समावर्तन
20. कथाक्रम

✣ ✣ ✣